

੧੦

काशी आयुर्वेद ग्रन्थमाला

۲۵

काव्य विविक्तिस्मा

(भारतीय चिकित्सा केंद्रीय परिषद् नई दिल्ली द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रमनुसार)

(दूसरी पाँच)

અનુભૂતિ

प्रोफेसर अजय कुमार शामा

M.D.(Ay.), Ph.D., C.C.T.Y., Dip. Yoga

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर काय चिकित्सा विभाग,

उपाधीकरण निकाय, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर-302002

1

डॉ परशुराम सिंह यादव

Ph.D. Scholar

स्नातकात्तर काय चौकत्सा विभाग,
राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर-302002



चौखम्भा ओरियन्टलिंग

प्राच्य-विद्या, आयुर्वेद एवं उल्लेख ग्रन्थों के प्रकाशक
दिल्ली - 110007

Library

Sr.No.	Parul Institute of Ayurvedic
Subject:	A 639 P
Sub.No.	Kavachikita
Date of Purchase	1 STA 27.6.12
Bill No.	CV 13-5
Price	4 Cr. 1/-
Date of Acc & G.	7.12



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

[creator of
hinduism
server]



भारतीय कॉर्पोरेइट एक्ट के अंतर्गत इस पुस्तक का कोई भी भाग या सामग्री कोई भी व्यक्ति / संस्था / समूह आदि किसी भी अर्थ में प्रकाशक की अनुमति के बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता है। सर्वाधिकार प्रकाशक (चौखम्भा ओरियन्टलिया, दिल्ली) के अधीन है।

प्रकाशक :

चौखम्भा पब्लिशर्स

गोकुल भवन, के-37/109, गोपाल मन्दिर लेन
बाणस्पी-221001 (भारत)

शाखा :

चौखम्भा ओरियन्टलिया

पोस्ट बॉक्स नं. 2206

बंगलो रोड, 9-यू. बी., जवाहर नगर,
(कमला नगर के पास)

दिल्ली-110007 (भारत)

फोन : 23851617, 23858790

© चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी

संस्करण : 2011

पृष्ठ्य : रु. 400

ISBN : 978-81-89469-06-1

ISBN : 978-81-89469-07-8

लेजर टाइपसेट : रवि कम्प्यूटर्स, दिल्ली-७.

वर्तमान समय में प्रचलित विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में से आयुर्वेद सबसे सुरक्षित चिकित्सा पद्धति एवं जीवन विज्ञान का शास्त्र है। तेजी से बढ़लते हुए समाज में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव स्थूल होता है। भागदौड़ से भरी जिन्दगी एवं विभिन्न प्रकार के तनावों से हुटकारा पाने की कामना से आज का मानव विभिन्न उपायों को खोजकर उनका सहाय लेकर अपने आपको सुखी बनाने का प्रयास करता है। विभिन्न वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के बावजूद भी आज के मानव के स्वास्थ्य का स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है। समाज में यह धारणा प्रबल होती जा रही है कि निरोगी काया एवं दीर्घयु प्राप्ति के लिए भारतीय दर्शन एवं आयुर्वेद में वर्णित विभिन्न जीवन शैलियों (सन्तुलित आहार, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या एवं सदबृत का सम्पूर्ण पालन आदि) के विधिवत पालन के अतिक्रम अन्य कोई भी विकल्प नहीं है। इस प्रकार की धारणा आयुर्वेद के पुनर्जीवन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

वर्तमान समय में आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने की दृष्टि से और विज्ञान के क्षेत्र में अनुसन्धानों से प्राप्त ज्ञानकारी को आयुर्वेद में आत्मसात करने की दृष्टि से अनेक आयुर्वेद मनोषी निरन्तर प्रयाप्तरह है। इस विषय में अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता है। चिकित्सा विज्ञान संबंधी नवीनतम ज्ञान को इस प्रकार आयुर्वेद के मनोषीयों ने आयुर्वेद के नवीन पाठ्यक्रम में अनेक आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के विषयों का समावेश किया है। इस दिशा में निनतर गम्भीर प्रयासों के बावजूद भी अभी इस तरह के आयर्वेदिक ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। आयुर्वेद के साथ उपयोगी नव्य चिकित्सा विज्ञान के ज्ञान को आत्मसात कर एवं उनमें तार्किक सामग्रज्य स्थापित करते हुए आयुर्वेद एवं विशेषकर कायथर्विकित्सा के ज्ञान का उपबंहण करने की भावना से ही इन प्रथ का निर्माण किया गया है।

“केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद्, भारत सरकार, दिल्ली” ने सम्पूर्ण भारत में आयुर्वेद का एक ही पाठ्यक्रम निर्धारित करते हुए कायथर्विकित्सा के विस्तृत पाठ्यक्रम

को अध्ययन-अध्यापन की सुविधा की दृष्टि से चार प्रश्न पत्रों में विभाजित किया गया है। प्रथम प्रश्न पत्र में आयुर्वेदीय काय चिकित्सा के सैद्धान्तिक विषय, योग, प्राकृतिक चिकित्सा एवं अन्य प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों के सामान्य सिद्धान्त आदि का समावेश किया गया है जिन्हें शास्त्राचार, वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक रूप में संकलित कर लेखक की पुस्तक काय चिकित्सा (प्रथम भाग) के रूप में प्रकाशित किया गया है। द्वितीय प्रश्न पत्र में शल्य-शालाक्य तथा प्रसूति तंत्र आदि विषयों की मुख्य विधाओं को छोड़कर अन्य काय चिकित्सा सम्बंधी समस्त विषयों को विशुद्ध रूप से शास्त्रीय परन्तु अधिनव स्वरूप में संकलित कर लेखक की पुस्तक काय चिकित्सा (द्वितीय भाग) के रूप में प्रकाशित किया गया है।

प्रसूति-ग्रन्थ काय चिकित्सा के आयुर्वेदाचार्य के पाद्यक्रम में काव्य-चिकित्सा विषय के तृतीय प्रश्न पत्र से सम्बद्ध है। इस प्रश्न पत्र में अनेक ऐसे विषयों का समावेश किया गया है जो आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से सम्बन्धित हैं। इन विषयों पर आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से रचित पुस्तकों का अभाव है। लेखक द्वारा इस अभाव को पूरा करने का प्रयास किया गया है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन कर बनाने का प्रयास किया गया है। अप्रांसाकृत विषयों को छोड़कर उपरोक्त 'सामग्री' को संकलित करने का प्रयास किया गया है। विनाश शब्दावली के प्रयोग से बचते हुए भाषा को सरल व सुधूध बनाने का प्रयास किया गया है। शास्त्रीय सन्दर्भों को 'फुटनोट' में संस्कृत के शब्दों के रूप में वर्णित किया गया है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में उस विषय से सम्बन्धित आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित सामग्री को सारांश में संकलित किया गया है जिससे पाठकों को सम्बन्धित विषय का सम्पूर्ण ज्ञानोक्त एवं संरक्षित अवधारणा हो सके। पुस्तक के लेखन में अपने निजी अध्यापन एवं चिकित्सा के बच्चों के अनुभव, छात्रों के साथ विषय सम्बन्धित विचार-विनियय, चिन्तन-मन्त्र एवं रोगियों पर किए गए विभिन्न अनुसन्धानों के निष्कर्षों को भी यथास्थल सम्माचिष्ट किया गया है जिससे सम्बन्धित विषय को सुस्पष्ट और विकसित करने में सहायता मिली है।

प्रसूति ग्रन्थ की सामग्री को अध्यापक्रम से विषयों का निर्धारण करते हुए निम्न 15 अध्यायों में विभक्त किया गया है—

1. प्रथम अध्याय—इसके अन्तर्गत वातव्याधियों का नैदानिक वर्णन, लक्षण, विकित्सा के सामान्य सिद्धान्त, चिकित्सा एवं प्रमुख वात व्याधियों के लक्षण और विशिष्ट विकित्सा का विस्तार से वर्णन किया गया है।

2. द्वितीय अध्याय—इसके अन्तर्गत कुपोषण जन्य विकार-स्थौर्य, कार्य, रिकेट्स, अस्थि मादर्व, रात्रि अन्धता, बेरी-बेरी, बेलग्राम एवं स्कर्वी आदि रोगों के निदान, लक्षण, चिकित्सा सिद्धान्त, चिकित्सा एवं रोकथाम के उपायों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

3. तृतीय अध्याय—इसके अन्तर्गत विभिन्न अन्तः शावी ग्रन्थियों की व्याधियों के निदान, लक्षण एवं चिकित्सा का वर्णन किया गया है। यथा—अवटु, अधिवृक्षक, थायमस, पीयूष, अन्याशय, वृषण, बीज़, अपरा एवं अन्तःशाव का वर्णन किया गया है।

4. चतुर्थ अध्याय—इस अध्याय में आनुवांशिक एवं पर्यावरण जन्य व्याधियों के कारण एवं निवारण का वर्णन किया गया है।

5. पञ्चम अध्याय—इस ग्रन्थ में खाद् न विषयकता एवं भासी धातुजन्य विषयकता के लक्षण एवं चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

6. षष्ठम अध्याय—इस अध्याय में विभिन्न जीवों द्वारा दर्शजनित विकार, उनके लक्षण एवं चिकित्सा का वर्णन है।

7. सप्तम अध्याय—इस अध्याय में व्याधि धर्मित्व, प्रतिजन, प्रतियोगी, लसिका रोग तथा अनुर्जता जन्य विकारों के लक्षण एवं चिकित्सा का वर्णन है।

8. अष्टम अध्याय—इसके अन्तर्गत विभिन्न शुद्धरोगों के कारण, लक्षण एवं चिकित्सा का वर्णन है।

9. नवम अध्याय—इस अध्याय में मानस विज्ञान निरूपण, मानस रोगों के सामान्य निदान, लक्षण, सामान्य चिकित्सा सिद्धान्त एवं चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

10. दशम अध्याय—इस अध्याय में उमाद, अपस्मार एवं अतत्वाभिनवेश इत्यादि रोगों के कारण, लक्षण एवं चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

11. एकादश अध्याय—इस अध्याय में भ्रम, विभ्रम, संविभ्रम, अव्यवस्थित चित्तता, मनोसंघर्ष, मनोग्रन्थि, मनोविश्वसि, मनोवसादता, व्यामोह एवं वृद्धावस्था जन्य विकारों के निदान, लक्षण एवं चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

12. द्वादश अध्याय—इस अध्याय में आत्मायिक रोग/चिकित्सा की परिप्रेक्षा, निदान, लक्षण एवं सामान्य चिकित्सा सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। यथा—जलवैद्युत, अम्लक्षार आदि के असतुलत जन्य विकार, दाध, दाह एवं तीव्र रक्तस्राव आदि का वर्णन है।

13. ब्रयोदश अध्याय—इस अध्याय में तीव्र उदर शूल, वृक्क शूल, हृच्छूल एवं तीव्र श्वास काठिन्य के कारण, लक्षण एवं आत्माधिक चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

14. चतुर्दश अध्याय—इस अध्याय में मूत्रावरोध, आन्त्रावरोध, उदरावरण कला शोथ एवं आन्त्र शोथ के कारण, लक्षण एवं आत्माधिक चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

15. पञ्चदश अध्याय—इस अध्याय में मधुमेह उपद्रव, मूच्छां, तीव्र ज्वर, औषधि विषाक्तता एवं प्रतिक्रिया के निदान, लक्षण एवं आत्माधिक चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

हमारे पूर्व प्रकाशित ग्रन्थों को विद्वत पाठकों द्वारा सम्पूर्चित आदर, मान एवं सम्मान दिया गया है जिसके लिए हम उनके आभारी हैं। कायचिचिकित्सा के तुतीय प्रश्न पत्र के सम्प्र विषय को विशुद्ध रूप से शास्त्रीय पत्तु अभिनव स्वरूप में संकलित कर कायचिचिकित्सा (तुतीय भाग) पुस्तक के रूप में विद्वत पाठकों के समक्ष अपीत करते हुए अस्त्रत हर्ष की अनुभूति हो रही है और हमें विश्वास है कि यह ग्रन्थ माननीय अध्यापकों, छान्तों एवं अन्य विद्वत पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। इस ग्रन्थ के सन्दर्भ में आप विद्वज्ञानों की अवधारण का स्वागत है।

परम श्रद्धेय गुरुवर प्रो. रामर्हषि सिंह, प्रो. बनवारी लाल गोड, प्रो. बनवारी लाल मिश्रा, प्रो. मदन गोपाल शर्मा, डा. सुरेन्द्र शर्मा, डा. दिनेश काठोदेच, हमारे सहकर्मियों एवं छान्तों ने हमें बाबाबर उत्साहित एवं प्रेरित किया एवं आप सभी के आशीर्वाद, शुभकामनाओं एवं प्रभु कृपा से यह पुरीत कार्य अल्प समय में पूर्ण हो सका। मेरी पत्नी डा. (श्रीमति) प्रबोधी शर्मा, पिया पुत्र अभित शर्मा एवं पुत्री सुश्री गौरी शर्मा के आत्मीय सहयोग एवं उत्साह वर्धक वचनों से ही यह जटिल कार्य समय से पूर्ण हो पाया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के संकलन में हमारे पी-एच.डी. स्कालर डा. परशुराम सिंह यादव ने विशेष योगदान दिया है। हम हृदय से उनके आभारी हैं।

इस ग्रन्थ के लेखन में कायचिचिकित्सा विषयक अनेक आयुर्वेदिक एवं आधुनिक चिकित्सा ग्रन्थों की प्रचुर सहायता ली गई है। उन लेखकों के प्रति हम अपना हार्दिक आभार प्रकट करते हैं।

अन्त में चौखंडा औरियन्टलिया परिवार, दिल्ली के हम हृदय से आभारी हैं जिनकी प्रेरणा, निरन्तर दबाव, प्रोत्साहन एवं सह योग से यह सुन्दर प्रकाशन सम्पन्न हुआ है। माँ भगवती से प्रार्थना है कि यह परिवार भारतीय संस्कृति और आयुर्वेद के उत्थान में समय-समय पर उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित कर अपना अमृत्यु योगदान देता रहे।

प्रोफेसर अन्जय कुमार शर्मा
31 मई, 2006

विषय सूची

क्रम संख्या	अध्याय नाम	वात व्याधि	पृष्ठ सं.
अध्याय-1			1-165
1.	सामान्य परिचय		1
2.	पक्षाशात		21
3.	गुद्रसी		30
4.	अदित		36
5.	कोष्ठगत वात		43
6.	सर्वज्ञगत वात		44
7.	आमाशयगत वात		45
8.	पक्वाशयगत वात		47
9.	गुद स्थित वात		48
10.	त्वक् स्थित वात		49
11.	रक्तगत वात		50
12.	मांसगत एवं मेदोगत वात		51
13.	अस्थि एवं मज्जागत वात		52
14.	शुक्रगत वात		53
15.	स्नायुगत वात		54
16.	सिरगत वात		55
17.	सन्धिगत वात		56
18.	मन्दास्तराघ		61
19.	हनुस्ताम		62
20.	जिह्वास्तराघ		63
21.	विश्वाची		64
22.	अवबाहुक		66
23.	अंशशोष		67
24.	क्रोष्टकरीर्थ		68
25.	खञ्ज एवं पङ्कु		70

(8)

क्रम संख्या	अध्याय नाम	पृष्ठ सं
26.	वातकपटक	71
27.	कलाय खञ्ज	72
28.	पाददाह	73
29.	पाद हर्ष	74
30.	मूक-मिम्न, गदगद्	75
31.	तूनी रोग	77
32.	प्रतिरुनी रोग	77
33.	आभान	79
34.	प्रत्याध्मन	82
35.	अच्छीला	83
36.	प्रत्यष्ठीला	83
37.	खल्ली रोग	84
38.	कम्पवात	85
39.	सिरगह	87
40.	ज्ञानेन्द्रियगत वात	87
41.	आनाह	88
42.	उर्ध्ववात	95
43.	आक्षेपक	100
44.	अपतन्त्रक	104
45.	अपतानक	108
46.	दण्डापतानक	112
47.	धनुस्तम्भ	113
48.	वातरक्त	116
49.	उरस्तम्भ	134
50.	आमवात	147
अध्याय-2 कुपोषणजन्य विकार		166-210
1.	स्थौल्य (मेदो रोग)	166
2.	काशर्य रोग	180
3.	कुपोषणजन्य विकारों के प्रमुख कारण	191
4.	रिकेट्स	196
5.	अस्थिमार्दक	200
6.	रात्रिअनध्यता या नक्तान्धय	202
7.	बेरीबेरी	204

(9)

क्रम संख्या	अध्याय नाम	पृष्ठ सं
8.	पेलाप्रा	206
9.	स्कर्वी	209
अध्याय-3 विभिन्न अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की व्याधियाँ		211-255
1.	अवट या चुल्लिका ग्रन्थि	212
2.	परा अवट ग्रन्थि	222
3.	उपवृक्क ग्रन्थि	229
4.	थायमस ग्रन्थि	239
5.	पीदूष ग्रन्थि	240
6.	आन्यासय	249
7.	वृषण ग्रन्थियाँ	251
8.	अन्तःफल अथवा बीजकोश	253
9.	अप्सा एवं अन्तःस्राव	254
अध्याय-4 आनुवौशिक ऐवं पर्यावरणजन्य व्याधियाँ		256-297
1.	आनुवौशिक व्याधियाँ	256
2.	पर्यावरण जनित व्याधियाँ एवं उनका प्रतिकार	265
3.	वातु प्रदूषण	267
4.	जल प्रदूषण	270
5.	धूति प्रदूषण	274
6.	ओद्धोगिक प्रदूषण	275
7.	व्यावसायिक प्रदूषण	276
8.	भूमि (देश) प्रदूषण	278
9.	काल प्रदूषण	281
10.	शतविनाश एवं पर्यावरण	283
11.	युद्धजनित पर्यावरण प्रदूषण	284
12.	आतप दग्ध - तू लगना	285
13.	सौर गजचर्म	286
14.	शीतोजनित विकार	286
15.	आकस्मिक शीतता	287
16.	आतपजन्य श्रम	288
17.	क्रान्तिमण्डलीय स्वेदवरोध जन्य दौर्बल्य	289
18.	अंशुष्ठात	290
19.	पर्वतीय यात्रा विकार	295
20.	जीर्ण पर्वतारोहण विकार	297

क्रम संख्या	अध्याय नाम	पृष्ठ सं.
अध्याय-5	खाद्यान विषाक्तता एवं भारी धातु जन्य विषाक्तता 298-326	298 310 313 318 319 323 325 328 347 351 358 364 366 369 370 371 371 372 373 374 376-398
अध्याय-6	दंशजनित विकार एवं उनकी चिकित्सा 1. सप्तदंश 2. वृश्चक दंश 3. अलर्कविष 4. लूटा दंश 5. कीट दंश 6. मूषक दंश 7. कुकलास (गिरिट) दंश 8. गृहगोथिका (छिपकली) दंश 9. शतपदी (गोजर) दंश 10. मधिका दंश 11. विषाक्त जन्तु दंश 12. शंका विष	327-375 347 351 358 364 366 369 370 371 371 372 373 374
अध्याय-7	ब्याधिक्षमित्व, प्रतिजन एवं प्रतियोगी, लसीका रोग चिकित्सा, लसीका रोग, अनूर्जा एवं चिकित्सक प्रेरित विकार 1. व्याधिक्षमित्व 2. प्रतिजन एवं प्रतियोगी 3. लसीका चिकित्सा 4. लसीका रोग 5. अनूर्जा 6. विकित्सक प्रेरित विकार	376-398 376 385 388 390 392 395 399-475 399 401
अध्याय-8	झुटरोग एवं उनकी चिकित्सा 1. परिचय 2. अजगरित्सका	399 401

क्रम संख्या	अध्याय नाम	पृष्ठ सं.
अध्याय-5	3. यवप्रब्ला 4. अभ्यालजी 5. विवृता 6. कच्छपिका 7. बल्यीक 8. इन्द्रवृद्धा 9. पनसिका 10. जालगदर्भ 11. पाषणादीप 12. कक्षा 13. अग्निरोहिणी 14. विस्फोटक 15. चिप्प 16. कुनख 17. अनुशयी 18. विदरिका 19. शर्कराबुद्ध 20. पामा 21. विच्चिका 22. रक्सा 23. पाददारिका 24. कदर 25. अलस 26. इन्द्रलुप 27. दारणक 28. अलविका 29. पलित 30. मसूरिका 31. मुखदृपिका 32. पद्ममीकण्टक 33. जउमणि 34. मषक 35. तिलकालक	402 403 404 405 406 409 410 411 413 415 417 419 420 422 423 425 426 428 430 431 432 433 435 436 438 440 441 443 451 454 455 456 457

(12)

क्रम संख्या	अध्याय नाम	पृष्ठ सं
36.	न्यूच्च	458
37.	चर्मकील	459
38.	व्यङ्ग	460
39.	नीतिका	461
40.	अवपाटका	463
41.	परिवर्तिका	464
42.	निरुद्धप्रकरण	466
43.	सनिनरुद्ध गुरु	468
44.	आहिपूर्तना	470
45.	वृषणकन्त्य	472
46.	गुरुभ्रंश	473
अध्याय-9	मानस विज्ञान निरूपण	476-496
अध्याय-10	उत्पाद, अपस्मार एवं अतत्वाभिनिवेश	497-546
1.	उत्पाद	497
2.	अपस्मार	526
3.	अतत्वाभिनिवेश	541
अध्याय-11	भ्रम, विभ्रम, संविभ्रम, अव्यवस्थित चित्तता, मनोसंघर्ष, मनोग्रन्थि, मनोविस्थिति, मनोवसाद, व्यामोह एवं वृद्धावस्था जन्य मनोविकार	547-574
1.	भ्रम गोप	547
2.	विभ्रम	550
3.	संविभ्रम अथवा व्यामोह	551
4.	अव्यवस्थित चित्तता	553
5.	मनोसंघर्ष	556
6.	मनोग्रन्थि	560
7.	मनोविस्थिति	563
8.	मनोवसाद	565
9.	व्यामोह-मिथ्या विश्वास संघर्ष	570
10.	वृद्धावस्था जन्य मनोविकार	572
अध्याय-12	आत्मायिक चिकित्सा, तरल जल वैधुत, अम्लक्षार आदि के असन्तुलन जन्य चिकित्सा	575-620
तीव्र रक्तस्राव		575
1.	आत्मायिक अथवा आपातकातीन चिकित्सा	

(13)

क्रम संख्या	अध्याय नाम	पृष्ठ सं
2.	तरल जलवैधुत तथा अम्ल-शार के असन्तुलन	621
3.	जन्य विकार एवं उनकी चिकित्सा	629
3.	अम्ल-शार संतुलन	635
4.	दाध	644
5.	इन्द्रवज्रानि दाध	650
6.	हिम दाध	654
7.	विद्युत एवं रासायनिक पदार्थों से दाध	659
8.	तीव्र रक्तस्राव	667
अध्याय-13	तीव्र उदरशूल, वृक्कशूल, हृच्छूल एवं तीव्र श्वासकातिन्य	671-699
1.	तीव्र उदरशूल	671
2.	वृक्क शूल	675
3.	हृच्छूल	687
4.	तीव्र रक्त रक्तारण कला शोथ, आन्त्र शोथ, एवं त्राण उक्त बृहदान्त्र शोथ	695
1.	मूत्रावरोध	695
2.	आन्त्रावरोध	699
3.	तीव्र उदरावरण कला शोथ	700
4.	तीव्र आन्त्रशोथ	700
5.	व्रण युक्त वृहदान्त्रशोथ एवं विषाक्तता	700
1.	मूत्रमोह जन्य उप्रद्रव	700
2.	मूर्छा	700
3.	तीव्रज्ञान	700
4.	औषधि प्रतिक्रिया एवं विषाक्तता	700
	••••• और •••••	700

संकेताक्षर (Abbreviations)

च.शा.	चरक सहिता शारीर स्थान
च.इ.	चरक सहिता इन्द्रिय स्थान
च.क.	चरक सहिता कल्प स्थान
च.द.	चक्रदत्त
पा.यो.	पांतजल योग सूत्र
भे.स.	भेल सहिता
भै.र	भैषज्य रत्नावली
भा.प्र.	भाव प्रकाश मध्यम खण्ड
भा.प्र.म.ख.	भाव प्रकाश मध्यम खण्ड
मा.नि.	माधव निदान
मा.नि.प.	माधव निदान परिशिष्ट
यो.र	योग रत्नाकर
र.ए.स.	रस रत्न समुच्चय
रस.	रस तरिणी
रत.	वैद्य जीवनम्
वै.जी.	वैद्य जीवनम्
शा.स.प.ख.	शारंगधर सहिता पूर्व खण्ड
शा.स.म.ख.	शारंगधर सहिता मध्यम खण्ड
शा.स.उ.ख.	शारंगधर सहिता उत्तर खण्ड
अ.ह.शा.	अस्त्रांग हृदय शारीर स्थान
अ.ह.नि.	अस्त्रांग हृदय निदान स्थान
अ.ह.चि.	अस्त्रांग हृदय चिकित्सा स्थान
अ.ह.क.	अस्त्रांग हृदय कल्प स्थान
अ.ह.उ.	अस्त्रांग हृदय उत्तर स्थान
का.सू.	काशयप सहिता सूत्र स्थान
का.चि.	काशयप सहिता चिकित्सा स्थान
का.खि.	काशयप सहिता खिल स्थान
गीता	श्रीमद्भगवद्गीता
च.सू.	चरक सहिता सूत्र स्थान
च.नि.	चरक सहिता निदान स्थान
च.चि.	चरक सहिता चिकित्सा स्थान
च.वि.	चरक सहिता विमान स्थान
च.सि.	चरक सहिता सिद्धि स्थान
हठ	हठ योग प्रदीपिका

अध्याय-१

(NEUROLOGICAL - DISORDERS)

1. वात व्याधि

सामान्य परिचय

वात व्याधि के अन्तर्गत प्रायः उन व्याधियों का समावेश किया जाता है जिनमें मुख्यतः वात दोष की प्रथानता होती है। वात व्याधि के अन्तर्गत प्रायः कृच्छ्र साध्य एवं दारण व्याधियों का समावेश किया जाये हैं, जिनमें से अधिकांश व्याधियों की सत्तोषप्रद चिकित्सा आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की सहायता से भी सम्भव नहीं होती है। अधिकांश वात व्याधियों में वात दोष के स्थानिक गुण 'चल गुण' (गति) की हानि प्रकट होती है जिससे वात दोष के चल गुण के क्षय होने का अनुमान लगाया जा सकता है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि विभिन्न सौहिता ग्रन्थों में वात व्याधि के जो उत्तादक निदान बताए गए हैं, वे प्रायः वात प्रकापक होने से शरीर में वात दोष की वृद्धि करते हैं। वात व्याधियों की चिकित्सा का मुख्य चिकित्सा सूत्र वात शामक आहार, विहार एवं औषधि प्रयोग ही है।

१. धातु क्षय होने के परिणामस्वरूप वात दोष का प्रकृप्ति होना।
२. मार्गवरण या मार्गवरोध होने के कारण वात दोष का प्रकृप्ति होना।

रोगी के सम्पूर्ण शरीर में रुक्षता, खराता, विशदता आदि लक्षण धातु क्षय के परिणाम स्वरूप, वात दोष के उत्पन्न होने के कारण शरीर में प्रकृप्त होते हैं, जबकि स्रोतस में अवरोध या साग उत्पन्न होने की विश्विति में शरीर के एक भाग में वात दोष वृद्धि और दूसरे भाग में वात दोष के क्षय के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

मार्गवरण के कारण भी शरीर में वात दोष प्रकृप्ति हो सकता है। आयुर्वेद के महिता ग्रन्थों में शरीर में दोषों से सम्बन्धित विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है जिसके अन्तर्गत आवृत्त दोष या धातुर्दै शरीर में अपना सामान्य कर्म सम्पादित नहीं कर पाती हैं तथा आवरक दोष या धातुर्दै अपने विशिष्ट लक्षणों को व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार के लक्षण अधिकांश वात व्याधियों में भी प्रकृप्त हो सकते हैं।

आजार्य चारक ने सामान्यज एवं नानात्मज भेद से दो प्रकार की व्याधियों का

१. वायोर्ध्वेत्स्यात् कोलो मार्गिवत्तरोन च। (च.चि. 28/59)

वर्णन किया है। जो व्याधियाँ वात 'आदि प्रत्येक दोष अथवा दो या समस्त दोषों से उत्पन्न होती हैं, उन्हें सामान्यज व्याधि कहते हैं। इनके उदाहरण उदर रोग, अतिसार एवं ऊंचर आदि रोग हैं। सामान्यज के विपरीत केवल एक ही दोष से उत्पन्न व्याधि नानानामज व्याधि कहलाती है। यथा—आक्षेपक, पङ्क्त्व, गृहस्ती इत्यादि, क्योंकि ये रोग केवल वात दोष के प्रकार से ही उत्पन्न होते हैं पिछल या कफ दोष से नहीं। दाह, ओष, चोष, पाक आदि रोग केवल पित्र प्रकोप से ही उत्पन्न होते हैं कफ या वात दोष से नहीं। इसी प्रकार तुप्ति, तन्द्रा, निद्रा आदि रोग कफ जन्य होते हैं, वात या पित्र दोष जन्य नहीं है। इस प्रकार शास्त्रों में 80 वात नानानामज, 40 पित्र नानानामज तथा 20 कफ नानानामज विकारों का वर्णन किया गया है। यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होना स्मान्धाविक है कि सहिताकारों ने पित्र एवं कफ दोष जन्य व्याधियों के अध्यायों का वर्णन न करके केवल वात व्याधियों का वर्णन ही क्यों किया है? इसका मूल कारण यह है कि पित्र तथा कफ दोष पङ्क्ति हैं तथा उनका प्रेक्षक भी बायु ही है। इस प्रकार बायु के सर्व प्रेरक, अति बलवान होते तथा उनसे उत्पन्न विकारों के दुःखाध होने से प्रधानतः वात विकारों का ही विस्तृत वर्णन संहिताओं में किया गया है।

आधुनिक शरीर किया विज्ञान की इटि से विचार करें तो आयुर्वेद के कुछ विद्वान वात दोष की तुलना नाड़ीवह संस्थान (Nervous System) से करते हैं। परन्तु मूळ इटि से विचार करें तो शास्त्र में बायु को 'अव्यक्त कर्म' कहा गया है एवं इसके गुणों में प्रधानतः लक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद, खर गुण तथा वायु को रूप रहित बताया गया है। वात को केवल स्पर्श से अनुभव किया जा सकता है, अतः वात दोष की तुलना नाड़ी तन्त्र से न कर नाड़ी संस्थान हीरा सम्पादित कर्मों (Functions of the Nervous System) से किया जाना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। वात व्याधियों की विकित्सा में प्रयुक्त द्रव्य भी मुख्यतः नाड़ी संस्थान (Nervous System) के कार्यों को पुष्ट करते हैं जिससे चिकित्सा में लाभ होता है।

प्रमुख संदर्भ ग्रन्थ

- वारक सहिता सूक्ष्मस्थान — अध्याय 12 एवं 20
- चरक सहिता चिकित्सा स्थान — अध्याय 28 एवं 29
- सुश्रुत सहिता निदान स्थान — अध्याय 1
- सुश्रुत सहिता चिकित्सा स्थान — अध्याय 4 एवं 5
- अस्ट्रांग हृदय निदान स्थान — अध्याय 15 एवं 16
- तत्र विकाराः सामान्याः। नानानामजाचाच। (च.सु. 20/10)
- असंतोत्वात् विकाराः। चत्वारिंशत् निदान विकाराः। विकारित्वं तत्र विकाराः। (च.सु. 20/10)
- पित्र भङ्गः कफः। पङ्क्ति: पङ्क्तुः पङ्क्तु वा मल-यात्रात्। चायनु यत्र नियन्त तत्र गच्छति मंचवत्। (शा.सं पूर्व खण्ड)
- तत्र रुक्षः। शरोत् लघुः। युक्तिरस्त्रवलोऽपि विशदः। खा.।। (च.सु. 1/59)
- तत्ररहित स्पर्शवान वयुः। (तद्दं स्पर्श)

- तत्र विकाराः सामान्याः। नानानामजाचाच। (च.सु. 28/15-17)
- रोगान्तरवाहक औड्स्ट्रेशन। (भा.प्र. मध्यम खण्ड 24/1-3)

6. अस्ट्रांग हृदय चिकित्सा स्थान — अध्याय 21 एवं 22

7. माधव निदान — अध्याय 22

8. भाव प्रकाश उत्तरार्थ — अध्याय 24

निरुक्ति

मधुकोश टीकाकार श्री विजयराजित जी ने वात व्याधि शब्द की निरुक्ति तीन प्रकार से बर्णित कर वात व्याधि शब्द का विग्रह एवं अर्थ स्पष्ट किया है—

- 'वात एव व्याधिः; इति वात व्याधिः' अर्थात् वात ही व्याधि है, लेकिन इस व्युत्पत्ति का 'दोष यह है कि स्वस्थ एवं रोग रहित व्यक्ति में भी 'वातव्याधि' को उपस्थिति माननी होगी। अतः यह निरुक्ति स्वीकार्य नहीं हो सकती क्योंकि 'वात' कोई व्याधि नहीं है।

- 'वातेन जनितो व्याधिः वात व्याधिः' अर्थात् वात से उत्पन्न व्याधि ही वात व्याधि है तेकिन यह निरुक्ति भी निरुप्ति प्रतीत नहीं होती, क्योंकि वात की उपस्थिति प्रायः सभी रोगों में पाई जाती है यथा— अर्श, अतिसार, ग्रहणी एवं इत्यादि, अतः इस व्युत्पत्ति के अनुसार भी वात व्याधि को विशिष्ट व्याधि नहीं माना जा सकता है।
- 'विकृत वातजनितोऽसाधारण व्याधिः; वातव्याधिः' अर्थात् विकृत वात में उत्पन्न असाधारण व्याधि ही वातव्याधि है। इस निरुक्ति में 'विकृत' शब्द प्रयुक्त होने से स्वस्थ व्यक्ति के सन्दर्भ में अति व्याप्ति नहीं होती है। अतः वातव्याधि, किं यह निरुक्ति ही सर्वशङ्क्ष ई तथा 'वातव्याधि' का सच्यक अर्थ स्पष्ट करती है।

परिभाषा

वात दोष की विकृति से उत्पन्न विशिष्ट व्याधि कहते हैं। 'वात व्याधि' में केवल वात दोष ही दृष्टिहोकर स्रोतस के रिक्त स्थानों का परिपूरण करके 'वातव्याधि' को उत्पन्न करता है। वातव्याधि एकाङ्ग में, सर्वाङ्ग में एवं अवयव विशेष में भी उत्पन्न हो सकती है।

सामान्य निदान

वात व्याधियों के सामान्य निदानों को निम्नलिखित वार्ताओं में विभक्त किया जा सकता है—

- आहार जन्य निदान^{1,2}
- रुक्ष आहार सेवन

- रुक्षरोतास्य लवचन व्यवायाति प्रजाहै।
विषमपुचरच्च दोषसूक्ष्म, स्वणालती।
रात्तुन्तक्षवनात्यस्त्र
व्यायामतिवर्चेष्टते।
प्रातुर्नां सक्षयानित्वा शोक रोगाति कर्वणात्।
दुःखशय्यासनात् क्रोधाद्वात्स्वाम्यादपि।
मार्गसंप्रगत्यान्तरात्प्रथमता भोजनात्।
- कपय कानु तिक्तक प्रसित रसं

- रोगान्तरवाहक औड्स्ट्रेशन। (भा.प्र. मध्यम खण्ड 24/1-3)
- रोगान्तरवाहक औड्स्ट्रेशन। (भा.प्र. मध्यम खण्ड 24/1-3)

सामान्य सम्पादित¹

उपरोक्त विविध प्रकार के निदानों के सेवन से वात दोष प्रकृष्टि होकर रिक्त स्रोतसों की परिपूर्ण करके विभिन्न प्रकार के एकाङ्ग में, सर्वांग में, कोष में अथवा विभिन्न अवयवों में वात व्याधियाँ उत्पन्न करता है।

विशिष्ट सम्पादित

विभिन्न प्रकार के वात वर्धक एवं वात प्रकोपक निदान सेवन (Indulgence in Vata vitiating Ahara and Vihara)

- 3. अत्यत्य आहार
- 4. असात्य आहार
- 5. कट्ठ, तिक्ता, कथाय रस प्रधान आहार
- 6. विषम आहार
- 7. नियम विरुद्ध आहार सेवन
- 8. अध्यशन
- 9. दारुण-अर्थात् अति शीघ्र कुपित होकर दूषित करने वाला आहार
- 10. खर-अर्थात् कठोर एवं रक्ष प्रकार का आहार
- 11. विषमारान

II. विहार जन्य निदान

- 1. अत्यधिक व्यवाय (मैथुन)
- 2. अत्यधिक रात्रि जागरण

- 3. उपवास
- 4. वैगधारण

- 5. चिन्ता
- 6. शोक

- 7. काम
- 8. भय

- 9. जलन (जल में तैरना)
- 10. कष्टदायक शस्य

- 11. हाथी, घोड़ा, ऊँट की सवारी (आधुनिक युग में बैलगाड़ी, ट्रैक्टर, स्कूटर, मोटर साइकिल इत्यादि की सवारी)

- 12. अत्यधिक अध्ययन
- 13. अधिधावन (अधिक दौड़ना)

- 14. अत्युच्च भासण
- 15. अभियात

- 16. अतिभार वहन
- 17. सुखपूर्वक न बैठना

- 18. क्रोध
- 19. दिवाशयन

विशिष्ट निदान

- 1. किसी प्रकार के चिरकालीन रोग से प्रस्त होना।
- 2. किसी कारण से स्सरक्तादि धातुओं का क्षय होना।
- 3. दोष, धातु का आवरण अथवा वात का मार्गवरोध।
- 4. वात दोष का स्वयं ही क्षय होना।
- 5. शरीर में अत्यधिक आमरस की उत्पत्ति।
- 6. असम्यक प्रकार से पञ्चकर्म का प्रयोग।

अन्य निदान

- 1. रक्त धातु का निर्हरण।
- 2. मर्त्त स्थानों पर आधाता।
- 3. पुरीष क्षय।
- 4. ग्रीष्म क्रह्नु।
- 5. वर्षा क्रह्नु में स्वाभाविक रूप से वात प्रकोप।
- 6. दिन तथा रात्रि के तृतीय भाग में वात प्रकोप।
- 7. अन के जीर्ण होने पर वात प्रकोप।

सम्पादित घटक

दोष : वात

दूष : सर्व धातुये, रस रक्तादि

अधिष्ठयन : अङ्ग प्रत्यक्ष, सवार्द्ध, कोष्ठ, कण्डरा, सिरा, स्नायु

स्रोतस : वातवह स्रोतस की कल्पना की जा सकती है

स्रोते दुष्टि प्रकार : सांग, तिमार्गामन

अग्नि : प्रायः विषमाग्नि

व्याधि स्वभाव : नवीन – मुद्द

जीर्ण – दारुण

साध्यासाध्यता : नवीन – साध्य/कुच्छ साध्य

जीर्ण – चाय/असाध्य

¹ देवे श्रोतास्मि विकल्पानि पूर्वित्वाऽनिलो बलो!

कर्त्तव्य विविध व्याधेन सर्वांगै काङ्ग सम्प्रतापा (च.त्रि. २४/१८)

पूर्वसूष्मा

बातविकारों के अव्यक्त लक्षण ही बात व्याधि के पूर्व सूष्मा में केवल उत्तरांश एवं बात व्याधियों के सर्वर्थ में ही अव्यक्त लक्षण मात्र कहकर बात व्याधियों के पूर्व सूष्मा का वर्णन किया गया है। पूर्व सूष्मा, लक्षण के स्वरूप में पूर्वलंगवस्था में प्रकट होते हैं और व्याधि की व्यक्तावस्था में स्वरूप: समाप्त भी हो जाते हैं। दीर्घकाल तक या लक्षण व्यक्त होने के पश्चात् भी पूर्व सूष्मा का बना रहना व्याधि की असाध्यावस्था को व्यक्त करता है।

सूष्मा²

- जब बात व्याधि के पूर्व सूष्मा अर्थात् अव्यक्त लक्षण व्यक्त हो जाते हैं तो वह बात व्याधि के आत्म सूष्मा अर्थात् लक्षण कहलाते हैं।
- प्रभावित अङ्ग में लक्षता (Roughness) एवं शुष्कता (Dryness)
- मांसपेशी, कण्डरा, शिराओं का संकोच (Constriction/Contractures)
- या शैथिल्य (Paralysis or weakness)
- प्रभावित अधिकान में गति वैषम्य (Excessive movements or immobilization)
- प्रभावित भाग में शूल या बेदना (Pain)

प्रकुपित बात के सामान्य लक्षण³

- अङ्ग प्रत्यक्ष में संकोच (Constriction/contractures in affected body parts)
- पर्वों में जकड़ाहट (Stiffness in Joints)
- अर्थ एवं पर्वों में भेदनवत बंदना (Piercing type of pain in bones and joints)
- रोमाज्ज्व (रोमाहर्ष) (Erection of Hair follicles)
- प्रलाप (Delirium)
- पैर, पृष्ठ एवं शिर में स्तम्भ (Stiffness in legs, back and head)
- खङ्गता (Lameness with one Leg)

अव्यक्त लक्षण तेषा पूर्वसूष्मा इति स्मृतम् (च.चि. 28/19)

- आत्मसूष्मा तु तद् व्यक्तमपाये लक्षुल पुनः। (च.चि. 28/20).
- संकोचः पर्वणो स्तम्भो भेदाऽस्त्वा पर्वणामपि।
लोमहर्षः प्रतापश्च लोमहर्षः।
खङ्गत्य पाञ्चल्यकुञ्जत्वं शोषोऽक्षुनामनिद्रिताः।
गर्भसूक्ष्मानाशः स्मृत्वं गत्रस्तुलाः।
शिरानामाक्षिकज्वृणाम् गीवायाश्चर्चमि हृण्डम्।
भंदस्तेवत्प्रतिक्षेपो मांहस्यावस्था एव च।
- एवं विधानि लगाणि करोति कुपितोऽनिलः॥ (च.चि. 28/20-23)

- पङ्क्तुता (Lameness with both Legs)
- कुञ्जत्वं (Forward or backward bending of the body)
- अंगशोष (Dystrophy of organs)
- अनिद्रा (Insomnia)
- गर्भनाश (Missed abortion)
- शुक्र का नष्ट हो जाना (Loss of semen)
- आर्तव नाश (Loss of menstruation/ovulation)
- शरीर में स्पन्दन होना (Throbbing sensation in the body)
- गात्र सुन्तता (Numbness in body)
- शिर, नेत्र, नासा, जात्रु, शीवा का टेढ़ा हो जाना (Disturbances of symmetry of head, nose, eyes and neck/contractures of various body Parts)
- भेदनवत् पीड़ा (Tearing Pain)
- तोदनवत् पीड़ा (Pricking Pain)
- अररति (Restlessness)
- आक्षेप (Convulsions)
- आयास (Weakness or Lethargy)

बात व्याधियों के विशिष्ट लक्षण

बात व्याधियों के अंतर्गत बहुत सी व्याधियों का ग्रहण किया जाता है जिनके अलग-अलग विशिष्ट लक्षण होते हैं, क्योंकि उनमें हेतु, इस एवं अधिकान आदि में अंतर होता है। बात व्याधियों के अंतर्गत निम्नलिखित व्याधियों का समावेश किया जा सकता है, इनमें से मुख्य व्याधियों का वर्णन अस्याय के अंत में अलग से किया जा रहा है—

1. आवरण से उत्पन्न व्याधियाँ

- आचार्य चरक के मतानुसार कुल 42 प्रकार की आवरण जन्य वात व्याधियाँ होती हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार है—
 - सभी पाँचों प्रकार के वात के पास्तर आवरण = 20
 - पितावृत्त वात = 0।
 - कफावृत्त वात = 0।
 - सप्तधातु आवरण = 07
 - मलावृत्त वात = 0।
 - मूत्रावृत्त वात = 0।
 - सर्वधात्वावृत्त वात = 0।
 - पितावृत्त वात = 05

9. कफावृत पञ्च वायु

= 05

कुल आवरण = 42
उपरोक्त 42 प्रकार के आवरणों के नाम निम्नलिखित हैं—

क्र.सं.	आवरण के नाम	लक्षण
(i)	पितावृत वात	(ii) कफावृत वात
(iii)	रक्तावृत वात	(iv) मासावृत वात
(v)	मेदावृत वात	(vi) अस्थ्यावृत वात
(vii)	मज्जावृत वात	(viii) शुक्रावृत वात
(ix)	अन्नावृत वात	(x) मूर्चावृत वात
(xi)	मत्तावृत वात	(xii) सर्वधात्वावृत वात
(xiii)	पितावृत प्राण वायु	(xiv) पितावृत उदान वायु
(xv)	पितावृत समान वायु	(xvi) पितावृत अपान वायु
(xvii)	पितावृत व्यान वायु	(xviii) कफावृत प्राण वायु
(xix)	कफावृत उदान वायु	(xx) कफावृत समान वायु
(xxi)	कफावृत व्यान वायु	(xxii) कफावृत अपान वायु

वायु के परस्पर 20 प्रकार के आवरण निम्न प्रकार हैं—

- (i) उदानावृत प्राण वायु
- (ii) व्यानावृत प्राण वायु
- (iii) समानावृत प्राण वायु
- (iv) अपानावृत प्राण वायु
- (v) प्राणावृत उदान वायु
- (vi) समानावृत उदान वायु
- (vii) प्राणावृत व्यान वायु
- (ix) समानावृत व्यान वायु
- (xi) समानावृत व्यान वायु
- (xv) व्यानावृत समान वायु
- (xvii) प्राणावृत अपान वायु
- (xix) उदानावृत अपान वायु

2. एकांग में उत्पन्न वात व्याधियाँ (Localised Vatavyadhis)

- (i) अवबाहुक (Frozen shoulder)
- (ii) अंशा शोष (Wasting of shoulder muscle)
- (iii) क्रोड़करीर्ड (Pyogenic arthritis of knee)
- (iv) कम्पवात (Tremors and Palsy)
- (v) खल्ली (Cramps)
- (vi) ग्रहसी (Sciatica)
- (vii) जिहास्तम्भ (Glossal Palsy)
- (viii) पादताह (Burning feet)
- (ix) पादहर्ष (Tingling sensation of feet)
- (x) विश्वाची (Brachial Neuritis)

1. विंशतिरणान्येतानुलभानां परस्परम्।
परतानां हि पञ्चानां तानि सम्यक प्रकारेण्। (च.चि. 28/201)

आचार्य सुश्रुत ने दस प्रकार के आवरण का वर्णन किया है, जिनके नाम एवं लक्षण निम्नलिखित हैं—

क्र.सं.	आवरण के नाम	लक्षण
1.	पितावृत प्राण	वमन, दाह
2.	कफावृत प्राण	दीर्घत्य, मदन, तक्ता, मुख वैरस्य
3.	पितावृत उदान	दाह, मूर्छा, प्रम, कल्प
4.	कफावृत समान	अस्वेद, हर्ष, मात्सानि, शोता
5.	पितावृत समान	स्वेद, दाह, उष्णता, मूर्छा
6.	कफावृत समान	मलमूत्रावरीधि, गात्रहर्ष
7.	पितावृत अपान	दाह, उष्णता, तज्ज्वलता
8.	कफावृत अपान	स्तम्भन, शूल, शोथ
9.	पितावृत व्यान	दाह, अग्निक्षेप, कल्प
10.	कफावृत व्यान	स्तम्भन, शूल, शोथ

1. प्राणे पितावृते छट्टिर्दहस्येवोपजायते॥
दीर्घत्य मदन तक्ता वैरेण्यं च कफावृतो॥
उदाने पितावृते मूर्छे दाहप्रमकलमाः॥
अस्वेदहर्षे मन्दोऽग्निः शोतात्माः कफावृते
समाने पितावृते स्वेददाहोऽयम्बुद्धेन्द्रियो॥
कफाधिकं च विषाक्तं गोमहर्षः कफावृतो
पितावृते दाहोऽयम्बुद्धेन्द्रियो॥
अपाने कफावृते व्याने स्तम्भत्प्रदातः॥
अथः काराग्रुत्वं च तामिन्द्रियं कफावृतो
व्याने पितावृते दाहो गात्रविक्षेपणः कल्पमः॥
गुरुणि सर्वाग्रामि स्तम्भनं चात्मिक्षपर्वणाम्॥
लिङ्गं कफावृते व्याने वेष्या स्तम्भस्थैर्यं च॥ (स.नि. 1/34-39)

- (xi) वातकपटक (Ankle sprain)
- (xii) स्त्रिगत वात (Engorged Veins)
- (xiii) स्नायुगत वात (Fibromyalgia)
- (xiv) सम्भात वात (Osteoarthritis)
- (xv) सिरग्रह (Trigeminal neuralgia)
- (xvi) मन्त्रास्तम्भ (Torticollis or Neck Rigidity)
- (xvii) हनुग्रह (Lock jaw)
- 3. सर्वाङ्ग में उत्पन्न वात व्याधियाँ (Generalised Vatavyadhis)**
- (i) अर्द्धत (Facial Paralysis)
 - (ii) आक्षेपक (Convulsions)
 - (iii) अपतानक (Tetanus like convulsions)
 - (iv) अपतन्त्रक (Hysteria like convulsions)
 - (v) कम्पवात (Tremors & Palsy/Parkinsonism)
 - (vi) कलाय खब्जा (Lathyrism)
 - (vii) खब्जा (Lame from one leg)
 - (viii) पहुँच (Lame from both legs)
 - (ix) पक्षवध (Paralysis/Hemiplegia)
 - (x) स्नायुगत वात (Diseases of tendons & ligaments)
- 4. कोष्ठगत वात व्याधियाँ**
- (i) आमाशयात वात (Acute Gastroenteritis)
 - (ii) आगाह (Distension of Abdomen & Constipation)
 - (iii) अच्छीला (Enlarged Prostate)
 - (iv) आध्यान (Generalised Tympanitis)
 - (v) उर्ध्ववात (Erruptions/Belching)
 - (vi) गुदीस्थित वात (Obstructive entero Uropathy)
 - (vii) तृणी (Renal colic)
 - (viii) प्रतितूनी (Urethral colic)
 - (ix) प्रत्यध्मान (Gastric Tympanitis)
 - (x) पक्वाशयात वात (Irritable bowel)
 - (xi) प्रत्यछीला (Rectovesical tumour)
 - (xii) मृक, प्रत्यध्मन, गदगद (Aphasia, Rhinophonia, Disarthria)
 - (xiii) मूत्रावरंध (Retention of Urine)
 - (xiv) ज्ञानेन्द्रियगत वात (Neuropathies of sense organs)

5. दृष्टगत वात व्याधियाँ

- (i) त्वच्कगत (Rash/gout) वात (Peripheral Neuritis)
- (ii) रक्तगत वात (Hypertension)
- (iii) मांसगत वात (Myopathy)
- (iv) मेदोगत वात (Deep muscle fatigue)
- (v) अस्थिगत वात (Rheumatism)
- (vi) मरुजागत वात (Osteomyelitis)
- (vii) शुक्रगत वात (Sex Neurosis)

सामेश निदान

प्रायः सभी वात व्याधियों के अपने विशिष्ट लक्षणों के कारण अन्य व्याधियों के साथ उनके सामेश निदान में कठिनाई नहीं होती है, परंतु, फिर भी मुख्यतः वातरक्त, आमवात एवं उत्तरसाम्भ व्याधियों के लक्षण वातव्याधि के लक्षणों के साथ मेल खाते हैं अतः इनके निदान में सावधानी रखनी चाहिए। आधुनिक प्रयोगशालीय परीक्षणों की सहायता से भी वात व्याधियों के सामेश निदान में सहायता मिल सकती है।

साम्यासाध्यता

वात व्याधियाँ नानारूप रोग होते हैं जिसमें वात दोष को दुष्टि होती है, जिसके पूर्णरूप प्रकृतिपूर्ण होने के कारण उत्तन होने वाली वात व्याधियाँ चिकित्सा तथा अधिक तीव्र लक्षणों वाली होती हैं। वात व्याधियाँ प्रायः दुष्चिकित्स्य होती हैं। वात व्याधियों के समूह का विश्लेषण करने से यह सम्पूर्ण होता है कि आमराशयात वात, पक्ववाशयात वात, उरुसाद एवं विडभेद सदृश कुछ ऐसी व्याधियाँ हैं जो लक्षण के रूप में विभिन्न व्याधियों में एवं स्वयं स्वतन्त्र व्याधि के रूप में भी प्रकट होती हैं। इनके विपरीत वात व्याधियों के अन्तर्गत कठु व्याधियाँ ऐसी हैं जिनको चिकित्सा प्रायः जटिल होती है। यथा—गृध्रसी, अदित एवं आक्षेपक इत्यादि। नवीन एवं उपद्रव ग्रहित वात व्याधियाँ प्रायः सुख साध्य अथवा कृच्छ्र साध्य एवं जीर्ण, उपद्रव युक्त वात व्याधियाँ प्रायः याप्य अथवा असाध्य होती हैं। अतः वात व्याधियों को नवीन अवस्था में सुखसाध्य या कृच्छ्रसाध्य तथा जीर्ण अवस्था में याप्य या असाध्य माना जा सकता है। शास्त्र में भी एक दोषज रोग साध्य, हिंदोषज रोग याप्य एवं त्रिदोषज व्याधियाँ असाध्य बताई गई हैं।

वात व्याधियों का सामान्य चिकित्सा सिद्धान्त¹

वात व्याधियों की सामान्य चिकित्सा में निम्नलिखित चिकित्सा सूत्रों का प्रयोग करना चाहिए-

1. स्नेह के साथ मुड़ विरेचक औषधि
2. वातानुलोमन चिकित्सा
3. दीपन पाचन औषधि प्रयोग
4. निरुह बर्सित एवं अनुवासन बर्सित का प्रयोग
5. नत्य कर्म
6. धूमपान
7. मधुर, अस्त, लवण एवं स्निग्ध आहार का प्रयोग

चिकित्सा

शास्त्र में वर्णित चिकित्सा सूत्रों के आधार पर वात व्याधि चिकित्सा को निम्न दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

- I शोधन चिकित्सा
- II शमन चिकित्सा

I शोधन चिकित्सा

वात व्याधियों की शोधन चिकित्सा के अन्तर्गत निम्न कर्म सम्पादित किए जाते हैं—

1. स्नेह कर्म²
- यदि आवरण रहित केवल शुद्ध वात दोष से गोपेति हुई हो तो रोगी को सर्वप्रथम धूत, तैल, वसा अथवा मज्जा द्वारा वाह्य एवं आयातर स्नेह करना चाहिए। इसके लिए उध, रुख, ग्राघ्य या आनूप मारसरस में धूत आदि स्नेह का प्रयोग अथवा
1. मुटुभिः स्नेहसुकौपीषेत्तं चिरोधयेत्। धूतं तित्वकसिद्धं वा सातला सिद्धमेव वा। पवसरपटतं वा पिवेषेषर शिवम्। स्त्रिमाथात्त लवणोऽग्नीहर्तीह मन्त्रिचतः॥ स्तोतोबद्वाऽग्निं रुद्ध्यात्समानुलोमयेत्। दुर्बतिं चोदितेभ्यः स्नातं निस्फैलपाच्चरेत्। पचनदेवीपीयेवं भोजनेत्पूर्वीनस्य। सरुद्धस्तोतेभ्यं चार्नी स्नेहस्वदो जुनहितो॥ स्वादुत्स्त लवणास्त्रिग्नेहर्तीः स्नातं पुनः॥ नातनेष्टपारेच चर्नीवोपपादयेत्। इति सामान्यतः ग्रंथं वातरोगचिकित्सितम्॥ (च.त्रि. 28/84-89)
2. कवचत निष्ठपत्तमार्दी नेहेनुरुपचत्रतः॥
3. तथाऽचोत्तिविष्टः त्वदत्यापामुपाचरेत्॥ (च.त्रि. 28/78)
4. स्नेहात्त स्वनमद्यं तु वक्तं दत्यमथापि वा। गर्नीमयितुं शब्दं यथोद्य शुक्रदत्यवद्॥ (च.त्रि. 28/79)
5. हर्तिदेशायामरोपत्यस्यग्रहददयः। मिवनस्यायु प्रशास्यात् प्रात्वं चोपजायतेत्॥ (च.त्रि. 28/80)
6. स्नेहरुच धातृस्युक्तन् पुष्णात्यायु प्रयोगजतः। वत्तमनिवलन् गुह्यं प्राप्तायामाभिर्भयेत्॥ (च.त्रि. 28/81)
7. यद्यन य दोषावत कर्मणा न प्राप्यति। मुटुभिः स्नेहसुकौपीषेत्तं विरोधयेत्। (च.त्रि. 28/82)
8. दुर्बतिं योजविरेच्यः स्नातं निस्फैलपाच्चरत। वायु मर्तिवसारं फलजननेर्त ततः॥ (च.त्रि. 28/83)

वात व्याधि

अनुवासन बर्सित, स्निग्ध नस्य तथा स्निग्ध अन्न का प्रयोग लाभकारी रहता है। सम्यक् स्नेह के प्रस्ताव रोगी का स्वेदन करना चाहिए।

2. स्वेदन कर्म³

रोगी का सम्यक रूप से स्नेहन होने के पश्चात सर्वशरीर गत अथवा शरीर के प्रभावित भाग पर वात नाशक तैल का अध्यज्ञ कर नाड़ी स्वेद, प्रस्ता स्वेद, संकर स्वेद अथवा चारक सहित में वर्णित मार्गिन-निरागिन भद्र से बताए गए स्वेदों में से उपयुक्त स्वेदन विधि द्वारा रोगी का स्वेदन करावाना चाहिए।

स्नेहन स्वेदन से लाभ

1. रोगी के शरीर में स्नेहन एवं स्वेदन का प्रयोग करने से विकृत एवं स्त्राव हुए शरीर अवयवों में लोच उत्पन्न होती है जिससे धीरे-धीरे उनमें गति (Movement) उत्पन्न होने लगती है।

2. स्वेदन के प्रयोग से रोगी के शरीर में उत्पन्न हर्ष, तोर (Pricking Pain), शोध (Oedema), स्ताप्य (Stiffness) एवं आंग्रह आदि वात विकार दूर होते हैं। 3. धातुओं का शीघ्र पोषण होता है तथा शरीर में बल, अग्नि, जीवनीय शक्ति की वृद्धि होती है।

3. किरेचन कर्म⁴

यदि उत्पन्न वात व्याधि अधिक बलवान होने के कारण स्नेहन एवं स्वेदन से शान्त नहीं होती है तो रोगी के शरीर का स्नेह के साथ मुड़ विरेचक औषधियों द्वारा शोधन करावाना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित योग का प्रयोग करना चाहिए—

1. तिल्वक से सिद्ध धूत का प्रयोग अथवा
2. सातला से सिद्ध धूत का प्रयोग अथवा
3. एसण तैल को उध के साथ मिला कर देना चाहिए।
4. बर्सित प्रयोग⁵

यदि रोगी किरेचन योग्य नहीं हो तो बर्सित के द्वारा उसकी चिकित्सा करनी

1. स्वप्यक्त स्नेहसुकौपीषेत्तं प्रस्तावमङ्कः॥ तथाऽचोत्तिविष्टः त्वदत्यापामुपाचरेत्॥ (च.त्रि. 28/78)
2. स्नेहात्त स्वनमद्यं तु वक्तं दत्यमथापि वा। गर्नीमयितुं शब्दं यथोद्य शुक्रदत्यवद्॥ (च.त्रि. 28/79)
3. हर्तिदेशायामरोपत्यस्यग्रहददयः। मिवनस्यायु प्रशास्यात् प्रात्वं चोपजायतेत्॥ (च.त्रि. 28/80)
4. स्नेहरुच धातृस्युक्तन् पुष्णात्यायु प्रयोगजतः। वत्तमनिवलन् गुह्यं प्राप्तायामाभिर्भयेत्॥ (च.त्रि. 28/81)
5. यद्यन य दोषावत कर्मणा न प्राप्यति। मुटुभिः स्नेहसुकौपीषेत्तं विरोधयेत्। (च.त्रि. 28/82)
6. दुर्बतिं योजविरेच्यः स्नातं निस्फैलपाच्चरत। वायु मर्तिवसारं फलजननेर्त ततः॥ (च.त्रि. 28/83)

चाहिए। अथवा दीपन-पाचन द्रव्यों से युक्त भोजन खाने को देना चाहिए। सशोधन कं परावत तथा अग्नि दीप्त हो जाने पर युनः स्नेहन स्वेदन कराया जा सकता है। आयुर्वेद में दूषित वात दोष के निर्हण एवं चिकित्सा के लिए बर्त्ति को सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा माना गया है। अतः वात व्याधियों की चिकित्सा में बर्त्ति प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

5. रसायन चिकित्सा

जीर्ण वात व्याधियों सहित अधिकांश अन्य जीर्ण रोगों में रोगी के बल का नाश हो जाता है एवं धातुरूप क्षीण हो जाती है जिनको पूर्ति हेतु रसायन चिकित्सा का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। यथा—शिवागुटिका, शिलाजु एवं दुध के साथ गुण्डु प्रयोग, बला रसायन तथा चरक संहिता के ‘अभ्यासमलकीय रसायन पाद’ में वर्णित योग, जैसे—ब्रह्मरसायन, च्यवनप्राश, आमलक रसायन, हरीतक्यादि रसायन अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी हैं।

6. नस्य एवं धूमपानः

वात व्याधि से पीड़ित रोगी को महानारायण तैल, घड्डिन्डु तैल अथवा अन्तैल आदि से नस्य का प्रयोग करवाना चाहिए। तत्पश्चचात् वातानाशक द्रव्यों का चूना करके धूमपान विधि से रोगी को प्रयोग करवाना चाहिए।

7. आवरण की चिकित्सा³

वात व्याधि की चिकित्सा के अन्तर्गत ‘आवरण’ पर विचार एवं वात की विविध गतियों (क्षय, वृद्धि, समता) का ज्ञान भी अत्यन्त आवश्यक है।

आवरण जन्य वात व्याधि की चिकित्सा में सर्वप्रथम आवरण की चिकित्सा करनी चाहिए। यदि कफ और पित्त दोनों दोष आवरक के रूप में हो तो पहले पित्त की चिकित्सा करनी चाहिए।

आवरण चिकित्सा में सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि आवरण की वृद्धि नहीं होने पाए। विना आवरक की पहचान एवं आतुरीय ज्ञान के आवरण चिकित्सा में सफलता साधन होती है। आवरण चिकित्सा के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

1. आवरण चिकित्सा में जो औषधि कफ करक नहीं हो परन्तु स्निग्ध एवं स्वेतोशोधक हो उनका प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

1. बर्त्तिकात्मक श्रुत्यम्। (च.मृ. 25/40)

2. नावनीर्माणनेत्र सर्वनिवेदनदेवता। (च.चि. 28/188)

3. क्षय वृद्धि समत्वं च तथैवावरणं प्रिपक्।

4. विज्ञय फलवानानां न प्रमहति कर्मस्। (च.चि. 28/247)

5. ग्रस्यन् कफानामाया पित्तनिर्वय्। (च.चि. 28/188)

अन्तिमान्तर्दिवः फलवान् सामान्यतया। (च.चि. 28/238)

2. जो औषध द्रव्य कफ और पित्त की वृद्धि न करे तथा वात का अनुलोमन करे, उनका प्रयोग चिकित्सा में करना चाहिए।
3. प्रायः अनुवासन बर्त्ति या मधुर यापना बर्त्ति का प्रयोग करें, बलवान रोगी में विरेचन तथा दुर्बल रोगी में मुडुविरेचन या दीपन पाचन औषध प्रयोग करें।
4. रसायन के रूप में, शिलाजु, दुध एवं गुण्डु तथा अस्यामलकी का प्रयोग करें।
5. पित्तावृत वात की चिकित्सा में बारी-बारी से शीतल एवं उष्ण क्रियाओं का प्रयोग एवं जीवनीय धूत का प्रयोग करना चाहिए।
6. कफावृत वात चिकित्सा में तीक्ष्णस्वेदन, निरुहबस्ति, वमन, विरेचन, पुणा धूत, तिल एवं सर्पपै तैल लायधायक होता है।
7. रक्तावृत वात में वात रक्त के समान चिकित्सा करनी चाहिए।
8. मेदावृत वात में मेदनशक, प्रमेहहर एवं वातज्ञ चिकित्सा करनी चाहिए।
9. मूत्रावृत वात में मूत्र विरंचनीय औषधि तथा उत्तर वर्स्टि का प्रयोग करना चाहिए।
10. पुरीषावृत वात चिकित्सा में एण्ड तैल यान, स्नाध द्रव्यों का सेवन तथा उदाचर्त के समान चिकित्सा करनी चाहिए।

इस प्रकार स्थायक रूप से आवरण की चिकित्सा करनी चाहिए तथा अपने स्थान पर स्थित बलवान दोष की पहले चिकित्सा करें तत्पश्चात दुर्बल दोष को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

II शमन चिकित्सा

वात व्याधि के शमन के लिए निम्नलिखित औषध द्रव्यों का प्रयोग युक्तपूर्वक कर सकते हैं—

1. कफप्रिपतिरुद्ध यथैव चातुलमप्ति। संवेतातिक्षणा निरुहरू वातं सर्विरेचनम्। जां पां सर्विस्तथा तेऽत तिलसंपत्ति हितम्। (च.चि. 28/187)
2. यापना वरतयः प्रायो मधुराः सावृत्वासाः। प्रसमीक्ष्य बलाचिक्ष्य मूडु वा स्तसन हितम्। (च.चि. 28/240)
3. स्त्रायनां सर्वधूपयोगः प्रस्तवती। रौतस्य जग्नोऽतर्थं पक्षस गुणुलोत्सव्या। (च.चि. 28/241)
4. चिनावृते विशेषण शीतामुखं तथा क्रियान्। वृत्तयासात् कारयेत् सर्पिर्वनीय च शस्यते। (च.चि. 28/184)
5. संवेतातिक्षणा निरुहरू वातं सर्विरेचनम्।
6. शीतिण्ठावृत कुर्यादुत्तोषेणत्वकैं किमप्तम्। (च.चि. 28/190)
7. प्रसंवात्संदृष्ट्यामवाते प्रवाजदेवता। (च.चि. 28/195)
8. मूत्रलानि तु प्रत्रेण संवदः सोनवस्याः। (च.चि. 28/197)
9. शक्तना नंतरमंडु इन्द्राणांदर्वत्वान्तर्क्षयाः। (च.चि. 28/197)

१. रस/भस्म/पिण्डी

मात्रा—125-250 मि.ग्र.

अनुपान—मधु

- (i) वातगजांकुरस : वत्सनाथ, मुण्डी, रस सिद्धर
- (ii) महवतगजांकुश रस : अश्रक भस्म, वत्सनाथ
- (iii) चिन्तामणि रस : स्वर्ण, अश्रक भस्म, शृतकुमारी
- (iv) वातचिन्तामणि रस : स्वर्ण, प्रवाल, मुक्ता, कुमारी
- (v) चतुर्मुख रस : स्वर्ण, कुमारी
- (vi) योगेन्द्र रस : स्वर्ण, मुक्ता, कुमारी
- (vii) बातारि रस : गुग्गुल, चिफला
- (viii) सर्वांगसुन्दर रस : अश्रक, गन्धक, कुमील
- (ix) वातविष्वसन रस : एरण्ड, अश्रक
- (x) जैलोक्यचिन्तामणिप्रस : हीरक, स्वर्ण, कुमारी
- (xi) रसगाज रस : स्वर्ण, पाद, गन्धक, कुमारी
- (xii) एकांगवीर रस : कुपीलु
- (xiii) नवरत्नजमुगाक रस : स्वर्ण, हीरक, पुष्पराग
- (xiv) स्वर्ण भस्म : स्वर्ण
- (xv) अश्रक भस्म : अश्रक

२. चूर्ण

मात्रा—2-5 ग्राम

अनुपान—कोणा जटा/मधु

- (i) अश्वगन्धा चूर्ण : अश्वगन्धा
- (ii) नारायण चूर्ण : शुच्छी, कुपीलु
- (iii) पंचकोल चूर्ण : पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्व
- (iv) नारसिंह चूर्ण : भल्लातक
- (v) षडधरण चूर्ण : चित्रक, इन्द्रियव, पाठा

३. कवायथ/कवायच

मात्रा—20-40 मि.ली.

अनुपान—जल

- (i) महरासादि कवायथ : रासा
- (ii) रास्नासतक कवायथ : रासा, एरण्ड
- (iii) रास्नादसमूल कवायथ : रासा, बृहतोद्य, सोनापाता
- (iv) माषबलादि कवायथ : उड्ढ, बला
- (v) रास्नादि कवायथ : रासा, पुनर्वा

(vi) गोधुरयदि कवायथ : गोधुर, एरण्ड

४. तैल

मात्रा—10-20 मि.ली.

अस्थान्तर प्रयोगार्थ तैल

मात्रा—10-20 मि.ली.

अनुपान—तुग्ध, उज्जोदक

- (i) रसोन तैल : रसोन, तिल तैल
- (ii) मूलकाष्ठ तैल : यूली स्वरस, तिल तैल, बला
- (iii) बला तैल : बला, दशमूल, कुलत्य
- (iv) अश्वगन्धा तैल : अश्वगन्धा, केशर, मुलेनी, सारिवा
- (v) बाह्य एवं आस्थान्तर प्रयोगार्थ तैल
- (i) नारायण तैल : बिल्व, र्घ्योनाक, बला, अश्वगन्धा
- (ii) प्रसारिणी तैल : गन्धप्रसारिणी, चित्रक, पिप्पलीमूल
- (iii) नकुल तैल : मधुयज्ञी, जीरक, दशमूल
- (iv) माष तैल : माष, अतीस, चव, गोधुर
- (v) महामाता तैल : माष, दशमूल, अजामास
- (vi) विषार्थ तैल : धूर, कुष्ठ, चवा, मरिच
- (vii) महा विषार्थ तैल : धूर, निरुण्डी, कट्टुरुम्बी
- (viii) अमृताद्य तैल : गुड्ची, तिल तैल

विषार्थ तैल एवं महाविषार्थ तैल का केवल बाह्य प्रयोग किया जाता है।

५. घृत

मात्रा—10-20 मि.ली.

अनुपान—दुग्ध, उज्जोदक

- (i) दशमूलाद्य घृत : दशमूल, जीवनीय गण

- (ii) अश्वगन्धा घृत : अश्वगन्धा
- (iii) नकुलाद्य घृत : नेवला, मास, दशमूल
- (iv) छागलाद्य घृत : अजामास, बृहत् पञ्चमूल
- (v) हर्षाद्य घृत : हंस मास, सौभद्र, एरण्ड
- (vi) चित्रकाद्य घृत : चित्रक, शुच्छी, रासा
- (vii) मञ्ज स्नेह : मास स्नेह, दशमूल
- (viii) चटुः स्नेह : चिफला, कुलत्य, सहिजन

६. गुग्गुल प्रयोग

मात्रा—500 मि.ग्र....। ग्राम

अनुपान—मधु/जल

- (i) योगराज गुग्गुल : चित्रक, पिप्पली, गुग्गुल

- (ii) महायोगराज गुणतु : निकूट, निफला, एण्ड, गुणतु
- (iii) केशोर गुणतु : निफला, गुड्ही
- (iv) सिंहनाद गुणतु : गुणतु, निफला, सर्षप तैल
- (v) पञ्चापूत लोह गुणतु : निफला, गुणतु, गन्धक
- (vi) अमृता गुणतु : गुड्ही, निफला, पुनर्वाच
- (vii) शतावरी गुणतु : शतावरी, गुणतु
- (viii) लाक्षादि गुणतु : लाक्षा, गुणतु

7. आसन/अभिष्ठ

मात्रा—10-20 मि.ली.

अनुपन—जल

- (i) दशमूलारिष्ट : दशमूल, चित्रक, पुष्करमूल
- (ii) बलारिष्ट : बला

- (iii) अश्वगन्धारिष्ट : अश्वगन्धा, मूशली, रासा

- (iv) द्रक्षासव : द्रक्षा, धातकी, निर्णदी

8. रसायन योग

मात्रा—10-15 ग्राम

अनुपन—दुध/जल

- (i) व्यवनप्राश : दशमूल, आमलकी

- (ii) बहु रसायन : आमलकी, हरीतकी, दशमूल

- (iii) शिलाजतु : शिलाजतु

- (iv) शिवा गुटिका : हरीतकी

- 9. एकल औषधियों
निर्णदी, बला, गुणतु, शृङ्खला, लम्पुन, भल्लातक, हिङ्कु, सहिजन, रासा, दशमूल, अश्वगन्धा, एण्ड, माष, घृत, वसा, मूला, शिलाजतु, ब्रह्मी, जटामासी, वचा, पिपली, कोंच, शतावरी, प्रसारिणी, दक्षदार, विधारा, कुण्ठलु, विदरिकन्द, वत्सनाम, धूतुर इत्यादि।

III योगासन/प्राकृतिक चिकित्सा

योग, ध्यान एवं प्राकृतिक चिकित्सा विधियों से भी वात व्याधियों को दूर करने में आशातीत सफलता मिलती है।

निम्न असन वातव्याधियों में लाभदायक होते हैं—

- (i) हलासन

- (ii) सर्वाङ्गासन

- (iii) विपरीतकरणी

- (iv) वज्रासन

- (v) भद्रासन

- (vi) अध्यत्वदासन

- (vii) पदासन

1. उपरोक्त आसनों का नियमित अन्यास करने से शरीर के विभिन्न भागों जैसे—पृष्ठ, कटि, जानु, जड़ा, ग्रीवा इत्यादि अंगों की स्थन्यता एवं शूल में कमी आती है। शरीर की अग्नि में साम्यता आती है तथा शरीर की उपापचय क्रिया में साम्यता स्थापित होती है।

2. प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत उच्च जल में शरीर के विभिन्न प्रभावित भागों को कुछ देर रखते हैं। वाष्ठ के प्रयोग से भी शरीर की स्थन्यता एवं शूल में अत्यन्त लाभ होता है।

3. वायु एवं आतप स्नान, शरीर मर्दन (Massage), व्यायाम (Exercise) से भी वात व्याधियों को दूर करने में सहायता प्राप्त होती है।

आवश्य चिकित्सा पद्धति

- 1. निदान परिवर्जन
- 2. पथ्य सेवन तथा वातनाशक आहार एवं विहार
- 3. शोधन चिकित्सा
 - वाहू एवं आश्वारंतर सम्यक स्नेहन
 - स्वेदन—सर्वाङ्गालक्षण
 - अनुवासन एवं निरुह वस्त्रित्र प्रयोग
 - पत्रपिण्ड स्वेदन/घट्टक शालि स्वेदन
 - कफ प्रधानता में—नस्य एवं धूप्रपान प्रात : साय
- 4. महायोगराज गुणतु : 500 मि.ग्र.
कोण्डा जल से 1 x 2 मात्रा
- 5. अग्नितुण्डी चट्टी प्रवाल पञ्चामृत रसराज रस : 250 मि.ग्र.
रसराज रस : 250 मि.ग्र.
मधु में 125 मि.ग्र.
1 x 2 मात्रा
- 6. भोजनोत्तर रासनारसाक व्याथ : 20 मि.ली.
अथवा मापबलादि क्वाथ सम्भाग जल से 1 x 2 मात्रा
- 7. बहुरसायन : 20 ग्राम
अथवा अश्वगन्धा पाक दाय से 1 x 1 मात्रा
(viii) गामुखासन

पश्चापश्च

पश्च

आहार

धूत, तैल, वसा, तिल, गेहूं, माष, सुख, परवल, साहिजन, बैगन, लहसुन, अनार, पक्व आम, फालसा, नीबू, बेर, द्राशा, मधुक, गोभुर, तुध, नारियल जल, गोमूत्र, कोंजी, इमली, आनूप एवं जांगल मासरस आदि।

अपश्च²

आहार

धूत, तैल, वसा, तिल, गेहूं, माष, सुख, परवल, साहिजन, बैगन, लहसुन, अनार, पक्व आम, फालसा, नीबू, बेर, द्राशा, मधुक, गोभुर, तुध, नारियल जल, गोमूत्र, कोंजी, इमली, आनूप एवं जांगल मासरस आदि।

विहार

जल क्रोड़ा, संचाहन (शरीर दबवाना), तेज वायु से बचना, दाह कर्म, वन्ध, भारण, भूमि पर शयन, स्नान, आसन पर बैठना, संतरण, वृहण कर्म, धूप आत्मासाक कर्म आदि।

विहार

चना, मटर, कोटे, सौंचा, अरहर, कुरुविन्द आदि, धान्य, बोड़ा, मूँग, तात्त्वाब अधारणीय वेग धारण, श्रम, अनशन, स्त्री एवं नन्दी का जल, जामुन, कशेहर, तुणक, सूखम, हाथी, घोड़े की सवारी, चक्रमण, एक ही स्थान पर दो दो तक पढ़े रहना कुपारी, कमलाल, सेमीजी, तालफल की गुरुत्वी का गूदा, करेला, तड़ का इत्यादि।

परिचय

सहिता प्रथमें पश्चात का वर्णन वात व्याधियों के वर्णन में किसी विशेष स्रोतस का वर्णन होता है। जैसा

कि स्पष्ट है सहिता प्रथमें वात व्याधियों के वर्णन में किसी विशेष स्रोतस का वर्णन नहीं किया गया है, क्यार्किं प्रायः वात व्याधियों स्वर्गी में गो उत्पन्न करती है। पश्चात के सर्दी में किसी विशिष्ट स्रोत का वर्णन सहिता प्रथमें में नहीं मिलता है।

पश्चात गो एवं पश्चात गो में स्वस्व, रक्तवह, मासवह, मेदवह एवं सूक्ष्म अध्ययन करने पर पश्चात गो में स्वस्व, रक्तवह, मासवह, मेदवह एवं

प्राणवह स्रोतस को दुष्ट प्रतीत होती है, क्योंकि प्रायः देखने में आता है कि पश्चात

रोग प्रायः रक्तवाहिनियों में अवरोध उत्पन्न होने या रक्तवाहिनियों के विदीर्ण होने से रक्तस्राव उत्पन्न होने के कारण उत्पन्न होता है तथा शरीर में अधिकांश स्रोतसों को प्रभावित करते हुए विकिध लक्षण उत्पन्न करता है। लक्षणों के आधार पर पश्चात का

साम्य आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित Paralysis नामक रोग से कर सकते हैं। पश्चात्ता (Paralysis) एक कृच्छ्रसाम्य रोग है। आयुर्वेद में 'पक्ष' का अर्थ शरीर के आधे भाग से ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार पक्ष का तात्पर्य शरीर का ऊपर से नीचे तक का आधे भाग अथवा शरीर के मध्य से नीचे या ऊपर के आधे भाग से ग्रहण किया जाता है।

आनार्य वार्षपत्र ने सम्बन्धित: इसीलिए एकाङ्गधात (Monoplegia) का समावेश पश्चात में किया है। पश्चात रोग में वातवह नाड़ियों का दूषित कफ से आवरण उत्पन्न हो जाता है, जिससे प्रभावित भाग में सज्जा एवं क्रिया हानि (Loss of sensations and functions of nerves), कार्षर्य (Emaciation) एवं अंगों की गति में असमर्थता (Loss of movements) आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं तथा पश्चात गो समस्त लक्षणों सहित व्यक्त हो जाता है।

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ

पूर्व वर्णित वात व्याधि के सभी सर्दी

1. अध्यगों मर्दनं चिस्तिः.....पथ्यमेत्नृणा भवेत्॥ (धे.र 26/611-625)
2. चित्ता प्रजापरण.....।

1. नुगा समोरेपात्रु पुरं न भेतो॥ (धे.र 26/626-630)

2. पश्चात रोग (PARALYSIS)

अपने कारणों से प्रकृपित वायु जब शरीर के आधे भाग में अधिकृत होकर सिरओं एवं स्नायुओं को मुख्यकर तथा सिंचन बन्धनों को शिथित करके मुख्य के अर्थ शरीर के क्रियाओं एवं चेतना को नष्ट कर देती है। उस अवस्था को कुछ विद्वान एकांग गो और कुछ विद्वान पश्चवह या पश्चात कहते हैं। इसी प्रकार प्रकृपित वायु

1. कृत्स्नोऽप्यनुभवत्यस्य भूत्यरूपमयों विवरणः॥ (अ.इ.नि. 15/39)

के सर्वशीरपत होने पर सर्वशीर की क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है, उस अवस्था को सर्वाङ्ग रोग अथवा सर्वांगधात कहते हैं।

निदान

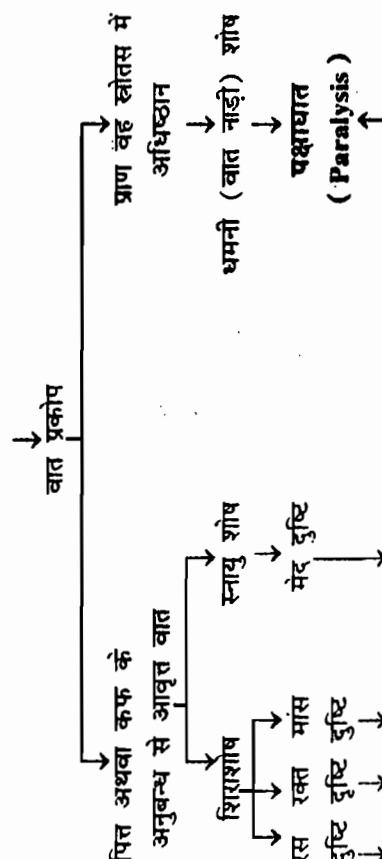
पक्षाधात रोग की उत्पत्ति में सभी निदान वही होते हैं जो कि वात व्याधि के उत्पादक निदान हैं। अतः इन्हें वात व्याधि प्रकरण में ही देखें।

सम्प्राप्ति

विभिन्न प्रकार के निदान सेवन से वात दोष प्रकृष्टिपूर्ण होकर सर्वशीर गत सिरा तथा स्नायुओं में स्थान संश्रय करता है तथा स्थान संश्रय के उपरांत शरीर के विभिन्न अङ्ग, प्रत्यक्ष भाग में दोष दूष सम्मुच्छन होती है, जिसके फलस्वरूप शरीर के आक्रान्त भाग को स्थिर तथा स्नायुओं का शोषण प्रारम्भ हो जाता है तथा धीरे-धीरे शरीर का आधा भाग करने में असम्भव जाता है। इसी अवस्था को पक्षाधात कहते हैं। पक्षाधात रोग में रस, रक्त, मांस धातु की दुष्टि एवं स्नायुओं की विकृति होती है। एवं प्रभावित भाग को चेत्य का नाश (Loss of functions of the affected body parts) होता है।

सम्प्राप्ति घटक

वात प्रकोपक निदान का अत्यधिक सेवन



- गृहीतार्थ तनोर्बन्धु सिरो स्नायुविकाय च।
पक्षान्वयत इन्त मध्यवन्धनं स्नायुविकाय विवाहेण्।
कृत्स्नोर्ध विवाहेण स्नायुविकाय विवाहेण।
पक्षान्वयं तं कृत्स्नोर्ध विवाहेण। विदुः॥
- अनेकमाः सर्वर्वग्रा भवनारुद्ध देहाः।
यदा प्रकृष्टिः उत्तर्ध भावतिरर्वा प्राप्ताः।
तदाऽनुबन्धस्य मध्यवन्धनं विवाहेण।
हीनं एवं तपाहिति पक्षाधात विवाहाः॥ (म.नि. 1/60 : 61)

के सर्वशीरपत होने पर सर्वशीर की क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है, उस अवस्था को सर्वाङ्ग रोग अथवा सर्वांगधात कहते हैं।

निदान

पक्षाधात रोग की उत्पत्ति में सभी निदान वही होते हैं जो कि वात व्याधि के उत्पादक निदान हैं। अतः इन्हें वात व्याधि प्रकरण में ही देखें।

सम्प्राप्ति

विभिन्न प्रकार के निदान सेवन से वात दोष प्रकृष्टिपूर्ण होकर सर्वशीर गत सिरा तथा स्नायुओं में स्थान संश्रय करता है तथा स्थान संश्रय के उपरांत शरीर के विभिन्न अङ्ग, प्रत्यक्ष भाग में दोष दूष सम्मुच्छन होती है, जिसके फलस्वरूप शरीर के आक्रान्त भाग को स्थिर तथा स्नायुओं का शोषण प्रारम्भ हो जाता है तथा धीरे-धीरे शरीर का आधा भाग करने में असम्भव जाता है। इसी अवस्था को पक्षाधात कहते हैं। पक्षाधात रोग में रस, रक्त, मांस धातु की दुष्टि एवं स्नायुओं की विकृति होती है। एवं पक्षाधात होने के कारण पोषणभाव से मांस धातु का क्षय होने लगता है एवं प्रभावित भाग कुश तथा दुर्बल हो जाता है।

सम्प्राप्ति घटक

वात प्रकोपक निदान का अत्यधिक सेवन

- | | |
|---|---|
| <p>सामान्य लक्षण^{1, 2}</p> <ol style="list-style-type: none"> 1. शरीर के प्रभावित भाग को चेत्य का नाश (Loss of functions of the affected body parts) 2. बोलने में कठिनाई (Dysarthria) 3. हंगुर (Lock Jaw) 4. हस्त पाद सङ्कोच (Contractures of upper/lower extremities of affected side) | <p>दोष : वात प्रधान विद्युत
दूष्य : रस, रक्त, मांस, मेद, नाड़ी संस्थान
अधिघटन : शरीरार्थ
स्नोतस : स्नेह, रक्तवह, मांसवह, मेदवह, प्राणवह
स्नोतो दुष्टि प्रकार : सङ्क, अतिप्रवृत्ति, ग्रन्थ निर्माण
आग्नि स्थिति : विषमाग्नि
व्याधि स्वभाव : अशुकारी/विचिकारी
साध्यासाध्यता : कृच्छ्रसाध्यव्याध</p> |
|---|---|

1. हस्त पाद सङ्कोच (Contractures of upper/lower extremities of affected side)
2. शरीरार्थ में तीव्र वेदना (Severe pain in affected body parts)
3. शिरा, स्नायु शोष (Atrophy of tendons)
4. हस्तपाद शोष (Muscular atrophy of affected arms/legs)
5. यदि दाह (Burning), सन्ताप (Hyperpyrexia) एवं फूर्छा (Fainting) हो तो वहाँ पर पक्षाधात में पित का अनुबन्ध समझना चाहिए।
6. यदि शीतलता (Cold extremities). शोष (Oedema) एवं भारीपन (Heaviness) लक्षण मिले तो वहाँ पर पक्षाधात में कफ का अनुबन्ध समझना चाहिए।

1. हस्तवह भावतः पक्षं दक्षिणं वागमेव च।
कृच्छ्रवेत्य निवृत्ति हि रुजं वास्तवमेव च।
गृहीतार्थ शोररस्य स्त्रियः स्नायुविकाय च।
पाद सङ्कोचयत्वं हस्त च तंदशुल कृत॥ (च.चि. 28/53 : 54)

2. दाहसन्तापमूलः स्नुवायी भित्तसि।
शीत्य शोष गृहीतार्थ निमन्त्रेव कफान्वितो॥ (म.नि. 22/42)

पक्षाधात की विभिन्न अवस्थाएँ

पक्षाधात निम्नलिखित स्वरूपों में उत्पन्न हो सकता है-

1. एकाङ्गधात (Monoplegia)

प्रकृष्टित बायु शरीर के किसी एक भाग में रहने वाली शिरा एवं स्नायुओं को शुष्क कर एक हाथ अथवा एक पैर में सङ्घोच उत्पन्न कर देती है इससे प्रभावित भाग क्रियाहीन, कृश और शूलयुक्त हो जाता है। एकाङ्ग रोग को ही कुछ आचार्य पक्षव्य भी कहते हैं।

2. सर्वाङ्गधात (Quadriplegia)

प्रकृष्टित बायु शरीर की सम्पूर्ण शिरा एवं स्नायुओं को शुष्क कर देती है तथा सर्व शरीर में ल्यात हो जाती है तब उसे सर्वाङ्गधात कहते हैं। इसमें सम्पूर्ण शरीर निष्क्रिय हो जाता है।

3. अधाराङ्गधात (Paraplegia)

अधाराङ्गधात में शरीरार्थ अर्थात कमर के नीचे का आधा भाग क्रियाहीन हो जाता है तथा कमी-कमी स्वतः मलमूत्र की प्रवृत्ति हो जाती है। अधारांगधात भी वस्तुतः आनुबन्ध की रास्त्रीय परिभाषा के अनुसार पक्षव्य ही है, क्योंकि आचार्यों ने शरीर के ऊपर से नीचे तक का आधाभाग या मानव नीचे के आधे भाग का क्रियाहीन होना पक्षव्य ही माना है।

4. पक्षव्य या अधाराङ्गधात (Hemiplegia)

इसमें शरीर के दक्षिण या वाम भाग में, लंबाई में प्रत्येक अङ्ग का धात हो जाता है।

साथ्यासाध्यता^{3, 4}

1. वह पक्षाधात जो पित या कफ दोष के अनुबन्ध से उत्पन्न होता है, साध्य होता है।
2. शुद्ध वात से उत्पन्न पक्षाधात कृच्छ्रसाध्य होता है।
3. रक्तादि धातुक्षय जन्य पक्षाधात असाध्य होता है।
4. गर्भिणी स्त्री, प्रसूता, बालक, शूद्ध, शीण तथा जिसे रक्तक्षय जन्य पक्षाधात हुआ हो उनकी चिकित्सा नहीं करो। यह असाध्य होता है।
5. वेदना रहित पक्षाधात भी असाध्य होता है।

उपद्रव

पक्षाधात रोगी की सुव्यक्तिस्थित डंग से चिकित्सा नहीं करने पर निम्नलिखित उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं-

1. पूर्ढ्व (Fainting)
2. क्षीण पांस (Emaciation)
3. विसर्प (Erysipelas/Cellulitis)
4. ताह (Burning)
5. मृत्यु (Death)

चिकित्सा सिद्धान्त^{1, 2}

पक्षाधात चिकित्सा प्रारम्भ करने से पूर्व दोष एवं उसके अनुबन्ध तथा आवरण की स्थिति पर सम्यक रूप से विचार करने के उपरान्त चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिए।

- सोहिता ग्रन्थों में पक्षाधात का निम्नलिखित चिकित्सा सिद्धान्त वर्णित है-
1. स्वेदन (Sudation)
 2. स्नेह द्रव्य से उक्त विरेचन कर्म
 3. आचार्य वाग्भट ने स्लेहन तथा स्नेह मिश्रित विरेचन देने का निर्देश किया है।

चिकित्सा

1. शोधन चिकित्सा—पक्षाधात में शोधन प्रक्रिया पूर्णित: वातव्याधि के समान करो।

2. शमन चिकित्सा—पक्षाधात रोग में शमन चिकित्सा भी वात व्याधि चिकित्सा के समान करनी चाहिए।

वस्तुतः पक्षाधात में यांस, सिर, स्नायु, शोष की स्थिति यांगी जाती है अतः विशेषकर बल्य औमधियों का प्रयोग अधिक करना चाहिए जिसमें नाड़ी तंत्र (Nervous System) की कार्य क्षमता में वृद्धि होकर पक्षाधात रोग में पर्याप्त लाभ मिल सके।

पथ्यापरथ्य

पक्षाधात रोग में पथ्यापरथ्य का पालन वात व्याधि के समान करना चाहिए।

अतः वहीं पर पथ्यापरथ्य का अवलोकन करो।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन

1. एकाङ्गरोग तं कौमिन्दन्ये पक्षव्यं विदुः। (अ.द.त्रि. 15/40)
2. सर्वाङ्गरोगं तद्वत् सर्वकायाग्निलेपनितो। (अ.द.त्रि. 15/40)
3. शुद्धवातहृतं पक्षं कस्यापायतं विदुः।
4. साम्यमन्ये संषेष्टमसायं क्षमतुक्षमा। (सु.नि. 1/63)

1. पक्षाधात विहितो विदुः।
2. निम्नलिखित ग्रन्थोंमें विवरणम्। (मा.न. मध्यम उत्तर 24/208)

Latest Developments

I. Paraplegia

	प्रातः	: सार्व
2.	रसायन बोगाज गुणलु	: ५०० मि.ग्र.
	पल्टनसिन्हर	: १२५ मि.ग्र.
	रसायन रस	: १२५ मि.ग्र.
	मधु से	$\frac{1 \times 2}{1 \times 2}$ मात्रा
3.	अधिन्तुण्डी बटी वातारि गुणलु	: २५० मि.ग्र.
	मधु से	$\frac{250}{1 \times 2}$ मात्रा
4.	भोजनोत्तर	
	दशमूलारिष्ट अश्वगन्धारिष्ट	: २० मि.ली.
		$\frac{20}{20}$ मि.ली.
	समान भाा जल से	$\frac{1 \times 2}{1 \times 2}$ मात्रा
5.	माष बलादि क्वाथ	$\frac{30}{1 \times 2}$ मि.ली.
6.	गर्ति भीं सोते समय हरीतकी चूर्ण	: ३ ग्राम
	कोष्ठा जल से	एक मात्रा
7.	स्थानीय अध्यंग स्वेदन	: प्रसाणिणी तैल + चन्दनबलालाक्षादि तैल जीर्ण रोग की अवस्था में : सर्वाङ्ग धैटिका स्वेदन या शरीर बल के अनुसार यथोचित व्यायाम।
8.	समुचित पथ्यपथ्य का पालन।	

योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा

1. पक्षाघात में शिरा, स्नायु, कण्डराओं का शोष हो जाने से वे कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं। अतः रोगी को आवश्यकतानुसार योगासन या व्यायाम करना चाहिए।

2. पक्षाघात में प्रभावित भाग में बार-बार गति (Physiotherapy) तथा अभ्यंग अवश्य करायें।

3. प्राकृतिक चिकित्सा में मर्दन का प्रयोग करना चाहिए। प्रभावित भाग का मर्दन करने से रक्त संचरण प्रभावित होता है जिससे प्रभावित भाग में पर्याप्त स्वास्थ्य लाभ देखा जाता है।

4. पक्षाघात में Spinal Massage भी अत्यधिक लाभदायक होती है।

II. Hemiplegia

Definition

Paraplegia is paralysis of both the lower limbs.
Causes

1. Intracranial causes

- (i) Tumor of falx cerebri.
- (ii) Thrombosis of unpaired anterior cerebral artery.
- (iii) Thrombosis of superior sagittal sinus.

2. Spinal causes

- (i) Systemic Diseases of the cord.
- (ii) Secondary affection of the white matter-like trauma, infections, embolism, thrombosis, haemorrhage, angiomas, neoplasms, etc.
- (iii) Thrombosis of the lower motor neurons

3. Deficiency diseases

- Pellagra, Nutritional myelopathy, Subacute combined degeneration.

4. Diseases of the lower motor neurons

- (i) Motor neuron disease
- (ii) Peripheral Neuritis
- (iii) Myasthenia gravis
- (iv) Tabes dorsalis

5. Lathyrism

Management: Principles

- 1. Management of paraplegia is directed to the cause.
- 2. Pressure sores are liable to develop because of the loss of sensation. diminished blood supply and immobility. The patient must be turned every 2-4 hours to a position which avoids pressure on bony prominences.
- 3. Aseptic intermittent catheterization must be performed if retention occurs.
- 4. Constipation must be prevented by suitable diet and laxatives.
- 5. Spasticity is prevented by regular passive movement of the limbs and nursing the patient.
- 6. A great deal can be done by rehabilitation when the cause of paraparesis is not progressive.
- 7. Physiotherapy.

Definition

Hemiplegia is paralysis of one half of the body i.e. upper and lower limbs of the same side (ipsilateral) or opposite side (contralateral hemiplegia).

Causes

1. Vascular Causes

- (i) *Thrombosis*—Atherosclerosis, Arteritis, Syphilis, Collagen diseases, Cortical Thrombophlebitis.
- (ii) *Embolism*—Auricular fibrillation, Myocardial infarction, Infective endocarditis, Atheromatous plaque. Thrombophlebitis, Post cardiac surgery etc.
- (iii) *Haemorrhage*—Due to Hypertension, Arteritis, Atherosclerotic vessels, Berry's Aneurysm; Angiomatous Malformation.

2. Intracranial Infections

- Encephalitis, Meningitis.

3. Trauma

- Depressed fracture of skull.

4. Other causes

- (i) Cerebral tumour
- (ii) Chronic Subdural Haematoma
- (iii) Congenital Defects e.g. Cerebral Agenesis
- (iv) Hysteria

Signs and Symptoms

- (i) Mode of onset—Catastrophic in haemorrhage, progressive in thrombosis and instantaneous in embolism.
- (ii) Intense headache
- (iii) Vomiting preceding a stroke favours a diagnosis of haemorrhage.
- (iv) Chest Pain—Suggests associated Myocardial infarction.
- (v) Coma
- (vi) Seizures—especially in tumour
- (vii) Mental symptoms—encephalitis and some times tumour.
- (viii) Abdominal pain and malena Suggests G.I. bleeding as the precipitating cause.
- (ix) Lethargy & Stupor.
- (x) Speech is slurred, dysarthric speech or dysphasic speech.
- (xi) Neck rigidity is important feature.

Investigations

- (i) C.T. Scan
- (ii) MRI
- (iii) EEG
- (iv) C.S.F. Examination
- (v) Complete Haemogram
- (vi) X-Ray Chest-P.A. View

Management-Principles

1. To check the Haemorrhage
2. Patient should be nursed with the head in a flat position. Frequent change of position to prevent lung congestion and bed sores.

3. Maintenance of airways
4. Maintenance of hydration and nutrition
5. Care of skin over pressure points like heels, ankles, buttocks, shoulders and elbows.

6. Care of bowel and bladder
7. Care of the eyes—Antibiotic drops to prevent exposure keratitis.
8. Treat the complications.
9. Appropriate antibiotics for pulmonary and urinary infections.
10. To reduce cerebral oedema.
11. Steroid therapy
12. Diuretics
13. Other symptomatic management.

III. Quadriplegia

Definition

Quadriplegia is paralysis of all the four limbs and may be trunk.

Causes

1. Cortical lesion

Cerebral palsy, microcephaly.

2. Brain Stem lesion

Vertebrobasilar insufficiency, Brainstem space occupying lesions, Bulbar Poliomyelitis, Motor Neuron Diseases.

3. High Cervical Cord Lesion

Fracture dislocation of cervical spine, craniocervical anomalies, cervical spondylosis, hematomyelia.

4. Polyradiculopathy

Acute infective polyneuritis, Porphyria, Diphtheria, Botulism, Infectious mononucleosis, Infective Hepatitis.

5. Muscle Diseases

Acute myasthenia gravis, periodic paralysis, polymyositis.

6. Anterior horn cell diseases

Poliomyelitis

7. Brain stem lesions with neuronal shock.

Management : Principles

1. Immobilization of the Patients with the use of Crutchfield tongs.
2. Antibiotics.
3. To establish and maintain a patent airway.
4. Monitor respiratory status for signs of insufficiency.
5. Assess bowel sounds for paralytic ileus.
6. Maintain all the vital signs.
7. Symptomatic management with antibiotics and Corticosteroids.

IV. Monoplegia

Definition

Paralysis of a single limb or a single group of muscles is called monoplegia.

Causes

1. Compression of the nerves.
2. All the causes of Quadriplegia.

Management : Principles

1. Symptomatic management.
2. Use of Vitamin B, B₁, B₁₂
3. Treat the causative factors.

3. गृध्रसी रोग (SCIATICA)

परिचय

गृध्रसी रोग का वर्णन प्रायः सभी सहिता घूर्णों में मिलता है। गृध्रसी नाड़ी घर दबाव फड़ने के कारण रोगी को एक तरफ के पैर में कटि पदेश से पैर की अंगुलियाँ तक तीव्र शूल की अनुभूति होती है। सम्पूर्णतः गृध्रसी रोग में निम्नलिखित स्रोतों की दुष्टि होती है-

1. रक्तवह स्रोतस
2. मासवह स्रोतस
3. मंदोवह स्रोतस
4. प्राणवह स्रोतस

गृध्रसी रोग में निकट प्रदेश से वेदना प्रारम्भ होकर सविक्ष (भैर) के पृष्ठ भाग में होते हुए क्रमशः पैर तक होती है। इसमें तीव्र शूल तथा आक्रान्त पैर का स्तम्भ लक्षण मिलता है। इस प्रकार का शूल प्रायः Sciatic Nerve के क्षेत्र में होता है। आधुनिक विज्ञितसा विज्ञान के अनुसार इसे गृध्रसी नाड़ी शोथ (Sciatic Neuralgia) या कंचवल गृध्रसी रोग (Sciatica) भी कहते हैं।

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ

पूर्व वर्णित बात व्याधि के सभी सन्दर्भ।

परिभाषा।

एक विशिष्ट प्रकार की पीड़ा जो स्पिक्क, प्रदेश से प्रारम्भ होकर क्रमशः कटि कंप्लेक्स भाग, उठ प्रदेश, जान, गिरजली तथा पैर तक जाती है, उसे गृध्रसी गंग कहते हैं।

¹ विज्ञान विद्यालय अनुसार अनुसार अनुसार अनुसार (व.वि. २४ ५६)

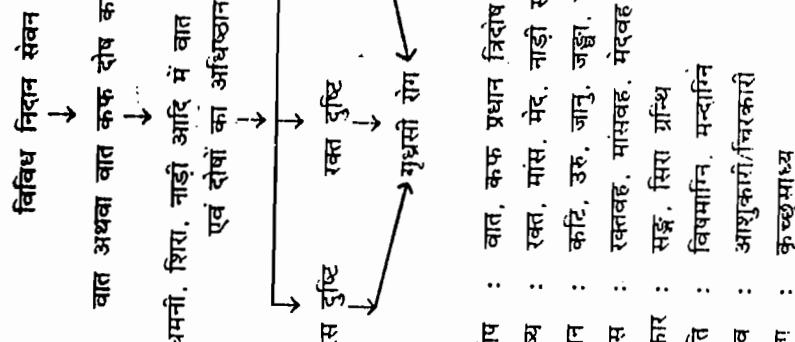
निदान

1. बात प्रकोपक सभी निदान गृध्रसी रोग के भी निदान हैं। अतः बात व्याधियों के सभी निदानों को गृध्रसी रोग का भी निदान समझना चाहिए।
2. मृद शास्य या आसन पर अधिक देर तक शयन करना या बैठे रहना।
3. अत्यधिक ऐदल चलना।
4. आथात लगान।

सम्प्राप्ति

विभिन्न प्रकार के बात प्रकोपक आहार एवं विहार का सेवन करने पर बात दोष अथवा बात एवं कफ दोष प्रकृष्टिपूर्ण हो जाते हैं तथा रस रक्तादि स्रोतों में अधिक्षित होकर कटि, पृष्ठ, उठ, जानु, जह्ना एवं पैर में शूल उत्पन्न करते हैं इसे ही गृध्रसी रोग के नाम से जाना जाता है।

सम्प्राप्ति चक्र



सम्प्राप्ति घटक

दोष :	बात, कफ प्रधान त्रिदोष
दूष्य :	रक्त, मास, मेद, नाड़ी संस्थान
अधिक्षान :	कटि, उठ, जानु, जह्ना, पैर
स्रोतों स्रोतस :	रक्तवह, मासवह, मंदवह, अस्थिवह
स्रोतों दुष्टि प्रकार :	सङ्क, सिरा ग्रन्थि
अधिन स्थिति :	विषमान, मन्दानि
व्याधि स्वभाव :	आशुकरी/चिरकारी
साध्यामाध्यता :	कृच्छ्रमाध्य

सामान्य लक्षण¹

- स्थिक प्रदेश से बेदना का प्रारम्भ होना (Origin of pain from hip region)
- बेदना कंपस: कटि, पूँछ, उल, जानू, जड़ा और पैर की ओर जाती है। (Pain radiates from hip to thigh, knee, leg and foot posteriorly)
- फैर में स्थग्न (Stiffness in leg)
- सभी प्रभावित भाग में सुई चुभने के समान बेदना तथा स्पन्दन। (Necidding pain in the affected parts and pulsations)
- बात कफज गृध्रसी में इन लक्षणों के अतिरिक्त तन्त्रा (Drowsiness), शरीर में भारीपन (Heaviness in body) तथा अरोचक (Anorexia) के लक्षण भी होते हैं।

भेद

गृध्रसी सामान्यतः दो प्रकार की होती है-

- बातज गृध्रसी 2. बातकफज गृध्रसी
- बातज गृध्रसी के लक्षण²
 - सुई चुभने के समान बेदना (Shooting type of pain)
 - शरीर में टेढ़ापन (Typical posture (curved) of the leg/body)
 - कटि, उल एवं जानू की सम्बन्धियों में स्थाप एवं स्फुरण (Stiffness and tingling sensation in the joints of waist, thigh and knee)
- बातकफज गृध्रसी के लक्षण³
 - अग्निमांद्य (Poor Appetite)
 - तन्दा (Drowsiness)
 - मुख से लालासाव (Excessive Salivation)
 - भक्त द्वेष (Anorexia)

साध्यसाध्यता

- प्रायः गृध्रसी कृच्छसाध्य होती है।
- जीण गृध्रसी रोग प्रायः असाध्य होती है।
- बात कफज गृध्रसी साध्य होती है।

चिकित्सा सिद्धान्त^{1,2}

गृध्रसी रोग चिकित्सा में निम्नलिखित चिकित्सा सूत्र प्रयोग करने का विधान है-

- कण्डरा और गुल्फ के बीच में शिरावेध।
- अनुवासन तथा निरुद बस्त का प्रयोग।
- कण्डरा एवं गुल्फ के बीच अग्नि कर्म।
- बमन एवं विशेष के परवात स्नेह बस्त का प्रयोग।
- आमरहित एवं दीर्घानि होने पर ही स्नेह बस्त का प्रयोग करें।

चिकित्सा

- निदान परिवर्जन

यथावस्यक गृध्रसी के कारणों का ज्ञान कर उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

II. शोषण चिकित्सा

- सर्वप्रथम प्रसारिणी तैल या महाविषार्ध तैल से स्थानीय अभ्यास करें।
- बातहर द्रव्यों से स्वेदन करना चाहिए। बात कफज गृध्रसी में विशेषपक्कर रक्ष स्वेदन, जैसे बालुका स्वेद या सैध्यव लवण की पोदत्ती-बनाकर स्वेदन करें।
- सैध्यवादि तैल की अनुवासन बस्ति तथा एरण्डमूलादि क्वाथ की निरुद बस्त अत्यन्त लाखायक होती है।
- विवर्त्य की विश्रिति में विशेष योगों का प्रयोग करना चाहिए।

III. शमन चिकित्सा

गृध्रसी रोग की शमन चिकित्सा के लिए बात व्याधि में वर्णित सभी योगों अतीव लाभकारी हों। अतः उन्हें योगों का युक्तपूर्वक प्रयोग करना चाहिए।

आदर्श चिकित्सा पत्र⁴

- निदान परिवर्जन

1. एन्ट्रेक्टो-कार्टिग्यूलोरजानुजहुपद क्रमात।

गृध्रसी स्थानान्तरकर्त्तव्यहीन रूपान्तरे। (च.चि. २५, ५६)
बातद्रव्यकंपान्त्रिमान गृध्रसीकरणकार्यालय। (च.चि. २५, ५६)

2. बातजागा भवनान्त्रिमान स्थानान्तरी प्रक्रमात। (मा.नि. २२, ५५)
बातजागा कान्द्रमान्त्रिमान स्थानान्तरी प्रक्रमात। (मा.नि. २२, ५५)

3. बातजागा भवनान्त्रिमान स्थानान्तरी प्रक्रमात। (मा.नि. २२, ५५)
बातजागा भवनान्त्रिमान स्थानान्तरी प्रक्रमात। (मा.नि. २२, ५५)

नदृ द्रव्यमानप्रक्रम भवनान्त्रिमान स्थानान्तरी प्रक्रमात। (मा.नि. २२, ५५)

Latest Developments

Sciatica

	प्रातः	: साथ
2.	रास्तादि गुग्गु	: 250 मि.ग्र.
	अर्जिन्टुण्डी बटी	: 250 मि.ग्र.
	समीरपन्ना रस	: <u>125</u> मि.ग्र.
3.	मधु/निर्जुडी पत्र स्वरस से	1 × 2 मात्रा.
	अजमोदादि कूर्ण	: 2 ग्राम
	शंख भस्म	: <u>250</u> मि.ग्र.
	कोण्ठ जल से	1 × 2 मात्रा
4.	भोजनोत्तर	: 20 मि.ली.
	अश्वग-न्ध्यारिष्ट	: 20 मि.ली.
	दशहस्तारिष्ट	: 20 मि.ली.
	समान भाग जल	1 × 2 साथ्रा
5.	रसोन क्षीर याक	: 25 ग्राम
	एण्ड मूल कवाथ	1 × 2 मात्रा
	30 मि.ली. के साथ	
6.	रात्रि 9 बजे	: 20 मि.ली.
	एण्ड स्वेह	एक मात्रा × 7 दिन तक
7.	दुध से	: सैन्धवादि तैल अथवा महाविषार्थ तैल
	पंचकर्म	से स्थानिक अध्यक्षः
		: स्थानिक नाड़ी स्वेदन अथवा पोटटली स्वेदन

नियमित व्यायाम

योगासन एवं प्राकृतिक चिकित्सा

- (i) गृष्मसी रोग में मुख्यतः गृष्मसी नाड़ी (Sciatic Nerve) पर अधिक दबाव पड़ने के कारण शूल होता है। अतः शवासन एवं सुखासन आदि अधिक लाभदायक होते हैं।
- (ii) गृष्मसी रोग में इस प्रकार का व्यायाम करना चाहिए जिससे गृष्मसी नाड़ी पर अधिक दबाव नहीं पड़े।
- (iii) हल्के हाथों से गृष्मसी नाड़ी प्रवेश में मदन (Massage)
- (iv) उष्ण जल से कटि स्नान एवं वाष्प स्नान।

प्रथापद्धति

पूर्व वर्णित वात व्याधि के समान

Definition

Sciatica is characterized by a sharp shooting pain running down back of thigh. Movement of limb generally intensifies the suffering. Sciatica arises to compression or trauma of the Sciatic Nerve or its roots, especially that resulting from ruptured intervertebral disc or osteoarthritis of lumbo sacral vertebrae.

Composition of Sciatic Nerve

Sciatic nerve is the thickest nerve in the body. Sciatic nerve is composed by primary rami of L4, L5, S1, S2, & S3 nerves. Due to compression of the nerves or nerve roots, the symptoms of sciatica appear.

Causes of Sciatica

The causes of sciatica are listed below

1. In the vertebral canal

- (i) Prolapsed disc. (ii) Carries spine. (iii) Tumour of the cauda equina or meninges. (iv) Tumour of the vertebral column.
- (i) Tumour of the nerve root. (ii) Lymphadenomatous Deposits.
- (iii) Spondylolisthesis (iv) Lumbago (v) Ankylosing spondylosis

3. In the pelvis

- (i) Compression by an abscess, (ii) Compression by a tumour. (iii) Hip diseases, (iv) Infection of prostate or female genital tract.

4. In the thigh and Buttock

- (i) Fibrosis, (ii) Sacro sciatic band, (iii) Hip joint diseases, (iv) Neurofibroma.

Signs and Symptoms

- (i) Pain which starts in the back and radiates down towards one or both the legs.
- (ii) Straight leg raising test, (S.L.R.) if positive is diagnostic of sciatica.
- (iii) Lasegue's sign (Pain and discomfort in the back, when the fully extended leg of the supine patient is gently raised) is present in all cases.
- (iv) According to nerve roots affected, the lower limbs may show diminished sensations
- (v) Knee jerk or ankle jerk may be diminished or absent according to the nerve root affected.

Investigations

- (i) Imaging of spine
- 1. Straight x-ray for detecting disc narrowing.
- 2. M.R.I.

- (ii) Examination of C.S.F
(iii) Complete Haemogram

Management : Principles

1. Complete bed rest.
2. Analgesics and antiinflammatory drugs.
3. Local Heat.
4. Injection of 2% Lignocaine (local Anaesthetic) in to the sciatic nerve may produce dramatic relief.
5. Manage the causative factors of Sciatica.
6. Recovery follows in majority of patients.

4. अदित रोग

(FACIAL PARALYSIS)

परिचय

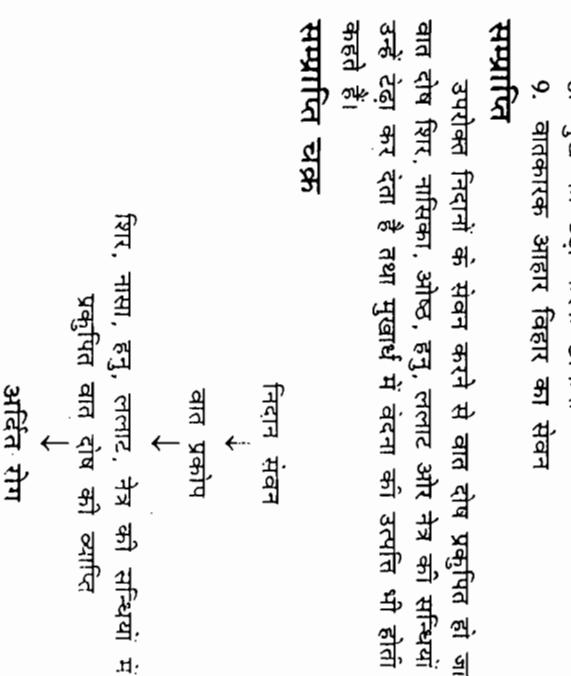
अदित भी वात व्याधियों की तरह ही एक प्रकार का जीर्ण रोग है। इसमें मुख का आधा भाग बिकृत हो जाता है। आधुनिक मतानुसार Facial Nerve की विकृति से अदित रोग की उत्पत्ति मानी जाती है। अदित एक चिकित्सारी रोग है, परन्तु यदि प्रारंभिक अवस्था में ही चिकित्सा की जाये तो व्याधि का शमन हो जाता है। अदित में मुखार्थ में टेढ़ापन एवं बेदना होती है। आचार्य चरक ने अदित को मुख के आधे भाग में अथवा शरीर के आधे भाग में होने वाला रोग बतलाया है। जबकि आचार्य मुश्त ने अदित को कंवल मुखार्थ में होने वाला रोग माना है; यहाँ पर आचार्य मुश्त का मत अधिक समीचोंन प्रतीत होता है तथा इससे अदित एवं पक्षाभाव में अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार अदित रोग की उत्पत्ति विभिन्न प्रकार के संक्रमण या अन्य कारणों से Facial Nerve की विकृति के कारण होती है। इसमें मुख का आधा भाग ठंडे ते जाता है। इसे Facial Paralysis, या Bell's Palsy भी कहते हैं।

परिभाषा

"अदित योड़यति इति अदितः"

अदित वह रोग जिसमें मुख के आधे भाग में टेढ़ापन एवं पोड़ा हो उम्म अदित कहते हैं। अदित को मुखार्थात् भी कहा जाता है।



- (ii) Examination of C.S.F
(iii) Complete Haemogram

Management : Principles

1. वूर्व वर्णित वात व्याधि के सभी सन्दर्भ
2. अत्यधिक उच्चस्वर में भाषण करना
3. अल्पत कटिन पदार्थों का भक्षण
4. अत्यधिक हँसना
5. बार-बार जह्माई लेना
6. अत्यधिक भार उठाना
7. विषम स्थान (ऊँची नीची भूमि) पर शयन करना
8. मुख को टेढ़ा करके छीकना
9. वातकारक आहार विहार का सेवन

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ

पूर्व वर्णित वात व्याधि के सभी सन्दर्भ निदान^{1, 2}

आचार्यों ने शास्त्रों में अदित रोग के निम्न निदान वर्णित किये हैं—

1. गम्भीरी, प्रसूता रुग्नी, बालक, वृद्ध एवं कीण पुरुषों में अत्यधिक रक्त ध्रय होने के कारण।
2. अत्यधिक उच्चस्वर में भाषण करना

Prognosis

- Recovery follows in majority of patients.

¹ अदितः शास्त्रांगिक चर्चा: प्राचीने
यत व्याधिः व्याधान्तरात्मकः चर्चा: (वा.वि. ३४३४)
अदितः व्याधान्तरात्मकः चर्चा: (वा.वि. ३४३४)
निदानः व्याधान्तरात्मकः चर्चा: (सु.वि. १८०)

² अदितः व्याधिः व्याधान्तरात्मकः चर्चा: (वा.वि. ३४३४)
शिरमा वायरल्पारातिहास्यष्ट भाषणात्। (अ.वि. १५३२)

सम्प्राप्ति घटक

आयुर्वेदीय सहिता ग्रन्थों में अदित रोग के अल्प से सम्प्राप्ति घटकों का वर्णन नहीं मिलता है, परन्तु सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह स्पष्ट है कि अदित रोग को उत्पत्ति में निम्नलिखित सम्प्राप्ति घटक महत्वपूर्ण योगदान देते हैं—

दोष : वात प्रधान निदोष

दूख : रस, रक्त, मांस, सिरा

अधिष्ठान : मुखार्द्ध

खोतस : रसबह, रक्तबह, मांसबह, प्राणबह

स्नोतो शुष्टि प्रकार : संग, सिराग्रन्थि

अग्नि स्थिति : विषमाग्नि

व्याधि स्वभाव : निर्विन-मुदुजीर्ण-दारण

साध्यासाध्यता : नवीन-साध्य, जीर्ण-याव्य/असाध्य

पूर्वरूप¹

आचार्य सुश्रुत ने अदित के निम्नलिखित पूर्वरूप वर्णित किये हैं—

1. रोमहर्ष (Horripilation)
2. वेपथु (कम्फन Tremors)
3. आविल नेत्रता (Lacrimation of eyes or fullness of eyes with tears)
4. वायु का उर्खविंगा (डुकार आना Erructations)
5. त्वचा में सुन्नता (Loss of sensation of skin/numbness)
6. तोर (Tingling Sensation)
7. मन्त्रास्तम्भ (Neck Rigidity)
8. हंगुरस्तम्भ (Lock Jaw)

भेद²

बृहत्रयी के ग्रन्थों में अदित के भेदों का वर्णन नहीं मिलता है। आचार्य भावमिश्र ने अदित रोग को निम्न तीन प्रकार का बताया है—

1. वातज अदित
2. पितज अदित
3. कफज अदित

1. यस्ताप्रज्ञो यंगहर्षं वेष्टुर्वैत्याविलम्।
वायुरुर्वैत्य त्वचि स्वापस्तोदो भवना हउपरः॥।

तमाहृतामिति प्राहृत्याचित्यम् व्याधिविशालाः॥ (सु.सि. 1/71-72)
वाताचित्यात्कफाच्च त्वात्वित्य तस्मपास्तः॥ (भा.प्र. मध्यम खण्ड 24/64)

सामान्य लक्षण¹

विभिन्न आचार्यों ने अदित रोग के निम्नलिखित लक्षण वर्णित किये हैं—

1. मुख का एक तरफ टेढ़ा हो जाना (Unilateral facial paralysis)
2. नेत्र, ललाट, और एक जिहा एक तरफ बङ्ग हो जाती है (Drooping of muscles of eyes, fore head, lip and tongue on the affected side)
3. शिरःकम्प (Tremors of head. Involuntary movements of head)
4. वाक्सङ्ग (Aphonia)
5. स्तन्धनेत्रता (Immobilization of eyes)
6. दन्तचाल (Friction of teeth)
7. स्वर छास (Hoarseness of voice)
8. श्रुति हानि (Deafness)
9. क्षवग्रह (छींक रुक जाना Difficulty in sneezing)
10. गन्ध का जान नहीं होना (Anosmia)
11. स्मृति मोह (यातास्त की कमी Decreased Memory)
12. निद्रा में भय लगना
13. मुख के प्रभावित भाग से निष्ठीव (शूक) अन्न एवं जल का गिरना
14. गले के उंचव अथवा अधी भाग में पीड़ा (Pain in the upper or lower part of the neck)

आचार्य वामपट ने केवित मत से अदित रोग को 'एकायाम' नाम भी दिया है।

भेदानुसार अदित रोग के लक्षण

1. वातज अदित:
 - (i) मुख से अत्यधिक लालास्त्राव (Excessive salivation)
 - (ii) व्यथा (Pain)
 - (iii) कम्फ (Tremors)
 - (iv) हंगुरह (Lock Jaw)
 - (v) वाग्रह (Difficulty in Speech)
 - (vi) ओर्ड में शोथ एवं शूल (Oedema and pain in Lips)

1. चक्रोकरोति वातार्घमुक्तं हस्तमीक्षितम्।
ततोऽस्य कम्पत् पूर्ण वाक्सङ्गः स्तन्धनेत्रता॥।
दन्तचालः स्वरप्रसः स्मृतेमहस्तासः: सुतस्य जायते॥।
गन्धाज्ञानं स्मृतेमहस्तासः: सुतस्य जायते॥।
निष्ठीव पाशवतो यादेक्तस्याक्षणो निमीलम्॥।
जनोरुर्ध्वं रुजातीता शरीरावृद्धयोर्दमि चाः॥।
तमाहृतामिति कंविदेकायामपापरे (अ.ह.सि. 15/34-36)

2. लालास्त्रावो व्यथा कम्पः स्फुरण हंगुरागहः॥।
आचार्योः शवयथुः शूलं चार्दितं वातजे भवेत्॥ (भा.प्र. मध्यम खण्ड 24/65)

वात व्याधि

2. पित्तज अदितं

- (i) मुख का वर्ण पीलाम (Yellow colouration of face)
- (ii) ज्वर (Fever)
- (iii) पिपासा (Thirst)
- (iv) मोह (Confusion)
- (v) उष्णता (Heat)
3. कफज अदितं^२

(i) गाल, शर एवं मन्या में शोथ तथा स्तम्भ (Oedema and Stiffness in Cheeks, Head and Neck)

अदितं रोग का निदान इसके लक्षणों के आधार पर प्रायः आसानी से हो जाता है। निम्नलिखित व्याधियों के साथ अदितं रोग का सापेक्ष निदान करना चाहिए।

1. पक्षाघात

पक्षाघात में कफर से नीचे तक शरीर के अर्ध भाग में चेष्टा का नाश होता है। जबकि अदितं में केवल मुखार्थ प्रभावित होता है। पक्षाघात में शरीरार्थ में तीव्र वेदन होती है, अदितं में मुख्यमण्डल के अर्ध भाग में ही पीड़ा होती है। पक्षाघात का प्रमुख कारण आघात, रक्त लाव इत्यादि होता है, अदितं का मुख्य कारण, वातज आहार, विहर एवं मुख्यगत नाड़ी (Facial Nerve) की विकृति होती है।

2. जिहाताम्ब

जिहा स्तम्भ वाताहाहिनी नाड़ी (Hypoglossal Nerve) की विकृति के कारण होता है जबकि अदितं में Facial Nerve की विकृति होती है जिहाताम्ब में आहार ग्रहण, जल ग्रहण एवं बोलने में कठिनाई होती है लेकिन मुख पर बाहु लक्षण नहीं मिलते हैं। अदितं में भी उपरोक्त लक्षण मिलते हैं, परन्तु मुख पर मासपरेशीय कमज़ोर हो जाती हैं जबकि जिहाताम्ब में बाहु लक्षण नहीं मिलता है।

साध्यासाध्यता^३

निम्न लक्षणों की उपस्थिति पर अदितं रोग असाध्य होता है—

1. अत्यन्त क्षीण रोगी (Very weak patient)
2. जिनके नेत्र न खुल सकें और न ही बन्द हो सकते हों (Immobilization of eyes)

1. फोटोग्राफ़ व्यरस्ट्यूलाजिलजे मॉहब्यपो: (भा.प्र. मध्यम खाड २५/६०)
2. गांड शिरमिम्या शोरो: स्तम्भ, कफजमक्को: (भा.प्र. मध्यम खाड २५/६०)
3. क्षीणस्थानिम्पाक्षस्य प्रसक्त मन्त्रप्राप्तिषिद्धिः।

न मिळ्डव्यत्यादितं गांड त्रिवर्ष वेपनस्य चाहा (मुनि १.७३)

3. निरन्तर अस्पष्ट बोलने वाला रोगी (Unclear Speech)

4. तीन वर्ष का मुराना अदितं रोग (Three years old Facial Paralysis)
5. जिस रोगी में कम्प लक्षण हो (Facial Paralysis with tremors)
6. जिस रोगी के नेत्र, नासा, मुख से निरन्तर लाव होता हो (Secretions from eyes, nose and salivations)।

चिकित्सा सिद्धान्त

उपरोक्त लक्षणों के अतिरिक्त अन्य लक्षणों से युक्त अदितं रोग साध्य होता है। आचार्य चरक ने अदितं रोग के निम्नलिखित चिकित्सा सिद्धान्त बर्णित किए

1. नस्य

2. मूर्ध पर तैलायङ्ग
3. सत्तर्पण आहार का सेवन
4. नाड़ी स्वेदन

5. आनूप जीवों के मास का उपनाह

आचार्य चाप्पाट ने उपरोक्त चिकित्सा क्रम के अतिरिक्त निम्नलिखित चिकित्सा क्रम और बताये हैं—

1. कर्ण एवं नेत्र का तर्पण
2. शोफ होने पर वधन

3. दाह एवं लालिमा होने पर शिरा वेधन आचार्य सुश्रुत ने अदितं रोग चिकित्सा हेतु शिरोवस्ति का प्रयोग तथा सम्पूर्ण चिकित्सा व्यवस्था वात व्याधि चिकित्सा के अनुसार करने का निर्देश दिया है।

चिकित्सा

I. निदान परिवर्जन

अदितं रोग के वर्णित निदानों के स्वेन का प्रतिकार करना चाहिए।

II. शोधन चिकित्सा

1. स्नेहवसन, बाहु अध्यङ्क एवं नाड़ी स्वेदन
2. शोफावस्था में वर्मन
3. विरेचन कर्म
4. रक्तमोक्षण

1. अदितं राजनं मुद्रिते तेऽत तप्तामात् च।
2. अद्वाह निरन्तरात्मायाम्परिषिद्धिः। (च.नि. १५५७)

3. अदितं राजनं मूद्रिते तेऽत श्रोतामात्मायाम्।
मशोकं राजन् दाहराया युक्त ज्ञानव्याप्तिः। (अ.ह.नि. २१४३)

III. शमन चिकित्सा

आदित रोग में शमन चिकित्सा पूर्णतया वात व्याधि में वर्णित शमन चिकित्सा के अनुसार करें।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन

प्रातः	सायं
2.	वातारि गुणलू
	कोष्ठा जल से
3.	योगराज गुणलू
	स्वर्ण समीर पन्ना रस
	रसराज रस
	मधु से
4.	भोजनोत्तर
	दशमूलारिष्ट
	बलारिष्ट
	सम धाग जल से
5.	एण्ड पाक
	दुध से
6.	रात्रि में
	हरीतकी चूप्ण
	कोष्ठा जल से
7.	पथ्यापथ्य का पालन

प्रातः : 500 मि.ग्र.
 1×2 मात्रा

: 500 मि.ग्र.
 1×2 मात्रा

: 125 मि.ग्र.
 1×2 मात्रा

: 125 मि.ग्र.
 1×2 मात्रा

: 20 मि.ली.
 1×2 मात्रा

: 20 मि.ली.
 1×2 मात्रा

: 20 ग्राम
 1×2 मात्रा

: 3 ग्राम
 1×2 मात्रा

virus genome has been identified in facial nerve, endoneurial fluid and in saliva of patients with Bell's palsy.

Signs and Symptoms

- The onset usually is subacute, with symptoms developing over a few hours.
- Pain around ear may precede loss of movement of one side of the face.
- Difficulty in eating, chewing and drinking.
- Numbness of affected side of the face.

Diagnosis of Facial Palsy

- Asymmetry of the face.
- Stasis of food in the mouth.
- Dribbling of saliva through the angle of the mouth.
- Inability to close the mouth.

Management : Principles

- There is no proven medical treatment, though a course of steroids such as 40-60 mg daily for a week may speed up recovery.
- About 70-80% of patients recover spontaneously within 2-12 weeks but elderly patients with complete Facial Palsy have a poorer prognosis.

••• •••

5. प्रमुख विशिष्ट वात व्याधियाँ

कोष्ठगत वात

पथ्यापथ्य

वात व्याधि में वर्णित पथ्यापथ्य का पालन करना चाहिए।

Latest Developments

Facial Paralysis – Bell's Palsy

Facial palsy is a common condition affecting all age groups and both sexes.

Causes

- The exact cause is unknown but the site of damage is generally the portion of facial nerve lying within the Facial canal.
- Recent evidences suggest that Bell's palsy may be due to reactivation of latent Herpes simplex virus-I infection since HSV-1

कोष्ठगत प्रकृष्टित वात के निम्नलिखित लक्षण शास्त्र में वर्णित हैं—

- मूत्र निग्रह (Retention of urine)
- मल निग्रह (Constipation)
- ब्रह्म रोग (Inflammation of Cervical lymph glands)
- हृदय रोग (Cardiac diseases)
- गुलम रोग (Generalised Abdominal Tumours)
- अर्फा (Piles)
- पश्चरशूल (Pain in ribs)

- तत्र कोष्ठार्थिन् दुष्टे निग्रहं पूर्ववर्त्तसः।
 ब्रह्म हृदय गुलमः: पार्वर्षशूलं च भास्तो। (च.चि. 24/24)

चिकित्सा सिद्धान्त¹

1. क्षार प्रयोग
2. शिवाक्षर पाचन चिकित्सा
3. अस्त रस प्रथन द्रव्यों का प्रयोग
4. दुरुध पान²

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निरान परिवर्जन प्रत : साथ
 2. शिवाक्षर पाचन चूर्ण : 2 ग्राम
 3. शंख भस्म : $\frac{250}{1\times 2}$ मात्रा नीबू स्वस्त्र से
 4. बड्डरण योग कोषा जल से : $\frac{3}{1\times 2}$ ग्राम
 5. भोजनोत्तर शख वटी : 250 मि.ग्रा. अग्नितुरङ्गी चटी उष्णजल से
 6. गात्रि में त्रिफला चूर्ण गर्भ जल से : $\frac{3}{1\times 2}$ ग्राम
 7. पथ्य-लेपु, सुपाच्य भोजन एवं गोदुराध।
- लैंड्रीजन•••

6. सर्वाङ्गिन वात

सामान्य लक्षण³

1. गात्रस्फुरण (Tingling sensation all over the body)
2. गात्र भजन (Bodyache)
3. मन्थस्पुटन (Pain in the joints)
4. मन्थ्यों में वेदना (Pain and inflammation in the joints)

चिकित्सा सिद्धान्त¹

1. वात नाशक तेलों से अभ्यङ्ग
2. एकान्तर क्रम से अनुवासन एवं निरुह बर्ति का प्रयोग
3. पथ्यापथ्य का पालन

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निरान परिवर्जन प्रत : साथ
 2. योगारज गुग्गुल : 250 मि.ग्रा.
 3. शुद्ध कुपीलु कोषा जल से : $\frac{125}{1\times 2}$ मात्रा
 4. पञ्चकोल चूर्ण : 2 ग्राम
 5. शंख भस्म : 250 मि.ग्रा. प्रवाल पंचमृत
 6. गर्भ जल से : $\frac{250}{1\times 2}$ मात्रा
- (i) सर्वाङ्ग अभ्यङ्ग—महानारायण तैल एवं प्रसारणी तैल मिला कर
 - (ii) सर्वाङ्ग स्वेदन—दशमूल कवाय वाष्प स्वेद एवं एण्ड मूलादि निरुह बस्ति (अदान्तर क्रम से)
 7. एण्ड स्नेह अनुवासन बस्ति एवं एण्ड मूलादि निरुह बस्ति (अदान्तर क्रम से)
 8. पथ्य मोवन
- लैंड्रीजन•••

7. आमाशयगत वात

सामान्य लक्षण²

1. निरान लक्षण काप्तन्तु काप्तन्तु वाते क्षारं शिवन्तः।
पचन्तरं लग्नं गुरुकरम् लक्ष्यते। (च.चि. 28/89)
 2. गात्र भजन (Bodyache)
 3. मन्थस्पुटन (Pain in the joints)
 4. मन्थ्यों में वेदना (Pain and inflammation in the joints)
-
1. हृदय शूल (Cardiac pain or Angina)
 2. नाभि शूल (Umbilical pain)
 3. पार्श्व शूल (Pain in lateral sides of the chest)
 4. उदर शूल (Pain Abdomen)
 5. तुल्णा (Thirst)

1. निरान लक्षण काप्तन्तु काप्तन्तु वाते क्षारं शिवन्तः।
पचन्तरं लग्नं गुरुकरम् लक्ष्यते। (च.चि. 28/89)

2. निरान लक्षण काप्तन्तु काप्तन्तु वाते क्षारं शिवन्तः।
निरान लक्षण काप्तन्तु काप्तन्तु वाते क्षारं शिवन्तः। (च.चि. 24/25)

1. मंडोद्रीजुतेऽधृते वस्त्रयः सानुवासनाः। (च.चि. 28/91)

2. तदग्नेन्द्रनाम्पात्तिमाताम् विमुक्तिः।

निरान लक्षण काप्तन्तु काप्तन्तु वाते क्षारं शिवन्तः। (च.चि. 24/240)

6. उदाग (Eructations /Belching)
7. विस्पूचिका (Diarrhoea & Vomiting with pain in Abdomen)
8. कास (Cough)
9. कषाठ एवं मुख का शुष्क होना (Dryness of throat and mouth)
10. इबास रोग (Breathlessness)
11. योह (Confusion)
12. मूर्छा (Fainting)

चिकित्सा सिद्धान्त¹

1. सर्वप्रथम लंघन
2. दीपन पाचन चिकित्सा
3. बमन एवं तीक्ष्ण विरेचन
4. पुराण मूँगा, यव, शालि चावल का सेवन

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन

प्रातः	सायं
प्रिकटु चूर्ण	: 2 ग्राम
भुजनेश्वर चूर्ण	: $\frac{2}{1\times 2}$ ग्राम
कोण्ठा जल से	मात्रा
पइधरण चूर्ण	: $\frac{3}{1\times 2}$ ग्राम
उष्ण जल से	मात्रा
भोजनोत्तर	
शंख वटी	: 250 मि.ग्रा.
चित्रकादि वटी	: $\frac{250}{1\times 2}$ मि.ग्रा.
जम्बुरी नींबू स्वास से	मात्रा
रात्रि में	
पञ्चवस्कार चूर्ण	: $\frac{2}{1}$ ग्राम
कोण्ठा जल से	मात्रा
पथ्य सेवन	
2. दीपन पाचन चिकित्सा

प्रातः	सायं
जाठराज्ञि प्रदीप्त करना	: 2 ग्राम
स्नेह युक्त विरेचन औषधि प्रयोग	: 250 मि.ग्रा.
निदान परिवर्जन	: $\frac{125}{1\times 2}$ मात्रा
हिंगवाट्क चूर्ण	: 250 मि.ग्रा.
प्रवाल पञ्चामुत	: $\frac{125}{1\times 2}$ मात्रा
सूतशेखर रस	
कोण्ठा जल से	
शंखवटी	: 250 मि.ग्रा.
अनिन्तुणी वटी	: $\frac{250}{1\times 2}$ मात्रा
मधु से	
भोजनोत्तर	
नारिकेल खण्ड	: $\frac{20}{1\times 2}$ ग्राम
दुध से	
रात्रि में	
त्रिफला चूर्ण	: $\frac{3}{1\times 2}$ ग्राम
गर्म जल से	
पथ्य सेवन	

8. पवक्वाशयगत वात

सामान्य लक्षण ¹	
1. आन्त्र कूजन (Gargling sound in Abdomen)	उदर शूल (Pain Abdomen)
2. आटेप (Tympanitis)	मूत्रकूच्छ (Dysuria / Retention of urine)
3. पुरीष सङ्क (Constipation)	पुरीष सङ्क (Constipation)
4. आनाह (Distension of Abdomen)	त्रिक प्रदेश में वेदना (Low Backache)
5. उदावर्त नाशक चिकित्सा	
6. उदावर्त नाशक चिकित्सा चिकित्सा मिद्दान्त ²	
7. निदान परिवर्जन	

1. जाठराज्ञि प्रदीप्त करना
2. स्नेह युक्त विरेचन औषधि प्रयोग
3. निदान परिवर्जन

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. हिंगवाट्क चूर्ण
2. प्रवाल पञ्चामुत
3. शंखवटी
4. भोजनोत्तर
5. त्रिफला चूर्ण
6. पथ्य सेवन

1. पवक्वाशयस्तोऽन्तर्कृतं शलाटोर्पी करोति च।
कृच्छ्रमन्त्रपुरीषवत्सानाह चिकित्सदनम्॥ (च.चि. 28/28)
2. वर्णः सम्बद्धन कर्त्तव्य मौनदावर्तक तथा।
रथः संहविकृत्य पवक्वाशय गंतंतिन्ति॥ (भा.प्र. नव्यम खण्ड 24/247)
आपाशयांत्य वातान् चूर्णं पच्याम्बनाः। (भा.प्र. नव्यम खण्ड 24/243)

1. अमरशयस्त्वस्ति प्रशस्ति प्रण लक्ष्मनं दोषानपाचनन्तः।
प्रच्छट्टनं तीक्ष्णविरेचन का मुद्दा यथा: शात्वितुः पुराणः॥ (भा.प्र. नव्यम खण्ड 24/241)
2. चित्रकंद्रवट्टी पाता कटुकातिविषाःप्याः।

वात व्याधि

9. गुदस्थित वात

सामान्य लक्षण¹

1. पूत्र निग्रह (Retention of Urine)
2. पुरीष निग्रह (Constipation)
3. अपान वायु निग्रह (Retention of Flatus)
4. उदर शूल (Pain Abdomen)
5. आधान (Tympanitis)
6. मूत्राशय में अशमरी होना (Urinary Bladder Stone)
7. पूत्र में शर्करा की उत्पत्ति (Urine Sugar / Diabetes Mellitus)
8. जड़ों में बेदना (Pain in calf muscles)
9. डरु प्रदेश में बेदना (Pain in thigh muscles)
10. क्रिक प्रदेश में बेदना (Low Backache)
11. पाद शूल (Pain feet)
12. पृष्ठ शूल (Backache)
13. रोष (Emaciation)

(PERIPHERAL NEURITIS)

सामान्य लक्षण¹

1. त्वक् सूखता (Dryness of skin)
2. त्वक् स्फुटन (Blisters in the skin)
3. त्वचा में सुन्दरी (Numbness in the skin)
4. त्वक् कुरता (Thinning of the skin)
5. कृष्ण वर्णता (Blackish colouration of skin)
6. त्वक् में सूची बेखबरत पीड़ा (Pricking pain)
7. तनाव (Tense skin)
8. त्वक् लातिमा (Inflammatory skin)
9. पर्वरक् (सच्चियों में बेदना-Joint pain)

चिकित्सा सिद्धान्त²

1. उदावर्ते में प्रयुक्त चिकित्सा हित कारक होती है।
2. दीपन, पाचन योगों का प्रयोग।
3. अस्त एवं लक्षण रस प्रधान द्रव्यों का प्रयोग।
4. विरेचन योगों का प्रयोग

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन
प्रातः : साथ
2. हिंगवाटक चूर्ण वैश्वानर चूर्ण वृत के साथ : 3 ग्राम 1x2 मात्रा
3. स्थिराद्य चूर्ण शुष्टी कवाथ के साथ : 15 मि.ली. 1x2 मात्रा

1. यदोत्तरपूर्वतानां शलाभानामस्मर्त्तराः।

जड़गतिकरणाद्वर्द्धनं गंयं पुरिस्तोता (च.चि. २४२२६)

2. वात गुदान द्वये कमोनिवर्तनं हितम्। (भा.प्र. मध्यम खण्ड २४२५।)

4. परिं में पञ्चसकार चूर्ण	: 2 ग्राम
गर्भ जल से	1 मात्रा
5. पथ्य संबन्ध	
6. भोजन के पश्चात बज्जासन	

10. त्वक् स्थित वात

सामान्य लक्षण¹

1. त्वक् स्वेच्छा (Dryness of skin)
2. त्वक् स्फुटन (Blisters in the skin)
3. त्वचा में सुन्दरी (Numbness in the skin)
4. त्वक् कुरता (Thinning of the skin)
5. कृष्ण वर्णता (Blackish colouration of skin)
6. त्वक् में सूची बेखबरत पीड़ा (Pricking pain)
7. तनाव (Tense skin)
8. त्वक् लातिमा (Inflammatory skin)
9. पर्वरक् (सच्चियों में बेदना-Joint pain)

चिकित्सा सिद्धान्त²

1. सर्वाङ्ग स्वेच्छा
2. पर्वरक् (सच्चियों में बेदना-Joint pain)
3. अवाहान
4. हृदय के लिए हितकर अन्न का प्रयोग
5. मदन, रक्तमोक्षण, आतेप आदि चिकित्सा

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन
प्रातः : साथ
2. नागरादि चूर्ण हीरिदा खण्ड कोण्डा जल से : 3 ग्राम 1x2 मात्रा

1. लघुशा स्मृतित मुला कुशा कृष्णा च तुठंडा।

अतिन्यन् मनान व घोरत्वं त्वक्षक्षितं रंडिलाः। (च.चि. २५३०)

2. संस्कृतौ वातान्तर नद चान्त ज्ञानांश्च। (च.चि. २४२१)



3.	आमत्क्यावलेह	$\frac{20}{1 \times 2}$ ग्राम दुध से
4.	भोजनोत्तर सारिवाद्यासव	$\frac{20}{1 \times 2}$ ग्राम समझा जल से
5.	पञ्चगुण तैल अथवा प्रसारिणी तैल से स्थानीय अचम्क एवं सर्वाङ्ग स्वेदन	रात्रि में
6.	सुख विरेचना वटी	$\frac{250}{1 \times 2}$ ग्राम जल से
7.	पक्ष्य सेवन	

११. रक्तचाप बात (Hypertension)

卷之三

- नियोक्तसा विज्ञान में वर्णित उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure) से करते हैं। चिकित्सा युक्त की क्षमाकांक दोनों व्याधियों के लक्षणों में पर्याप्त समानता मिलती है। चिकित्सा युक्त की दृष्टि से भी रक्तगत वात को उच्च रक्त चाप मान सकते हैं। अतः उच्च रक्तचाप की चिकित्सा भी रक्तगत वात के सम्पन्न ही करनी चाहिए।

12. मांसगत एवं मेडोगत वात

6. स्वशेरार म
7. भोजनोत्तर श

- | | | |
|----------------------------|--------------------|--------------|
| १. शीतल द्रव्यों का प्रदेह | २. विरेचन चिकित्सा | ३. रक्तमांकण |
| ४. अश्वाग-न्था चूर्ण | ५. पुनर्बादि चूर्ण | ६. सायं |
| ७. प्रातः | ८. ग्राम | ९. २ ग्राम |
| १०. निदान परिवर्जन | ११. कोष्ठा जल से | १२. मात्रा |

गुरुजनस्तीत्राः समस्तापा देववन्यं त्रिरात्राऽरहचिः।
त्रिरात्राः चक्रमध्ये भूवरात्म्यं रसामप्तयन्वयागत्तु इन्द्रिनि॥

1. गुरुद्वारा तुठने ३-वर्षांस्थ द्या इप्पारिटट तथा।
मासक, श्रीगंगामयार्थ मासक-त्रिपुरागतिनी। (च.सि. २८६, १२)
भिन्नताकामयादः द्या ३-५-२८ : श्रीगंगामी चौ। (च.सि. १८५, १२)

3. चन्दनादि लांह
प्रवाल पिटी
सर्पगन्धा चूर्ण

- | | | |
|----|---|---|
| | | 616 |
| | | SHA |
| | | A |
| | | 6890 |
| 4. | मधु से बहु रसायन गोदूध से भोजनतर अर्जुनारिच्छ | $\frac{1 \times 2 \text{ मात्रा}}{20 \text{ ग्राम}}$
$\frac{1 \times 2 \text{ मात्रा}}{1 \times 2 \text{ मात्रा}}$
$\frac{20 \text{ प्रती}}{1 \times 2 \text{ मात्रा}}$ |
| 5. | समझा जल से रात्रि में किवृत् चूण | $\frac{3 \text{ ग्राम}}{\text{एक मात्रा}}$ |
| 6. | गर्म जल से पथ्य सेवन | |
| 7. | | |

ପ୍ରକାଶକାରୀ

- नियोक्तसा विज्ञान में वर्णित उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure) से करते हैं। विकितसा युवा की क्षमाकांक्षा को लक्षणों में पर्याप्त समानता मिलती है। विकितसा युवा की दृष्टि से भी रक्तगत वात को उच्च रक्त चाप मान सकते हैं। अतः उच्च रक्तचाप को नियोक्तसा भी रक्तगत वात के सम्पन्न ही करनी चाहिए।

12. मांसगत एवं मेडोगत वात

莫高窟

- चिकित्सा सिद्धान्त²**

 - 1. समृद्ध शरीर में गौच (Heaviness in the body)
 - 2. सर्व शरीर में तोहकत वेदना (Pricking pain all over the body)
 - 3. रुक्ष या मुट्ठ प्रहर समान वेदना (Pain like fist blow)
 - 4. सर्वाङ्ग वेदना (Generalised Bodyache)
 - 5. थकावट (Fatigue)
 - 1. सर्वप्रथम सम्यक स्तेहन के उपास्त विरेचन।
 - 2. निरुह औसत प्रयोग।
 - 3. दोषान्तःशुद्धि इमुत्त चिकित्सा प्रयोग।

चिकित्सा सिद्धान्त^१

- आदर्श चिकित्सा पत्र
- निदान परिवर्तन
प्रातः : साथ
 - सिंहार गुग्गुल : 500 मि.ग्र.
 - अग्नि तुण्डी वटी : $\frac{250}{1\times 2}$ मात्रा मधु से.

3. भोजनोत्तर पञ्चकोल चूण : 2 ग्राम ससराज रस : $\frac{125}{1\times 2}$ मात्रा मधु से.

4. गाँवि में एण्ड स्नेह : 20 मि.ली. दुग्ध से : एक मात्रा

5. वचादि लंखन वर्स्ति : 15 दिन पथ्य सेवन

6. व्यायाम

13. अस्थि एवं मज्जागत वात
सामान्य लक्षण^२
- अस्थि भ्रंत (Breaking pain in bones)
 - पर्व घेर (Pain in all the joints)
 - सम्प्ल शूल (Joint pains)
 - मास क्षय (Myopathy)
 - बलं क्षय (Weakness)
 - अनिद्रा (Insomnia)
 - शरीर में निरन्तर बेदना (Continuous Bodyache)
 - अस्थि शोष (Osteoporosis)
 - अस्थि शूल (Ostalgia/Bony pain)
 - मज्जा शोष (Depleted bone marrow)

7. गाँवि चूण : 125 मि.ली. मधु से.

8. विफला घृत : 15 मि.ली. दुग्ध से

9. एरण्ड पाक : 20 ग्राम दुग्ध से

10. वाह्य अस्थिक्षय सर्वाङ्ग स्वेदनार्थ रात्रि विफला चूण : 2 ग्राम गर्भ जल से

11. पथ्य सेवन : दशपूत्र क्वाथ

12. गाँवि चूण : 125 मि.ली. मधु से.

13. एरण्ड पाक : 20 ग्राम दुग्ध से

14. शुक्रगत वात
सामान्य लक्षण^३
- सुक्र का शीघ्र स्खलन अथवा अति स्तम्भन (Early ejaculation or stagnation of the semen)
 - कमी-कभी शीघ्र गर्भसंतान (Missed abortion occasionally)

चिकित्सा सिद्धान्त^१

1. वात एवं आध्यात्मर स्नेहन
2. वात नाशक तैल से अध्यन्द
3. वात नाशक घृत एवं तैल का आध्यात्मर प्रयोग

- आदर्श चिकित्सा पत्र
- निदान परिवर्तन
प्रातः : साथ

2. पहरयोगराज गुग्गुल : 500 मि.ग्र.

3. अग्नितुण्डी वटी : $\frac{250}{1\times 2}$ मात्रा मधु से.

4. पञ्चकोल चूण : 2 ग्राम ससराज रस : 125 मि.ली. मधु से.

5. विफला घृत : 15 मि.ली. दुग्ध से

6. एरण्ड पाक : 20 ग्राम दुग्ध से

7. वाह्य अस्थिक्षय सर्वाङ्ग स्वेदनार्थ रात्रि विफला चूण : 2 ग्राम गर्भ जल से

8. पथ्य सेवन : दशपूत्र क्वाथ

9. एरण्ड पाक : 20 ग्राम दुग्ध से

10. शुक्रगत वात
सामान्य लक्षण^३
- सुक्र का शीघ्र स्खलन अथवा अति स्तम्भन (Early ejaculation or stagnation of the semen)
 - कमी-कभी शीघ्र गर्भसंतान (Missed abortion occasionally)

3. कमी-कमी गर्भ संग होना (Breach presentation of foetus occasionally)
4. शुक्र एवं गर्भ में अनेक प्रकार की विकृतियों की उत्पत्ति (Various types of deformities and abnormalities in the semen and foetus)

चिकित्सा सिद्धान्त¹

1. हर्ष उत्पन्न करना।
2. बल एवं शुक्र को उत्पन्न करने वाले आहार एवं विहार का प्रयोग

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदन परिवर्णन
प्रातः : सायं
मध्य वर्षज वर्टी : 500 मि.ग्र.
कामचूड़ामणि रस : 250 मि.ग्र.
2. दुष्प से 1x2 मात्रा
3. धोजनोत्तर
शतावरी चूर्ण : 2 ग्राम
अश्वकान्था चूर्ण : 2 ग्राम
दुष्प से 1x2 मात्रा
4. कौंच पाक : 20 ग्राम
दुष्प से 1x2 मात्रा
5. उत्तर बर्सित
6. रात्रि
पञ्चसक्तर चूर्ण : 2 ग्राम
कोणा जल से एक मात्रा
7. मधुर, स्नायु, गुरु, पौष्टिक आहार सेवन

••• तेज़ी की •••

15. स्नायुगत बात

सामान्य लक्षण² 3

1. वाह्यायम (बहिरायम) (Opisthotonus-Backward bending of body)

1. हृषीजन्मन शुक्रस्ये बलस्यकर्त्ता हितम् (च.चि. 28/94)
2. वाह्यायमन्यमयम् खल्ली कूब्जवर्षम् च।
सर्वादीकार्योग्योन्मात्र छुर्यात् स्नायुगतेऽनित्यः॥ (च.चि. 28/35)
3. स्नायुगतः स्तम्भकर्म्मी शत्रुगमाङ्गेण तथा। (सु.नि. 1/27)

2. अन्तरायम (Emprosthotonus- Forward bending of body)
3. खल्ली (Cramps in the ankle joint, knee joint, and wrist joint)
4. कूब्जता (Back hump)
5. सर्वादीक बात (Generalised Neurological Disorders)
6. एकांग बात (Localised Neurological disorder)
7. स्तम्भ, कम्प, शूल एवं आक्षय (Stiffness of body, tremors, bodyache and spasm of tendons)⁴

चिकित्सा सिद्धान्त

उपरोक्त लक्षण सहित ग्रथों में व्याधि के रूप में वर्णित हैं। अतः उन-उन व्याधियों के वर्णन में ही चिकित्सा सिद्धान्त देखें।

••• तेज़ी की •••

16. स्नायुगत बात

सामान्य लक्षण¹

1. सर्व शरीर में मृदु बेदना (Mild Bodyache)
2. शोफ (Oedema)
3. सर्व शरीर में शोष (Emaciation)
4. शरीर में स्पन्दन (Pulsations in the body)
5. सिराओं का शून्य होना (Numbness of veins)
6. सिराकुञ्जन अथवा स्नायुस्त्रव्यता (Constriction or stiffness of the veins)
7. स्नायुगत (Fullness of veins)

चिकित्सा सिद्धान्त²

1. स्नेह से अध्यक्ष
2. स्नेह से उपनाह
3. स्नेह मर्दन
4. स्नेह प्रतीप
5. रक्तगोक्षण

1. सर्वर मद्दल्ल, शोफ सुखाति स्नन्ते तथा;
सुप्तास्त्रव्यत्य भर्तुर्वात् वा स्त्रियो वा बाते स्नायुगतेः॥ (च.चि. 2R/36)

2. संहायकृष्णप्रसादवच भर्तुर्वात् वा स्त्रियो वा बाते स्नायुगतेः॥ (भा.प्र. उत्तर खण्ड 24/256)

3. बाते शियातेः कुर्यात् वा बाते स्नायुगतेः॥ (भा.प्र. उत्तर खण्ड 24/256)

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्तन

प्रति : साथ

2. महानाराज गुग्गुज़

अग्नितुण्डी बटी : 500 मि.ग्रा.

मधु से

3. शोजनीतर

पञ्चकोल चूर्ण

: 3 ग्राम

पर्ष जल से : 1×2 मात्रा

4. (i) अम्बांग : महानाराज तेल

(ii) नाड़ी स्केटन : दशमूल कवाथ

5. जटोकावचारण / रक्तावसावण

6. गर्वि में हरीतकी चूर्ण : 3 ग्राम

कोष्ठ जल से : एक मात्रा

7. पथ्य सेवन

••••• और •••••

17. सम्भिगत वात (OSTEO ARTHRITIS)

परिचय

सहिता ग्रन्थों में सम्भिगत वात का अत्यन्त सीक्षण वर्णन प्राप्त होता है, परन्तु वर्तमान काल में सम्भिगत वात की भयावहता के कारण इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता प्रतीत होती है। सम्भिगत वात में मुख्यतः अतिथात सम्भियों प्रभावित होती है। यह गोप्राय: मध्यमावस्था के पश्चात एवं वृद्धावस्था में अधिक पाया जाता है। इस गोप्राय में अस्थियों में विकृति आ जाती है। अतः सम्भिगत वात में मुख्यतः अस्थिवाह खोत्स एवं मूल्यावह खोत्स की विकृति होने की अधिक सम्भावना रहती है।

सम्भिगत वात में विशेष रूप से शरीर की बड़ी सम्भियाँ (Weight bearing joints) अधिक प्रभावित होती हैं जैसे जानु सम्भिय (Knee joints) गृह्णक सम्भिय (Ankle joint) आदि। सम्भिगत वात गोप्राय में अस्थि सम्भियों के बीच की कला (Synovial membrane) में स्थित द्रव पदार्थ (Synovial fluid) सूख जाता है जिसके फलस्वरूप अस्थि के दोनों सिरों में घर्षण होने के कारण गोप्रायी शूल का

वात व्याधि

अनुभव करता है तथा चलते समय या उस सम्भिय विशेष में गति कराने पर एक विशेष प्रकार की कट्ट-कट्ट (Creptiations) की आवाज उत्सन्न होती है जिससे गोप्राय चलने फिले में कष्ट का अनुभव करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

वात व्याधि में उल्लिखित 'सभी' सन्दर्भ, ग्रन्थ

परिभाषा

वात दोष की विकृति के कारण सम्भियों में शूल होना, आकृच्छन एवं प्रसारण में कठिनाई तथा शोथ होना सम्भिगत वात कहलाता है। सम्भिगत वात का सामन्जस्य आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित Osteoarthritis नामक गोप्राय से किया जा सकता है।

निदान

सम्भिगत वात में केवल वात दोष की ही विशेष उपचार मिलती है तथा वात दोष का ही प्रकोप भी होता है। अतः पूर्व में वर्णित वात व्याधि के सभी निदान सम्भिगत के भी निदान हैं।

सम्प्राप्ति

विभिन्न प्रकार के वात प्रकोपक आहार एवं विहार के सेवन से वात दोष प्रकृपित होकर शरीर की सम्भियों में अवस्थित हो जाती है क्योंकि सम्भिगत में 'खैयुग्म' सम्भिय स्थानों में ही प्राप्त होता है। सम्भियों में दोष-दूष सम्पूर्णना के उपरान्त वात दोष सम्भियों को विकृत कर देता है जिससे सम्भिगत वात गोप्राय की उत्पत्ति होती है।

सम्प्राप्ति चक्र

वात प्रकोपक निदान का अत्यधिक सेवन

वात दोष का प्रकोप

वात दोष का सम्भियों में स्थान संशय

सम्भिय स्नायु, कण्डरा की विकृति

सम्भिगत वात

सम्प्राप्ति घटक

दोष :

दूष : स. रक्त, अस्थियों

अधिष्ठान : अस्थिसम्भिय

संचालन करे जिससे शूल में कमी आती है। सर्धिगत बात में मत्स्येन्द्रियसन, गोमुखासन, परिचमोत्तानासन, भद्रासन, पद्मासन, साहस्रिक बलाना, दीकार पर चक्र स्थापित कर उसे चलाना इत्यादि व्यायाम एवं योगासन से अत्यन्त लाभ होता है।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. साधारणता : कृच्छराण्य / याय
2. अधिकारी : अस्थिवह, मज्जावह
स्नोतो इट्ट प्रकार : संग, ग्रन्थि, विपर्गिमन
अग्नि स्थिति : प्रायः विषमानि
व्याधिस्वभाव : चिकित्सारी
3. निदान परिवर्जन : प्रात : सायं
प्रात : त्रयोदशांग गुग्गुलु
गस्तादि गुग्गुलु : 500 मि.ग्र.
कोण्ठ जल से : 500 मि.ग्र.
1x3 मात्रा
4. निदान परिवर्जन : पञ्चकोली चूर्ण : 2 ग्राम
वातविद्वावस्क रस : 125 मि.ग्र.
प्रवालपिण्डी : 250 मि.ग्र.
मधु से : 1x2 मात्रा
5. निदान परिवर्जन : शोजनोत्तर
दशमूलारिच्छ : 20 मि.ली.
समयांग जल से : 1x2 मात्रा
6. निदान परिवर्जन : रात्रि
हरीतकी चूर्ण : 3 ग्राम
गर्म जल से : एक मात्रा
स्नेहनार्थ : महानारायण तैल
नाड़ी स्वेदनार्थ : दशमूल जल
7. निदान परिवर्जन : अनुवासन बास्ति
निरुह बास्ति : महानारायण अथवा दशमूल तैल
पथ्य सेवन : एण्डमूलादि निरुह बास्ति
8. निदान परिवर्जन : वात व्याधि चिकित्सा के समान

Latest Developments

Osteoarthritis

सन्धिगत बात चिकित्सा में योगासन एवं व्यायाम अत्यन्त लाभदायक हैं। ये गीरे सलाह दी जाती है कि वह प्रभावित सन्धि का अधिक से अधिक धीरे-धीरे को सलाह दी जाती है कि वह प्रभावित सन्धि का अधिक से अधिक धीरे-धीरे को सलाह दी जाती है कि वह प्रभावित सन्धि का अधिक से अधिक धीरे-धीरे

Osteoarthritis is the most common form of chronic disorder of synovial joints. It is characterized by progressive degenerative changes in the articular cartilages over the years, particularly in weight bearing joints.

1. बालपृष्ठार्थिस्तर: ग्राम: चिकित्सार्थिनी।

2. कुपराणाकुञ्जनायत बातें शार स्वेच्छालाहम्। (च.प्र. मध्यम खण्ड 24:259)

सामान्य लक्षण'

1. सन्धियों में भारीपन (Heaviness in the joints)
2. सन्धियों में शोथ (Inflammation in joints)
3. सन्धियों में आकुंचन एवं प्रसरण के समय अत्यधिक शूल होना। (Pain during movements of joints)
4. चलते समय सन्धियों में से कट् कट् शब्द की उत्पत्ति (Crepitation during walking or movement of joints)
5. सन्धियों के सिरों का विकृत होना (Déformity in the joints)

साधारणासाध्यता

सन्धिगत बात विशेषकर वृद्धावस्था में होता है। अतः इसमें धातुक्षय भी अधिक मिलता है। सन्धिगत बात में अस्थि सन्धियाँ विकृत हो जाती हैं। अतः यह सोग प्रायः कृच्छराण्य या याय होता है। जब तक चिकित्सा करते हैं तब तक लाभ मिलता है। यदि सन्धियों में स्थायी स्वरूप की विकृति उत्पन्न नहीं हुई हो तथा रोगी प्रारम्भक अवस्था में ही चिकित्सा प्रारम्भ कर दे तब वह थोड़ी कठिनाई से ठीक हो सकता है। सन्धिगत बात नवीन अवस्था में कृच्छराण्य एवं जीर्ण अवस्था में याय या असाध्य होता है।

चिकित्सा सिद्धान्त'

1. वह कर्म : 2. स्नेहन कर्म 3. उपनाह चिकित्सा
4. अन्य सभी चिकित्सा सूत्र का प्रयोग बात व्याधि में उत्स्थित चिकित्सा के समान करना चाहिए।

सन्धिगत बात मूलतः बात प्रधन रोग है। अतः इसमें शोधन एवं शमन चिकित्सा की प्रायः वही औषधियाँ प्रयुक्त होती हैं जो सामान्य बात व्याधि चिकित्सा में प्रयुक्त होती हैं। अतः सन्धिवात में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रकार के उपयोगी योग बात व्याधि की सामान्य चिकित्सा में ही देखें।

योगासन/व्यायाम

सन्धिगत बात चिकित्सा में योगासन एवं व्यायाम अत्यन्त लाभदायक हैं। ये गीरे सलाह दी जाती है कि वह प्रभावित सन्धि का अधिक से अधिक धीरे-धीरे

1. बालपृष्ठार्थिस्तर: ग्राम: चिकित्सार्थिनी। (च.प्र. 28/37)

2. कुपराणाकुञ्जनायत बातें शार स्वेच्छालाहम्। (च.प्र. मध्यम खण्ड 24:259)

Types

Two main types—

1. Primary osteoarthritis.
2. Secondary osteoarthritis.

1. Aetiology of Primary osteoarthritis—

A number of factors predispose primary osteoarthritis. These includes—

- (i) Genetic Factors.
- (ii) Metabolic disorders.
- (iii) Age—It is a disease of old age.
- (iv) Idiopathic avascular necrosis. It is occasionally seen in alcoholic middle aged men with high serum lipid and altered blood coagubility.
- (v) Endocrinial Factors.
- (vi) Obesity.

2. Aetiology of Secondary Osteoarthritis

It is most common. Secondary osteoarthritis is usually caused by local factors which include—

- (i) Trauma
- (ii) Mal-alignments.
- (iii) Inadequate blood supply.
- (iv) Infections of the joints- e.g. pyogenic, tuberculosis, etc.
- (v) Diseases interfering with the nerve supply of the joint may cause osteoarthritis.
- (vi) Inflammatory Diseases.
- (vii) Nutritional bone diseases- e.g. rickets in infancy, osteomalacia in adults may cause osteoarthritis.

Signs and Symptoms

- (i) Pain—It is initial and leading symptom.
- (ii) Stiffness—It follows pain.
- (iii) Deformity due to shrinkage of capsule, fibrosis, muscle imbalance.
- (iv) Swelling of the joint may also be noticed in superficial joints.
- (v) Limping—due to pain, stiffness and deformity of the joint.
- (vi) Synovial thickening and effusion.
- (vii) Osteophytes may be felt on palpation.

Investigations

1. Complete Haemogram-HB %, ESR, TLC, DLC.
2. X-ray of affected joints, AP and Lateral view.
3. RA factor to exclude Rheumatoid arthritis.

Management Principles

1. There is no specific treatment. Hot bath, Hot vapours, Ice produce anaesthesia.
2. Various analgesics like Aspirin, Paracetamol, Ibuprofen, Celecoxib etc. may be used.

3. Physiotherapy is of some help to keep joint moving and build up muscular strength.

4. Weight loss by reducing diet is of extreme help.

Operative (Surgical) Treatment

- (1.) Osteotomy (The operation through cutting of the bone)
 - (2.) Arthroplasty. (To reshape; reconstruct Joints)
 - (3.) Arthrodesis. (Fusion of two Joints)
 - (4.) Excision of the joint. (Cutting away or taking out Joints)
 - (5.) Manipulation of the joint under anaesthesia with Hydrocortisone injection.
-

**18. मन्त्रास्त्रम्
(TORTICOLIS)****निदान**

1. दिन में शयन करना
2. कैंची नीचे शाय्या का होना
3. अचानक उपर की ओर देखना

सम्पर्कित

उपरोक्त निदान सेवन से वात दोष का प्रकोप हो जाता है। यह प्रकृष्टित वात, कफ दोष से आवृत होकर मन्त्रा प्रदेश को आक्रान्त कर मन्त्रास्त्रम् रोग उत्पन्न करता है।

सामान्य लक्षण

1. मीठा प्रदेश की मासपरियों में छिचाँत (Stretching in the sterno mastoid muscles)
2. मन्त्रा प्रदेश में जकड़हट (Stiffness in the neck muscles)
3. मन्त्रा में अत्यधिक शूल (Pain in the neck muscles)

चिकित्सा सिद्धान्त²

1. बाटुका अथवा लवण की पोटटली से रुक्ष स्वेदन
2. नस्य कर्म
3. व्यायाम

आदर्श चिकित्सा पद्ध

1. निदान परिवर्जन

¹. दिवस्वनासनस्थान दिव्योत्तम निरीक्षणः।

². मन्त्रास्त्रम् ग्रन्थात् एव रसेष्वाऽबृतः॥ (मु.क्र. १/७)

मन्त्रास्त्रम् ग्रन्थात् एव रसेष्वाऽबृतः॥ (मु.क्र. ५/२०)

- प्रत** : साथ
2. पश्चादि गुणजु : ५०० मि.ग्र.
रुद्ध कृपीति : $\frac{125}{1\times 2}$ मि.ग्र.
मधु से :
3. बन्धमृत रस : १२५ मि.ग्र.
प्रवाल पंचमृत गोदन्ती : १२५ मि.ग्र.
मधु से : $\frac{250}{1\times 2}$ मात्रा
4. पश्चादि कवाप : $\frac{20}{1\times 2}$ मि.ली.
5. मोजनोत्तर दशमूलारिष्ट : $\frac{20}{1\times 2}$ मि.ली.
समझाग जल से :
6. व्यायाम
7. पथ्य सेवन
...••• लै लौ लौ •••

19. हनुस्तम्भ (LOCK JAW)

निदान

- जिहा निर्लेखन
- जिहा निर्लेखन हेतु अधिक मुख खोलना
- शुष्क पदार्थों का अति सेवन
- आघात

समान्य लक्षण

- मुख का पूर्णतः खुला रहना अथवा बन्द हो जाना (Spontaneous opening or closure of mouth)
- हेतु में शूद्धता (Diminished sensation in jaw)
- भोजन गहण करने में कठिनाई (Difficulty in swallowing)
- बोलने में कठिनाई (Difficulty in speech)

- जिहानिर्लेखनात्मक स्थानात्मक विचारित: कृपितो हनुमूलस्थः दंसविचारितो हनुम्। (मा.नि. २२/४९)
हनुमूले स्थिरतावन्ति रसस्थानमनयेत्।
विशुलास्तम्भवा कृशते स्वभाववरन्तम्।
हनुप्रह च स्वस्तम्भ हनु (२३) स्वत्वकरतम्॥ (च. च. २४/४९)
- जिहानिर्लेखनात्मक स्थानात्मक विचारित: कृपितो हनुमूलस्थः दंसविचारितो हनुम्। (मा.नि. २२/४९)
हनुमूले स्थिरतावन्ति रसस्थानमनयेत्।
उन्नप्रयेत्वा कृशते स्वभाववरन्तम्॥
नामयंत्वेन शंखोक्यामवदाचरत॥ (अ.ह.च. २१/४१)

चिकित्सा सिद्धान्त

- स्थानीय अस्थंग
- गण्डुष अथवा कवल धारण
- शल्य क्रिया
- अद्वित के समान चिकित्सा
- आदर्श चिकित्सा पन्न
- निदान परिवर्जन
- प्रत : साथ
मधु से : ५०० मि.ग्र.
अग्निपाणी वटी : $\frac{125}{1\times 2}$ मात्रा
मधु से : १२५ मि.ग्र.
प्रवाल पञ्चमृत : $\frac{250}{1\times 2}$ मात्रा
मधु से : १२५ मि.ग्र.
अग्निपाणी वटी : $\frac{20}{1\times 2}$ मात्रा
मधु से : १२५ मि.ग्र.
प्रवाल कुलात्कर रस : १२५ मि.ग्र.
मधु से : १२५ मि.ग्र.
प्रवाल पञ्चमृत : $\frac{250}{1\times 2}$ मात्रा
महानारायण तैल से : गण्डुष
महामाष तैल या प्रसारिणी तैल से : महामाष
स्थानीय वाष्प स्वेदन
व्यायाम
पथ्य सेवन
...••• लै लौ लौ •••
- प्रत : साथ
मधु से : ५०० मि.ग्र.
अग्निपाणी वटी : $\frac{125}{1\times 2}$ मात्रा
मधु से : १२५ मि.ग्र.
प्रवाल कुलात्कर रस : १२५ मि.ग्र.
मधु से : १२५ मि.ग्र.
प्रवाल पञ्चमृत : $\frac{250}{1\times 2}$ मात्रा
महानारायण तैल से : गण्डुष
महामाष तैल या प्रसारिणी तैल से : महामाष
स्थानीय वाष्प स्वेदन
व्यायाम
पथ्य सेवन
...••• लै लौ लौ •••

20. जिहा स्तम्भ (TONGUE PARALYSIS)

निदान सम्पादित

जिहा स्तम्भ रोग में वात दोष के साथ कफ का भी अनुबन्ध रहता है जिससे जिहाप्रत हो जाता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार Twelfth Cranial Nerve (Hypoglossal Nerve) की विकृति के कारण जिहा स्तम्भ रोग उत्पन्न हो जाता है। Hypoglossal Nerve की विकृति का कारण आघात (Trauma), अर्बुद (Tumour), घनास्त्रा (Thrombosis) इत्यादि होता है।

1. एनुलसेस हनु. स्थिरतावन्ति रसस्थानमनयेत्।
उन्नप्रयेत्वा कृशते स्वभाववरन्तम्॥
नामयंत्वेन शंखोक्यामवदाचरत॥ (अ.ह.च. २१/४१)

सामान्य लक्षण¹

1. अन्न ग्रहण में कठिनाई (Difficulty in swallowing)
2. जल ग्रहण में कठिनाई (Difficulty in drinking)
3. बोलने में कठिनाई (Difficulty in speaking)

चिकित्सा सिद्धान्त²

1. कवल अथवा गण्डूष धारण करना
2. नस्य कर्म
3. व्यायाम
4. बात व्याप्ति के समान चिकित्सा

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन

प्रातः	:	साथ
स्त्रीपलादि चूर्ण	:	3 ग्राम
नागरादि चूर्ण	:	1 ग्राम
बालसुधा	:	<u>250</u> मि.ग्रा.
मधु से	:	<u>1x2</u> मात्रा
कल्याणकावलेह	:	<u>20</u> ग्राम
दुध से	:	<u>1x2</u> मात्रा
महानारायण तैल से	:	कवल/गण्डूष धारण
अणु तैल से	:	नस्यकर्म
पथ्य सेवन	:	
2. विश्वाची (Radial Neuritis or Radial Paralysis)
 1. प्रसारक पेशी कर्म शय अथवा बहिः प्रकोपिका नाड़ी विकृति जन्म नहीं होता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार हाथ की मासपेशियों में चेष्टावाह कार्य (Motor functions) नहीं हो पाने से विश्वाची रोग की उत्पत्ति होती है। प्रायः Radial Nerve अथवा Ulnar Nerve के Paralysis के कारण हाथ का प्रसारण एवं आकुञ्जन नहीं होता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अन्तरार विचार करने पर विश्वाची रोग 3 प्रकार से उत्पन्न हो सकता है—
 2. आकुञ्जक पेशी कभी कभी अथवा अन्तः प्रकोपिका नाड़ी विकृति जन्म विश्वाची (Ulnar Neuritis or Ulnar Paralysis)
 3. उम्य पेशी कर्म शय अथवा उम्य नाड़ी विकृति जन्म विश्वाची (Radioulnar Neuritis or Radioulnar Paralysis)

सामान्य लक्षण¹

1. हस्त तल के अन्तः भाग व कण्ठस्थ में विकृति (Deformity in the muscles of the medial part of arm)
2. बाहु के प्रसारण एवं आकुञ्जन में कठिनाई(Difficulty in the movement of arm)
3. हाथ की पेशियों में शय (Weakness in muscles of the arm)
4. यह रोग प्रायः एक हाथ में होता है, परन्तु कभी-कभी दोनों हाथों में भी हो सकता है।

चिकित्सा सिद्धान्त

1. स्थानीय अध्यक्ष
3. नस्य प्रयोग

नाड़ी स्वेदन
नाशक चिकित्सा

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन

प्रातः	:	साथ
योगराज गुग्गुल	:	500 मि.ग्रा.
बहुत वाताजाकुरा रस	:	125 मि.ग्रा.
शुद्ध कुपीतु	:	<u>125</u> मि.ग्रा.
मधु से	:	<u>1x2</u> मात्रा

3. हाथ में खिचाँव होना

(Motor functions) नहीं हो पाने से विश्वाची रोग की उत्पत्ति होती है। प्रायः Radial Nerve अथवा Ulnar Nerve के Paralysis के कारण हाथ का प्रसारण एवं आकुञ्जन नहीं होता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अन्तरार विचार करने पर विश्वाची रोग 3 प्रकार से उत्पन्न हो सकता है—

1. प्रसारक पेशी कर्म शय अथवा बहिः प्रकोपिका नाड़ी विकृति जन्म विश्वाची (Radial Neuritis or Radial Paralysis)
2. आकुञ्जक पेशी कभी कभी अथवा अन्तः प्रकोपिका नाड़ी विकृति जन्म विश्वाची (Ulnar Neuritis or Ulnar Paralysis)
3. उम्य पेशी कर्म शय अथवा उम्य नाड़ी विकृति जन्म विश्वाची (Radioulnar Neuritis or Radioulnar Paralysis)

(RADIOULNAR NEURITIS OR RADIOPHARYNGEAL PARALYSIS)**निदान**

1. वात कारक आहार एवं विहार का सेवन
2. अत्यधिक भारी वजन उठाना

1. वाताहिनीतिया संस्थान निकाल सम्प्रतंडनितः।
2. जिह्वास्त्रायथावस्थ कार्य वातान्विकित्साम्। (अ.ह.नि. 15/31)
गढ़स्त्रायथावस्थ कार्य वातान्विकित्साम्। (अ.ह.नि. 21/42)

3. भोजनोत्तर दशमूलार्थि : $\frac{20 \text{ मि.ली.}}{1\times 2 \text{ मात्रा}}$
4. अभ्यार्थ स्वेदनार्थ : प्रसारिणी तैल
5. नस्यार्थ : दशमूल कवायथ
6. पथ्य पालन : अग्नु तैल या महानारायण तैल

•••लौ छुँगे •••

(PARALYSIS OF THE BRACHIAL PLEXUS)

निदान

1. बात दोष कारक आहार एवं विहार सेवन गर्दन में आघात लगाना
2. अंश सम्बन्ध का विश्लेष (Dislocation of shoulder joint)
3. अक्षकार्त्तिथ (Clavicle) का भान होना
4. अर्बुद (Tumour)
5. ब्राइल (Brachial Plexus) में आघात होकर Paralysis उत्पन्न होना

सामान्य लक्षण¹

1. अंश सम्बन्ध की सिराओं में संकोच (Constriction in the veins of shoulder joints)
2. हस्त की चेत्य का पूर्णतः नष्ट हो जाना (Loss of functions of hands)
3. बाहु में शोष (Atrophy of muscles of arm)

चिकित्सा सिद्धान्त²

1. नस्य कर्म
2. स्वेह पान
3. द्वेषहपान के प्रचावत् भोजन
4. स्थानीय अभ्यार्थ एवं स्वेदन

1. अंसप्रतिकृतिथो वायुः सिग संकोच्य तत्राणाः।
बाहुप्रस्त्रनितर जनस्यवाहुकम्॥ (अ.ह.नि. 15/43)
अव्याहारं हितं नस्य स्वेदनवात्रप्रवितकः॥ (अ.ह.नि. 21/44)

2.

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन प्रात	: सायं
2. अग्नितुण्डी बटी	: 500 मि.ग्रा.
रसगाज रस	: 125 मि.ग्रा.
मल्ल सिन्दूर	: $\frac{125 \text{ मि.ग्रा.}}{1\times 2 \text{ मात्रा}}$
मधु से	
भोजनात्तर	
शुष्ठी चूर्ण	: 2 ग्राम
अश्वगन्धा चूर्ण	: $\frac{2 \text{ ग्राम}}{1\times 2 \text{ मात्रा}}$
कोणा जल से	
भोजनोत्तर	
अश्वगन्धरिष्ट	: $\frac{20 \text{ मि.ली.}}{1\times 2 \text{ मात्रा}}$
समभाग जल से	
अभ्यार्थ स्वेदनार्थ	: प्रसारिणी तैल या महानारायण तैल
स्वेदनार्थ	: दशमूल कवायथ
नस्य कर्म हेतु	: व्याघ्री तैल
व्यायाम	
पथ्य सेवन	

•••लौ छुँगे •••

23. अंश शोष

(ATROPHY OF SHOULDER JOINT)

सामान्य लक्षण¹

1. अंश प्रदेश में स्थित वायु प्रकृष्टित होकर श्लेषा को सुखाकर अंश

शोष रोग उत्पन्न करता है।

2. अंश प्रदेश में मांस क्षय (Emaciation)
3. अंश सम्बन्ध में दोर्बल्य (Weakness of shoulder joint)

चिकित्सा सिद्धान्त

1. स्वेहन	2. स्वेदन
3. बुहण औषधि प्रयोग	4. नस्य कर्म
1. अंसप्रतिकृतिथो वायुः सिग संकोच्य तत्राणाः। बाहुप्रस्त्रनितर जनस्यवाहुकम्॥ (अ.ह.नि. 15/43)	2.

1. अंसप्रतिकृतिथो वायुः सिग संकोच्य तत्राणाः।
बाहुप्रस्त्रनितर जनस्यवाहुकम्॥ (अ.ह.नि. 15/43)

2.

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन : साथ प्रत
 2. प्रवाल मिट्टी : 250 मि.ग्र.
 3. शुग पात्र शुद्ध कुपीलु मधु से : $\frac{125}{125}$ मि.ग्र. 1x2 मात्रा
 4. भोजनोत्तर अस्वास्था चूर्ण शुद्धी चूर्ण उड़ा जल से : 2 ग्राम : 2 ग्राम 1x2 मात्रा
 5. बलारिट सम भाग जल से : 20 मि.ली. 1x2 मात्रा
 6. स्थानीय अस्पार्थ नाड़ी स्वेदनार्थ नस्य कर्म हेतु व्यायाम : महामाष तैल : दशमूल व्याधि : अणु तैल
 7. व्यायाम पथ्य सेवन
 8. पथ्य सेवन
- ...००८०५५८०००

24. क्रोड्युकशीर्ष (SINOARTHRITIS OF KNEE JOINT)**निदान सम्प्राप्ति**

क्रोड्युकशीर्ष में वात एवं रक्त दोष की विकृति होती है। वात एवं रक्त दोष प्रकृष्टि होकर जानु सन्धि में अवस्थित होकर क्रोड्युक शीर्ष गोग की उत्पत्ति करते हैं।

वात एवं रक्त की डुष्टि वातरक्त में भी होती है परन्तु दोनों में यह अन्तर है कि वातरक्त किसी भी सन्धि में हो सकता है जबकि क्रोड्युकशीर्ष केवल जानु सन्धि में ही होता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार विभिन्न प्रकार के संक्रमण के कारण जानु सन्धि में उत्पन्न शोथ को क्रोड्युकशीर्ष माना जा सकता है जैसे—पूर्वमेह उपरदेश इत्यादि।

सामान्य लक्षण

1. वात एवं रक्त दोष की विकृति : साथ
 2. जानु सन्धि में तीव्र शूल (Severe Pain in knee joint)
 3. जानु सन्धि में अत्यधिक शोथ (श्रूंगात के सिर के सामान शोथ) (Severe inflammation of knee joint)
 4. भोजनोत्तर वातरक्त नाशक चिकित्सा² 1. रुक्ष स्वेदन 2. अस्पार्थ
 5. बलारिट सम भाग जल से : 20 मि.ली. 1x2 मात्रा
 6. स्थानीय अस्पार्थ नाड़ी स्वेदनार्थ दशमूल व्याधि : महामाष तैल : दशमूल व्याधि
 7. नस्य कर्म हेतु व्यायाम
 8. व्यायाम पथ्य सेवन
- ...००८०५५८०००
1. निदान परिवर्जन : साथ प्रत
 2. कैशोर गुग्गुल : 250 मि.ग्र.
 3. अमृता गुग्गुल शुद्ध कुपीलु मधु से : $\frac{125}{125}$ मि.ग्र. 1x2 मात्रा
 4. अजमोदादि चूर्ण पञ्चकोल चूर्ण गोदती भस्म प्रवाल पञ्चामूत कोण जल से : 2 ग्राम : 2 ग्राम : 250 मि.ग्र. 1x2 मात्रा
 5. दशमूलारित दशमूलारित व्याधि : महामाष तैल समभाग जल से : 20 मि.ली. 1x2 मात्रा
 6. व्यायाम पथ्य सेवन

1. वातरोगितजः शोषो जानुपथे घटास्तः।
शिः: क्रोड्युकशीर्ष तु स्थूलः क्रोड्युकमूर्धवत्॥ (सुनि. 176)
2. वातरक्तक्रियान्वित अन्तर्मुक्तमत्तम्॥ (पाप. मध्यम छण्ड 24/157)

25. खड्ज एवं पहुँच (LIMPING BY ONE LEG & LIMPING BY BOTH LEGS) OR (MONOPLEGIA & DIPLEGIA)

निदान एवं सम्पादित¹

कट प्रदेश में स्थित बात दोष प्रकृष्टित होकर कट से गुल्फ तक एक ऐर की कण्डा को चलते समय कपासी है अथवा चलने में असमर्थ बना देती है, उसे खड्ज रोग कहते हैं।

बात के द्वाय ही यदि कटि प्रदेश से गुल्फ तक के दोनों ओर में चलने की क्रिया नष्ट हो जाय तो उसे पहुँच रोग कहते हैं।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के भूत से खड्ज एवं पहुँच का कारण Cerebral cortex की विकृति है अथवा ऐर को गति प्रदान करने वाली बात नाड़ियो (Nerves) में आधात या सक्रमण के कारण यह रोगोत्पत्ति होती है।

सामान्य लक्षण

- खड्ज में सोगी एक ऐर द्वारा चलने में असमर्थ होता है (Loss of movements of one Leg)
- पहुँच में सोगी के दोनों ऐर क्रियाहीन हो जाते हैं (Loss of movements of both Legs)

चिकित्सा सिद्धान्त²

- स्वेदन
 - स्नेह बरित प्रयोग
 - विरेचन
 - आस्थापन बरित
 - गुणलु प्रयोग
 - गुणलु प्रयोग
 - प्रातः
 - महायोगारज गुणलु
 - अग्नितुंडी बटी
 - मधु से
- $\frac{1}{1 \times 2}$ मात्रा

3. एण्ड पाक	: 20 ग्राम
दुध से	1×2 मात्रा
भोजनेतर	
दशमूलारिद्ध	: 20 मि.ली
समभाग जल से	1×2 मात्रा
अभ्यांगर्थ	: प्रसारिणी तैल या मङ्गारायण तैल
नाड़ी स्वेच्छार्थ	: दशमूल क्वाथ
कर्म बरित क्रम	: दशमूल तैल
अनुवासनार्थ	: दशमूल तैल
आस्थापनार्थ	: एण्डमूलादि क्वाथ
पथ्य सेवन	••• नै झी लौ•••

26. बात कण्टक (ANKLE SPRAIN)

निदान एवं लक्षण¹

- पेर के टेढ़ा रखने से अथवा अधिक श्रम के कारण प्रकृष्टित बात गुल्फ में बेदना की उत्पत्ति करता है इसे बात कण्टक कहते हैं।
- बाते समय अधिक बेदना होती है।
वस्तुतः बात कण्टक एक सामान्य लक्षण है जो प्रायः चोट लगने, गिर जाने अथवा असमतल भूमि पर चलने से गुल्फ सन्धि (Ankle Joint) में मोच आ जाने को बातकण्टक कहते हैं।

चिकित्सा सिद्धान्त²

- पुनः रक्तमोक्षण
- एण्ड तैल पान
- अग्नि दध चिकित्सा

1. स्व. पाद विषमतरे श्रमद्वा जाते यदा।
बातन गुल्फमाश्रित तमाहुतकण्टकम्। (अ.ह.नि. 15/53)
रक्तादसंबन्ध कुर्याद्धीक्षण बातकण्टक।
विवेरांडोत्त बा दहेत्तचाभिरेव च। (पा.प्र. मध्यम खण्ड 24/161)

1. वायुः करय स्थितः स्वक्षणः कण्डमप्रियेदता।
खड्जस्तप्रकृत्युः पहुँचः सक्षमोद्दीर्घविधाता। (मु.नि. 1/77)
उपाचर्त्तरमिव खड्जं पहुँचमध्यापि च।
विवेकास्थापनसंबंधगुल्फसंहवस्तिपः। (भा.प्र. मध्यम खण्ड 24/152)

चिकित्सा सिन्ड्रोम¹

- वातरक्त नाशक चिकित्सा
 - शूद्र शीत जल में मसूर की दाल पीसकर लेप
- आदर्श चिकित्सा पत्र**
- निदान परिवर्जन
 - प्रातः : सायं
 - कैशोर गुग्गुज़ : 500 मि.ग्र.
 - शूद्र कुपीतु : $\frac{125}{1\times 2}$ मि.ग्र.
 - मधु से
 - चदनादि चूर्ण : 2 ग्राम
 - शतावरी चूर्ण : $\frac{2}{1\times 2}$ मात्रा
 - कोणा जल से
 - अमृतारिच्छ : $\frac{20}{1\times 2}$ मि.ली.
 - समसाग जल से
 - पैरों पर मक्खन से अभ्यांग एवं दशमूल क्वाथ से सिन्वन

(TINGLING SENSATION IN THE FOOT)

निदान सम्प्राप्ति²

- वात कारक एवं कफज. आहार सेवन से प्रकृष्टित वात दोष कफ के साथ मिलकर पादहर्ष रोग उत्पन्न करता है।
- आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार सुन्नता एवं इनडाइट का मुख्य कारण Peripheral Nerves की विकृति के कारण Superficial Sensations का समाप्त होना है।

- वातवरक्तम् कृत्यात् दाहं विशेषतः।
मसूर विद्यं: पित्तः: शूतरीतेन वारिण॥
नरणा लृपयत्सम्यात्यरक्तशात्यर्थः। (भा.प्र. मध्यम खण्ड 24/166)
हृष्टरवरणा यस्य भवतत्वं प्रसुतवत्।
- पादरक्तस्तु कृत्यात् दाहं विशेषतः॥
आदृत्वं सक्फां वायुधृतीः: शूद्रवाहिनीः॥
नगन कर्णवक्त्रियकान् युक्तमिन्ननादपतन्॥ (यु.नि. 1/85)

सामान्य लक्षण

- पाद हर्ष (Tingling sensation in foot)
- कमी-कभी ऐसे में सुन्नता (Numbness in the Leg)

चिकित्सा सिन्ड्रोम¹

- वातहर चिकित्सा
- कफ नाशक चिकित्सा
- आदर्श चिकित्सा पत्र**
- निदान परिवर्जन
- प्रातः : सायं
- रसराज रस : 125 मि.ग्र.
- वातारि रस : $\frac{125}{1\times 2}$ मात्रा
- मधु से
- भोजनोत्तर
- पञ्चकोल चूर्ण : 2 ग्राम
- यच्छीमधु चूर्ण : $\frac{2}{1\times 2}$ मात्रा
- गर्म जल से
- योगराज गुग्गुज़ : 2 ग्राम
- अग्नितुण्डी वटी : $\frac{250}{1\times 2}$ मात्रा
- उण जल से
- अभ्यारिच्छ : $\frac{20}{1\times 2}$ मात्रा
- समझा जल से
- पथ्य सेवन : 20 मि.ली.
- पथ्य सेवन : 125 मि.ग्र.

•••••

30. मूक-मिन्नन, गद्गद² (APHASIA, DISPHONIA & DISARTHRIA)

निदान एवं सम्प्राप्ति¹

- वात कारक आहार एवं विहार का अधिक सेवन करना।
- वात दोष प्रकृष्टित होकर कफ के साथ मिलकर शब्दवाहिनी धंमनी में अवरोध उत्पन्न करके मूक, मिन्नन, गद्गद व्याधि उत्पन्न करता है।

- पादरन्ते तु कर्तव्यः: कृपवाहतसे विष्णिः॥ (भा.प्र. मध्यम खण्ड 24/166)
- आदृत्वं सक्फां वायुधृतीः: शूद्रवाहिनीः॥
- नगन कर्णवक्त्रियकान् युक्तमिन्ननादपतन्॥ (यु.नि. 1/85)

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की इस्ट से शब्दवाहिनी धमनी से जिहा की बेच्चावह नाड़ी (Hypoglossal Nerve), प्रत्यावृत्त्य स्वर यन्नीय नाड़ी (Recurrent Laryngeal Nerve) तथा मीटिक्कात लाणी केंद्र (Speech Centre) का प्रहण करना चाहिए। मीटिक्क के लाणी केंद्र को Broca's Area कहते हैं। यह पर ही शब्दों को समझने, सुनने, लिखने का भी केंद्र होता है। अतः Broca's area में विकृति से वाक्युतता (Aphasia) उत्पन्न हो जाती है। यदि लाणी केंद्र पूर्णतः नष्ट हो जाता है तो बोलने की शक्ति भी पूर्णतः नष्ट हो जाती है जिसे मूकता (Aphonia) कहते हैं। यदि अत्य विकृति है तो गोणी हक्कताते हुए बोलता है इस स्थिति को Dysphonia कहते हैं। यदि रोगी बोलते समय कुछ शब्द या अशब्दों को छोड़ देता है तो इसे वाक्यता (Disarthria) कहते हैं।

यदि गोणी सभी शब्दों या वाक्यों को नासिका के स्वर से बोलता है तो इसे निम्न या Rhinophonia कहते हैं।

सामान्य लक्षण

1. बोलने में असमर्थता (Aphasia)
2. अस्पष्ट उच्चारण (Dysphonia)
3. गदगद वाक्यता (Disarthria)

चिकित्सा सिद्धान्त

1. स्फेन
2. गण्ड एवं कवल धारण
3. नस्य कर्म
4. बल्य औषधि प्रयोग

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन

प्रत	: सार्व
2.	: 125 मि.ग्रा.
वचादि चूर्ण	: <u>250 मि.ग्रा.</u>
मधु से	1x2 मात्रा
धोजनोत्तर	: <u>20 ग्राम</u>
कल्याणकावलेह	1x2 मात्रा
दुग्ध से	: 20 मि.ली.
4. अस्वासारिष्ट	: <u>20 मि.ली.</u>
समझान जल से	1x2 मात्रा
गण्डूष अथवा कवल धारण :	अग्नु तैल अथवा ल्याशी तैल से
6. नस्य कर्म	: अग्नु तैल अथवा ल्याशी तैल से
7. पथ्य सेवन	

Laryngeal Nervus) तथा मीटिक्कात लाणी केंद्र (Speech Centre) का प्रहण करना चाहिए। मीटिक्क के लाणी केंद्र को Broca's Area कहते हैं। अतः Broca's area में विकृति से वाक्युतता (Aphasia) उत्पन्न हो जाती है। यदि लाणी केंद्र पूर्णतः नष्ट हो जाता है तो बोलने की शक्ति भी पूर्णतः नष्ट हो जाती है जिसे मूकता (Aphonia) कहते हैं। यदि अत्य विकृति है तो गोणी हक्कताते हुए बोलता है इस स्थिति को Dysphonia कहते हैं। यदि रोगी बोलते समय कुछ शब्द या अशब्दों को छोड़ देता है तो इसे वाक्यता (Disarthria) कहते हैं।

यदि गोणी सभी शब्दों या वाक्यों को नासिका के स्वर से बोलता है तो इसे निम्न या Rhinophonia कहते हैं।

31. तूनी रोग (RENAL COLIC)

सामान्य लक्षण¹

1. मलाशय (Rectum) एवं मूत्राशय (Bladder) से बेदना का प्रारम्भ होकर नीचे गुदा एवं मूत्रेन्द्रिय तक बेदना का गमन (Radiation of pain from rectum and urinary bladder up to the Anus and Penis).

2. तूनी में भेदनवत पीड़ा होती है (Cutting type of pain). तूनी रोग को कुक्कास्परी जन्य शूल भी कह सकते हैं। संभवतः कुक्कास्परी (Renal Stone) जब वृक्क का गव्वीनी (Ureter) या मूत्राशय में रुक जाता है तो इस प्रकार के शूल की उत्पत्ति होती है।

•••२५५•••६००••

32. प्रतितूनी रोग (URETHRAL COLIC)

सामान्य लक्षण²

1. शूल का प्रारम्भ गुदा एवं उपस्थ (Penis) से होता है (Pain originates from Anus & Penis).

2. शूल उपर की तरफ पक्काशय तक जाता है।

वस्तुतः प्रतितूनी रोग तूनी के ठीक विस्तर होता है एवं इसका प्रमुख कारण अस्परी (Stone) का पूत्र प्रसेक्ट (Urethra) में रुक जाना है। कभी-कभी मलावरोध में भी यह लक्षण मिलता है।

तूनी एवं प्रतितूनी रोग का चिकित्सा सिद्धान्त

1. तूनी एवं प्रतितूनी रोग में स्नेह बास्त्र प्रशस्त मानी गई है।

2. मूत्रविरेचनीय औषधि का प्रयोग

3. वातानुलोमन चिकित्सा

1. अप्पे या बेदना यदि बच्चोंमध्यशयोंत्था।

2. भिन्नतों युद्धेश्यम् सा तूनीत्याप्तिरूपाः (सुनि. १४६) गदेस्त्याप्तिरूपाः सेव ग्रात्याप्तिरूपाः विसर्जिण।

केंद्रः पक्काशय याति प्रात्यनीति सा सृष्टाः (सुनि. १४७)

आदर्श चिकित्सा पत्र

(१) वायु रोग

1. निदान फरिवर्जन

प्रातः	साथ	
2. पुर्ववादि चूर्ण	: 2 ग्राम	
पाषण भेदादि चूर्ण	: 2 ग्राम	
यवक्षर	: <u>250</u> मि.ग्रा.	
कोष्ठ जल से	1x2 मात्रा	
3. ऐण पञ्चमूल वकाश सम भाग जल से	: <u>20</u> मि.ली.	
4. एण्ड स्नेह	1x2 मात्रा	
उध से	: <u>20</u> मि.ली.	
5. रात्रि में हरीतकी चूर्ण गर्भ जल से	: <u>2</u> ग्राम	
7. पथ्य सेवन	1 मात्रा	
(२) प्रतितूनी रोग		
1. निदान फरिवर्जन	प्रातः	साथ
2. हिंखादि चूर्ण	: 2 ग्राम	
यवक्षर	: <u>250</u> मि.ग्रा.	
गर्भ जल से	1x2 मात्रा	
3. पिपलत्तादि चूर्ण गर्भ जल से	: <u>2</u> ग्राम	
4. रात्रि में पञ्चवस्कार चूर्ण गर्भ जल से	: <u>3</u> ग्राम	
5. पथ्य सेवन	1 मात्रा	
••• लेखे छैं ७००•••		

33. आध्यान (TYPMPANITIS)

परिचय

आध्यान रोग में आटोप एवं उदर प्रदेश में वायु के भर जाने से उदर प्रदेश फूलत जाता है। अधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार आध्यान को General Tympanitis कह सकते हैं। आध्यान रोग में उदर प्रदेश में वायु भरी रहती है। अतः इसमें पुखरूप से अन्वरह खोतस की ऊँची होती है तथा प्रायः अग्निगंध की स्थिति मिलती है।

आध्यान वस्तुतः कोई रोग नहीं है। यह एक लक्षण मात्र है जो विभिन्न रोगों में मिलता है। आध्यान रोग 'उदावर्त' एवं 'आनाह' से समानता रखता है, जैसे-उदावर्त में वायु की ऊँचांकता होती है, आनाह में उदर प्रदेश में स्तब्धता हो जाती है। आध्यान में आटोप एवं उदर प्रदेश में वायु संचय हो जाता है।

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चक्र सहिता चिकित्सा स्थान-अध्याय 28
2. सुशुर सहिता निदान स्थान-अध्याय 01
3. अस्त्रांग संग्रह निदान स्थान-अध्याय 4 एवं 5
4. माधव निदान-अध्याय 22
5. भाव प्रकाश मध्यम खण्ड-अध्याय 24

व्युत्पत्ति/निरुक्ति

आध्यान = आ + धा

ल्युद् प्रत्यय

अर्थात् आ एवं ध्मा शब्द में ल्युद् प्रत्यय करने से आध्यान शब्द बनता है, जिसका अर्थ है उदर में वायु भर जाना।

परिभाषा'

वायु प्रकृतिपूर्ण होने के कारण नाभि के नीचे के भाग में होने वाला शूल या शूल के साथ वायु का नाभि से नीचे के भाग में संचरण को आध्यान कहते हैं। अधुनिक चिकित्सा विज्ञान में भी आध्यान या आन्व भर जाने की क्रिया को आध्यान (Tympanitis) कहते हैं।

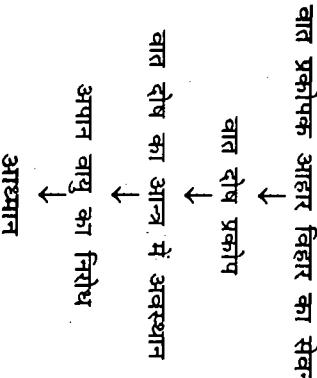
1. वायु वृक्षितन नामार्थः सशूलमपूर्व आध्यानः॥ (असंनि. ५/४ पा इन्दु टीका)

निदान
आयुर्वेद शास्त्र में आधान के स्वतंत्र निदानों का वर्णन नहीं मिलता है। बस्तुतः आधान का मुख्य कारण ऐसे आहार विहार का सेवन करना है जो पाचन के उपरान्त अत्यधिक वायु की उत्तरि करते हैं, जैसे—मटर, चना, सेम, फूलगोभी, अति घोजन इत्यादि।

सम्प्राप्ति

आधान की स्वतंत्र सम्प्राप्ति का वर्णन प्राप्त नहीं होता है क्योंकि यह विभिन्न व्याधियों में एक लक्षण के रूप में मिलता है, परन्तु विशेष रूप से वात प्रकोपक आहार-विहार के अधिक सेवन से प्रकृष्टिपूर्ण वात दोष विशेषकर आन्त्र प्रदेश या पक्वाशय में अपान वायु का अवरोध कर रहा है जबकि मला मूत्र की सम्यक प्रवृत्ति होती रहती है। इस विशेष अवस्था को ही आधान कहते हैं।

सम्प्राप्ति चक्र



2. उदर में शूल के साथ गुड़, गुड़, शब्द (Bubbling sound with pain in Abdomen)
 3. उदर का मरक के समान फूल जाना (Distension of Abdomen with air)
- ### चिकित्सा सिद्धान्त¹
1. लवण्य
 2. दीपन एवं पाचन
 3. फल वर्ति प्रयोग
 4. बर्ति कर्म
- ### आदर्श चिकित्सा पन्न
1. निदान परिवर्जन

प्रत	:: साव
हिंवादि वटी	: 250 मि.ग्रा.
नाराज रस	: 125 मि.ग्रा.
क्रत्याद रस	: $\frac{125}{2}$ मि.ग्रा.
मधु से	1x2 मात्रा
 2. गोजनोत्र

नारायण चूर्ण	: 2 ग्राम
शिवाक्षार पाचन चूर्ण	: $\frac{2}{2}$ ग्राम
मुख्योष्ण जल से	1x2 मात्रा
 3. गर्त्री

एरण्ड स्नेह	: $\frac{20}{2}$ मि.ली.
दुध से	1 मात्रा
 4. उदर प्रदेश पर लेपनार्थ

उदर प्रदेश पर लेपनार्थ	: दारुषट्क लेप + गोमूत्र
------------------------	--------------------------
 5. उदर पर कोणा सेक
 6. पथ सेवन
 7. पथ सेवन

1. आधाने लेणन पूर्व दोपन जाननं ततः।
कलवर्तिक्रियां कुर्यात् वास्तिकर्म च शोधनम्। (भा.म्. मध्यम स्तर 24/94)

सामान्य लक्षण¹

1. अथो वायु का निरोध (Obstruction in passing of flatus)

1. साटोपम्प्युलेशनमध्यतुल्य भूमि।

आधाननिति जानेवाल जोरं वात निरोधज्ञ! (मु.नि. १/४८)

34. प्रत्याध्यान (GASTRIC TYPMANITIS)

सामान्य लक्षण¹

- आमाशय के सभी लक्षण केवल आमाशय तक ही सीमित हों तो उसे प्रत्याध्यान कहते हैं।
- आमाशय में आटोप, अत्यधिक शूल एवं वायु का भर जाना।
- उपरोक्त लक्षणों के आधार पर प्रत्याध्यान को Gastric Tympmanitis माना जा सकता है। प्रत्याध्यान मुख्यतः Pyloric Stenosis की अवस्था में पाया जाता है।

चिकित्सा सिद्धान्त²

- सर्वप्रथम वसन
- दीपन पाचन चिकित्सा
- आध्यान के समान बरिस्त चिकित्सा

अदर्श चिकित्सा पत्र

- निदान परिवर्जन
प्रात : सायं
हिङ्ग उग्रगच्छादि चूर्ण : 2 ग्राम
अग्निपुण्डी वटी : $\frac{250}{1 \times 2}$ मि.ग्रा.
कोण्ठ जल से
- धोजनोत्तर
अविपत्तिकर चूर्ण : 3 ग्राम
सूतशोखर रस : $\frac{250}{1 \times 2}$ मि.ग्रा.
- कोण्ठ जल से : $\frac{20}{1 \times 2}$ मा.त्रा
- बहुत पञ्चमूल कवाह समझा जल से : $\frac{500}{1 \times 2}$ मि.ग्रा.
- चित्रकादि वटी : $\frac{500}{1 \times 2}$ मा.त्रा
- यन्त्र में
दुध से एण्ड स्ट्रेह : $\frac{20}{1 \text{ मा.त्रा}}$ मि.ली.
- पथ्य सेवन

1. विषुक्तप्रसरित्वय तदेवामासायोग्यत्वम्।
प्रत्याध्यान विज्ञानात्मकव्युत्तिनित्यम्। (मु.नि. 1/89)
2. प्रत्याध्याने सम्पूर्णे कुण्ड, वमन लड्डने।
क्षेपनदर्तीनि युच्चात पूर्ववर् बरिस्त कर्म च॥ (भा.प्र. माध्यम खण्ड 24/106)

••• न्द्रे फूँफूँ खूँखूँ •••

35. अष्टीला (ENLARGEMENT OF PROSTATE)

सामान्य लक्षण¹

- नाभि के नीचे वर्तुलाकार, पाषाण खण्ड के समान कठोर, घन, उपरी भाग में लक्षी एवं उँची, स्थिर अथवा चलायमान ग्रन्थ को अष्टीला कहते हैं।

- मूत्रावरोध (Retention of stool)
- मलावरोध (Retention of stool)
- आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार अष्टीला सोन का पूर्ण रूप से किसी व्यधि से सामन्जस्य बैठता कठिन है। परन्तु अधिकांश बिद्वान् Enlargement of Prostate (पौरुष ग्रन्थ वृद्धि) को अष्टीला मानते हैं। पौरुष ग्रन्थ पूर्णतः निश्चल होती है जबकि दूसरी ओर अष्टीला को चलायमान भी माना गया है। कुछ बिद्वान् अष्टीला को गुदा के पास का अर्द्ध (Tumour) भी मानते हैं। परन्तु अष्टीला को पौरुष ग्रन्थ वृद्धि के समीप मानना उचित प्रतीत होता है।
••• न्द्रे फूँफूँ खूँखूँ •••

36. प्रत्याधीला (RECTOVESICULAR TUMOUR)

सामान्य लक्षण²

- अष्टीला ही यदि उदर में तिरक्षे रूप में स्थित हो।
रुजा (Pain) उत्पन्न होना।
- मल, मूत्र, वात का निरोध हो जाता है, उस अवस्था को प्रत्याधीला कहते हैं।

- आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के मत से प्रत्याधीला के लिए भी पूर्ण साम्य वाला शब्द नहीं दिया जा सकता है किंतु भी प्रत्याधीला को लक्षणों के आधार पर बरिस्त गुदान्तरालीय अर्द्ध (Rectovesicular Tumour) कहा जा सकता है।

1. नामेषस्तस्तज्ञातः: सचारो यदि वाऽचतः।
अष्टीलावद्दने ग्रन्थस्तर्वध्यमायत उन्नतः॥ (भा.प्र. माध्यम खण्ड 24/107)
2. एतामेव रुजायुक्ता वित्तिपूर्णग्रन्थिम्।
प्रत्याधीलामिति बद्दलतरे तिर्यग्नित्यम्॥ (भा.प्र. माध्यम खण्ड 24/109)

अष्टोला एवं प्रत्यष्ठोला का चिकित्सा सिद्धान्त

1. अष्टोला एवं प्रत्यष्ठोला की चिकित्सा गुल्म एवं आम्यान्तर विधि के समान करनी चाहिए।
2. अष्टोला एवं प्रत्यष्ठोला में सेक, अवगाह, प्रदेह, अध्यांग, स्वेदन, लहौन, क्षण एवं बमन किया करनी चाहिए।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन
प्रात : साथ
 2. हिंग्वारि चूर्ण : 2 ग्राम
 3. शिवाक्षर पाचन चूर्ण : 2 ग्राम
गर्भ जल से : 20 मिली.
 4. दशमूल व्याधि एण्ड स्नेह : 20 मि.ली.
गर्भ जल से : 2 ग्राम
 5. दशमूल व्याधि और अनुवासन बटित निरुह बस्ति : महानारायण तैल
 6. पथ्य सेवन
- फै. ४०•••

37. खल्ली रोग (CRAMPS)

सामान्य लक्षण

1. प्रकृष्टिपृष्ठ वात दोष से पैर, जंधा, उरु एवं हाथों के पूर्ण अर्थात् Ankle joint, knee joint, thigh region and wrist joint में मद्दत करने के समान वेदन।

1. अष्टोलाप्रत्यष्ठोलाप्रत्यष्ठोलाविधियाँ। (सु.भ. 5/27)

2. अष्टोलाया: किंचि कार्य गुल्मसमानविधियोः।

3. चर्णे हिंग्वारिकं चाव तिवेत्तुज्ञेन वार्षिणा। (भा.प. प्रथम खण्ड 24/10)

चिकित्सा सिद्धान्त

1. अध्यांग
2. स्वेदन
3. मर्दन
4. उपनाह (तैल, घृत, खीर, कुशराता एवं मास से)
5. स्त्रिया, अम्ल एवं लवण रस वाले द्रव्यों की पोटली, व्याधि, चूर्ण अथवा उड्डवत्तन (कल्क) बनाकर स्वेदन करना, मर्दन करना अथवा उपनाह स्वेद करना चाहिए।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन
प्रात : साथ
 2. महायोगराज गुग्गुल : 500 मि.ग्र.
 3. अनिन्तुण्डी वटी : 250 मि.ग्र.
मधु से : 1x2 मात्रा
 4. भोजनोत्तर दशमूलारिच्छ सम्भाग जल से : 20 मि.ली.
 5. उपनाह स्वेदन
 6. विषार्थ तैल : स्थानीय प्रयोग एवं स्वेदन
 7. पथ्य सेवन नियमित व्यायाम
- फै. ४०•••

38. कम्पवात (PARKINSONISM)

निदान

1. वात कारक आहार एवं विहार का अत्यधिक सेवन। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार कम्पवात को Parkinson's Disease के समीप माना जा सकता है। इसके प्रमुख निदान निम्नलिखित हैं—

1. Idiopathic - Paralysis agitans
2. Post encephalitic Parkinsonism
3. Trauma - Head injury
4. Carbon monoxide intoxication

1. खल्ला रुग्णोपालहनम्।

पायसै: कृशरौमसिः: शस्त्रं तैलपृष्ठाचैत्तैः॥ (च.भ. 28/01)

2. खल्लाया द्विग्याप्तस्वलत्वालब्दिः॥ (च.र. वातव्याधि चिकित्सा)

5. Metallic Poisoning
 6. Drugs – Reserpine, Phenothiazine, haloperidol etc.
- उपरोक्त कारणों से Substantia nigra और Lewy bodies में उपस्थित Dopaminergic Neurons, जिनमें कि Melanin होता है, उनका क्षय (Degeneration) होता है। फलस्वरूप रोगी के शरीर में कम्प (Tremors), अनामयता (Rigidity) एवं पेशीक्रिया हानि आदि लक्षण उत्तर्ण हो जाते हैं।

सामान्य लक्षण¹

1. सर्व शरीर में कम्पन (Generalised Tremors) अथवा
2. केवल शिर में कम्पन होना (Tremors of head)

चिकित्सा सिद्धान्त

1. स्नेहन
2. स्वेदन
3. बुहण चिकित्सा
4. रसायन चिकित्सा

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन प्रातः : सायं
2. सिंहनाद गुण्युत्तम अभिन्नुण्डी वटी प्रातः : 500 मि.ग्रा.
3. एण्ड पाक मधु से 1x2 मात्रा : $\frac{15}{1x2}$ ग्राम
4. भोजनोत्तर दुध से 1x2 मात्रा : $\frac{20}{1x2}$ मि.ली.
5. अध्यांगार्थ सरिवाधासव समझा जल से 1x2 मात्रा : प्रसारिणी तैल
6. पथ्य सेवन अधिनुण्डी वटी जल से 1x2 मात्रा : दशमुल कवाथ
7. रस्त्रि में बलारिष्ट समझा जल से 1x2 मात्रा : $\frac{20}{1x2}$ मि.ली.
8. हरीतकी चूर्ण कोणा जल से 1 मात्रा : $\frac{3}{1}$ ग्राम

1. सर्वाङ्गकम्प: शिरो वायुवैषुषंकरकः। (मा.नि. वातव्याधि निदान)

••• ते छी की•••

39. सिराग्रह (HERPES SUPRA ORBITALIS)

उपरोक्त कारणों से Substantia nigra और Lewy bodies में उपस्थित Dopaminergic Neurons, जिनमें कि Melanin होता है, उनका क्षय (Degeneration) होता है। फलस्वरूप रोगी के शरीर में कम्प (Tremors), अनामयता (Rigidity) एवं पेशीक्रिया हानि आदि लक्षण उत्तर्ण हो जाते हैं।

सामान्य लक्षण¹

1. शरीर में कम्पन (Generalised Tremors) अथवा
2. केवल शिर में कम्पन होना (Tremors of head)

चिकित्सा सिद्धान्त

1. वातशामक चिकित्सा व्यवस्था

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन प्रातः : सायं
2. सिंहनाद गुण्युत्तम अभिन्नुण्डी वटी प्रातः : 500 मि.ग्रा.
3. एण्ड पाक मधु से 1x2 मात्रा : $\frac{15}{1x2}$ ग्राम
4. भोजनोत्तर दुध से 1x2 मात्रा : $\frac{20}{1x2}$ मि.ली.
5. अध्यांगार्थ सरिवाधासव समझा जल से 1x2 मात्रा : प्रसारिणी तैल
6. पथ्य सेवन अधिनुण्डी वटी जल से 1x2 मात्रा : दशमुल कवाथ
7. रस्त्रि में बलारिष्ट समझा जल से 1x2 मात्रा : $\frac{20}{1x2}$ मि.ली.

40. ज्ञानेन्द्रियगत बात

सामान्य लक्षण²

इरियों के स्वाभाविक कर्मों का नाश, ऐसे-कर्ण से सुनाई नहीं देना, जिहा से रस ज्ञान नहीं होना, त्वचा में स्पर्श को अनुभूति का अभाव, नेत्र

1. रक्तमात्रिक घनन: चुर्चालूपूर्णरूप: सिराः!
रूपः स्वेदनः कृष्णा सोऽसायः स्यात्स्तिरप्रहः॥ (अ.ह.नि. 15/37)

2. श्रोतादिव्यक्तिरूपं कृष्ण दुष्टसमोरणः। (च.चि. 28/29)

1. सर्वाङ्गकम्प: शिरो वायुवैषुषंकरकः। (मा.नि. वातव्याधि निदान)

••• ते छी की•••

से दिखाई नहीं देना अथवा कम दिखाई देना एवं नासा से गांध ज्ञान का अभाव।

2. इनिद्रियों के कमों का विकृत होना।

चिकित्सा सिद्धान्त¹

1. चाताराशक चिकित्सा
2. स्नेह अध्यज्ञ
3. अवगाहन
4. मर्दन
5. स्नोह लेपन

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन
2. वात नाशक आहार एवं निहार
3. स्थानीय अथवा एवं स्वेदन

प्रति

4. सिंहाद गुग्गु़ा : साथ : साथ
- अग्नितुण्डी वटी : $\frac{250}{1\times 2}$ मि.ग्रा. मात्रा से
- रसीन शीरणपक : $\frac{20}{1\times 2}$ ग्राम मात्रा
6. भोजनोत्तर गासा सप्तक क्वाथ : $\frac{20}{1\times 2}$ मि.ली. मात्रा
7. पत्रि में हरीतकी चूर्ण : $\frac{3}{1}$ ग्राम गर्न जल से

••• लै छी लै •••

(CONSTIATION)

परिचय

वात दोष की विग्रहता के कारण उत्पन्न विषमान से आहार का सम्यक प्रकार से उपचार नहीं हो पाता है जिसके फलस्वरूप आमाशय में आम रस अथवा अपक्व अन्न रस की उत्पत्ति होती है। यह अपक्व अन्न रस आमाशय अथवा पक्वाशय में सीचत होते हुते हैं तथा उनका सम्यक रूप से कोष्ठ से बाहर निर्गमन नहीं होता है।

^{1.} श्रोतादिव्यानि लूटे कायों बातहर: क्रमः। सेहाम्यद्वावाहारत भद्रनलग्नानि च॥ (माप्र. मध्यम खण्ड 24/254)

जिसके फलस्वरूप आनाह रोग की उत्पत्ति होती है। आनाह रोग में मुख्य रूप से अन्नवह स्रोतस तथा जुरीषवह स्रोतस की विकृति भी करते हैं, जैसे-स्वस्वह स्रोतस, मेदोवह स्रोतस इत्यादि।

आनाह की प्रयः साम्यता स्थापित होती है। आचार्य चरक ने चिकित्सा स्थान अथवा आनाह रोग में मुख्यतः उद्दर प्रदेश में स्तब्धता मिलती है तथा उदावर्त रोग से 28 में केवल आम दोष के कारण उत्पन्न आनाह का ही वर्णन किया है। उदावर्त तथा आनाह दोनों ही समान कारणों से उत्पन्न होते हैं, केवल लक्षणों में विभिन्नता पाई जाती है। आनाह रोग में हृदय प्रदेश में स्तम्भ शिर में बेदना, उदयार का रुक जाना आदि लक्षण भी मिलते हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार आनाह रोग की तुलना Constitution नामक रोग से की जा सकती है।

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चरक साहिता चिकित्सा स्थान-अध्याय 26
2. सुश्रृत साहिता निदान-अध्याय 01
3. सुश्रृत साहिता उत्तर तन्त्र-अध्याय 56
4. अस्ट्राम संग्रह सूत्रस्थान-अध्याय 04
5. भाव प्रकाश चिकित्सा-अध्याय 31
6. भैषज्य रत्नावली-अध्याय 31

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

आनाह = आ + नह + घञ प्रत्यय
= आनाह
= बन्धन, पलावरोध

= आड + णह बन्धने धातु + घञ
अर्थात् आड उपसर्ग पूर्वक णह बन्धने धातु से आनाह शब्द की सिद्ध होती है।

इस प्रकार—
“आ समन्नात नहते बध्यते अवरुद्धते वा मलस्य वायोरेच मार्गो यस्मिन गोरो स आनाहः”

अर्थात् जिस रोग में उर्ध्व एवं अधः उभय मार्ग से बायु की प्रवृत्ति नहीं हो, उद्दर में गुड-गुड शब्द भी न हो, उसे आनाह कहते हैं। इस अवस्था में पूर्णतया अवरोध रहता है तथा मल का निस्परण पूर्णितः अवरुद्ध हो जाता है। बायु का निर्गमन भी अपन बायु अथवा उदावर लिये भी रूप में नहीं होता है।

परिभाषा

जिस अवस्था में आम अथवा पुरीष, आमाशय अथवा पक्वाशय में क्रमशः सञ्ज्ञत होता हुए एवं वात की विग्रहता से और भी अवरोध होकर अपने यथोचित मार्ग से न निकले, उस विकार को आनाह कहते हैं।

निदान

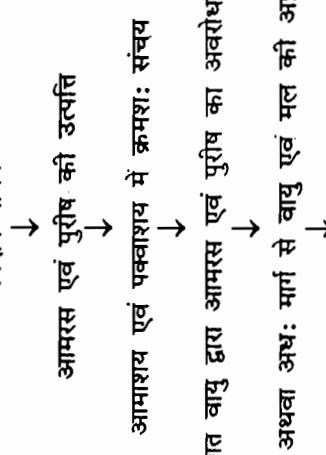
- उदावर्त रोग के सभी निदान आनाह रोग के भी निदान हैं।
- कट्ट, तिक्त, कषाय रस प्रधान आहार का अत्यधिक सेवन।
- रुक्ष आहार का अति ग्रहण।
- मल, मूत्र आदि वेगों का अवरोध।

सम्प्राप्ति

उपरोक्त मिथ्याहार विहार के निरन्तर सेवन करते के कारण उत्पन्न विषमाणिन से आमरस की अधिक उत्पत्ति होती है एवं पुरीष का भी पक्वाशय में धीरे-धीरे संचय होता रहता है जिसके फलस्वरूप उर्ध्व एवं अधः दोनों ही मार्गों से उद्दार या अपान वायु की प्रवृत्ति नहीं होती है तथा मलावरोध भी हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप आनाह रोग की उत्पत्ति हो जाती है।

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन



सम्प्राप्ति घटक

दोष :	वात (अपान वायु) प्रधान
दृष्ट्य :	अमच्च अन्, रस, पुरीष
अधिघान :	आमाशय, पक्वाशय
स्रोतस :	अनन्वर्ह, पुरीषवर्ह
खोलो दुष्टि प्रकार :	संग
अग्नि स्थिति :	मन्दाग्नि, विषमाणि
व्याधि स्वसाव :	मुड़ - नवीन, दारुण - जीर्ण
साध्यासाध्यता :	सुखसाध्य/कृच्छ्रसाध्य

- आम राकृति निर्वित कर्मण, भूमो विकर्द्ध विषुणानिलन।
- प्रवर्त्तन न यथास्वेमेन विकारानाह पुरुहर्तिन। (मु. 56/20)

भेद

विकृति भेद से आनाह दो प्रकार का होता है—

- आमाशयोत्थ आमज आनाह
- पक्वाशयोत्थ पुरीषज आनाह

सामान्य लक्षण¹

- हृदय में जकड़ाहट (Stiffness in the chest region)
- शिर में वेदना (Headache)
- शिर में भारीपन (Headiness in the Head)
- उद्दार सञ्च (No Belching)
- पीनस (Rhinitis)
- उदर की स्वाक्षरता (Abnormal feeling in abdomen)
- बेवैनी (Feeling of uneasiness)

आनाह के भेदानुसार लक्षण

- आमज आनाह के लक्षण² (Pyloric Obstruction)
 - आमज आनाह के निम्नलिखित लक्षण शास्त्रों में वर्णित हैं—
 - तुष्णा (Thirst)
 - प्रतिश्वय (Rhinitis)
 - शिर में दाह (Burning Sensation in Head)
 - आमाशय में शूल (Pain Abdomen)
 - शरीर में भारीपन (Headiness in the body)
 - हृदय स्पर्श (Stiffness in Cardiac region)
 - उद्दार विधात (No Belching)
- पुरीषज आनाह के लक्षण³ (Intestinal Obstruction)
 - पुरीषज आनाह के लक्षण निम्नलिखित हैं—
 - कटि एवं पृष्ठ में स्तन्धता (Stiffness in waist region and back)
 - पुरीष एवं मूत्र का अवरोध (Retention of stool and urine)
 - कटि एवं पृष्ठ में शूल (Pain in waist region and urine)
 - मूर्छा (Fainting)
 - पुरीष वर्मन (Vomiting mixed with faeces)

- हस्तमध्यमध्यमयोरवायापुरामङ्गलं समीनसेन॥ (च.वि. 26/26)
- तस्मिन् भवन्त्यप् समुद्रवेत् एषां प्रतिरक्षय शिरोविदाहः।
आमाशयं शूलमध्ये गृहत्वं हल्लास उद्दार विधातन्त्रवा। (मु. 56/21)
- स्तन्धः कटिपृष्ठपुरीषने शूलांश्च पृष्ठं स शकुद्भेद्य॥

1. आम राकृति निर्वित कर्मण, भूमो विकर्द्ध विषुणानिलन।

2. प्रवर्त्तन न यथास्वेमेन विकारानाह पुरुहर्तिन। (मु. 56/20)

3. हस्तमध्यमध्यमयोरवायापुरामङ्गलं समीनसेन॥ (सु. 3. 56/22)

वात व्याधि

6. रसायन (Dyspnoea / Breathlessness)

7. अलसक (Gastroenteritis)

सापेक्ष निदान

आनाह रोग का निम्नलिखित व्याख्याओं के साथ सापेक्ष निदान किया जाना चाहिए-

1. उदावर्त

आयुर्वेद के सौहित्र ग्रन्थों में प्रायः उदावर्त एवं आनाह का एक साथ वर्णन मिलता है। नैदानिक एवं लाशगिक दृष्टि से भी उदावर्त एवं आनाह में पर्याप्त समानता मिलती है, परन्तु सौहित्र ग्रन्थों में इन व्याख्याओं का पृथक् स्वरूप मिलता है। उदावर्त में पुख्तः वायु की गति उर्ध्व होती है तथा आनाह में उदर स्वरूप हो जाता है। आनाह में मल सञ्चय भी होता है जबकि उदावर्त में वायु का अवरोध हो जाता है।

2. आस्थान

आस्थान एक विशेष अवस्था होती है जिसमें आटोप तथा उदर का पूलना मुख्य लक्षण होता है। इसमें मल सञ्चय की प्रवृत्ति आवश्यक नहीं है।

3. उर्ध्ववात

सौहित्र ग्रन्थों में उर्ध्ववात का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता है। उर्ध्ववात में वात दोष विशेष रूप से प्रभावी होता है। उर्ध्ववात में उद्गार बाहुल्यता मिलती है अर्थात् आमाशय अथवा पक्वाशय में किसी प्रकार का अवरोध होने से वात का विसर्जन उसके स्वामाविक मार्ग से नहीं हो पाता है तब वही वायु प्रतिलोम होकर मुख द्वारा उद्गार के रूप में बार-बार निकलती है।

साथ्यासाथ्यता

सम्यक् रूप से विकित्सा करने पर आनाह रोग प्रायः साध्य होता है। परन्तु यदि आन्व में शत्य जन्य अवरोध हो तब शत्य क्रिया की भी आवश्यकता पड़ सकती है। अन्यथा आनाह रोग साध्य है।

चिकित्सा तिसङ्कान्ता¹

1. लंघन

2. पाचन औषधि प्रयोग

3. वर्मन

4. उदावर्त नाशक चिकित्सा²

अजुलोपन, अनुवासन बैतित, निरह एवं बैतित, गुदवर्ति का विधान किया जाता है। इनका प्रयोग आनाह में भी लाभदायक होता है।

चिकित्सा

आनाह रोग में निम्नलिखित चिकित्सा करनी चाहिए

1. आनाहप्रभव जयेत् प्रच्छर्नैत्वैर्द्वन्द्वपाचनेरच॥ (च.च. 26/26)

2. गुल्मिकार्यकार्यत्वद्वत्तहोक्तिव्याप्।
आनाहेत् च कुमीत विरोधसाधि धोयते॥ (भा.प्र. मध्यम खण्ड ३।४५)

L. निदान परिवर्जन
आनाह के जो भी निदान है उनका त्याग करना चाहिए। अतः निदान परिवर्जन से आनाह रोग स्वतः ठीक हो जाता है।

II. शोधन चिकित्सा

सर्वप्रथम स्नेहन, स्वेदन करना चाहिए, तत्पश्चात् सम्यक् स्नेहन का लक्षण उत्पन्न होने पर मदनकलीपिपली, वचा, सेम्बू लवण तथा मधुमध्याद्वा फाण्ट तिलाकर सम्यक् रूप से वर्मन करना चाहिए। वर्मन मुख्य रूप से आमज्ञ आनाह में लाभदायक होता है।

1. वर्मन

पुरोक्त आनाह में विशेषन कर्म करना चाहिए। फलमध्या एण्ड स्नेह आदि का प्रयोग लाभदायक है।

3. वर्सित चिकित्सा

आनाह रोग में वातानुलोपन हेतु आवश्यकतानुसार अनुवासन अथवा निरह वर्सि

का प्रयोग करना चाहिए।

III. शर्म चिकित्सा

1. रस/धूस/पिण्डी

मात्रा : 125 मि.ग्रा.

अनुवासन: प्रथक्कोषा जल

(i) नाराच रस : पारद, गन्धक, दन्ती बीज, सुखी

(ii) इच्छामेदी रस : जयपत, पारद, गन्धक, निरुत

(iii) उदय मार्णंड रस : हिंगुल, जयपाल, वत्सनाम, दन्ती

2. वर्ती

मात्रा : 250-500 मि.ग्रा.

अनुपासन: जल/मधु

(i) चित्रकादि वर्ती : चित्रक

(ii) व्योगादि वर्ती : शुण्ठी, पिपली, मरिच

(iii) वैद्यनाम वर्ती : दन्ती, त्रिकटु, रस सिद्ध

3. चूर्ण

मात्रा : 2-5 ग्राम

अनुपासन: कोणा जल

(i) त्रिकटु चूर्ण : शुण्ठी, पिपली, मरिच

(ii) पञ्चकोत चूर्ण : पिपली, चक्क, चित्रक, शुण्ठी

(iii) हिंगादि चूर्ण : हिंग, चक्क, कुट्ट, चवक्षार, वायविडंग

- (iv) बचादि चूर्ण : बचा, हरीतकी, चित्रक, यवक्षर
 (v) निवृत्तादि चूर्ण : निवृत्त, सुही

4. घृत-तेल

मात्रा : 10-20 मि.लि.

अनुपान: उष्णोदक

- (i) स्थिराद्य घृत : शालणी, पृश्टिपणी, गोभुर, वृहती
 (ii) शुष्क-मूलाद्य घृत : मूली, आदर्क, पुरनवा, लघु पञ्चमूल
 (iii) दन्ती घृत : दन्ती, गोभुत

(iv) एण्ड स्नेह : एण्ड

5. एकल औषधियाँ

- शुष्ठी, पिपली, जीरक, अजवायन, हिंडु, एण्ड, त्रिवृत, अमलतास,
 चित्रक, मरिच, धान्यक, मदतफल, दन्ती, पुरनवा एवं मेथी इत्यादि।

IV. योगासन

आनाह रोग में निम्न योगासन लाभदायक होते हैं—

- (i) सर्वाङ्गासन (ii) पवन मुक्तासन (iii) वज्रासन
 (iv) योगपुदा (v) शावासन

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन 2. विरेचन, बस्ति आदि शोधन चिकित्सा
 3. भोजनोत्तर

नाराचरस	: 125 मि.ग्र.
पञ्चकोल चूर्ण	: 2 ग्राम
कोणा जल से	1x2 मात्रा
चित्रकादि वटी	: 500 मि.ग्रा.
मधु से	1x2 मात्रा

पञ्चापथ्य

- पञ्च' आहार

उदावर्त के समान पथ्य पालन, ग्राम्य, स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, बर्सित, फलवर्ती, आनुप, पशु पश्यकों का मांससस, एण्ड योगासन, व्यायाम इत्यादि।

तैल, मदिरा, मूली, अमलतास, निशोथ, तिल, थूहर आदर्क, विजौरा नींबू, यवक्षर, हरीतकी, लवंग, दाल, गोमूत्र इत्यादि।

उदावर्ते हिते सर्व पाचन लंबन तथा।

अनाहंडपि यथायोग्य संख्येमतिमानः॥ (५३.३१/६१)

अपथ्य'

विहार

शमीधान्य, माष, मटर, कोदो, शालूक, चमन, मल, मूत्रादि, वेगाकरोध जामुन, ककड़ी, पिण्यक, आलू, बेसन,

तिरुद्ध पदार्थ, कशय रस दव्य, गुर

पाकी पदार्थ अपथ्य होते हैं।

5. रात्रि में

एण्ड स्नेह

दुग्ध से

त्रिकटुकादि वर्ति

शूत लिप्प कर गुदा में प्रवेश

कराना चाहिए।

7. बज्रासन, शावासन, पवन मुक्तासन, सर्वाङ्गासन

8. पथ्य सेवन

••• नैक्षुको•••

42. उर्ध्ववात् (BELCHING)

परिचय

उर्ध्ववात् रोग आनाह और आध्यात्र से मिलती जुलती अवस्था है। सहिता ग्रन्थों में उर्ध्ववात का अत्यन्त सक्षिप्त वर्णन मिलता है। उर्ध्ववात में कुछ गुलम रोग के तथा कुछ लक्षण उदावर्त रोग के मिलते हैं। उर्ध्ववात रोग में प्रायः उद्गार की बहुलता अर्थात् बार-बार उद्गार का देख आता है। आचार्य चाक ने नानात्मज वात व्याधियों में भी उर्ध्ववात का उल्लेख किया है। उर्ध्ववात में मुख रूप से वात दोष की विकृति होती है इसलिए अधिकांश आचार्यों ने उर्ध्ववात का वर्णन वात व्याधि चिकित्सा अध्याय में किया है।

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चाक सहिता चिकित्सा स्थान-अध्याय 28
 2. माधव निदान-अध्याय 28
 3. योग रत्नाकर-उदावर्त निदान
 4. भाव प्रकाश मध्यम खण्ड-अध्याय 24

1. अपथ्यनि प्रतिस्थानि यन्त्रवर्तिनि पृष्ठ।

2. माधव निदान-अध्याय 28

3. योग रत्नाकर-उदावर्त निदान

4. भाव प्रकाश मध्यम खण्ड-अध्याय 24

अनाहंडपि यथायोग्य संख्येमतिमानः॥ (५३.३१/६२)

व्युत्पत्ति/निरुक्ति

- उर्ध्ववात = उर्ध्वं + वात
- = उर्ध्ववात
 - = (विशेष) उर्द + हा + ड
 - = पुष्टोदरादित्वेन, उर्द आदेश
 - = कपर, उन्त, उठाया हुआ
 - = शरीर के उर्ध्वं भाग में रहने वाली वायु
 - = उर्ध्ववात

आचार्य चक्रपाणि ने उर्ध्ववात को परिभाषित करते हुए कहा है कि "उर्ध्वकाये वात उर्ध्ववातः"

परिभाषा¹

जब श्लेष्म स्थान (आमाशय) अथवा वात स्थान (पव्वाशय) में किसी प्रकार का अवरोध हो जाता है तब वायु का निष्क्रमण उसके स्वाभाविक राग से नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप यह वायु प्रतिलोप होकर मुख भाग द्वारा बार-बार उद्गार के रूप में निकलती है। यही उर्ध्ववात की अवस्था है। आचार्य भाव मिश्र ने भी स्पष्ट किया है कि स्वकरणों से प्रकृष्टिपत स्थान वायु, इसे उर्ध्ववात कहते हैं।

निदान

आयुर्वेदीय स्थान (आमाशय) अथवा वात स्थान (पव्वाशय) में किसी प्रकार है। सामान्यतः निम्नलिखित निदान उर्ध्ववात के निदान होते हैं—

1. आमदोष
2. अधारणीय बैगों का धरण
3. आहार का अयोग, अतियोग अथवा मिथ्यायोग
4. अध्यरान
5. अति लघ्न
6. गुरु एवं विद्युती आहार सेवन
7. गति जागरण
8. मानसिक कारण, जैसे—काम, क्रोध, सोध, मोह, ईर्ष्या इत्यादि।

1. अथः प्रतिलोभायुः रसतेष्वाणा भास्तव्य च।
- करोत्प्रदार बहुत्यक्षर्वातः स उच्चतो॥ (मानि. 22/75)

सम्प्राप्ति

उपरोक्त वर्णित विभिन्न प्रकार के में आम दोष (आमरस) की उत्पत्ति होने आहार जन्य, विहार जन्य एवं मानसिक लक्षणी है और अन्ततः उर्ध्ववात की उत्पत्ति निदानों का सेवन करने से वात दोष हो जाती है। प्रकृष्टिपत होकर जाठगानमांद्र घटन करता सम्प्राप्ति चक्र है। जाठगानमांद्र के फलस्वरूप आमाशय

विभिन्न प्रकार के आहारजन्य, विहारजन्य एवं मानसिक निदान का सेवन

↓
अनिमांद्र
↓
आमरस की उत्पत्ति

आमाशयगत वायु एवं पव्वाशय गत वायु की वृद्धि

पव्वाशय में पुरीष का अत्यधिक शुक्र हो जाना

वायु की अनुलोप गति का अवरोध

वायु की प्रतिलोप गति
↓
प्राण वायु की दुष्टि

उर्ध्ववात रोग

सम्प्राप्ति घटक

दोष :	वात, कफ
दूष :	रसधृतु, पुरोष
अधिष्ठान :	आमाशय, पव्वाशय
स्रोतस :	अनवह, पुरोषवह
अनि स्थिति :	अर्द्धनामांद्र
व्याधि स्वभाव :	मुद्द
साध्यासाध्यता :	कृच्छ्रसाध्य/साध्य

- उर्ध्वचात के सम्पूर्ण चिकित्सा व्यवस्था मुख्यतः आनाह में वर्गित चिकित्सा के अनुसार ही चूर्ण, बटी, रस आदि का प्रयोग करना चाहिए। कुछ अन्य उर्ध्वचात हर औषधियाँ निम्नलिखित हैं—**
- (i) विश्वादि चूर्ण (शुण्ठी, विधार, निशोथ, हरीतकी, हिंडू, चित्रक)
 - (ii) अविष्टिकर चूर्ण (विवृत, लवणग)
 - (iii) दशमूलादि घृत (दशमूल द्रव्य, गोधृत)
 - (iv) एरण्ड तैल (एरण्ड)
 - (v) अमचारिष्ट (अम्बा)

बोग चिकित्सा

उर्ध्वचात की सम्पूर्ण चिकित्सा व्यवस्था मुख्यतः आनाह में वर्गित चिकित्सा के अनुसार ही चूर्ण, बटी, रस आदि का प्रयोग करना चाहिए। कुछ अन्य उर्ध्वचात हर औषधियाँ निम्नलिखित हैं—

1. उद्गार बहुत्व (Eructations / Belching)
2. उदर में भारीपन (Heaviness in the Abdomen)
3. आनाह (Constipation)
4. आम्बान (Ptyalismus)
5. आमच शूल (Pain Abdomen)
6. हृदय प्रदेश में शूल (Pain in cardiac region)
7. मलावरोध (Constipation)
8. अजीर्ण (Indigestion)

उर्ध्वचात के भेदानुसार लक्षण

1. आमाशयोद्य उर्ध्वचात के लक्षण
आमाशयोद्य उर्ध्वचात वस्तुतः आमाशयस्थ कफ द्वाय वायु का मार्गावरोध होने के कारण उत्पन्न होता है। इसमें निम्न लक्षण मिलते हैं—
 - (i) अति उर्द्धर (Excessive Belching)
 - (ii) अजीर्ण (Indigestion)
 - (iii) उदर में भारीपन (Heaviness in Abdomen)
 - (iv) उदर में गुड़-गुड़ शब्द होना।
2. पक्वाशयोद्य उर्ध्वचात के लक्षण
पक्वाशयोद्य उर्ध्वचात में मुख्य रूप से अपान वायु को विकृति होती है जिसके फलस्वरूप अपान वायु प्रतिलोम हो जाती है इसमें पुरीष शुष्कता, मलावरोध, आनाह, आध्मान यूक्त इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

सापेक्ष निदान

उर्ध्व वात का सापेक्ष निदान आनाह, आध्मान, प्रस्त्राध्मान एवं उदावर्त से किया जाता है। इनका वर्णन यूर्व में आनाह प्रकरण में किया जा चुका है। अतः वातानुलोमन

उर्ध्वचात करने से उर्ध्वचात प्रायः गम्य होता है।

चिकित्सा सिद्धान्त

1. दीपन चिकित्सा
2. शरन चिकित्सा
3. वातानुलोमन चिकित्सा

वात व्याधि निदान

- (i) पवन मुक्तासन
- (ii) सर्वाङ्गासन
- (iii) शब्दासन
- (iv) वज्रासन

उपरोक्त आसनों का नियमित प्रयोग उर्ध्वचात में लाभदायक होता है। वज्रासन भोजनेतर करना चाहिए।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन
2. अनुलोमन चिकित्सा

प्रातः:	साय
अविष्टिकर चूर्ण	: 3 ग्राम
पञ्चकोल चूर्ण	: 2 ग्राम
उष्ण जल से	$\frac{1 \times 2}{1 \times 2}$ मात्रा
त्रिवृत चूर्ण	: 3 ग्राम
घृत से	$\frac{1 \times 2}{1 \times 2}$ मात्रा
भोजनोत्तर	
अभ्यारिष्ट	: 20 मि.ली.
समभाग जल से	$\frac{1 \times 2}{1 \times 2}$ मात्रा
रात्रि में	
हरीतकी चूर्ण	: 3 ग्राम
कोण्ठ जल से	1 मात्रा
वज्रासन, पवनमुक्तासन, सर्वाङ्गासन शब्दासन का नियमित अभ्यास	
पथ्य सेवन	
6. गंभीर उर्ध्वचात में भुख्यतः वात दोष को मुख्य विकृति होती है। अतः वातानुलोमन चिकित्सा करने से उर्ध्वचात प्रायः गम्य होता है।
7. वज्रासन, पवनमुक्तासन, सर्वाङ्गासन शब्दासन का नियमित अभ्यास
8. पथ्य सेवन

सामान्य लक्षण¹

आक्षेपक रोग के समान्य लक्षण निम्न प्रकार वर्णित हैं—

1. शरीर में आक्षेप (Convulsions in the body)
2. हृत पाद में शोष होना (Emaciation of limbs)
3. सिरा, स्नायु, कण्डय का शोषण (Deformity / Emaciation in veins, tendons and muscles)
4. अवश्वरण विकृति .(Defective Extension of Muscles)
5. आकृच्छन (Spasm of the muscles)

भेद

आचार्य पावामिश्र के अनुसार आक्षेपक निम्न 4 प्रकार का होता है—

1. पित्रयुक्त वातज्व आक्षेपक
 2. कफयुक्त वातज्व आक्षेपक
 3. वातज्व आक्षेपक
 4. अभियातज्व आक्षेपक
- उपरोक्त भेदों का कोई विशेष वर्णन आचार्य भावामिश्र ने नहीं किया है तोकिन यह बताया है कि कफावृत वात या केवल वात, हाथ, पैर, शिर, पृष्ठ तथा श्रोणि प्रदेश इत्यानि इन सबको स्तव्य (Stiff) कर देता है तथा शरीर दण्ड के समान कड़ा हो जाता है।

साध्यासाध्यता

केवल वात से उत्पन्न आक्षेपक तथा आगानुज आक्षेपक असाध्य होता है जबकि वातपितज या वातकफज आक्षेपक साध्य होता है।

चिकित्सा सिद्धान्त

1. सर्वज्ञ अध्यज्ञ
2. स्वेदन
3. शिरो अध्यज्ञ
4. नस्य कर्म
5. उपानाह
6. धूपन कर्म
7. बल्त तथा बृहण आहार विहार का प्रयोग।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदन परिवर्जन
2. स्थानीय अस्थंग, नड़ी स्वेदन या उपनाह स्वेद
3. अनुवासन बरित : एरण टोह से
4. माहेश्वर धूप से धूपन कर्म

¹ यहाँ उपरोक्त भेदों सबूत: कुटुंबों व्यंति युक्तुः।

तत्त्वज्ञानिकालय व्याख्यातकोषक: स्पृशः॥ (अ.इ.नि. 15/16)

पित्रवत्सलकान्तरं व्युत्पन्नपुरुष व केवलः।
कृद्यदेवेषक वात्य व्युत्पन्नप्रकारात्मक॥ (पात्र प्रथम छण्ड 24/164)

शावासन, सर्वज्ञासन, योगास्नास

5. शावासन, सर्वज्ञासन, योगास्नास
प्रात : सर्व
प्रात : 250 मि.ग्र.
बाही बटी : 250 मि.ग्र.
अपत्तकारिकटी : 250 मि.ग्र.
मधु से 1x2 मात्रा
6. बुहत वात चिनामणि रस : 125 मि.ग्र.
चिनामणि चतुर्घुच रस : 125 मि.ग्र.
मूगशृंग भस्म : 250 मि.ग्र.
मधु से 1x2 मात्रा
7. बुहत वात चिनामणि रस : 125 मि.ग्र.
चिनामणि चतुर्घुच रस : 125 मि.ग्र.
8. भोजनोत्तर मास्ति-कवाय : 20 मि.ली.
मास्ति-कवाय : 20 मि.ली.
1x2 मात्रा
9. गत्रि में हरितकी चूर्ण : 3 अस
गर्म जल से 1 मात्रा
10. पथ्य सेवन

प्रथ्यापथ्य

1. पथ्य आहार मधुर वातावरण, सम्यक् दिनचर्चा,
2. अपथ्य गुण, मधुर, आर्द्धक, क्षीर, घृत, मांसस, यव, पुनर्वा, दाशा, अनार, मौसमी आदि बृहण एवं बल्त आहार का प्रयोग।
3. आहार आहार विहार का पालन करना।
4. आहार कर्त्ता, कषाय रस प्रधान आहार, वेग विशाल, दिवाशयन चिंता, उद्देश्य विहार
5. आहार कर्त्ता, कषाय रस प्रधान आहार, वेग विशाल, दिवाशयन चिंता, उद्देश्य विहार
6. आहार कर्त्ता, कषाय रस प्रधान आहार, वेग विशाल, दिवाशयन चिंता, उद्देश्य विहार
7. आहार कर्त्ता, कषाय रस प्रधान आहार, वेग विशाल, दिवाशयन चिंता, उद्देश्य विहार
8. आहार कर्त्ता, कषाय रस प्रधान आहार, वेग विशाल, दिवाशयन चिंता, उद्देश्य विहार
9. आहार कर्त्ता, कषाय रस प्रधान आहार, वेग विशाल, दिवाशयन चिंता, उद्देश्य विहार
10. आहार कर्त्ता, कषाय रस प्रधान आहार, वेग विशाल, दिवाशयन चिंता, उद्देश्य विहार

••• लौहार्जु लौहो•••

44. अपतन्त्रक रोग (HYSTERIA)

परिचय

अपतन्त्रक, वायु से उत्पन्न होने वाला एक मानसिक रोग है, और इसका प्रभाव गों के मास्तिष्क पर ही सर्वाधिक होता है। सर्वप्रथम गों को नामि प्रदेश से वायु उपर की ओर उत्ती हुई प्रतीत होती है तथा वायु का तीव्र बोगा हृदय, शिर एवं शांख प्रदेश में गमन करता हुआ गों अनुभव करता है। जब वायु अत्यधिक बढ़ी हुई अवस्था में रहती है तब गों को विशेष प्रकार के बोगा (दौरा) आते हैं और शरीर धनुष के समान ढेहा हो जाता है और गों मूर्छिल तथा जान शून्य हो जाता है।

यदि वायु का प्रकोप अत्यधिक नहीं हो तो उस अवस्था में शरीर के अंगों में स्थान नहीं होता है तथा पूर्ण मूर्छा की स्थिति भी नहीं उत्पन्न होती है। परन्तु इन्द्रियों अपने स्वाभाविक कार्य करते में असमर्थ हो जाती है। उस अवस्था को ही अपतन्त्रक रोग कहते हैं। यह गों स्त्री एवं पुरुष दोनों में सामन्यतः पाया जाता है। परन्तु प्रायः स्त्रियों में अधिक पाया जाता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार इसके लक्षण

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक सौहिता सिद्धिस्थान-अध्याय 09
2. सुशूत सौहिता निदान स्थान-अध्याय 01
3. अट्टांग हृदय निदान स्थान-अध्याय 15
4. माधव निदान-अध्याय 22
5. भावप्रकाश चिकित्सा-अध्याय 24

परिभाषा

अभोगा की ओर जानेवाली वायु प्रतिलोम होकर हृदयस्थिति नाड़ियों में प्रवाहित होकर सर्व शरीर को आक्षय युक्त कर देती है तथा गों कठिनाई से रसास लेता है। आँखों का निरचल होना तथा बंद होना एवं गों कूबूतर के समान कूजन करता है एवं बोहोश हो जाता है। इस अवस्था को 'अपतन्त्रक' रोग कहते हैं, कुछ विद्वान इसे 'अपतन्त्रक' भी कहते हैं।

1. अम: प्रतिलोम व्युर्वन्त्र्य दार्शनः!

नदी प्रवाय हृदय गिर: गों च पौड्यन्॥

आविष्टेति गों व्युर्वल्लास्य चम्पेत्॥

कृच्छ्रुच्छ्रिति स्वाभस्तरमीति इत्यत्तमः॥ (आइ. १५/१७-१४)

निदान

अपतन्त्रक के सभी निदान चात व्याधि के निदान के समान ही रहते हैं। आतः निदान चात व्याधि प्रकरण में देखें।

सम्प्राप्ति

विभिन्न प्रकार के चात प्रकोपक आहार विहार का अत्यधिक सेवन करने से प्रकुपित हुआ वायु अपने मुख्य स्थान (पक्वाशाय) से उपर उठकर शिर की ओर गमन करता है तो उपर की ओर हृदय, शिर एवं शांख को पीड़ित करता हुआ अंगों को धनुष के समान झुकाकर अपतन्त्रक रोग उत्पन्न करता है।

सम्प्राप्ति चक्र

चात प्रकोपक आहार एवं विहार का अति सेवन

चात दोष का प्रकोप

प्रकुपित वायु का प्रतिलोम होकर उर्ध्व यांग में
गमन करना

हृदय, शांख, शिर का पीड़िन अर्थात् दोष-दूष
सम्मुच्छ्वा होना

संज्ञावह लोतस की उष्टि

अपतन्त्रक रोग

सम्प्राप्ति घटक

दोष :	चात
दूष :	रस, कण्ठा, सिंय, नाड़ी
अधिष्ठान :	हृदय, शिर एवं शांख प्रदेश
लोतस :	रसवह, मनोवह (संज्ञावह)
लोतेदुष्टि प्रकार :	संग, विमार्गमन
ज्याध स्वभाव :	दारुण
साम्यासाध्यता :	कृच्छ्रसाध्य/याय

Signs and Symptoms

1. Absence of organic basis for symptoms.
 2. They serve both primary gain (Resolution of intrapsychic conflicts) and secondary gain (Obtaining sympathy and attention)
 3. In conversion disorder symptoms seldom occur when patient is alone. On the other hand, symptoms are exaggerated in presence of other

Management: Principles

2. Isolation of the patient.
 3. Placebo therapy.
 4. Drugs - Anxiolytics.
 5. Hypnosis
 5. Psychotherapy / Assura

Insurance Therapy
...ନେ ଖୁବି ...

45. अपतानिक (TETANUS)

प्रिया

अपनानक एक विशेष प्रकार की व्याधि है जिसमें गेंगी का शरीर आक्षय के कारण बाहर की तरफ धनुष के समान मुड़ जाता है, जें स्तन्य हो जाते हैं तथा शरीर में तीव्र देना होती है।

ମାତ୍ରା ପଦି

ग के लक्षण निम्न प्रकार वर्णित हैं-

1. दृष्टि शक्ति का नाश (Low vision)
 2. संज्ञानाश (Syncope / Fainting attacks)
 3. गले में कूजन (Wheezing sounds from throat)
 4. जब वायु का रवाच हृदय पर से हट जाता है तब रोगी में चेतना आ जाती है तथा वाह स्वस्थ अनुभव करने लगता है (Intermittent attacks of fits)

१. श्रीमद्भागवत संज्ञारच हस्ता कण्ठेन कृज्ञति।
परि पूले नः स्मास्यं याति योऽवृत्तिः॥

वार्षिक वार्षिक प्रदर्शन के तप्पतानकम्॥ (धा.प. भैरव खण्ड २४/१९८)

क्षमा विप्रियम् राजा च शोणितस्त्रवान्न यः।
शीर्षतिरित्वा त विमुखेऽन्तः॥ (पाप प्राप्त वाक् १५०५)

बात व्याधि

साध्यासाध्यता

निम्न प्रकार के अपतानक रोग असाध्य होते हैं—

- गर्भजात निमित्तज्ञ अपतानक
 - रक्तात्मस्वर जन्य अपतानक
 - अमिथात्म अपतानक

अप्तानके का चाकत्सामक अवस्था।

करनी चाहिए—

1. रोग के नेत्र ठढ़े न हुए हो (Absence of fixed eyes)
 2. जिस रोगी में कम्पन नहीं होता हो (Absence of Tremors)
 3. स्तन्य में नहीं हो (Absence of Stiffness of Penis)
 4. पसीना नहीं आता हो (Absence of Sweating)
 5. बहिराखाम रोग से ग्रस्त नहीं हो (Absence of opisthotonus)
 6. रोग की प्रारम्भिक अवस्था हो (Primary stage of the disease)

चिकित्सा स्मृद्धान्त²

- | | |
|---|---------------------------|
| १. स्नेहन-स्वेदन | २. तीक्ष्ण नस्य प्रयोग |
| ३. औषधि सिद्ध घृतपान | ४. सेक |
| ५. अस्थयं | ६. अवाहान |
| ७. नस्य प्रयोगः | ८. अनुवासन चर्चित प्रयोगे |
| ९. दस्य दिन तक वेग की शान्ति न होने वाले अपातानक रोगों की विवरण, विचरण, अनुवासन एवं आस्थापन चर्चित के द्वाय तथा वात व्याधि विवरण, | |

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निर्दन परिवर्जन
 2. सम्यक पञ्चकर्म चिकित्सा

अथापत्तकेतुस्त्रीस्त्रायमवप्नम्

१.
द्वितीय भाग

ਹਿ ਪੜ੍ਹੇ ਨਾ ਸਾਸਥਾ ਚਾਹੀ ਮੋਹ ਵਰੈ ਪੜ੍ਹੇ॥

वार्षिक वार्षिक प्रदर्शन के तप्पतानकम्॥ (धा.प. भैरव खण्ड २४/१९८)

क्षमा विप्रियाम् त शोणितस्त्रवान्त यः।

3. योगसन, प्रणालयाम
प्रत : दोपहर गत्रि
प्रत : 125 मि.ग्रा.
4. सिद्धमकारेवज रस : 125 मि.ग्रा.
बुहत वातांचंकुरा रस : 125 मि.ग्रा.
रसएवज रस : 125 मि.ग्रा.
समोर पनग रस : 125 मि.ग्रा.
मधु से 1x3 मात्रा
5. भोजनोत्तर : 2 ग्रम
हीरिकी चूर्ण : 2 ग्रम
अरबगन्धा चूर्ण : 2 ग्रम
वचा चूर्ण : 2 ग्रम
उच्छोटक से 1x2 मात्रा
6. छागलाय घृत : 20 मि.ली.
दगमूल घृत : 20 मि.ली.
दुध से 1x2 मात्रा
7. अरबगन्धारिट : 20 मि.ली.
समभाग जल से 1x2 मात्रा
8. फैय सेवन

पश्चापथ्य

आहार
विहार

बहुत, बुहुण, मधुर, शीतल, पदार्थ, द्राक्षा, शीतल एवं शान्त वातावरण, कम प्रकाश अद्विक, आमलकी, पुनर्नवा, हीरिकी, शिशु, वाले स्थान में शयन एवं मनोरम स्थान बशुआ, पपीता, दुध, घृत एवं कृशा इत्यादि।

अपथ्य

आहार
विहार

कटु, रुक्ष, तीक्षण, उष्ण, विद्युही, विष्वर्षी, उष्ण आवरण, धूप सेवन, प्रकाश युक्त पर्युक्ति आहार का अति सेवन, विषम स्थान में शयन एवं शोरगुल इत्यादि।

चावल, माष एवं मिठान।

1. संहितेवत्तात्त्वानुवानसंदेश दशाग्रन्थ-इत्यापुक्तमंते, वातव्याधि विकितिम् नावक्षत, रक्तकर्म च इत्यनिर्देशः (सु.वि. 5/18)

**Latest Developments
Tetanus****Definition**

Tetanus is caused by a powerful toxin (Tetanospasmin) produced by strains of Clostridium tetani when introduced into the tissues. The disease is characterized by muscular spasm and rigidity.

Pathogenesis

The toxins travel up local motor axons from the site of infection, causing local Tetanus and spread through blood stream to reach many axons and finally to the C.N.S. Cranial Nerves are usually affected because they are shorter, hence the common initial symptom is lock jaw.

Predisposing factors

Predisposing factors of Tetanus are mostly wounds which are contaminated with soil, metal, wood, calcium salts or bacteria. Spores of Clostridium tetani occur in faeces of herbivorous animals and men.

Signs and Symptoms

Prodromal symptoms of Tetanus are-

- (i) Malaise
- (ii) Fever
- (iii) Sweating
- (iv) Headache
- (v) Irritability

Main presenting symptoms are Trismus (Lock Jaw) and Dysphagia due to painful rigidity of masseters and muscles of deglutition. Pain and stiffness in the neck and back are also seen.

Management: Principles

The aim of treatment is to neutralize existing toxins before it gains access to the nervous system, reduce further production of toxins, central neuro muscular and autonomic manifestations and sustain the patient until effects of the toxins resolve.

1. Neutralization of Unbound toxins

Use hyperimmune human Antitetanus immunoglobulin 1000-3000 units IM/IV as a single dose.

2. Reduction of further toxin production

Use appropriate Antibiotics.

3. Control of rigidity and Tetanic Seizures

Tranquillizers, Hypnotics and Sedatives.

••• नै छै •••

46. દાખાપતીનક (ORTHOTONOS)

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जना
 2. पञ्चकर्म चिकित्सा

(URIDHONUS)	
प्रतकर्म	नस्य का रुक्षः स्नेहः स्वे
प्रत	: साधः
प्रललिपिन्दूर	: 125 मि.ग्रा.
त्रैलोक्य चित्तामणि रस	: 125 मि.ग्रा.
बहुत वातचित्तामणि रस	: 125 मि.ग्रा.
मधु से	1x2 मात्रा

सामान्य लेखण् । ३

दण्डापतान के लक्षण निम्नलिखित रूप में वर्णित हैं—

1. रुक्ष रोग की उत्पत्ति आम दोष एवं वात दोष के कारण होती है (Origin of Dandaka Roga due to Ama Dosha and Vata Dosha)
 2. सरीर दण्ड के समान कठोर एवं कड़ा हो जाता है (Hardening of the flexor and extensor muscles of the body)
 3. सरीर की सभी चेष्टाएं नष्ट हो जाती हैं (All the activities of body are lost)

三

4. हाथ, सर, शर्त, मुळ, आण प्रदूष म स्थन (Stiffness in muscles of hand, head, neck, root, organs and pollution)

DIEU

- आचार्य चरक ने दण्डापतानक रोग को दण्डक नाम दिया है तथा केवल बात आमजन्य या कफजन्य तथा बात से उत्पन्न माना है। वरसुतः दण्डापतानक एक स्थिर है जो कि अपतानक (Tetanus) की प्रवृद्ध अवस्था में मिलता है।

सार्वज्ञानिकता

आचार्य चारक एवं वार्षट ने दण्डपत्रानक को असाध्य माना है जबकि आचार्य सुश्रूत ने दण्डपत्रानक को कृच्छ साध्य माना है।

चाकत्ता सिद्धान्त

- | | | | |
|----|---------|----|--------------------------|
| 1. | अध्यांग | 2. | स्मृहन |
| 3. | स्वेदन | 4. | तीक्ष्ण नस्य / शिरोविरेच |
| 5. | संक | 6. | अवगाहन |
| 7. | शृतगान | 8. | अनुवासन बैत्ति प्रयोग |

ਪੰਜਾਬ

प्रकृष्टि वाय यदि शरीर को धनष के समान टेढ़ा कर दे तो उसे धनस्तम्भ कहते

۳۴۶

- | | |
|-------------------|--------------------|
| पञ्चकोल चूर्ण | : 2 ग्राम |
| सारान्था चूर्ण | : <u>2 ग्राम</u> |
| उच्च जल से | 1x2 मात्रा |
| द्वागताद्य घृत या | : 20 मि.ली. |
| दशमूल धूत | : <u>20 मि.ली.</u> |
| डुध से | 1x2 मात्रा |
| रात्रि में | |
| पञ्चसकार चूर्ण | : <u>3 ग्राम</u> |
| गर्भ जल से | 1 मात्रा |
| अभ्यंग | : महानारायण तैल |
| स्वेदन | : दशमूल कवाथ |
| पथ्य सेवन | |

47. धनुषताम् (TETANUS)

47. धनुषताम् (TETANUS)

१. आमबद्धायनः कुर्यात्संस्थापयाद् कफानितः।
अपाये इत्यत्तेऽहं शास्त्रत्वं शास्त्रत्वं प्रत्ययः॥ (प्रथमि १६/८३)

- प्राणिनाशः प्रस्त्रोद्दीपः स्त्रामनात् भृता! २.
प्रस्त्रवत्सर्वाप्याप्रस्त्रं प्रस्त्रकः सोऽनुज्ञानः॥ (च.च. २८/५) ३.
कपालिको मृषा वायुस्तरवेष यदि तिष्ठति।
स एषवत्सर्वाप्यति कुच्चो धण्डपत्तनकः॥ (मु.नि. १/५२)

१ का.चि.-

二

धनुस्तम्भ की इस अवस्था में वस्तुतः केवल संकोचक या केवल प्रसारक पेरियों में ही कड़पन होता है। वास्तव में यही धनुर्वत का वास्तविक स्वरूप है।

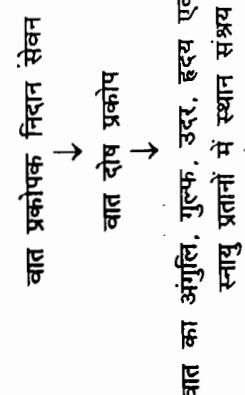
- भेद**
- 1. धनुस्तम्भ दो प्रकार से उत्पन्न होता है—
 - 1. आध्यात्मरायाम धनुस्तम्भ
 - 2. वाह्यायाम धनुस्तम्भ

आध्यात्मरायाम धनुस्तम्भ की सम्प्राप्ति¹

(Emprosthotonus)

बिभिन्न प्रकार के वात कारक आहार विहार के सेवन करने से प्रकृष्टित वोावान वायु जब अंगुलि, गुल्फ, उदर, हृदय तथा गले में सर्पिल लोकर बहाँ के स्नायु प्रतानों में आक्षेप उत्पन्न करता है तब अन्तरायाम धनुस्तम्भ के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

सम्प्राप्ति चक्र



सामान्य लक्षण²

1. नेत्रों का स्थिर हो जाना (Fixation of the eye balls)
2. हनु स्तब्धता (Lock jaw)
3. पार्श्व में टूटने के समान पीड़ा (Cracking type of pain in ribs)
4. रोगी कफ का वमन करता है (Vomiting with sputum expectoration)
5. रोगी भीतर की ओर (Internal side) अर्थात् उदर की ओर धनुष के समान धुक जाता है (Emprosthotonus)

वाह्यायाम धनुस्तम्भ की सम्प्राप्ति³

वाह्यायाम अर्थात् पृष्ठ प्राण की स्नायुओं (कण्डराओं एवं पेशियों) में स्थित वायु कुपित होकर शरीर को जब बाहर (पृष्ठ) की ओर दूका देती है तो उसे वाह्यायाम (Opisthotonus) कहते हैं।

सामान्य लक्षण

- (i) शरीर पृष्ठतः बाहर की ओर धुक जाता है (Extreme hyperextension of neck and spine to a state of rigidity that only heels and vertex touch the bed.)
- वाह्यायाम में वायु, उर एवं कटि का भजन हो जाने पर रोगी असाध्य हो जाता है।

साध्यसाध्यता¹

1. अन्तरायाम एवं वाह्यायाम में अर्द्ध के समान चिकित्सा करनी चाहिए। आयाम चिकित्सा में नस्य, शिरोऽच्यंग तथा श्रोत एवं नेत्र का तर्पण करना चाहिए।
1. अन्तरायाम एवं वाह्यायाम में अर्द्ध के समान चिकित्सा करनी चाहिए।
2. आयाम चिकित्सा में नस्य, शिरोऽच्यंग तथा श्रोत एवं नेत्र का तर्पण करना चाहिए।

चिकित्सा सिद्धान्त

1. अन्तरायाम एवं वाह्यायाम में अर्द्ध के समान चिकित्सा करनी चाहिए।
2. आयाम चिकित्सा में नस्य, शिरोऽच्यंग तथा श्रोत एवं नेत्र का तर्पण करना चाहिए।
1. रोगी के दाँत और मुख का रंग बदल गया हो (Discoloration of face and teeth)
2. शरीरांग ढीले पड़ गये हों (Decreased muscular tone)
3. चेतना शक्ति नष्ट हो गई हो (Loss of consciousness)
4. पसीना आता हो (Sweating),

इन लक्षणों से धुक धनुस्तम्भ का रोगी दस दिन से अधिक जीवित नहीं रहता है।

आदर्श चिकित्सा प्रत्र

1. निदान परिवर्जन
2. महानायाम तेल का पान एवं नस्य
3. हिमाशु तेल, विष्णु तेल अथवा शतधौत घृत से शिर का अध्यांग
4. दशमूलादि चवाथ से निरुह बरित
5. महानायाम तेल से अनुवासन बरित
6. सर्वशरीर पर प्रसाधिणी तेल या माष तेल अध्यांग
- प्रात : साय
7. वातकुलात्कर रस : 125 मि.ग्रा.
- स्वर्ण समीरपन्नग रस : 125 मि.ग्रा.
- रसराज रस : 125 मि.ग्रा.
- मल्लसिन्दूर मधु से : 125 मि.ग्रा.

अड्युलीपृष्ठकठतस्तर्क्षता¹

1. स्नायुतानमित्तो यदाऽक्षिप्ति लोकानाम् (मु.नि. 1/55)
- विचाराकाशः स्नायुतानप्रत्यक्षः कफः वमनः।
- अन्तर्नान धनुरिक यदा नमनि मायवः॥
- तदा ; स्नायुतानग्रायम् कृष्टं मासतो वस्त्रो (मु.नि. 1/55 - 56)
- वाह्यायाम वायाम वाह्यायाम करोति च (मु.नि. 1/57)
2. वाह्यायामेऽन्तर्नानप्रत्यक्षः कफः वमनः (भा. 9. मायम छाड 2/1/186)
- विचारांत्वत्वदनः लक्षणां नष्ट वर्णनः।
- प्राच्यदर्शक नृनः स्नायु दर्शन न जीवन्ति॥ (अ.ह. चिर. 2/ 39)
- 3.

1. तमसाम वृणः प्रदृशः कर्त्तुम् भजनम्॥ (मु.नि. 1/57)

2. वाह्यायामेऽन्तर्नानप्रत्यक्षः कफः वमनः (भा. 9. मायम छाड 2/1/186)

3. विचारांत्वत्वदनः लक्षणां नष्ट वर्णनः।

8. भोजनोत्र	
दसमूलारिष्ट या बलारिष्ट	: $\frac{20}{1\times 2}$ मि.ली.
समभाग जल से	मात्रा
9. महयोगराजगुण्ज	: 500 मि.ग्र.
प्रबल पिण्डी	: 125 मि.ग्र.
मधु से	: $\frac{125}{1\times 2}$ मि.ग्र.
10. छागलाद्य घृत	: 20 मि.ली.
गो दुध से	1×2 मात्रा
11. गांत्रि में	: $\frac{3}{1\times 2}$ ग्राम
हरीतकी चूर्ण	1 मात्रा
कोणा जल से	
12. पश्य सेवन	

•••२०५५८••

48. वातरक्त

(GOUT)

परिचय

वातरक्त व्याधि का वर्णन प्रायः आयुर्वेद के सभी साहिता ग्रन्थों में मिलता है। वातरक्त गोग में मुख्य रूप से वात एवं रक्त की दुष्टि होती है। वातरक्त में रसवह तथा रक्तवह की प्रबलता के कारण ही रक्त की दुष्टि होती है। वातरक्त में रसवह तथा रक्तवह की दुष्टि प्रमुखता से मिलती है। कुछ एवं विसर्प आदि व्याधियों में भी रक्त के अनर्गत कुष्ठ एवं विसर्प को नहीं माना जाता है। रक्तवह वात का वर्णन भी वात व्याधि चिकित्सा में मिलता है लेकिन रक्तवह वात में केवल वात की ही दुष्टि होती है रक्त की नहीं, जबकि वातरक्त में वात एवं रक्त दोनों ही दुष्टि होते हैं। सम्भवतः रक्त दुष्टि की विशेषता के कारण ही आचार्य चरक ने वातरक्त का वर्णन विस्तृत रूप से अलग अध्याय में किया है।

- वायु विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त होकर रक्त को दुष्प्रित कर जो गोग उत्पन्न करती है उसे वातरक्त गोग कहते हैं। वातरक्त, आमवात, सचिवात, क्रोडकरोर इत्यादि ऐसे गोग हैं जिनमें सचिवशूल एक प्रमुख लक्षण होता है। आचार्य मुश्तु ने वातरक्त को अलग नहीं मानकर इसका वातव्याधि में ही वर्णन किया है। जबकि आचार्य चरक ने वात गोग होने पर भी निदान की विभिन्नता, रोष एवं दूष्य की
- प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ
1. चरक सोहिता चिकित्सा स्थान-अध्याय 29
 2. सुशुत सोहिता निदान स्थान-अध्याय 01
 3. सुशुत सोहिता चिकित्सा स्थान-अध्याय 05
 4. अट्टांग हृदय निदान स्थान-अध्याय 16
 5. अट्टांग हृदय चिकित्सा स्थान-अध्याय 22
 6. माधव निदान-अध्याय 23
 7. भावप्रकाश मध्यम खण्ड-अध्याय 29

परिभ्राष्टा

वातरक्त गोग एक विशेष प्रकार की व्याधि है जिसमें वात एवं रक्त दोनों की दुष्टि होकर शरीर की छोटी सचिव्यों में रोष एवं शूल की उत्पत्ति होती है तथा आयुर्वेद एवं वात दोनों ही प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं, इस अवस्था को वातरक्त गोग कहते हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के मत से Uric Acid की रक्तवह मात्रा बढ़ जाने पर वह Urate Crystals के रूप में सचिव्यों में एकत्र होकर Gout अर्थात् वातरक्त गोग की उत्पत्ति करते हैं।

४८

- | | | |
|-------------|----|-----------|
| शोणित रोग | 2. | खुड्ड रोग |
| वातबलास रोग | 4. | आद्यवात |

四

सहिता ग्रन्थों में वारतक के अनेक प्रकार के निदान वर्णित हैं जिन्हे—
निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. आहारजन्य निवाना¹.
 - (i) अस्त्र, लवण, कटु, क्षार, स्निध, उच्च पदार्थों का अधिक सेवन।
 - (ii) विस्तृत एवं शुष्क जलजीव तथा आनूप मांस का सेवन।
 - (iii) पिण्याक, मूली, कुलत्थ, डड, निष्ठाव, शाक, प्रलल, इक्षु आदि का सेवन।
 - (iv) दधि, आराल, सौबीर, शुक्त, तक्र, सुरा, आसव का अधिक सेवन।
 - (v) कषाय, कट्ट, तिक्ता, अत्य एवं रुक्ष आहार का अधिक सेवन।
 - (vi) अभोजन (पूर्णतः भोजन नहीं करना)।
 2. विहारजन्य निवाना².
 - (i) विरुद्ध भोजन, अजीर्ण में भोजन, अध्यशन।
 - (ii) क्रोध।
 - (iii) दिवारक्षन एवं रात्रि जागरण।
 - (iv) घोड़ा, ऊँट आदि की सवारी करना (वर्तमान समय में बिना शोकर के स्कूटर, मोटर साइकिल, ट्रैक्टर, जीप आदि की सवारी)।
 - (v) जल में क्रीड़ा करना, तैरना।
 - (vi) लंघन करना।
 - (vii) गर्मी के दिन में अधिक पैदल चलना।
 - (viii) अधिक मैथुन करना।
 - (ix) अथरणीय वेग को धारण करना।
 - (x) अधिकारी।

1. लत्यागस्तकुट्टार्पित्वयोज्ञाजीर्णमेवन्नः।
विस्तृत्युक्तं अनुद्दामासपित्याक्षमूलकेः॥
2. कुलत्यागप्रियवाकाक्षिप्ततेष्वप्युप्यः॥ (च.वि. 29/5-6)
3. दश्यानालस्त्रीयो युक्तस्तकुप्युषाहर भोजनात्। (च.वि. 29/9)
4. कथम कटुत्यागात्प्रधानाहर भोजनात्। (च.वि. 29/7)
5. विरुद्धायशसक्तिवाच्यत्वप्रजारोः॥ (च.वि. 29/7)
6. हयोद्ययनयानमकृत्युक्तव्यत्वलक्ष्मीः।
उण्ठ चाचाच्यव्यव्यव्याप्तिव्यव्याप्तिव्यव्यग्रहात्॥ (च.वि. 29/9)

अन्य निर्दान^१

- (i) सुकूनार, स्थूल एवं सुखी व्यक्ति (Delicate, Lazy, Obese and easy going persons)
 - (ii) मिष्ठान_भोजी (High intake of glucose/carbohydrate)
 - (iii) अचक्रमणशील अर्थात् जो अधिक पैदल न चलते हों (Sedentary life style)

आचार्य चरक के बातकर्त के निदान वर्णन में विशेषता की झलक मिलती है। सर्वप्रथम उन्होंने लवणास्त्र आदि रक्त प्रकोपक निदान बताए हैं तथा अलग से कथाय, कढ़ आदि वात प्रकोपक निदानों का वर्णन किया है। आचार्य ने रोगी को विशिष्ट प्रकृति का भी उल्लेख किया है जिनमें वातरक्त रोग बहुलता से मिलता है। ऐसे सुकृमार एवं अधिक मधुर पदार्थों का सेवन करने वाला व्यक्तित्व, इसी प्रकार कुछ मानसिक निदान जैसे क्रोध इत्यादि का विदर्शन भी आचार्य चरक ने किया है। सुश्रृत सहिता, अस्त्रां हृदय, माधव निदान, भाव प्रकाश आदि ग्रन्थों में भी प्रायः चरक के सम्मान ही बातकर्त के निदानों का वर्णन मिलता है।

- सम्प्राप्ति** उपरोक्त वर्णित विविध प्रकार के निदान सेवन करने से वात तथा रक्त दोनों की दृष्टि होती है और यह दोनों दृष्टित वात एवं रक्त सम्बन्धों में स्थान संश्लय करते हैं।

सम्प्रादि चक्र
मिथ्याहार विहार एवं अन्य निदान सेवन
↑

दृष्टिरक्त का पादमूल में सञ्चय
वाल एवं रक्त की दुष्टि

वातर वन्त

→ सन्धियों में की उत्तरकत (गम्भीर वा
त्वचा एवं मांस में उत्पत्ति वातरकत की उत्पत्ति (उत्तान वातरकत)

ପାତ୍ରାଜା: ମହାମହିମାନ୍ତ୍ରିକା

१. अवधारणशीलताम् कुप्यते वातरोगितम्॥ (च.वि. 29/7)

२. बायुष्विद्वा दुर्दृष्टं रक्तं तेजये वातरोगितम्॥ (च.वि. 29/10)

वात व्याधि

विशिष्ट सम्प्राप्ति¹

आचार्य चरक ने वातरक्त की विशेष सम्प्राप्ति का वर्णन करते हुए स्पष्ट किया है कि क्यों वातरक्त सम्बिंद्यों में ही आक्रमण करता है। आचार्य चरक के अनुसार वायु मूळम् तथा सम्पूर्ण सम्बिंद्यों में फैलने वाला होता है जबकि रक्त द्रव तथा सभी स्रोतस में फैलने वाला होता है। इन दोनों गुणों से वात एवं रक्त सिया भागों से सम्पूर्ण शरीर में गमन करते हैं। गमन करते हुए सम्बिंद्यों के टेढ़े होने से वहाँ वातरक्त की गति में अवरोध होता है तथा वहाँ पर स्थान संश्य करते हुए पित आदि दोषों से मिल कर विभिन्न प्रकार की वेदनाओं को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार सम्बिंद्य प्रदेश में रुक्खे हुए दूषित वात एवं रक्त मनुष्य शरीर में अत्यंत वेदना उत्पन्न करते हैं।

सम्प्राप्ति चक्र

वात का सूक्ष्म गुण + रक्त का द्रव गुण

सिरमाणों से सर्वशरीर में भ्रमण

सम्बिंद्य के टेढ़े होने से स्थानिक स्रोतोवरोध

दूषित वात तथा रक्त का स्थान संश्य

वातरक्त रोग

सम्प्राप्ति घटक

दोष : वात, कफ

दूष : रक्त, त्वक्, मास

अधिकार्ता : सम्बिंद्य, विशेषतः छोटी सम्बिंद्यों, त्वक्, मास

स्रोतस : रक्तवह स्रोतस

ज्ञोतो दुष्ट लक्षण : संयं, विमार्गागमन

उत्पत्ति स्थान : पकवाशयोत्थ

व्याधि स्वभाव : चिक्कारी

साध्यासाध्यता : कृच्छ्रसाध्य/याप्य

1. सौख्यन्त भ्रम्बन्तवात् वर्वनस्यामुजस्त्वा।

त्वर्वत्वात् सर्वत्वात् देहं गच्छ विवरणेऽऽ।।

पर्वत्वित्वं त्रुव्यं वक्त्वावतिष्ठते।।

स्थितं पिण्डिदिसेष्ट तास्ता: सूजति वेदनाः॥।।

कर्तीत दुःखं तेजव तमात् ग्रायण सम्बिष्टु।।

पवित्रं वदनस्तात्ता अत्यर्थं दुःखा नुपाम्॥ (च.त्र. 29/13-15)

पूर्वरूप¹

- स्वेद का अधिक निकलना या बिल्कुल नहीं निकलना (Abnormal perspiration)
- शरीर वर्ण में कृष्णता होना (Hyperpigmentation of skin)
- स्मशानित्व-स्पर्श ज्ञान का अभाव (Anaesthesia)
- चोट लगने पर अत्यधिक वेदना की अनुभूति (Feeling of excessive pain on injury)
- सम्बिंद्य रौथित्य, आलस्य, सदन (Subluxation of joints, laziness, fatigue)
- पिंडिकोट्भव (Origin of boils / carbuncles)
- जानु, जधा, उर, कटि, अंसा, हाथ, पैर एवं सम्बिंद्यों में निस्तोद, स्फुरण, भेदनवत पीड़ा, भारीपन, शून्यता एवं कपाड़ (Pricking and cutting type of pain, Hyperesthesia and itching in all the joints of upper and lower extremities)
- सम्बिंद्यों में बार-बार शूल (Recurrent joint pains)
- त्वक्, वैवरण्य (Altered colour of skin)
- मण्डलोत्पत्ति (Blisters)

वातरक्त रोग की प्रसरण विधि²

वातरक्त रोग प्रायः पैर अथवा हाथों के पूल (अंगुलियाँ, तल या गुल्क मणिबन्ध) का आश्रय लेकर कुद्द होकर आखोविष (मूषक विष) के समान सर्व शरीर में फैल जाता है।

भ्रद

शास्त्रों में वातरक्त के निम्नलिखित भ्रद वर्णित किए गए हैं:-

- दो भ्रद 1. उत्तान वातरक्त (त्वक्, मास स्थित) (Supraficial Gout)
- गमीर वातरक्त (सम्बिंद्य) (Deep Gout)

1. स्वेदोत्त्वर्थं न वा काञ्चर्य स्पर्शावत्वं भ्रेतरित्वक्।।

सम्बिंद्य शीघ्रत्वं आलस्य सदनं पिंडिकोट्भवः॥।।

जानुगृहीत्वात्यंस्त्वात्यं भ्रम्बन्तवात्यं सम्बिष्टु॥।।

निस्तोदः सम्बिंद्य भ्रम्बन्त गुल्क सुमिलत च।।

कपाड़, सम्बिंद्य रूपात्मा भूत्वा नश्यति चासक्ति।।

वैवरण्यं पण्डलात्पतिवत् गुल्क तित्वप्रयत्नम्॥ (च.त्र. 29/16-18)

पर्वत्वं-मासस्थानं कर्त्तव्यदस्यतेरित्वा।।

- II. 8 भेद¹
1. वातज वातरक्त
 2. पितज वातरक्त
 3. कफज वातरक्त
 4. रक्तज वातरक्त
 5. वात पितज वातरक्त
 6. वात कफज वातरक्त
 7. कफ पितज वातरक्त
- आचार्य चारक ने वातरक्त के दोषानुसार 8 भेद बताए हैं लेकिन हमें एवं निदोषज वातरक्त के लक्षणों का वर्णन नहीं किया है क्योंकि हमें इन्हीं विविध वातरक्त समस्याय से उत्पन्न होते हैं। अतः उन दोषों के मिश्रित लक्षण ही उनमें पाए जाते हैं।

1. उत्तान वातरक्त के लक्षण²

उत्तान वातरक्त के निम्नलिखित लक्षण वर्णित हैं—

- (i) त्वचा में कण्डू (Itching on skin)
- (ii) दाह (Burning sensation of skin)
- (iii) त्वक् रुजा (Superficial pain)
- (iv) तोद (मुई चुभने समान वेदना -Pricking type of pain)
- (v) स्फुरण एवं आकृञ्जन (Tingling and spasm)
- (vi) अंगों में टेहापन (Deformities in the organ/body)
- (vii) त्वचा में श्यावता या ताप्तवर्णता (Dark or copper colour of skin)

2. गम्भीर वातरक्त के लक्षण³

गम्भीर वातरक्त के लक्षण निम्न प्रकार वर्णित हैं—

- (i) स्तन्य एवं कठोर शोथ (Stiff & hard oedema)
- (ii) शोथ के भीतरी भाग में अति पीड़ा (Severe pain in internal part of oedema)
- (iii) त्वचा का वर्ण रश्याव एवं ताम (Dark and copper coloured skin)
- (iv) सरधियों में दाह, तोद, स्फुरण एवं पाक (Burning, pricking , Tingling sensation and boils in the joints)

बक्सुत: उत्तान वातरक्त ही सर्वथम उत्पन्न होता है। कालान्तर में चिकित्सा नहीं करने से अथवा उपेक्षा करने से कह गम्भीर वातरक्त में बदल जाता है। उत्तान एवं गम्भीर दोनों प्रकार के वातरक्त एक साथ भी उत्पन्न हो सकते हैं।

भेदानुसार वातरक्त के लक्षण

1. वातज वातरक्त के लक्षण⁴
 - (i) शिराओं में तनाव (Fullness of veins)
 - (ii) सर्वथायों में शूल, स्फुरण, तोद (Various types of pain in joints)
 - (iii) सर्वथाथ (Oedema in joints)
 - (iv) सर्वथा की त्वचा का रश्याव वर्ण होना (Dark coloured skin of joints)
 - (v) शोथ में कभी वृद्धि कभी ह्रास (Intermittent change in oedema over joints)
 - (vi) धमनी, अंगुलि एवं सर्वथायों में सङ्घोच (Spasm in the arteries, fingers and joints)
 - (vii) अङ्गयाह एवं वेदना (Stiffness and pain in joints)
 - (viii) शरीर में आकृञ्जन (Contractures in the body)
 - (ix) शीतल आहार विहार से द्वेष (Tendency to avoid cold substances)
2. पितज वातरक्त के लक्षण⁵
 - (i) रोगाकान्त प्रदेश में विदाह एवं वेदना (Burning and pain in affected body parts)
 - (ii) पृक्ष्णी (Fainting)
 - (iii) स्वेद (Sweating)
 - (iv) तृष्णा (Excessive thirst)
 - (v) मद (Confusion)
 - (vi) प्रभावित भाग में राग (Redness of affected part)
 - (vii) प्रभावित भाग में राग (Redness of affected part)
 - (viii) पाक (Suppuration)
 - (ix) भेदनवत् पीड़ा (Cutting type of pain)
 - (x) शोष (Emaciation)
3. कफज वातरक्त के लक्षण⁶
 - (i) स्तैमित्य (गीते कपड़े से शरीर ढका हुआ प्रतीत होना) (Feeling of being covered with wet cloth)
 - (ii) गौत्र (Heaviness in the body)
 - (iii) स्निग्धता (Unctuousness in skin)
 - (iv) सुन्ति (Numbness)
 - (v) मन्द वेदना (Mild pain)

1. तत्र वातेन्द्रियों वा स्थान रक्तपरिते कर्णपरिते वा।

2. समस्तेषु समस्तेषु यज्ञव तत्क्षण लक्षणम्। (च.चि. 29/24)

3. कण्ठदूषहलायाम तोद् स्फुरणकुञ्जनैः।

अन्वित श्यावरक्ता त्वचावाहे ताप्त तथेष्यते॥ (च.चि. 29/20)

4. गम्भीर रश्यावपुः स्तम्भः कठिनानुस्तुप्रशारितमान्।

रश्यावरक्ताप्राप्त दाहतोद्दृष्ट्यापकवान्॥ (च.चि. 29/21)

5. द्विविध वातरक्ताप्राप्त उत्तानमवाह चेतेकं धाषते, ततु न सम्यक्, तदिः कुचुक्तवतुत भूत्वा कालान्तरेणावादो प्रवति तस्मान्त द्विविधम्॥ (सु.चि. 5/3)

1. विशेषतः: तिरयमशूलस्फुरणतेनम्।

शोथस्य कालर्वे रोक्ष व रश्यावत्वृद्धिहतयः॥
धम्यकृत्तिसम्भूता नितेऽप्यक्षयोऽप्यतिरिक्ता
कृञ्जनवत्सप्तनं शोतप्रसंस्थानेऽप्यक्षयोऽप्यतिरिक्ता॥ (च.चि. 29/25-26)

2. विदाहां वेदना पृच्छा स्वस्त्रस्त्राणा मादो भ्रमः।

3. रोगाकान्त प्रदेश शोषसंबंधानं पैतको॥ (च.चि. 29/28)

4. स्तैमित्य गौत्र स्तेहः स्फुरिमन्द्य च नक्क कक्षं। (च.चि. 29/29/1)

4. रक्तज्ञ वातरक्त के लक्षण¹

- (i) वेदनायुक्त रक्तवर्ण का शोथ (Oedema with redness and pain)
- (ii) तोद एवं चिमचिमाहट (Pricking type of pain)
- (iii) स्निग्ध एवं रुक्ष द्रव्य प्रयोग से स्वेद की शान्ति नहीं होती है (No effect of use of Snigdha and Ruksha medicines)

(iv) कण्ठ एवं क्ष्टेद (Iching and Secretions)

द्वन्द्वज एवं त्रिदोषज वातरक्त के लक्षण²

वातरक्त में जब दो दोष मिलकर वातरक्त की उत्पत्ति करते हैं तो यहाँ पर प्रकृतिसमस्याय अवस्था होने से दोनों दोषों के संयुक्त लक्षण व्यक्त होते हैं। तीनों दोष मिलकर त्रिदोषज या सन्नियातज वातरक्त उत्पन्न करते हैं जिनमें तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण मिलते हैं।

सारेष्व निदान

आयुर्वेद में अनेकाः व्याधियों का वर्णन मिलता है जिनके कुछ लक्षण वातरक्त से सायात्रा रखते हैं। अतः उनमें त्रिभेदक निदान का जान रखना अत्यन्त आवश्यक है। साधारणतः वातरक्त छोटी सम्बिधियों से प्रारम्भ होता है तथा शोथ स्थान रक्तस्तमा युक्त होता है एवं बेदना के बो आते रहते हैं। व्याधि प्रायः गात्रि में अधिक प्रबल स्वरूप की हो जाती है। इन्हीं लक्षणों के आधार पर ही वातरक्त का निश्चय किया जाता है। विभेदक निदान के लिए रक्तावृत वात, रक्तात वात, सिरागत वात आदि व्याधियों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। निम्नलिखित व्याधियों के साथ वातरक्त का सारेष्व निदान करना चाहिए—

1. रक्तावृत वात एवं वातरक्त³

रक्तावृत वात का वर्णन आचार्य चरक ने वातव्याधि चिकित्सा अध्याय में किया है। रक्तावृत वात तथा वातरक्त में दूष्य एवं दोष में समानता होती है। परन्तु रक्तावृत वात में केवल दूषित रक्त द्वारा वात का आवरण होता है जबकि वातरक्त में वात एवं रक्त दोनों की दूषित होती है। रक्तावृत वात केवल शुद्ध वात व्याधि है जबकि वात रक्त अपने विशिष्ट निदान, सम्प्राप्ति एवं प्रसात लक्षण के कारण विशिष्ट व्याधि है।

2. रक्तावृत एवं वातरक्त⁴

रक्तावृत एवं वातरक्त सम्प्राप्ति भेद से पूर्णतः अलग-अलग अवस्थाएँ हैं।

1. रक्तपुरुषरक्त, तोदस्ताप्रशिर्विचिमयतो

2. विनाथस्त्रैश्च: शप्त नैत कण्डिक्तरात्तिवित्तास्त्रिजा॥ (च.चि. 29/27)

3. हंतु लक्षण संसाधित्वाद् इन्द्रियात्तर्वद्यम्॥ (च.चि. 29/29/2)

4. नज्मस्त्रैश्च: सप्तस्तापा वैवर्ण्यं कृशताऽर्त्तर्वचः॥ (च.चि. 28/63)

पात्र चारसार्व भूतस्त्रै सप्तस्तापास्त्रुत्यात्तर्वचः॥ (च.चि. 28/31)

रक्तावृत में केवल वात दुष्ट होती है, रक्त दूषित नहीं होता है। परन्तु वातरक्त में वात एवं रक्त दोनों अलग-अलग अपने विशिष्ट निदान द्वारा एक साथ दृष्टित होकर वातरक्त रोगोत्तरि करते हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार भी रक्तावृत की तुलना Hypertension से करते हैं जबकि वातरक्त को Gout माना जाता है।

3.

आमवात, उरस्ताम्ब, सम्बिधावात, क्रोष्टकशीर्ष एवं वातरक्त उपरोक्त सभी व्याधियों में सम्बिशूल एवं सम्बिशोथ प्रमुख लक्षण के रूप में मिलता है। गम्भीर वातरक्त में भी यह लक्षण प्रमुखता से मिलता है। अतः इनमें सारेष्व निदान करना अति आवश्यक है। आमवात में मुख्यतः रस की दुष्टि मिलती है तथा आमदोष का आधिक्य मिलता है। उरस्ताम्ब में वात, कफ एवं आम दोष का आधिक्य मिलता है तथा लक्षण मुख्यतः उर्ह (जघा) प्रदेश में ही होता है। सोधिवात में केवल वातदोष प्रकोप होता है जबकि क्रोष्टकशीर्ष मात्र जानुसारी गत होता है। अतः उपरोक्त व्याधियों के दोष दूष्य का विस्तृत अध्ययन करके वातरक्त से सारेष्व निदान किया जा सकता है।

4.

कुष्ठ एवं वातरक्त

कुष्ठ गों की उत्पत्ति त्रिदोष तथा 4 प्रकार के दूष्य त्वचा, लसीका, रक्त एवं गोंस की दुष्टि से होती है। इसे सदाक भी कहा जाता है। वातरक्त में केवल वात एवं रक्त की ही दुष्टि होती है। अतः दोनों में आसानी से विभेद कर सकते हैं। कुष्ठ गों में उपरोक्त तीन दोष एवं चार दूष्यों की एक साथ दुष्टि आवश्यक है जबकि वातरक्त में ऐसा नहीं है। कुछ अन्य विभेदक लक्षण निम्न हैं—

1. कुष्ठ गों को संक्रामक माना गया है जबकि वातरक्त संक्रामक नहीं है। यह मिथ्याहार विहार के कारण एवं सुकुमार तथा मिल्फान भोजी व्यक्तियों में होता है।
2. कुष्ठ एवं वातरक्त में कुछ निरन्तर तथा चिकित्सा सिद्धान्तों में भी समानता मिलती है।
3. कुष्ठ के कुछ लक्षण उत्तरान वातरक्त के लक्षण जैसे—सुष्टि, कण्ठ, कृष्ण, समानता का संकेत किया है।
4. आचार्य सुश्रुत ने 'कुष्ठवृत्ताम् भूत्वा' कहकर वातरक्त एवं कुष्ठ में

1. वातरयज्ञो दुष्यस्त्रप्रक्तं पास्ताम्ब च।

2. दृष्टयात् सूक्ष्माना सद्वज्ञो द्रव्यसंप्रगः॥ (च.चि. 7/9)

3. वायु लिवृद्धो दृष्टं लक्ष्यतावातिः पथ्य। कृत्वन्तस्त्रैयोदस्त्रं लक्ष्य वातरात्तर्वचः॥ (च.चि. 7/10)

साध्यासाध्यता'

1. एक दोष से उत्पन्न दूरन वातरक्त साध्य होता है।
2. दो दोषों से उत्पन्न वातरक्त साध्य होता है।
3. त्रिदोषज एवं उपद्रव युक्त वातरक्त असाध्य होता है।
4. निम्नलिखित लक्षणों वाला वातरक्त भी असाध्य होता है—
 - (i) आजानु (जो वातरक्त ऐसे से छुटने तक केला हो—Spread up to knee)
 - (ii) स्फुटित (जिस वातरक्त में त्वचा फट गई हो—Cracked skin)
 - (iii) अभिन्न (जिसमें त्वचा पूर्णरूप से फट गयी हो—Broken skin)
 - (iv) प्रस्थुत (जिस वातरक्त में त्वचा से खाब होता हो—Discharging Gout)
 - (v) उपद्रव युक्त वात रक्त
5. आचार्य चरक ने निम्न लक्षणों से युक्त वातरक्त भी असाध्य माना है—
 - (i) संप्रसारित (ब्रण से फूटकर पूय खाब होना—Pus discharge)
 - (ii) विचरण (Disclosed skin)
 - (iii) स्तरध्वता एवं अर्द्ध (Complicated by stiffness and tumour)
 - (iv) अंगों में सङ्घोच उत्पन्न हो गया हो (Constrictions of the muscles body parts)
 - (v) इन्द्रियों में ताप की उत्पत्ति हो गई हो (Burning in the vital organs)

वातरक्त की असाध्यता का कारण

- (i) वायु द्वारा रक्त के मार्ग का अवरोध एवं रक्त की डुर्दि।
- (ii) बुद्ध रक्त द्वारा वायु के मार्ग का अवरोध।
- (iii) एक के द्वारा दूसरे के मार्गावरोध होने से अत्यधिक वेदना की उत्पत्ति।
- (iv) अत्यधिक वेदना के कारण मृत्यु।

उपद्रव

यदि वातरक्त की साध्यक रूप से चिकित्सा नहीं की जाये तो निम्नलिखित उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं। यदि सभी उपद्रव रोगी में मिलते हों तो रोग असाध्य होता है।

1. एकदोषाद्वारा साध्य नव यायं द्विदोषान्।
विदेहकमसाम्बन्ध स्वाधृत्य च स्फुर्पद्वाकाः॥ (च.चि. 29/30)
2. आजानु स्फुटित यन्त्रं प्रसिन्त प्रस्तुतं च चरत्।
उफर्कर्त्र फून्तूलं प्राप्तमास क्षयादिभिः॥ (सु.नि. 1/49)
3. संप्रसारि विवर्णं च स्तरध्वमृदुर्कृच्च यत्।
संज्यञ्ज्वेव सङ्घोचकरामिद्यत्वत्वम्॥ (च.चि. 29/33)
4. रक्तमार्ग निहन्त्यशु शायकमान्त्रिषु याततः॥
निविश्यान्यायप्रवाय वदनापिहितम्॥ (च.चि. 29/35)
5. अस्त्रादायवृक्षवातसम्पर्कादिग्रियतः॥
मूर्खयमर्दन्त्यस्त्रावृक्षवातसम्पर्कवपकाः॥
दिव्याद्याद्यन्त्यविस्तपकतेऽप्यवस्थम्॥ (च.चि. 29/31-32)

है। यदि अल्प उपद्रव हों तो याय तथा उपद्रव रहित वातरक्त साध्य होता है। प्रमुख उपद्रव निम्न हैं—

1. अस्वप्न (अनिद्रा-Insomnia) 2. अरुचि (Anorexia)
3. श्वास (Dyspnoea)
4. मास कोथ (Gangrene of muscles)
5. शिरोग्रह (Headache or Stiffness in Head)
6. मूर्ढ्णि (Fainting) 7. मद (Confusion)
8. रुजा (Pain) 9. तृष्णा (Thirst)
10. ज्वर (Fever) 11. मोह (Confusion)
12. कम्प (Tremors) 13. हिक्का (Hiccough)
14. गाङ्गुल्य (Limping from both Legs)
15. विसर्प (Cellulitis) 16. पाक (Suppuration)
17. तोद (Pricking type of pain) 18. श्रम (Vertigo)
19. क्लस (Fatigue) 20. अंगुलि वक्ता (Claw hand)
21. स्फोट (Blisters) 22. दाह (Burning)
23. मर्मग्रह (Stiffness of vital organs) 24. अर्द्धद (Tumour)

चिकित्सा सिद्धान्त**बहिः परिमार्जन चिकित्सा'**

- बहिः परिमार्जन चिकित्सा के अन्तर्गत निम्न विधियों का प्रयोग करते हैं—
 - (i) आतेप
 - (ii) अस्थङ्ग
 - (iii) परिषेक
 - (iv) उपनाह

इन 4 विधियों द्वारा विशेषकर उत्तम वातरक्त की चिकित्सा की जाती है।

अन्तः परिमार्जन चिकित्सा'

- अन्तः परिमार्जन चिकित्सा के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रयोग करताना चाहिए—
 - (i) विरेचन
 - (ii) स्नेहपान
 - (iii) आप्तस्थापन
 - (iv) बस्ति

उपरोक्त विधियों के द्वारा गम्भीर वातरक्त की विशेष चिकित्सा करते हैं।

1. वातापातेपताम्बृहत्परिसेकतामाहतः॥ (च.चि. 29/43)
2. विंदकास्त्रानसंतोषाद्यावृक्षवातसम्बन्धम्॥ (च.चि. 29/43)
3. न हि बस्तिसम किञ्चन वातरक्त चिकित्सतम्॥ (च.चि. 30/48)

बात व्याख्या

3. रक्तविश्वाकरण कर्म

(i) रक्त विश्वाकरण से पूर्व बातरक्त में सामान्य रूप से स्नेहन किया तत्पश्चात

विरचन कर्म करवाना चाहिए।

(ii) बातरक्त रोग में शूगा, जलौका, मूची, अलादू, प्रच्छन अथवा शिरावेध द्वारा कुपित दोष के अनुसार अथवा रोग के बल के अनुसार रक्त विश्वाकरण करवाना चाहिए।

I. बात प्रधान बातरक्त का चिकित्सा सिद्धान्त^३

1. घृत, तैत, वसा, मज्जा द्वारा अनुवासन बहित प्रयोग।

2. घृत, तैत, वसा, मज्जा द्वारा अनुवासन बहित प्रयोग।

3. उष्ण उपनाह का प्रयोग।

II. पित तथा रक्त प्रधान बातरक्त का चिकित्सा सिद्धान्त^४

1. विरेचन 2. घृतपान

3. दुर्धान 4. परिषेक

5. अनुवासन बहित 6. शीतल एवं दाहशामक प्रलेप

III. कफ प्रधान बातरक्त का चिकित्सा सिद्धान्त^५

1. मृद वमन 2. स्नेहन

3. परिषेक 4. मृद लड्जन

5. कोणा लेप का प्रयोग

शमन चिकित्सा

बातरक्त रोग में शोधन कर्म के उपरान्त शमन चिकित्सा का प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शमन चिकित्सा के लिए निम्नलिखित स्वरूप में औषधि द्रव्यों का युक्ति युक्त प्रयोग करना चाहिए-

1. रस/भ्रमा/पिण्डी

मात्रा : 125-250 मि.ग्रा.

अनुपान : मधु

ि. इंच्यन्दंहिताऽऽस्ते लंह युक्तोक्तेत्वैः।

स्नेहन्युपुष्टिः शस्त्रमधुकृद्वित कर्म च॥ (च.च. 29/41)

2. तत्र पुञ्चेत्पुक शृणतोकः सूच्यतार्विषः।

प्रज्ञानं तिग्नामवा यथादेव यथावलम्भा॥ (च.च. 29/16)

3. सप्तिस्तेवत्सम्प्रज्ञानायज्जननतिर्तिष्ठः।

सुख्योंगोलप्रपादैव बातोत्प्रपाचत्वा॥ (च.च. 29/44)

4. विच्चन्युत्थोरनं संकेः स्वास्तिर्तिष्ठः।

संतीनर्वंप्रपौर्वशापि रक्तपिण्डं जयत्॥ (च.च. 29/15)

5. वामनमुद्दात्यन्यं स्नेहनको विलवणन्।

काणा लपाशन रास्ते बातरक्त कमोत्तरा॥ (च.च. 29/46)

- (i) बातरक्तानक रस : पारद, गन्धक, लौह, अप्रक
- (ii) विरंवेश्वर रस : पारद, गन्धक, तुर्क, ब्रसनाम
- (iii) तत्र भस्म : हरताल
- (iv) महातलेश्वर रस : हरताल, गन्धक, ताप्रमण
- (v) सर्वेश्वर रस : पारद, गन्धक, अप्रक, ताप्र, स्वर्ण
- (vi) रसमणिक्य रस : हरताल
- (vii) चन्द्रकला रस : पारद, गन्धक, ताप्र, अप्रक
- (viii) आरोग्यवर्धिनी : कुटकी, पारद, गन्धक
- (ix) पञ्चामृत रस : पारद, गन्धक, टकण, वत्सनाम
- (x) प्रवाल पञ्चामृत रस : प्रवाल, मुक्ता, राष्ट्र, शुक्ति, कर्द
- (xi) मुक्ता पिण्डी : मुक्ता
- (xii) प्रवाल पिण्डी : प्रवाल

मात्रा : 3-6 ग्रा।

अनुपान : कोण्ठ जल

निष्वादि चूर्ण : निष्व, गुड्ची, हरीतकी

मुण्डीतिका चूर्ण : (गोरखमुण्डी) अनुपान-गुड्च्यादि कवाथ

निशोथ चूर्ण : (निशोथ), अनुपान-क्षीर

चोपचिन्यादि चूर्ण : चोपचीनी, अनुपान-गुड्ची कवाथ

3. कवाथ

मात्रा : 20-40 मि.लि।

अनुपान : जल

पटोलादि कवाथ : पटोल, कुटकी, शताकी

शम्पाकादि कवाथ : अमलतास गुड्ची, पटोल

एरण्डादि कवाथ : एरण्ड, वासा, गोक्षर

कोकिलाशादि कवाथ : तालमखाना, गुड्ची

नवकोर्किंक कवाथ : क्रिफला, निष्व, माज्जाद्वा

(v) सिंहस्त्रादि कवाथ : एरण्ड, वासा, लघु पचमूल गुड्ची

(vi) सिंहस्त्रादि कवाथ : वासा, लघु पचमूल गुड्ची

(vii) विवरादि कवाथ : निशोथ, विदारी

(viii) वासादि कवाथ : वासा, गुड्ची, एरण्ड

(ix) अमृतादि कवाथ : गुड्ची, सुगंठी, धान्यक

(x) दरापूत कवाथ : वृहती, कण्ठकारी, सोनापाता

4. आसव/अरिष्ट

मात्रा : 20-40 मि.लि।

- (i) अमृतरिद्वय : गुड्हची, दशमूल, धातको
(ii) सारिचायासब : सारिचा, मुस्तक, लोध्र
(iii) सारिचायारिद्वय : सारिचा
- (iv) खदिपरिद्वय : खदिर, दारहलट्टे, त्रिफला
(v) चन्दनासब : चन्दन, सुगन्धचाला, मुस्तक
(vi) मर्जिजायारिद्वय : मर्जिजा, गुड्हची, भारंगी
(vii) घृत घोग
5. मात्रा : 15-20 मि.ली.
अनुपान : दुध
- (i) गुड्हची घृत : गुड्हची, गोदुध, गोघृत
(ii) शतावरी घृत : शतावरी, गोघृत
(iii) अमृताद्वय घृत : गुड्हची, मधुयच्छी, त्रिफला
(iv) बला घृत : बला, अतिबला, कैच, शतावरी
(v) जीवनीय घृत : दशमूल, पुनर्नवा, एण्ड
(vi) पारुषक घृत : जायपाण, मूस्यामलकी, काकोली
6. तैल घोग
मात्रा : 10-20 मि.ली.
- अनुपान : दुध
- (i) गुड्हचादि तैल : गुड्हची, मधुयच्छी, गम्भारी
(ii) बुद्धडकपद्मक तैल : पद्मक, खस, मधु, हरिदा
(iii) नागबला तैल : नागबला, अजाक्षीर
(iv) पिण्ड तैल : मोम, मञ्जिष्ठा, सारिचा
(v) महापिण्ड तैल : सारिचा, सल, मर्जिजा, मधुयच्छि
(vi) बहृत् गुड्हची तैल (गुड्हची, जीवनीय गण के द्रव्य)
(vii) विशेषित्नुक तैल : कुपीषु, सहिजन, धूतण
(viii) रुद्र तैल : पुनर्नवा, हरिदा, त्रिफला
(ix) महारुद्र तैल : पुनर्नवा, हरिदा, नीम
(x) शतहलादि तैल : शतपुष्णा, तिल तैल
(xi) मधुपण्यादि तैल : मधुयच्छि, सौंफ, शतावरी
(xii) सुकुमरक तैल : मधुयच्छि, खर्जूर, फालसा
(xviii) अमृताद्वय तैल : गुड्हची, मधुयच्छि, लषुपञ्चमूल
(xix) महापद्म तैल : कमल, चंत, मधुयच्छि
7. गुण्गलु प्रयोग
मात्रा : 250-500 मि.ग्रा.

अनुपान : उच्छोदक

- (i) कैशोर गुण्गलु : गुण्गलु, त्रिफला
(ii) पुर्मंवा गुण्गलु : पुर्मंवा, एण्ड, गुण्गलु
(iii) गोखुण्डि गुण्गलु : गोखुण्डि, गुण्गलु
(iv) रसाश्र गुण्गलु : पारद, गन्धक, लौहभस्म, अम्रक
(v) अमृता गुण्गलु : गुड्हची, गुण्गलु, त्रिफला
(vi) लौह घोग

8. मात्रा : 125-250 मि.ग्रा.

- अनुपान : मधु
- (i) गुड्हचादि लौह : गुड्हची, त्रिफला, त्रिकुड़, त्रिमद
(ii) पितानक लौह : पारद, गन्धक, गुड्हची, अम्रक
(iii) लाङ्डल्याद्य लौह : लागली, त्रिफला, गुण्गलु

9. स्वरस

- मात्रा : 10-20 मि.ली.
अनुपान : जल
गुड्हची स्वरस
(i) भूंगराज स्वरस
(ii) आमलकी स्वरस
(iii) आमलकी स्वरस

10. बाहु लेप

- मात्रा : आवश्यकतानुसार
(i) प्रपोडरीकाद्य प्रलेप : मंजिज्ञा, दारहलनी
(ii) तगारादि प्रलेप : तगर
(iii) तिलादि लेप : तिल, चिरौजी, मधुयच्छि
(iv) शतधूते घृत लेप : गौघृत
(v) बलादि लेप : बला, एण्ड, जीरक, गुड्हची
11. एकल औषधियाँ
(i) हरीतकी
(ii) गुड्हची
(iii) आमलकी
(iv) निम्ब
(v) पिपली
(vi) गुड
(vii) घृत
(viii) एण्ड स्नेह
(ix) * आरवथ
(x) अशवथ
(xi) त्रिवृत
(xii) शुण्ठी
(xiii) धात्यक
(xiv) वासा
(xv) गोरखमण्डी
(xvi) शतावरी
(xvii) गोक्खुर
(xviii) मधुयच्छि
(xix) पटाल
(xx) गोक्खुर
(xxii) कुटकी
(xxiii) शिलाजतु

योगासन एवं प्राकृतिक चिकित्सा

वातरक्त रोग में निम्नलिखित योगाभ्यास एवं प्राकृतिक चिकित्सा

लाभदायक होती है—

- (i) प्रणायाम
- (ii) अधमत्येद्रासन
- (iii) मधुसन
- (iv) भद्रसन
- (v) पद्मसन
- (vi) कोणा जल से स्नान
- (vii) मृतिका से मर्दन

आदर्श चिकित्सा परं

1. निदान परिवर्जन
2. सम्यक पथ्यापथ्य का पालन
3. यथोचित योगाभ्यास/प्रणायाम
4. बाह्य प्रयोगार्थ : अध्यांग, सेक, लेप, प्रदेह, परिषेक
5. संशोधन : विरेचन, रक्त मोक्षण, अनुवासन एवं निरुह वर्तित का प्रयोग
6. वात रक्तात्मक स्स : 125 मि.ग्र.
प्रवात पञ्चामृत : 250 मि.ग्र.
7. अमृता सत्त्व : 250 मि.ग्र.
मधु से 1×2 मात्रा
8. भोजनोत्तर
9. आरोपयवर्धनी वर्ती : 250 मि.ग्र.
गर्म जल से 1×3 मात्रा
10. भोजनोत्तर
- सारिवाद्यासव : 20 मि.ली.
समभाग जल से 1×2 मात्रा

पथ्यापथ्य पद्ध्य

आहार	विहार
पुराना यव, गेहूँ तिनी का चावल, शालि चावल, शारी चावल, विकिर एवं प्रुत नर्म की परिषेकों का मासरस, अहर, चना, पूणा, पस्तर, पोठ, मकोय, शतावरी, वथुआ एवं गुइची इत्यादि।	अध्यांग, परिषेक, उपनाह, प्रलेप, परिसेचन, सम्यक दिनचर्या एवं ऋतुचर्या का पालन इत्यादि।

आहार²

कट्ट रस युक्ति उणा, गुरु, कफकारक अन्त ना सेवन, लतण्य एवं आम्ल आहार, मिष्ठान्य भोजन, माप, कुत्सत्थ, निष्याव, शार, आनुष यास, दधि एवं विरुद्धाहर अद्दि।

Latest Developments Gout

Definition

Gout is a disorder of Purine metabolism manifested by following features occurring singly or in combination.

Type

Hyperuricaemia and Gout are divided into two types.

1. Hyperuricaemia of metabolic origin

This group comprises about 10% cases of Gout which is characterized by over production of uric acid.

1. पुराण वर्जनोत्तरप्रयोगिताः॥
भोजनोत्तर रसायन वा निर्विकरणप्रकृता रिताः॥

आहारकर वर्णाका मुद्रा भवति: समचुद्धकाः॥
मुख्य गुरुसरिकाः प्रस्ता वातरोत्तोतो (च.सि. 29/50-51)
2. यापा: कुटुंबा निष्यावा: करतया: शार सेवनम्।
अनुजात्मानानि विरुद्धानि दीर्घानि च। (पे.र. 27/203)
3. दिवान्तरन् सत्तानां आवाहनं देवतन् तथा।
जेन्म गुरुप्रियं तत्प्राप्तं च वर्जनम्। (त.सि. 29/49)

2.i. Hyperuricaemia of Renal Origin

∴ About 90% cases of Gout are the result of reduced renal excretion of uric acid.

Síntesis 8: Sumantos

The metatarsophalangeal joints of the great toe is the site of the first attack of acute Gouty Arthritis in 70% of patients.

- iii) Onset may be insidious or sudden.
 - iii) The affected joint is hot, red and swollen with shiny overlying skin and dilated veins.
 - iv) Joints are painful and tender.
 - v) Very acute attacks may be accompanied by fever, leucocytosis,

raised ESR and Urine level.

- vi) Anorexia
 - vii) Nausea / Vomiting
 - viii) Change in mood.

Investigations

 - i) Blood Test- TLC, DLC, Hb%, ESR
 - ii) Biochemical- S. Uric Acid, S. Creatinine.
 - iii) X-ray of the affected part / joint

Management : Principles

- i) Non Steroidal Anti Inflammatory Drugs (NSAIDS) are the drugs of choice.

 - ii) Avoid Salicylates and Diuretics.
 - iii) Colchicine is highly effective but causes vomiting and diarrhoea.

卷之三

49. उरुस्ताभ

३२८

उरस्तम्भ पुख्य रूप से आम की प्रधानता के कारण उत्पन्न होने वाली व्याधि है। इसमें प्रायः त्रिदोषारब्ध मिलता है, पर बद्धता: कफ दोष की प्रधानता है एवं दूसरों में युक्ताः प्रद धृषु को दुष्ट प्रधान होती है। उरस्तम्भ रोग में रसवह एवं रक्तवह स्रोतोंसह सक्रिय को दुष्ट प्रतीत होती है। उरस्तम्भ एक विशेष प्रकार की व्याधि है। इसका आचार्य चरक ने उरस्तम्भ का वर्णन आयुर्वेद की सभी सहिता ग्रन्थों में मिलता है। आचार्य चरक ने उरस्तम्भ का वर्णन अलग अलग रूप में किया है जबकि आचार्य सुश्रुत ने उरस्तम्भ का वर्णन वातव्याधि विकिरणा अथवा ये किया है जिसका कारण यह हो सकता है कि

आचार्य सुश्रुत उरुस्तम्भ का बात दोष से आरम्भ होना मानते हैं जबकि आचार्य चारक ने उरुस्तम्भ में कफ दोष की प्रधानता मानी है।

उल्लसम्प्र रोग में रोगी को अपने पैरों को अपने कर्माकि

उरु प्रदेश अथवा जंबा में स्तरवृत्ता हो जाती है जिसके कारण ऐसी को अपना पेरे भी दूसरे व्यक्तिका पैर प्रतीत होता है। बास्तवमें पर्वतीय यात्रा या किसी कठिन चढ़ाई करनेके उपरान्त जंबाओंमें जिस प्रकार को थकावटकी अनुभूतिहोतीहै उसीप्रकार की अनुभूतिउरुस्तम्भमें भीहोतीहै। ऐसीकोजंबाओंमें भारीपन, तोर, स्फुरण, रुक्क, सुनि एवं गौव आदि लक्षणोंकी अनुभूतिहोतीहै। आचार्य चारकने उरुस्तम्भका उल्लेख सामान्य एवं नानामूजदोनोंहीप्रकारकीवातव्याधियोंमेंकियाहै। सम्बवतः इसकाकारण वात दोषमें अन्य दोषोंका अनुबन्धहोनाहै। उरुस्तम्भव्याधिकी तुलनाकिसीभीआधुनिकव्याधिसे करनाकठिनहै। प्रायः कुछव्याधियोंमें लक्षणस्वरूपमेंयाकुछउपापचयजन्यविकृतिमें उरुस्तम्भरोगकेलक्षण

जैसे—म्युझकान (MUSKAN) अधिक नाम होता चाहे

- (Myopathy) जैसे सुना से उत्तराम गण की तुलना की जा सकती है। यह संपर्क विधि में Lactic Acid जैसा हो जाते पर उत्तराम के समान लक्षण उत्पन्न होते हैं।

(iii) X-ray of the alleged

1. चरक साहिता विकित्सा स्थान-अध्याय 27

प्राप्ति विद्या ग्रन्थ

1. चरक संहिता विकितस्थान-अध्याय 27
 2. सुश्रृत संहिता विकितस्थान-अध्याय 05
 3. अष्टग्नि दृश्य निदान स्थान-अध्याय 15
 4. पाधव निदान-अध्याय 24
 5. भाव प्रकाश मध्यम खण्ड-अध्याय 25

卷之三

पारम्परा में दर के साथ कफ दोष, बात एवं पित को अवसरद कर जब उरु प्रदेश में जाकर उरु को स्थैर एवं शैत्य गुणों के कारण स्त्राम्भित कर देता है तब उस अवस्था को उरुस्तम्भ रोग में अत्यधिक वेदना होती रहती है जिससे योगी सदैव चित्तित रहता है।

三

वान^३ ते दिव्ये तो ते तारे में विश्वक दिव्या जा प्रवता है—

- उत्तरामुक्ति का निर्देशन का एक बाह्य उत्तरामुक्ति**

 1. उत्तरामुक्ति संसदको व्यवसितीकारणमूलक हुँ।
स्वतन्त्रताले त्वया व्यवसितामूलक सः॥ (च.चि. 27/14)
 2. स्वतन्त्रताले त्वया व्यवसितीने सम्भवतः।
हत्या तुष्टुपर्वतित्वामैर्कृष्णिष्ठैः॥
तिष्ठत्प्रभान् प्रदत्तित्वामैरप्रश्नामैः॥
 3. सामाजिकव्यवस्थाविधिकर्त्तव्यः॥ (च.चि. 27/8-9)

1. आहार जन्य निदान

- (i) स्त्रियों आहार (Pictuous diet).
- (ii) उष्ण आहार (Excessive hot diet)
- (iii) गुरु आहार (Heavy meals)
- (iv) शीतल आहार (Excessive cold diet)
- (v) द्रव आहार (Excessive liquid diet)
- (vi) सुख आहार (Dry food material)
- (vii) दही (Curd)
- (viii) दूध (Milk)
- (ix) प्राय, आनुप, औटक जीवों का मास रस
- (x) चावल के आटे से बना खाद्य पदार्थ (Food made of rice)
- (xi) विकृत मध्य का अधिक सेवन करना (Excessive intake of denatured alcohol)
2. स्नेह का अधिक सेवन करना (Excessive intake of fatty diet)
- विहार जन्य निदान
 - (i) दिवारायन
 - (ii) रात्रि जागरण
 - (iii) लाहौन
 - (iv) अध्यरान
 - (v) आगास
 - (vi) भय
 - (vii) वेग धारण

सम्प्राप्ति^१

विविध प्रकार के निदान सेवन करने से अत्यधिक आम दोष की उत्पत्ति होती है। कोछड में सञ्चित आम दोष में दोष के साथ मिलकर वातादि दोषों को अवरुद्ध कर स्वयं भारी होने के कारण अधोगामी रिसाओं के द्वारा गोप्र ही उरु प्रदेश की ओर गमन करता है एवं उरु प्रदेश में स्थान संश्य करता है। आम एवं कफ दोष से अवरुद्ध वायु अपनी प्राकृत गति नहीं कर पाती है तथा उरु प्रदेश का पूरण करते हुए सक्षिय, जंघा, उरु को अविधेय परिस्पन्द अर्थात् रोगी अपनी इच्छानुसार पैरों को इधर-उधर नहीं कर सकता एवं अत्यन्त शोक्त वाला हो जाता है। परिणामतः उरुस्तम्भ रोग की उत्पत्ति हो जाती है।

सम्प्राप्ति घटक

दोष	:	कफ प्रधन त्रिदोष, आमदोष
दूष	:	रस, मेद
अधिष्ठान	:	उरु प्रदेश
सोतस	:	रसवह, मेदवह
स्रोतो दुष्टि लक्षण	:	संग
उत्पत्ति स्थिति	:	आमशयग्वाराशयोत्थ
अनिस्थिति	:	अनिन्माद्य
साध्यासाध्यता	:	नवीन, उपद्रव रहित : साध्य
उपद्रव युक्त	:	असाध्य

पूर्वरूप^२

उरुस्तम्भ रोग में निम्नलिखित पूर्वरूप उत्पन्न हो सकते हैं—

1. संहात्याम चित जोडे वालादीन्दरसा सह।
न्दरसाद्यु गौतमाद्य वालागों: निरारितिः॥
- पूर्वन सावधान्यहृषे दोषो मंदे बलाकरः॥
- अविधेयरात्यस्मद् जनयत्वप्रियम्॥ (व.नि. 27/10-11)

1. ध्यान-अत्यधिक चित्ता (Anxiety)
2. निद्राधिक्य (Excessive Sleep)

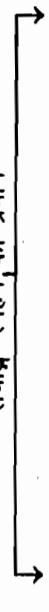
1. प्राप्त ध्यानप्रतिरोधित्वात्मकवक्तव्यः।
ज्ञानप्रतिरोधित्वात्मकवक्तव्यः। सद्वं तथाः॥ (व.नि. 27/10-11)

8. शीतलता (Coldness)
9. संज्ञा शून्यता (Coma, Fainting attack)
10. भारीपन (Heaviness)
11. अस्थिरता (Feeling of Unstability)
12. उर का पराये के समान बोध होना (Feeling of artificial limbs being attached to the body)

सापेक्ष निदान

उरस्ताम्ब का सापेक्ष निदान आमवात, सन्खिकात या वात व्याधियों से किया जा सकता है। सापेक्ष निदान के लिए प्रायः उपशय, अनुपशय का प्रयोग करते हैं क्योंकि उरस्ताम्ब एक मात्र ऐसी व्याधि है जिसमें स्नेहन एवं पंचकर्म चिकित्सा का पूर्णतः निषेध किया गया है।

सर्वद्वं स्नेहन का प्रयोग



उरस्ताम्ब व्याधि से पीड़ित व्यक्ति में निम्नलिखित लक्षण उपस्थित होने पर यह रोग असाध्य हो जाता है—

1. पैर में दाह (Burning feet)
2. अरति (बैरेनी-Restlessness)
3. तीव्र (सुई चुभोने के समान गोड़ा-Pricking type of pain)
4. शरीर में कंपन (Tremors in the body)
5. चट उपरोक्त लक्षण उपरिक्षण न हो तथा रोग नवीन हो तो वह उरस्ताम्ब साध्य होता है।

चिकित्सा सिद्धान्त

1. स्नेहन कर्म निषेध²
- स्नेहन एवं अनुवासन बरस्त के निरन्तर प्रयोग से कफ की वृद्धि होती है तथा

1. यद्य प्रातांति तेजुरात्र धन: पुरुषः भवेत्
उरस्ताम्बस्तु इत्यत्प्रत्यग्नेत्र युक्तो देह निहत्यन्तः॥ (च.चि. 27/19)
2. बुद्धे स्त्रेष्वाणि नित्य स्नेहनं बलिकर्म च।
तस्यस्योदयते चेष्ट न समर्थ विशेषताम्॥ (च.चि. 27/21)

3. स्तैमित्य (शरीर का गीले कपड़े से ढका प्रतीत होना-Feeling of being covered with wet cloth)
 4. अरुचि (Anorexia)
 5. ज्वर (Fever)
 6. रोमहर्ष (Horrification)
 7. छार्टि (Nausea / Vomiting)
 8. जड़ा सदन (Stiffness in Calf region)
 9. ऊर सदन (Stiffness in thigh region)
- सामान्य लक्षण**
- उरस्ताम्ब रोग के निम्न लक्षण शास्त्रों में वर्णित हैं—
1. गैरव (भारोपन-Heavyness in body)
 2. आयास (परिश्रम-Fatigue)
 3. सङ्कोच (Feeling of contractures in body parts)
 4. दाह (Burning)
 5. वेदना (Pain)
 6. मुन्हि (Numbness)
 7. कम्फन (Tremors)
 8. भेदनवत् गोड़ा (Cutting type of pain)
 9. स्थुरण (Throbbing sensation)
 10. तीव्र (Needling sensations)
- आचार्य सुश्रुत ने उरस्ताम्ब के निम्न लक्षण वर्णित किये हैं—
1. अंगमर्द (Bodyache)
 2. स्तैमित्य (शरीर का गीले कपड़े से ढका प्रतीत होना-Feeling of body being covered with wet cloth)
 3. रोमहर्ष (Horrification)
 4. रुजा (Pain)
 5. ज्वर (Fever)
 6. निद्रापित्य (Excessive sleep)
 7. स्तब्धता (Stiffness)

1. गैरवात्साम्बोवद्याहलक्षित्यपर्यन्ते।
अंगस्तुरुणतेव युक्तो देह निहत्यन्तः॥ (च.चि. 27/13)
2. तस्याम्बस्तुत्यत्प्रत्यग्नेत्र युक्तो देह निहत्यन्तः॥
निद्रापित्यत्प्रत्यग्नेत्र युक्तो देह निहत्यन्तः॥
गुरुकावद्यपृष्ठ न स्वाधित च भन्यते॥
तस्यस्यमित्याहलयत्यत्प्रत्यग्नेत्र युक्तो देह निहत्यन्तः॥ (सु.चि. 5/31-32)

उस एवं जड़ा प्रदेश के लोतसों में पार हुआ कफ विरेचन द्वारा नहीं निकाला जा सकता है। अतः उसस्तम्भ गोरे के लोतिनों में स्नेहन कर्म नहीं करना चाहिए। स्नेहन का गुण कफ दोष के समानधर्म होने के कारण यह कफ की वृद्धि करता है जिससे उसस्तम्भ व्याधि और उप हो जाती है।

2. पञ्चकर्म चिकित्सा निषेध¹

उसस्तम्भ चिकित्सा में वामन, विरेचन, बस्ति एवं नस्य आदि पञ्चकर्म चिकित्सा का पूर्णतः निषेध किया गया है। कफस्थान स्थित दोष वमन से, पित स्थान दोष विरेचन से एवं वात स्थान स्थित दोषों का निर्ति चिकित्सा द्वारा सम्प्रभु निर्दर्शन हो जाता है, परन्तु उसस्तम्भ गोरे में आम एवं कफ दोष उस प्रदेश में अवस्थित होते हैं। अतः पञ्चकर्म चिकित्सा से कोई लाभ नहीं होता है। आचार्य चरक ने स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार अल्पत गहराई में हने वाला जल मुख्यपूर्वक नहीं निकाला जा सकता है उसी प्रकार उसस्तम्भ में स्थित दोषों का निर्हरण वमन एवं विरेचन द्वारा नहीं किया जा सकता है।

3. शमन चिकित्सा²

सामान्यतः उसस्तम्भ में कफ एवं आम दोष की अधिकता होती है। अतः इनको निकित्सा हेतु निम्न विधियाँ अपनानी चाहिए—

- (i) शेषण (दोषों को नष्ट करना) चिकित्सा
- (ii) दोषों का शोषण करना।

4. रक्षण चिकित्सा³

उसस्तम्भ व्याधि में शरीर में रक्षता की वृद्धि करने के लिए अल्प तैल से सिद्ध निलंबण शाक, यज्ञ, साँवा एवं कोटों का प्रयोग करना चाहिए।

- 5. विकिध क्षार प्रयोग⁴
- 6. विकिध अस्त्रिष्ठ प्रयोग
- 7. मधूदक का प्रयोग⁵

चिकित्सा

1. निदान परिवर्जन

निदान परिवर्जन किसी भी व्याधि की प्रमुख चिकित्सा है। उसस्तम्भ गोरे के जो भी निदान होते हैं उनका परिवर्जन करने पर व्याधि शात हो जाती है।

1. शर्क्या न लापमदोयाम् सर्वा जड़ोंरमस्तिथताः।

वातस्तम्भाद हि तज्ज्वलयाद दृश्यो स्तम्भात्वं तदगताः।
न शर्क्या: मुख्युद्दृढ़ जलं निर्माणित स्थलात्॥ (च.चि. 27/23-24.)

2. तस्य संसामनं नित्यं शेषणं शोषणं तथा
पुरुषस्त्रियो मिष्ठान, कृष्णादिक्षिणवात्कामयाः॥ (च.चि. 27/25)

3. सदा स्वेषं चापय यवस्यामकक्षांवात्॥
राक्षेत्वर्णदेवज्ञातीतोपसाधितोः॥ (च.चि. 27/26)

4. शारोदित्यगोराच गोरोत्स्वात्यैव च।
मधूदकस निषेधात्या उसस्तम्भ निनानाः॥ (च.चि. 27/28)

II. शमन चिकित्सा
उसस्तम्भ में निनालिखित शमन चिकित्सा लाभदायक होती है—

1. रस/भस्म/पिष्टी

मात्रा : 125-250 मि.ग्र.

अनुपान : मधु

- (i) गुज्जाभ्रं रस : पारद, गन्धक, गुज्जा
- (ii) वात गजाज्जुरा रस : पारद, रस सिन्दूर, लौह भस्म
- (iii) कुञ्ज विनोद रस : पारद, गन्धक, हरताल, वत्सनाभ
- (iv) चतुर्मुख रस : पारद, गन्धक, लौह भस्म, अश्रुक्षभस्म
- (v) रांब भस्म : शांख
- (vi) प्रवाल भस्म : प्रवाल
- (vii) अश्रुक्ष भस्म : अश्रुक्ष
- (viii) कपर्द भस्म : कपर्द

2. चूर्ण

मात्रा : 3-6 ग्राम

अनुपान : कोणा जल

- (i) क्रिफलादि चूर्ण : क्रिफला, कुटकी, पिष्टलीम्
- (ii) पद्धधरण चूर्ण : पाठा, इन्द्रधव, चित्रक, कुटकी, हरीतकी, अतीस
- (iii) शाङ्कर्ष्टादि चूर्ण : गुज्जा, मदनफल, दत्ती
- (iv) पूर्वादि चूर्ण : पूर्वा, अतिविषा, कुछ्छ
- (v) स्वर्णशीर्षादि चूर्ण : स्वर्णशीर्षी, अतिविषा, चवा

3. वटी

मात्रा : 250-500 मि.ग्र.

अनुपान : कोणा जल

- (i) गुग्गुत वटी : गुग्गुत

- (ii) शिलाजटु वटी : शिलाजटु
- (iii) गोमूत्रघन वटी : गोमूत्र

4. कवाच

मात्रा : 20-30 मि.लि.

अनुपान : जल

- (i) गर्मादि कवाच : गर्मा, हरीतकी, काली मिर्च, हंस्रा
- (ii) भल्लातकादि कवाच : भल्लातक, गुड्ढी, शुण्ठी, हरीतकी
- (iii) पिष्टल्यादि कवाच : पिष्टली, पिष्टलीमूत, भल्लातक

5. आसव/अरिद

मात्रा : 20-30 मि.ली.
अनुपान : जल

- (i) गण्डीराघवारिद्वि : गण्डीर
- (ii) रसामूलारिद्वि : लघुपञ्चमूल, बहुत पञ्चमूल
- (iii) चिप्पल्यसव : चिप्पली

6. तैल योग

वाहाप्रयोगार्थ

मात्रा : आवश्यकतातुसार

- (i) कृष्णाय तैल : कुच्छ, सुगान्धबाला, अश्वगन्धा
- (ii) अष्टकद्वार तैल : पिपलीमूल, दधि, तक्र
- (iii) द्विपञ्चमूलाय तैल : दशमूल, त्रिफला, गुड्डी
- (iv) महासैन्धवाय तैल : सैन्धव, कुछ, शुण्ठी
- (v) सैन्धवादि तैल : सैन्धव, कुछ, शुण्ठी
- (vi) गोतुण्डाय तैल : गोतुण्डी, रस्ता, गोक्षुर

7. प्रत्येप, लेप, उत्सादन

स्थानिक प्रयोगार्थ

- (i) वल्मीक युतिकादि उत्सादन : वल्मीक, करज्ज, इट चूर्ण
- (ii) अश्वगन्धादि उत्सादन : अश्वगन्धा
- (iii) तक्रायादि लेप : जयन्ती, सहिजन, तुलसी
- (iv) सर्षप लेप : सर्षप
- (v) वत्सकादि लेप : वत्सक, तुलसी, कुछ, आर
- (vi) श्योनाकादि लेप : सोनापाठा, खिल्सि, बिल्ब बृहती
- (vii) श्योनाकादि परिषेक : श्योनाक, खदिर, गोक्षुर
- (viii) रसोनादि प्रत्येप : लहसुन, जीरा, सहिजन

8. एकल औषधि द्रव्य

- (i) हरीतकी (ii) वचा (iii) गुण्डु
- (iv) गोमूत्र (v) यवक्षार (vi) शिलाज्जु
- (vii) अश्वगन्धा (viii) गोक्षुर (ix) पाता
- (x) शुण्ठी (x) सहिजन (xii) मधु
- (xiii) सर्षप (xiv) पिपली (xv) एण्ड
- (xvi) लालतकी (xvii) निब्ब (xviii) अर्क
- (xix) आरंबध (xx) काकमाची (xxi) फटाल इत्यादि

III. योगासन

उत्साम में तिन्ह योगासन लाभदायक होते हैं—

- (i) शालासन (ii) सुखासन (iii) दलासन
- (iv) पचासन (v) सिद्धासन इत्यादि

IV. प्राकृतिक चिकित्सा

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत उत्साम रोग में युक्तिका से उबलन करना एवं
आतप स्नान अति लाभदायक होता है।

आदर्श चिकित्सा पत्र

- | | |
|---|----------------|
| 1. निदान परिवर्जन | |
| 2. सम्यक पथ्यापाथ्य का पालन | |
| 3. योगाध्यास/प्राणायाम/प्राकृतिक चिकित्सा | |
| 4. वाहू प्रयोगार्थ उत्सादन/लेप | |
| प्रत | : सार्य |
| 5. गुञ्जाभ्रद रस | : 125 मि.ग्रा. |
| शुग्ग भस्म | : 250 मि.ग्रा. |
| मधु से | 1×2 मात्रा |
| 6. शोजनोत्तर स्थानिक प्रयोगार्थ | |
| योगराज गुण्डु | : 250 मि.ग्रा. |
| अग्नितुण्डी बटी | : 250 मि.ग्रा. |
| गोमूत्र से | 1×2 मात्रा |
| 7. बद्धप्रण चूर्ण | : 3 ग्राम |
| त्रिफलादि चूर्ण | : 3 ग्राम |
| उण्णोत्तक से | 1×2 मात्रा |
| 8. शोजनोत्तर सम्भाग जल से | |
| पिपल्यासव | : 20 मि.ली. |
| सम्भाग जल से | 1×2 मात्रा |
| पानार्थ | |
| 9. अस्तकट्टव तैल दुध से | |
| | : 10 मि.ली. |
| | 1×2 मात्रा |

पथ्यापथ्य

पथ्य

आहार^३

सभी रुक्ष क्रियाएं, कोदों, रक्तशालि, चर्व, कुलतथ, रायमाक धन्य, उट्टालक धन्य, साहजन, कैल्ता, पातल, लहसुन, मकोय, मिश्चपत्र, बांझा, हरीतकी, बैगन, उष्ण जेत, अमलतास, पत्रशाक, तिल, तक, अरिष्ट, शहद, कट्ठ, तिक्त, कषण द्रव्य, शार एवं गोमूत्र इत्यादि।

अपथ्य

आहार^३

गुरु, शीत, द्रव, तिनाथ, असात्य भोजन, वमन, तिरचन, बारित, रक्तमोक्षण, स्नेहन, माष, चावल की पोटी एवं बेसन, मैदा के पदार्थ इत्यादि।

विहार

दिवाशयन, अल्प श्रम, अतिनिद्रा, अव्यवाय, स्नान नहीं करना एवं अव्यायाम इत्यादि।

Latest Developments

Myopathy

Definition

The term myopathy may be used to define any disease in which the patient's symptoms can be attributed to pathological, biochemical or electrical changes which are occurring in the muscle fibres.

Muscle disorders may be genetically determined or may result from autoimmune disorders, systemic diseases or the effects of a variety of exogenous toxins.

Disorders of voluntary muscles

1. Muscular dystrophy.
2. Metabolic and endocrine myopathy.

विहार^२

चलना एवं नदी में धारा के विरुद्ध तैरना इत्यादि।

Diagnosis

Diagnosis
Diagnosis is largely clinical depending on recognition of the distribution of affected muscles, the identification of associated signs and symptoms and in many patients a through family history. In some muscular dystrophies a specific genetic anomaly has been identified, for example in Duchene dystrophy and dystrophia myotonica and this may allow a specific diagnostic marker.

1. Muscular Dystrophy

Progressive muscular dystrophy is a group of hereditary disorders characterized by progressive degeneration of a group of muscles without involvement of the nervous system.

Signs & Symptoms

- (i) The wasting and weakness are symmetrical.
- (ii) There are no fasciculations.
- (iii) Tendon reflexes are preserved until a late stage and there is no sensory loss.
- (iv) Differential diagnosis depends on the age at onset, distribution of affected muscles and type of inheritance.

Diagnostic features of Muscular Dystrophy.

Dystrophy	Inheritance	Age at onset	Muscles Affected
1. Duchene	X-Linked recessive	3-10 years	Proximal legs and arms, then general.
2. Limb girdle	Autosomal recessive	10-30 years	Pelvic girdle, shoulder girdle or both
3. Facio-Scapulo-humeral	Autosomal dominant	10-40 years	Facial, shoulder girdle, serratus anterior
4. Distrophia myotonica	Autosomal dominant	Any age 20-60	Temporalis, facial, distal limbs, Myotonia.

Investigations

1. रुक्ष: सर्वतिथि: स्वेच्छा: ।
..... शारसवा गत्वा जलन्तम्। (खे.र. 28/27-29)
2. व्यायामस्वच व्यथाग्रिति: ।
..... संवेष्टपुरस्तापविकारितम्। (खे.र. 28/30-31)
3. गरु शीत द्रवणमध्य ।
..... त हितो प्राहुरलस्तापावकारितम्। (खे.र. 28/32-33)

बात व्याधि

बादल छाये हुने की अवस्था में रोग के लक्षणों में तीव्र वृद्धि होती है जबकि इसके विपरीत बातचरण में लक्षणों में कमी होती है। आर्थिनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार आर्थिनिक विभिन्न आमवात व्याधि की साम्यता Rheumatoid Arthritis से की जाती है। कुछ विद्वान् आर्थिनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित आमवात ज्वर (Rheumatic fever) की तुलना भी आमवात से करते हैं क्योंकि इसमें सभी लक्षणों में शोध के समय-साथ ज्वर, हृदयह इत्यादि लक्षण भी मिलते हैं। इस प्रकार आमवात व्याधि का वर्णन सर्वप्रथम आचार्य माधवकर से प्रारम्भ होकर बाद के अन्य प्रथमों जैसे—वृद्ध माधव, वाग्सेन, चक्रदत्त, शार्ङ्गधर मोहिता, भावप्रकाश, योगारताकर, ददनिग्रह इत्यादि ग्रन्थों में भी आमवात का विस्तृत वर्णन मिलता है।

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चक्र सोहिता चिकित्सा स्थान—अध्याय 15
2. माधव निदान—अध्याय 25
3. चक्रदत्त—अध्याय 25
4. शार्ङ्गधर सोहिता पूर्वखण्ड—अध्याय 7
5. भाव प्रकाश मध्यम खण्ड—अध्याय 26
6. शैक्षण्य तत्त्ववती—अध्याय 29
7. गार निग्रह—अध्याय 22

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

आमवात शब्द की उत्पत्ति आम और वात इन दो शब्दों से द्वारा है। आमवात शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जा सकती है—

1. आमेन सहित: वात: आमवातें:
2. आमश्च वातश्च आमवातः:

अर्थात् आमवात 'आम' एवं 'वात' इन दोनों शब्दों के मिलने से बनता है।

परिभाषा³

आमवात व्याधि में आम एवं वात का प्रकोप एक साथ होता है। प्रकुपित आम एवं वात, कोष्ठ, त्रिक प्रदेश एवं सभी लक्षणों में प्रवर्षि हो जाते हैं तथा सम्पूर्ण शरीर को स्तब्ध (Stiffness all over the body) करके आमवात रोग की उत्पत्ति करते हैं।

निदान¹

आमवात रोग की उत्पत्ति एवं वात प्रकोप के प्रमुख कारण हैं—

1. विरुद्धाहार का अधिक समय तक सेवन
2. स्नान भोजन के उपरान्त व्यायाम करना
3. विरुद्ध वैष्णा
4. म-दानिन

उपरोक्त सभी निदान आमदोष की उत्पत्ति एवं वात प्रकोप के प्रमुख कारण हैं। अतः यह सभी आमवात के निदान माने जावे हैं। आमदोष की उत्पत्ति ने उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त निम्नलिखित कारण भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

1. असम्यक् आहार
2. वैगचावारण
3. शीतल आहार
4. रुक्ष आहार
5. अत्यन्त गुण आहार
6. विरकातीन व्याधि
7. अमुखवक्त्र शाया
8. दिवाशयन
9. रात्र जागरण
10. काम, क्रोध, लोभ, मोह, इच्छा, हैष, लज्जा, भय, चिना, शोक, अवसाद,

तनाव इत्यादि मानसिक कारण।

वस्तुतः आमवात की उत्पत्ति में अनेक प्रकार के शारीरिक भाव, मानसधार, वातावरण जन्य कारण एवं क्रम्भु परिवर्तन जन्य कारण इत्यादि महत्वपूर्ण होते हैं और इस रोग की उत्पत्ति में पृथक-पृथक अथवा सम्मिलित रूप से भाग लेते हैं।

सम्प्राप्ति²

आमवात के विविध प्रकार के निदान सेवन से प्रायः तीनों दोषों का प्रकोप होता है जिसके फलस्वरूप अग्निमांस्य एवं अन्तः आमदोष की उत्पत्ति होती है। यह आमदोष वायु के द्वय प्रेरित होकर श्लेष्म स्थानों की ओर गमन करता है। आमदोष श्लेष्म स्थान (आमाशय, हृदय, सिद्धियां इत्यादि) में उपस्थित कफ से मिलकर उसे और भी पिछलत, तिरथ एवं विकृत कर देता है। आम दोष अपने विद्युग्ण के कारण पित को दूषित करता है एवं अभिघन्द्युग्ण से लोतस को अवरुद्ध करके वायु मार्ग को रोककर वात दोष को भी प्रकुपित कर देता है। यहां से आम दोष विमार्गामन करते हैं।

1. विरुद्धाहारवस्थ्य मन्त्रान्तरिक्षलस्य च।
2. स्त्रियं प्रसवतो द्वारा व्यावायं कुरुतेस्था। (मा.नि. 25/1)
3. वायुना प्रेतो द्वारा: श्लेष्मस्वान प्रथावति।

तेजावल्य विरुद्धाहार शोषनज्ञे तसः।
स्नोत्यामिष्यवर्दयति ननावपांडितिष्ठितः।

¹. कार्यप्रवातस्याग्नित्वं वैवर्ण्यं मूलान्तिकां दोषाणां॥ (च.नि. 12/5)

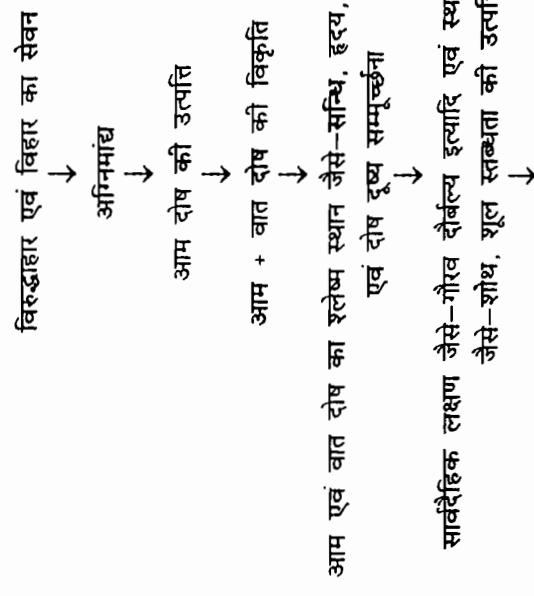
². गुणान्तरावलम्बनं च नानादेवा॥ (च.नि. 6/62)

³. युत्पत्तिप्राप्तवरोन्नियम् सोद्युप्रसंस्कारी।

स्वयं न कुरुते नानं आमवातः स उत्पन्नाः व्याप्ति 25/5)

करते हुए, स्रोतसों को दूषित करते हुए शरीर में दौर्बल्य, गैरव, हृदयरोग इत्यादि लक्षणों को उत्पन्न करता है। सच्च प्रदेशों में सञ्चित आम दोष त्रिक, जातु, मणिबन्ध, कपूर एवं अंगुलियों की सच्चियों में स्थानीय लक्षण ऐसे शोथ, शूल, स्तन्यता आदि लक्षण उत्पन्न करते हुए समग्र रूप से आमवात व्याधि की उत्पत्ति करता है।

सम्प्राप्ति चक्र



सम्प्राप्ति घटक

दोष :	त्रिदोष (विशेषकर वात, आम)
दूष :	रक्त, मांस, स्नायु, कण्डरा, अस्थि, सन्धि
अधिष्ठान :	सर्व सच्चियाँ
स्रोतस :	अन्तर्वह, स्मवह
स्रोतो दुष्ट प्रकार :	संग, विमार्गामन
अग्नि स्थिति :	अग्निमांधा
व्याधि स्वभाव :	आशुकारी/दारुण
सम्बाहर स्थान :	हृदय, धमनीय, सन्धियाँ
उद्भव स्थान :	आमाशय
साध्यासाध्यता :	कृच्छ्रसाध्य/याप्य

भेद

आमवात के भेद दो प्रकार से किये जा सकते हैं—

(i) दोपानुसार आमवात के भेद आचार्य शार्ङ्गधर ने दोष के आधार पर आमवात के 4 भेद बताए हैं। दूसरी ओर आमवात के भेदों का स्पष्ट उत्तेज नहीं करते हुए आचार्य माधवकर ने आमवात की साध्यासाध्यता बताते हुए आमवात के सात भेदों का स्पष्ट संकेत किया है।

- 1. वात प्रधान
- 2. पित्त प्रधान
- 3. कफ प्रधान
- 4. वातपित्र प्रधान
- 5. वातकफ प्रधान
- 6. कफपित्र प्रधान
- 7. त्रिदोषज आमवात

(ii) लक्षणों के आधार पर आमवात के भेद

- 1. तीक्ष्णावस्था जन्य आमवात
- 2. जीणावस्था जन्य आमवात

पूर्वरूप

यद्यपि सहिता ग्रन्थों में आमवात के पूर्वरूपों का स्पष्ट वर्णन नहीं होता है परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो आमवात के निम्नलिखित पूर्वरूप प्रकट हो सकते हैं—

- 1. अग्निमांधा (Poor Appetite)
- 2. अङ्गमर्द (Bodyache)
- 3. हृदौरव (Heaviness in cardiac region)
- 4. लालाप्रसेक (Excessive salivation)
- 5. शाखाओं में स्तन्यता (Stiffness in extremities)
- 6. अनिद्रा (Insomnia)
- 7. रोमहर्ष (Horripilation)
- 8. आलस्य (Fatigue/Lassitude)

सामान्य लक्षण³

- आमवात व्याधि में निम्नलिखित सामान्य लक्षण प्रकट हो सकते हैं—
- 1. अङ्गमर्द (Bodyache)
- 2. अरुचि (Anorexia)
- 3. तुष्णा (Excessive thirst)
- 4. आलस्य (Fatigue/Lassitude)
- 5. गोरव (Heaviness in body)
- 6. ज्वर (Fever)
- 7. आहार का पाचन नहीं होना (Indigestion)
- 8. शरीर के विभिन्न अंगों में शोथ (Oedema)

-
- 1. चत्वारशत आमवात: स्वर्वतिपत्रकैस्त्रिय।
 - 2. चतुर्थ: सम्प्राप्ति-तंत्र..... ॥ (शार्ङ्गधर सहिता, चूर्व खण्ड 7/41)
 - 3. एकदोषातु: शोष: स कृच्छ्र: सम्प्राप्तिकः ॥ (मा.त्रि. 25/12)
 - 4. अङ्गमर्दाजुर्विरचन्तुमा हृत्यात्मसं औरत ज्वरः।
 - 5. अपाकः शृणताङ्गां आमवातस्य लक्षणम्। (मा.नि. 25/6)

9. त्रिक सन्धि के आक्रान्त होने पर सतत कटिशूल प्रारम्भ होता है तथा गों को चलने-फिरने, उठने बैठने में कठिनाई होती है। (Low Backache)।

आचार्य शार्द्धर ने गों गणना के क्रम में आमवात के 4 भेद किये हैं। आचार्य माधवकर ने आमवात के 7 भेद बतलाकर दोबोल्ट्पत्ता के आधार पर लक्षणों का वर्णन किया है। आचार्य माधवकर ने हिंदोपेज एवं सन्निपत्तज आमवात के लक्षणों का अलग से वर्णन नहीं किया है क्योंकि यह प्रकृति समसमालय जन्य होता है।

1. वात प्रथान आमवात के लक्षण

- (i) अत्यधिक शूल (Severe Pain)
2. पिण्ठ प्रथान आमवात के लक्षण
 - (i) अत्यधिक दाह (Burning)
 - (ii) प्रभावित आंग का रक्त वर्ण होना (Inflammation of affected organ)
 - (iii) तुष्णा की अधिकता (Excessive Thirst)

3. कफ प्रथान आमवात के लक्षण

- (i) शरीर की सन्धियाँ एवं अन्य अंग गोले कपड़े से ढके हुए प्रतीत होते हैं (Feeling of body being covered by wet cloth)
- (ii) शरीर में भारीपन (Heaviness in the body)
- (iii) सर्वशरीर में कफङ्ग (Licking)

4. सन्निपातज आमवात के लक्षण

हिंदोपेज आमवात में दोनों दोखों के सम्मिलित लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार लक्षणों के आधार पर आमवात के भेद एवं लक्षण

आमवात अत्यन्त दारुण व्याधि है। आमवात जब सम्पूर्ण रूप से शरीर में व्यवस्था होता है तो इसके लक्षण अत्यन्त तीव्र प्रकार के होते हैं। कुछ वर्षों पश्चात व्याधि के जीर्ण हो जाने पर लक्षणों में मदता आ जाती है, परन्तु अःय सन्ध्यात विकृतियाँ अधिक दृष्टिगोचर होने लगती हैं।

1. तीव्रावस्था अथवा प्रवृद्ध आमवात के लक्षण^१

आमवात की तीव्रावस्था में निम्नलिखित लक्षण प्रमुखता से मिलते हैं—

1. कट्टर्यां व्याधा गोलीन्ति सन्धियु रक्षयुक्तं
2. पिण्ठलस्थाहां च स्थूलं पचानुगम्।
3. स कफः सर्वोल्लासां चक्रपूर्वकं तथादिशेत॥ (मा.नि. 25/11)

हस्तपदाविषयुत्संक्रिकज्ञानसन्धियु।
कर्मोति सर्वज्ञं शोध्य चत्र दोषः प्रपृष्ठो।

स देशो रस्ततेऽत्यधि व्याविद्ध इव वृश्चिकके॥।।।

(i) हाथ, पैर, शिर, गुल्फ, त्रिक, जानु, उरु की सन्धियों में बेदना एवं सोथ (Pain and inflammation in the joints of Hands, Legs, Ankles, Sacrum, Knees and thighs)

(ii) वृश्चिक दर्शां के समान बेदना (Pain like scorpion sting)

(iii) अग्निमात्र (Poor Appetite)

(iv) लालासाव (Excessive Salivation)

(v) अरुचि (Anorexia)

(vi) गौत्व (Heaviness in the body)

(vii) उत्साह में हानि (Lack of interests in surroundings)

(viii) पुख वैरस्यता (Tastelessness in mouth)

(ix) दाह (Burning)

(x) बहुमूत्रता (Polyuria)

(xi) उदर में भारीपन (Heaviness in Abdomen)

(xii) उदर शूल (Pain in Abdomen)

(xiii) निराविपर्य (Change in sleeping pattern)

(xiv) तुष्णा (Excessive Thirst)

(xv) भर्ति (Vomiting)

(xvi) श्रम (Vertigo)

(xvii) मूळ्ड्वा (Fainting)

(xviii) हृदय (Stiffness in cardiac region)

(xix) विबन्ध (Constipation)

(xx) शरीर में जाइयता (Stiffness all over body)

(xxi) आन्त्रकूजन (Gurgling sound in Abdomen)

(xxii) आनाह (Constipation)

2. आमवात की जीणीवस्था के लक्षण

आमवात की जीणीवस्था में सभी लक्षण प्रायः प्रमद हो जाते हैं लेकिन उनमें आमवात की तीव्रावस्था में निम्नलिखित लक्षण प्रमुखता से मिलते हैं—
प्रायः स्थायी प्रकार की अस्थि विकृति उत्पन्न हो जाती है। आमवात गों की जीणीवस्था में कुछ प्रमुख लक्षण निम्न रूप में प्रकट होते हैं—

- (i) अस्थि विकृति (Deformity in bony joints)

जन्मसंर्वेष्य स्प्रकारसंगोत्पमा।
उत्साहानि वैरस्य दाह च वृष्टिप्रतापाः।

कुक्षी कठिनता शूल तथा निदा विपर्ययाः।

हृदयादेप्यमूर्खरूप विद्विवद्वदताः।

आद्यात्मकज्ञानाहं कष्टान्तरायानप्रवत्तनः। (मा.नि. 25/7-10)

- (ii) अंगुष्ठ का मणिबन्ध सन्धि की ओर तथा अंगुलियों का बाहर की ओर पूँड जाना (Ulnar deviation of fingers and radial deviation of thumbs)
- (iii) अंगुलियों में बक्रता (Deformities in fingers-spindle shaped fingers)
- (iv) मासपेशी, कण्डडा आदि में शुर्कता एवं स्तब्धता (Dryness and stiffness in muscles and tendons)

सापेक्ष निदान

अयुवर्दीय सहिता ग्रन्थों में अनेक प्रकार की सन्धियात व्याधियों का वर्णन प्राप्त होता है जिनके लक्षण परस्मर मिलते-जुलते हैं। परन्तु बहुशः पायी जाने वाली कुछ प्रमुख व्याधियों जैसे आमवात, बातरक्त, सन्धिवात आदि में सापेक्ष निदान करना अति आवश्यक प्रतीत होता है। इन व्याधियों के विभेदक लक्षण निम्नलिखित हैं—

क्र.सं.	लक्षण	आमवात	सन्धिवात	बातरक्त	क्रोच्कशीर्षी
1.	दोष	बात कफ	बात	रक्त	बात, रक्त
	प्रधान त्रिदोषज	प्रधानता	प्रधान त्रिदोषज	प्रधान त्रिदोषज	प्रधान त्रिदोषज व्याधि
2.	दूष	रस धातु	रस धातु	रस एवं रक्त धातु	रस एवं रक्त धातु
3.	व्याधि	प्रथम छोटी	प्रथम बड़ी	प्रथम छोटी	केवल जानु सन्धि में
	उद्भव सन्धि, प्रचात सन्धियों में	प्रथम बड़ी प्रथम छोटी	सन्धियों में	जानु सन्धि में	जानु सन्धि में
4.	रुजा एवं लक्षण,	प्रारम्भ में दोनों केवल सन्धिरुजा	शोथ एवं रुजा दोनों जीणवस्था में	शोथ, शृणात सिर दोनों रुजा दोनों जीणवस्था में	शोथ, शृणात सिर दोनों रुजा दोनों जीणवस्था में
	शोथ		केवल रुजा	केवल रुजा	केवल रुजा
5.	ज्वर	प्रायः ज्वर	ज्वर नहीं	ज्वर नहीं	ज्वर नहीं, सन्धिशूल
6.	वेदना का प्रकार	वृश्चिक समान	सामान्य वेदना	सूक्ष्म समान वेदना एवं रोग वृद्धि	सूक्ष्म समान वेदना एवं रोग वृद्धि
7.	स्नेहन से लाभ	प्रारम्भ में से लाभ	लाभ	लाभ	लाभ
	लाभ	रोग वृद्धि, जीणवस्था में लाभ	मिलता है	मिलता है	मिलता है
8.	रक्तमोक्षण लाभ	—	—	लाभ	—
				नहीं होता	

साध्यासाध्यता¹

1. आमवात यदि स्वस्थ एवं बलवान व्यक्ति में, एक दोषज, नवीन एवं अत्यन्त सन्धियों में हो तो वह साध्य होता है।
2. द्विदोषज आमवात याप्य होता है।
3. त्रिदोष प्रकोप से उत्पन्न आमवात, उर्बल व्यक्ति, सम्पूर्ण सन्धियों में व्याप्त तथा शोथ युक्त होने पर कुच्छुसाध्य होता है।
4. प्रधानतः आमवात अत्यन्त कष्टसाध्य होता है तथा एक बार हो जाने पर प्रायः जीवन भर रहता है।
5. चिकित्सा करने से कुछ समय तक ठीक रहता है, परन्तु वर्षा ऋतु में या शीतल आहार विहार के प्रयोग से बार-बार आमवात की तीव्र स्वरूप में उत्पत्ति होती रहती है।

उपद्रव

सहिता ग्रन्थों में आमवात के उपद्रवों का अलगा से वर्णन प्राप्त नहीं होता है। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो आचार्य माधव ने आमवात के लक्षणों में हृदय विकृति का उल्लेख किया है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में आमवातिक ज्वर (Rheumatic fever) में हृद विकृति प्रायः द्विपत्रक कपाट (Mitrail Valve) में होती है तथा Rheumatic fever ठीक हो जाने पर भी जनी रहती है। यह विकृति शत्य क्रिया से ही ठीक होती है। कमी-कभी सम्यक् चिकित्सा के अभाव में रोगी को मृत्यु भी हो जाती है। आमवात व्याधि से ग्रस्त व्यक्ति में लम्बे समय तक आमवात रोग से आक्रान्त होने के पश्चात प्रायः निम्नलिखित उपद्रव दृष्टिगोचर होते हैं—

1. अवसाद (Depression)
2. मानसिक तनाव (Stress)
3. उच्च रक्तदाब (Hypertension)
4. अत्यन्त पित्त (Hyperacidity)
5. परिणाम शूल (Duodenal Ulcer)
6. अनिद्रा (Insomnia)
7. हृदय (Cardiac disorders)
8. अंग विकृति (Deformities of organs/joints)

1. एकदोषनुः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्चते। सर्वदेहवचः शोथः सः कुच्छ सान्निपातिकः॥ (मा.नि. 25/12)

चिकित्सा सिद्धान्त^१

आमवात के गोगियों में निम्नलिखित चिकित्सा सिद्धान्त प्रयोग किये जाते हैं—

1. लंघन
2. स्वेदन-मुख्यतः नवीन आमवात में रुक्ष बातुका स्वेदन, जीर्ण आमवात में उपनाह इत्यादि।
3. तिक्त एवं कट्ट रस प्रधान औषधियों का प्रयोग
4. दीपन पाचन चिकित्सा
5. विरेचन/कोष्ठ शुद्धि
6. बस्ति चिकित्सा
7. एण्ड तैल का प्रयोग।

चिकित्सा

आमवात की सम्पूर्ण चिकित्सा को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

- I निदान परिवर्जन
- II शोधन चिकित्सा
- III शमन चिकित्सा
- IV योगासन/प्राकृतिक चिकित्सा

I निदान परिवर्जन
निदान परिवर्जन किसी भी व्याधि की चिकित्सा का प्रथम चरण होता है। यदि व्यक्ति व्याधि उत्पादक कारणों का पूर्णतः परित्याग करता है, तो व्याधि का समूल नाश शीघ्रता से होता है। अतः प्रारम्भ में आमवात के जो निदान बताए गये हैं उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए जैसे—शीतल आहर निहर का परित्याग, वायु स्वेदन परित्याग, खुले आकाश के नीचे शयन नहीं करना तथा वर्षास्तु में भौगोल से बचना इत्यादि।

II शोधन चिकित्सा
आमवात चिकित्सा में शोधन चिकित्सा का विशेष स्थान है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रक्रियाएं अपनायी जाती हैं—

1. लड्जन
आमवात में प्रमुख उत्पादक कारण आम को नष्ट करने के लिए सर्वप्रथम लंघन करना चाहिए। लंघन से आम पाचन हो जाता है तथा अग्नि दीप्ति हो जाती है।

लड्जन स्वरूप तिक्त दीपणाति कर्तव्य च।
संभवाचन्तुवात्य श्वार वर्णितः प्रशस्यातः १ चक्रदत्त आमवात ।

निहत्साखक एवं एण्डलंहकरणातः १ वृद्ध २७/१३।
निहत्साखक एवं एण्डलंहकरणातः १ वृद्ध २७/१३।

2. विरेचन

अन्नवह स्वोत्स में उपस्थित आम दोष के निर्हरण के लिए विरेचन अत्यन्त उत्तम उपाय है। विरेचन के द्वारा अपाच्य अश तथा आम दोष शरीर से बाहर निकल जाते हैं जिससे व्याधि का शमन हो जाता है। विरेचन के लिए प्रायः एण्ड तैल का प्रयोग बहुतायत से किया जाता है जिसकी सौहिता ग्रन्थों में अत्यन्त प्रशंसा की गई है।

3. बस्ति प्रयोग

यदि लंघन तथा विरेचन से भी आमवात में आम दोष निर्हरण नहीं होता है तो बस्ति चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए। विशेषकर शार बस्ति आमवात चिकित्सा में अत्यन्त लाभदायक होती है। इस प्रकार शोधन कर्मों के द्वारा आमवात के मूल कारण आमदोष एवं वात दोनों का समूल नाश हो जाता है। लंघन, पाचन, विरेचन, बस्ति कर्मों की सहायता से कोष्ठगत दोष पूर्णतः शान्त हो जाते हैं। रक्त संवहन में पहुंचे हुए आमदोष तथा संव्याप्ति आमदोष को दूर करने के लिए रुक्ष बातुका स्वेदन या लवण पोटली का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार शोधन चिकित्सा से दोष निर्हरण कर तत्पश्चात शमन चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए।

III शमन चिकित्सा

आमवात के चिकित्सा सूत्रों में मुख्यतः तिक्त रस प्रधान द्रव्यों एवं कट्ट रस प्रधान योगों का प्रयोग करने का निर्देश दिया गया है। तिक्त रस विशेषकर आम पाचन के लिए उत्तम होता है जबकि कट्ट रस मुख्यतः दीपन, पाचन के लिए श्रेष्ठ होता है। आमवात की निराम अवस्था में वाहू स्नेहन का भी प्रयोग करना चाहिए। आचार्य वाघट ने निराम अवस्था में केवल वातनाशक चिकित्सा करने का निर्देश किया है जबकि सामावस्था में लंघन, पाचन, दीपन, रुक्षस्वेदन, संकर स्वेद एवं शोथ नाशक औषधि द्रव्यों के सेवन का निर्देश किया है। आमवात में मुख्यतः आम दोष की उत्पत्ति नहीं होने देना चाहिए तथा दीपन, पाचन करते रहना चाहिए। आमवात चिकित्सा में निम्नलिखित औषधि योगों का युक्ति पूर्वक प्रयोग करना चाहिए—

1. रस/धूसम/पिण्डी

मात्रा : १२५-२५० मि.ग्रा.

अनुपान : मधु/कोणा जल

- (i) आमवातारि रस : पारद, गन्धक, त्रिफला, चित्रक
- (ii) आमवातेश्वर रस : पारद, गन्धक, लौह धूम, ताम्र धूम
- (iii) वाताजेन्द्र रस : अध्रक धूम, लौह धूम, ताम्र, वस्त्राम, पारद, गन्धक

१. नीते नियमता यमं स्वेदनहृन्याचन्द्रैः।

स्वेदचालेप संकारैः नुसारं केवलवाततु॥। (३३.३३. २२/५१)

- (iv) अमृतमधरी रस : शुद्ध हिंगुल, वत्सनाभ चिष, पिपली, मरिच
 (v) आमवातारि वज्र रस : पारद, गन्धक, लौह भस्म, अध्रक भस्म, आफीम
 (vi) वातागांठुश रस : वत्सनाभ, मुण्डी, सस सिन्दूर
 (vii) वातारि रस : पारद, गन्धक, त्रिफला, चित्रक
 (viii) रसराज रस : रस सिन्दूर, अध्रक भस्म, सुबर्ण भस्म, मुक्ता
 (ix) ताल सिन्दूर : पारद, गन्धक, संखिया, हरताल
 (x) मल्ल सिन्दूर : पारद, गन्धक, संखिया, रसकर्पूर
 (xi) शूग भस्म : शूग
 (xii) गोदन्ती भस्म : गोदन्ती
 (xiii) वंग भस्म : वंग
 (xiv) स्वर्ण भस्म : स्वर्ण
 (xv) प्रवाल पञ्चामृत : प्रवाल, कपट, मुक्ता, शंख
 (xvi) शंख भस्म : शंख
 (xvii) मुक्ता पिण्डी : मुक्ता
 (xviii) प्रवाल पिण्डी : प्रवाल
- 2. चूर्ण**
- मात्रा : 3-6 ग्राम
 अनुपान : कोणा जल/मधु
 (i) हरीतकी चूर्ण : हरीतकी
 (ii) शुच्छी चूर्ण : शुण्ठी
 (iii) पञ्चकोल चूर्ण : पिप्पली, पिप्पलीमूल, चब्य, चित्रक, शुण्ठी
 (iv) अमृतादि चूर्ण : गुडची, शुण्ठी
 (v) वैश्वानर चूर्ण : शुण्ठी, हरीतकी, अजमोदा
 (vi) अलम्बुद्ध चूर्ण : लज्जातु गोक्षुर, गुडची
 (vii) हिंगवाहि चूर्ण : हिंग, चब्य, शुण्ठी
 (viii) पश्यादि चूर्ण : हरीतकी, शुण्ठी
 (ix) त्रिवृतादि चूर्ण : निशोथ, शुण्ठी, सेन्धव
 (x) देवदारीदि चूर्ण : देवदार, वचा, मुस्तक
 (xi) पुर्वन्वाति चूर्ण : पुर्वन्वा, गिलोय, शुण्ठी
 (xii) त्रिकटु चूर्ण : शुण्ठी, पिप्पली, मरिच
 (xiii) नागरादि चूर्ण : शुण्ठी, कुपीतु
- 3. वटी/मोदक/पिण्ड**
- मात्रा : 250-500 मि.ग्र.

- अनुपान : मधु, कोणा जल
 (i) अग्निटुडी वटी : कुपीतु, वत्सनाभ, त्रिफला
 (ii) संजीवनी वटी : विडग, शुण्ठी, पिप्पली, वत्सनाभ
 (iii) चित्रकादि वटी : चित्रक, त्रिकटु, सज्जीक्षर, यवक्षर
 (iv) आमप्रथिनी वटी : अर्क, गन्धक, लौह भस्म, अध्रक
 (v) अजमोदादि वटक : अजमोदा, मरिच, पिप्पली
 (vi) रसोन पिण्ड : रसोन, हिंग, यव, क्षार
 (vii) आमवातारि वटी : पारद, गन्धक, लौह भस्म, ताप्र भस्म
 (viii) आमगजसिंह मोदक : शुण्ठी, अजवायन, जीरा, धान्यक
- 4. लौह योग**
- मात्रा : 125-250 मि.ग्र.
- अनुपान : मधु
- (i) त्रिफलादि लौह : त्रिफला, मुस्तक, लौह, गुण्डु
 (ii) विडगादि लौह : पारद, गन्धक, अध्रक, विडग, लौह
 (iii) पंचाननरस लौह : लौह भस्म, अध्रक भस्म, गुण्डु
 (iv) नवायस लौह : त्रिफला, त्रिकटु, लौह
- 5. गुण्डु योग**
- मात्रा : 500-1000 मि.ग्र.
- अनुपान : उष्ण जल, मधु
- (i) बातारि गुण्डु : एण्ड तेल, गन्धक, गुण्डु
 (ii) योगराज गुण्डु : चित्रक, पिप्पली मूल, अजवायन
 (iii) बृहत योगराज गुण्डु : त्रिकटु, त्रिफला, पांठा, सौंफ, गुण्डु
 (iv) सिंहनाद गुण्डु : गुण्डु, सर्षप तेल, त्रिफला
 (v) व्याधिशार्दूल गुण्डु : त्रिफला, त्रिकटु, गुण्डु
 (vi) शिवा गुण्डु : हरीतकी, त्रिफला, विडग, गन्धक, एण्ड
 (vii) बृहत सिंहनाद गुण्डु : गुण्डु, सर्षप तेल, त्रिफला, त्रिकटु
 (viii) अमृतादि गुण्डु : गुडची, गुण्डु
- 6. व्याध**
- मात्रा : 20-30 मि.लि.
- अनुपान : जल
- (i) एण्डादि व्याध : एण्डमूल, गोक्षुर
 (ii) शट्यादि व्याध : शटो, शुण्ठी, हरीतकी
 (iii) रसोनादि व्याध : रसोन, शुण्ठी, निर्मुडी
 (iv) गम्जा पञ्चक व्याध : गम्जा, गडची, एण्डमूल, देवदार, शुण्ठी

अनुपान : उधः/कोणा जल

(i) एण्ड पाक : एण्ड, त्रिकटु, लौह भस्म, अश्वक भस्म

(ii) सोन पाक : सोन

(iii) त्रिकट्टकाद्यावलेह : गोशुर, कत्था, लौह भस्म

(iv) अमृत भल्लातक : भल्लातक, गोशुर

(v) सस्ता सप्तरुक्ष कथाथ : सस्ता, अमलतास, गोशुर, पुनर्नवा

(vi) रासनादि दसमूलकथाथ : दसमूल+गुड्ची, एण्ड, गस्ता, शुण्ठी, दारहरिद्रा

(vii) शुण्ठयादि कथाथ : शुण्ठी, गोशुर

(viii) महारासनादि पाचन कथाथ : गस्ता, एण्ड, वासा

7. आसव/असिद्ध

मात्रा : 20-40 मि.लि.

अनुपान : जल

(i) पुनर्नवारिष्ट : पुनर्नवा, बला, अतिबला

(ii) लोहासब : त्रिफला, त्रिकटु, लौह भस्म

(iii) अमृतारिष्ट : नीम, गुड्ची, दसमूल

(iv) दसमूलारिष्ट : दसमूल, चित्रक, पुष्कर मूल

8. घृत

मात्रा : 10-20 मि.लि.

अनुपान : गोदृध/कोणा जल

(i) पुनर्नवारिष्ट : शुण्ठी, गोशुर

(ii) शुगवेराद्य घृत : शुण्ठी, चवधार, पिप्पली

(iii) काञ्जन्जक प्रदृप्त घृत : हिङ्गु, त्रिकटु, गोशुर

(iv) अमृता घृत : गुड्ची, गोशुर

(v) पुनर्नवारिष्ट घृत : पुनर्नवा, गोशुर

9. तैल

मात्रा : 10-20 मि.लि.

अनुपान : गोदृध/कोणा जल

बाह्य/अभ्यन्तर प्रयोगार्थ

(i) एण्ड तैल : आध्यात्मक प्रयोगार्थ

(ii) सोन तैल : सोन

(iii) प्रसारिणी तैल : प्रसारिणी, एण्ड तैल

(iv) विजय भौंत तैल अथवा सूत तैल : फाद, गन्धक, हरताल, मनःशिला, तिल तैल

(v) सैन्धवलाद्य तैल : सैन्धव, देवदार, वचा, सर्षप तैल

(vi) बहूत संभवात तैल : सैन्धव, गरजिप्पली, गस्ता

(vii) द्विपञ्चमूलाद्य तैल : दसमूल, दही, काञ्जी

विशेष-एण्ड तैल के अंतिरिक्त सभी तैलों का बाह्य प्रयोग करना चाहिए।

10. पाक/अचलेह

मात्रा : 10-20 ग्राम

13. एकलन औषधियाँ

(i) एण्ड स्नेह (ii) गुड्ची (iii) शुण्ठी

(iv) भल्लातक (v) कुचला (vi) रसोन

(vii) निर्जुण्डी (viii) गस्ता (ix) पुनर्नवा

(x) पिप्पली (xi) गोशुर (xii) प्रसारिणी

(xiii) शिलाजतु (xiv) गुग्गुल (xv) अर्चवन्धा

(xvi) शिगु (xvii) अर्क (xviii) पटोल

(xix) निर्ब इच्छादि

14. चार्ड प्रयोगार्थ

मात्रा : आवश्यकतानुसार

(i) दसमूल लेप : शिरोष, तार, मधुवर्ष्णि, छोटी एला

(ii) हिंसादि लेप : हिंसा, कण्टकारी, शियु

(iii) शतपुष्पादि लेप : सौंफ, वचा, सहिजन, गोशुर

(iv) हंदिदादि लेप : हंदिदा, कटु तोरै, सर्षप तैल

(v) निर्जुण्डी पत्र लेप : निर्जुण्डी

IV योगासन/प्राकृतिक चिकित्सा

आमवात से पीड़ित आतुर में नीन अवस्था में पूर्ण विश्राम लाभदायक होता है। परन्तु लक्षणों में कमी आने के उपरान्त प्रभावित भाग के लिए व्यायाम अवश्य करना चाहिए। विभिन्न प्रकार के योगासन ऐसे—सूर्य नमस्कार, हत्यासन, बज्जासन, पद्मासन, सुखासन, प्राणायाम शवासन आदि लाभदायक होते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत उच्च आतप स्थान, कठिस्सान, उच्च मृतका से मर्दन इत्यादि क्रियाएं लाभदायक होती हैं।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन
2. कफ एवं आम दोष नाशक उच्च, रुक्ष, कटुतिक रस प्रधान आहार
3. व्यायाम, प्राणायाम, आसन, प्राकृतिक चिकित्सा
4. सामावस्था में रुक्ष स्वेदन, स्नेहन का निषेध
5. निरामावस्था में स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, बस्ति कर्म प्रयोग।
- प्रात : सायं
6. पञ्चकोल चूर्ण : 2 ग्राम
आमचातारि रस : 12.5 मि.ग्रा.
स्पर्शज रस : 12.5 मि.ग्रा.
- प्रात : 1×2 मात्रा
स्नेह से : 1×2 मात्रा
7. सिंहनाद गुणलु
अग्नितुण्डी वटी : 500 मि.ग्रा.
उच्च जल से : 250 मि.ग्रा.
1×2 मात्रा
8. खोजनोत्तर
गस्तापञ्चक व्याथ : 20 मि.ली.
एण्ड स्नेह : 20 मि.ली.
1×2 मात्रा
9. एण्ड पाक : 15 ग्राम
जल से : 15 ग्राम
1×2 मात्रा
10. (i) सेन्धवादि तैल या महाविषार्थ तैल से स्थानिक अध्यंग
(ii) दशमूल व्याथ से स्वेदन (स्थानिक/सर्वशरीर गत)
11. सत्त्वावजय चिकित्सा

पश्चापथ्य

पथ्य

आहार¹

पञ्चकोल सिंड जल, बक्षुआ, निम्ब रुक्ष स्वेदन, लंघन, स्नेहपान, बस्ति कर्म, शाक, पुनर्नवा शाक, परबल, करेला, मृदु व्यायाम एवं उच्च वर्त्त इत्यादि। जौ, पुराण शालि, शाठी चावल, कुलत्य घूष, मटर एवं चने का घूष, जांगल मांससस, तक्क, एण्ड स्नेह, लहसुन, बैंगन, सहिजन, उच्च जल, अर्क, विधारा, गोमूत्र एवं आदिक इत्यादि।

अपथ्य

आहार²

दधि, मत्त्य, गुड, दुध, उडर, दूषित दूषित जल, पूर्वी वायु, वर्षा छव्वु, वेगधारण, जल, विरुद्ध धोजन, असात्म्य आहार, रात्रि जागरण, चिन्ता, शोक, आलस्य एवं आनूप पास रस, गुरु एवं मधुर आहार दिवाशयन इत्यादि। आदि।

Latest Developments

Rheumatoid Arthritis

Definition

Rheumatoid Arthritis is a multi system disease of unknown specific cause. Though the most prominent manifestation of Rheumatoid Arthritis is inflammatory Arthritis of the peripheral joints usually with a symmetrical distribution. There is synovial inflammation to cause cartilage destruction and erosion which produces changes in the joints.

1. अम्बालापि पृतय चिडियात्.....!
2. अम्बालना: शार्टलयायेकुलत्य.....
3. स्पूर्गावात्तपात्तमें दितात्ति॥ (शे. 29/32-34)
4. दम्भत्यग्निक्षीरोपांडिकमांतपिकन्॥ (शे. 29/235)
5. दृष्टनीर पृष्ठवातं विरक्ताच्चाराति च।
असात्म्यतोर्धर्मन आगर दिवाशयनम्॥ (शे. 29/235)

1. अम्बालापि पृतय चिडियात्.....!
2. अम्बालना: शार्टलयायेकुलत्य.....
3. स्पूर्गावात्तपात्तमें दितात्ति॥ (शे. 29/32-34)
4. दम्भत्यग्निक्षीरोपांडिकमांतपिकन्॥ (शे. 29/235)
5. दृष्टनीर पृष्ठवातं विरक्ताच्चाराति च।
असात्म्यतोर्धर्मन आगर दिवाशयनम्॥ (शे. 29/235)

Aetiology.

Exact cause is unknown. Following factors play important role-

- (i) Immunological factors.
- (ii) Presence of an abnormal immunoglobulin in the serum known as **Rheumatoid factor.**
- (iii) Genetic influence.

- (iv) Trauma.

- (v) Psychological factors.

(vi) Hormonal factors – Incidence of Rheumatoid Arthritis is more common before menopause and remission of R.A. during pregnancy is well known.

(vii) Low economic status.

(viii) Infectious Agents-Mycoplasma, various viruses like Epstein bar virus (EBV), Cytomegalovirus (CMV) and Rubella virus.

Signs & Symptoms

(i) R.A. is a chronic poly arthritis. It begins with fatigue, anorexia, generalised weakness and musculoskeletal symptoms.

(ii) Women are more commonly affected than men in ratio of 3:1.

(iii) Pain, swelling & tenderness of the joints.

(iv) Morning stiffness.

(v) Synovial inflammation causes swelling, tenderness and limitations of movements.

(vi) Fibrosis or bony ankylosis or soft tissue contractures lead to fixed deformity.

(vii) Arthritis in the fore foot, ankles and subtler joints can produce severe pain with ambulation as well as a number of deformities.

(viii) "Z" deformities, Swan neck deformity, Boutonniere deformities are developed in later stage of disease.

(ix) Rheumatoid nodules.

(x) Muscle Atrophy.

(xi) Rheumatoid vasculitis.

Laboratory Investigations

1. Complete haemogram- Hb%, ESR, TLC, D.L.C.
2. R.A. Factor.
3. C-Reactive protein.
4. A.S.L.O. Titer.
5. Synovial fluid analysis.
6. Radiographic evaluation.

Diagnosis

(According to American College of Rheumatology)

1. Morning stiffness.
2. Arthritis of three or more joint areas.
3. Arthritis of hand joints.

Note : आपवात का चर्चने लेखक की पुस्तक कायचिकित्सा भाग-II में भी देखें।

- | |
|--------------------------------------|
| 4. Symmetric Arthritis. |
| 5. Rheumatoid nodules. |
| 6. Positive serum Rheumatoid factor. |
| 7. Pain on motion or tenderness. |
- * Four of seven criteria's are required to classify a patient as having Rheumatoid Arthritis.

* Patients with two or more clinical diagnosis are not excluded.

Differential Diagnosis

1. Osteo Arthritis
2. Gouty Arthritis
3. Suppurative Arthritis
4. Tubercular Arthritis
5. Allergic Arthritis

Goals of Treatment

1. Relief of Pain
2. Reduction of Inflammation
3. Protection of Articular Structure
4. Maintenance of Joint Functions
5. Control of Systemic Involvement

Management: Principles

1. Rest to the affected part in acute conditions.
2. Non Steroidal Anti Inflammatory Drugs (NSAIDS)
3. Steroids- Locally, systemic use.
4. Surgical Treatment in complicated cases.
5. Regular exercises.
6. Controlled Diet.

••• टेंड्री हो नी•••

कृपोचण बन्ध निकार

- मेदोवह स्रोतस दृष्टि से उत्पन्न विकार'

 1. अनेशा (अल्यायाम) 2. दिवाशयन
 3. मेदोवर्धक आहार सेवन 4. अत्यधिक मध्यपान
 1. अटनिन्दित पुरुष नामक रोगा²
 - अटनिन्दित पुरुष रोग निम्न प्रकार हैं—
 - (i) अतिनीर्ध पुरुष
 - (ii) अतिहस्त्र पुरुष
 - (iii) अतिलोम युक्त पुरुष
 - (iv) बिना लोम वाला पुरुष
 - (v) अत्यन्त कृष्ण वर्ण युक्त पुरुष
 - (vi) अत्यन्त गर्भ वर्ण युक्त पुरुष
 - (vii) अतिश्वस्त्र पुरुष
 - (viii) अतिक्रिया पुरुष

અધ્યાત્મ-૨

कुपोषण जन्य विकार

(DISORDERS OF MALNUTRITION)

(Obesity)

३४५

स्थौल्य रोग एक अन्यतं प्रभावपूर्ण व्याधि है। वर्तमान समय में स्थौलता एक प्रभावपूर्ण व्याधि के रूप में शहरों में देजों से व्याप हो रहा है। स्थौल्य रोग में मुख्यतः प्रदोषवाह घोटस की दृष्टि होती है जिसके कारण मेंधारु की अतिवृद्धि होती है और यह प्रतिक्रिया अन्ततः स्थौल्य रोग के रूप में अनुकूल होती है।

- मेदोवह स्त्रोतस के पूल**
 आचार्य चरक ने मेदोवह स्रोतस के दो मूल वर्णित किये हैं—
 (i) वृक्ष (ii) वापावहन
 सामान्यतः कटि (नितन्ब प्रदेश) और वपा में मेदोधातु की वृद्धि अत्यधीन सुश्रुत ने भी मेदोवह स्रोतस के दो ही मूल वर्णित किये हैं—

कवि गद्दण किया जा सकता है।

三國志

आचार्य चरक ने मेदोवह स्रोतस इष्टि के निम्नलिखित कारण वर्णित किए हैं—

प्राचीन राज्योऽपि

1. चरक संहिता मूलस्थान - अध्याय 21
 2. सुश्रृत संहिता मूलस्थान - अध्याय 15
 3. आयंग संग्रह मूल स्थान - अध्याय 24

1. मेदेवहानां क्षोत्रामां बुक्तो पूर्णं वपवहनं च। (च.वि 5/8)
2. मदेवहे हैं, तपेश्वर्मुद्रा करते बुक्तो च ॥ (सु.गा 9/12)
3. अस्त्वयामाद् दिवास्वप्नामेष्टानो चातिश्वरणम्।
मेदेवहारीनि दृश्यन्ति वारपूण्यक्षतिश्वरम् ॥ (च.वि. 5/16)

१. निरुद्धतीनि प्रभेहाणा पूर्वप्रयाणि याति च ॥ (च.सू. 28/15)

२. भ्रमीहृषा निन्दिता भवति । तद्यथा - अतिदोर्पश्च । अतिहृष्ण । अतिलोभा च । अलोभा च ।
भ्रमिक्षुः परिपाशं अभिप्राप्तं अभिप्राप्तं अभिप्राप्तं ॥ (च.सू. 21/3)

होता है। परिणामतः धातु क्षय से वायु का पुनः प्रकोप हो जाता है और जातरगिन् पुनः प्रदीप होती रहती है तथा मेदो धातु के और अधिक निर्माण की प्रक्रिया सतत चलती रहती है। इस प्रकार सम्पूर्ण आहार दब्बों से केवल मेद धातु की अधिक उत्पत्ति होती रहती है और पुरुष स्थूल एवं अतिस्थूल होता रहता है।

सम्प्राप्ति चक्र

विविध प्रकार के निदान सेवन



आमरस की उत्पत्ति



मेदो धातु की अतिवृद्धि/पोषण



मेदो धातु से स्रोतसावरोध



केन्द्र मेदो धातु वृद्धि,



वृद्ध वायु का कोष में प्रवेश



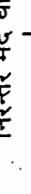
जाठरगिन की अतिवृद्धि



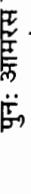
पुनः पुनः आहार सेवन करने की इच्छा एवं आहार का शीघ्र पाचन/शोषण



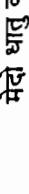
निरत्तर मेद धातु वृद्धि



पुनः आमरस निर्माण



मेदो धातु वृद्धि

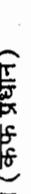


स्थौर्य सोग

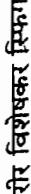


सम्प्राप्ति घटक

दोष



दूष



अधिक्षान



स्रोतस



स्रोतो दुष्ट प्रकार

होता है। परिणामतः धातु क्षय से वायु का पुनः प्रकोप हो जाता है और जातरगिन् पुनः प्रदीप होती रहती है तथा मेदो धातु के और अधिक निर्माण की प्रक्रिया सतत चलती रहती है। इस प्रकार सम्पूर्ण आहार दब्बों से केवल मेद धातु की अधिक उत्पत्ति होती रहती है और पुरुष स्थूल एवं अतिस्थूल होता रहता है।

अग्नि विकार	: प्रारम्भ में अग्निमांद्य, पश्चात में तीक्ष्णगिनि
व्याधि स्वभाव	: दारुण
साध्यासाध्यता	: कष्ट साध्य/व्याय
लक्षण	

स्थौर्य सोग के निम्नलिखित प्रमुख लक्षण प्रदर्शित होते हैं—

1. अत्यधिक क्षुधा वृद्धि (Excessive hunger)
2. अत्यधिक तृष्णा (Excessive thirst)
3. अत्यधिक स्वेद प्रादुर्भाव (Excessive sweating)
4. अलाग्रम से श्वासकुच्छुता (Breathlessness on mild exertion)
5. अधिक निदा आना (Excessive sleep)
6. परिश्रम का कार्य करने में कठिनाई (Difficulty to perform heavy work)
7. जाइयता (Sluggishness)
8. अलगायु (Short life span)
9. अत्यधिक शरीर का ऊर्जा स्तर (Decreased body strength)
- D उत्पाद हानि (Inertness)
11. शरीर में दुर्गम्य होना (Foul odour of body)
12. गदगदत्व (अस्पष्ट भाषण-Rhinorrhoea/Unclear voice)

आचार्य चरक ने ख्यात्य के अंतर्गत निम्नलिखित अष्ट दोष वर्णित किए हैं—

1. आयु का शीघ्र क्षय होना (Short life span)
2. कार्य करने में उत्पाद हानि (Inability to work)
3. मैथुन शक्ति हास (Loss of libido)
4. दुर्बलता (Weakness)
5. शरीर में दुर्गम्यता (Foul odour of the body)
6. अत्यधिक स्वेद (Excessive sweating)
7. अत्यधिक क्षुधा वृद्धि (Excessive appetite)
8. अत्यधिक तृष्णा (Excessive thirst)

1. अत्यस्थौर्यतिक्षुलस्त्रवेदशास्त्रनिरक्ता।
आयुसाक्षमताजाइयमत्यस्थौर्यतिक्षुलवेगता ॥
2. दीर्घायु गत्यात्तं च भवेष्मदेऽप्तितुर्वितः ॥ (अ.स.म् 24/23, 24)
2. अत्यस्थूलस्य तावदायुषो हस्तो जबारोधः;
कृच्छ्रव्यायता दीर्घायु दीर्घायु स्वेदावाषः;
2. स्रुतिमात्रं पिण्डातिक्षुलाहोति भवन्त्यही दोषाः । (च.स.म् 21)4

सापेक्ष निदान

स्थौल्य रोग प्रायः सम्बन्धित व्यक्तियों में अधिक पाया जाता है क्योंकि यह लोग प्रायः आवश्यकता से अधिक गर्भ आहार द्वयों एवं अधिक कैलोटी का सेवन करते हैं। फलस्वरूप स्थूलता से ग्रस्त हो जाते हैं। स्थौल्य रोग चिकित्सा करते समय उसके वातविक कारणों को जानने का प्रयत्न करना चाहिए।

निम्नलिखित स्थितियाँ प्रायः स्थूलता उत्पन्न करती हैं—

1. जीवनीय तत्वों की कमी
2. अन्तः शारीरी ग्रंथियों की विकृतियाँ
3. कुपोषण
4. मधुमेह
5. उच्च रक्तचाप

सापेक्ष निदान करके ही चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिए अन्यथा अनेक प्रकार के उपद्रव उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

साधारणता स्थौल्य रोग की अत्यधिक वृद्धि हो जाने के कारण चातादि दोष अत्यधिक प्रकृपित होकर भयंकर उपद्रवों को उत्पन्न करते हैं तथा कभी-कभी रोगों की मृत्यु भी हो जाती है।

यदि स्थौल्य रोगों कफज प्रकृति का है तो व्याधि कृच्छसाध्य अथवा असाध्य होती है। अन्तः शारीरी ग्रंथियों की विकृति से उत्पन्न स्थौल्य भी प्रायः कृच्छसाध्य होता है।

यदि रोगी बलबन, नियम-संयम से हड्डे वाला, चिकित्सक के निर्देशों का समुचित पालन करने वाला तथा अपने आहार विहार पर प्रभावी नियंत्रण रखने वाला एवं उत्तम आत्मबल से युक्त हो तो ऐसी स्थिति में स्थौल्य रोग साध्य होता है।

उपद्रव स्थौल्य रोग की आवश्यकतानुसार समुचित चिकित्सा नहीं करने पर अन्यत दारण निम्नलिखित उपद्रवों का वर्णन प्राप्त होता है—

1. तिसरी (Erysipelas)
2. भान्दर (Fistula in Ano)
3. ज्वर (Fever)
4. अतिसार (Diarrhoea)
5. मेह अथवा प्रमेह (Diabetes)
6. अर्झ (Piles)

1. स्थूले सुर्दृस्त रोग विसर्पः स्थानाद्वारा।
ज्वरानिकारमेहः स्थानाद्वारा क्षामता: ॥ (यो.र. नदोरोगाः)

कुपोषण जन्य विकार

7. रसोपद (Filariasis)
9. कामला (Jaundice)
1. निदान परिवर्जन
3. संसोधन चिकित्सा
- (i) शारीरिक एवं मानसिक व्यायाम
- (ii) वात कफ नाशक आहार एवं विहार
- (iii) मृत्-पुरीष विरेचनीय औषधि प्रयोग

(1) निदान परिवर्जन स्थौल्य रोग के समस्त निदान सेवन को धीरे-धीरे कम कर अन्ततः बंद करने से स्थौल्य रोग में महत्वपूर्ण लाभ मिलता है। संतुलित आहार का प्रयोग एवं पर्याप्त व्यायाम, चिन्तन, ध्यान इत्यादि से भी स्थौल्य रोग में लाभ होता है। स्थौल्य रोग के निवारण का मूलमन यह है कि व्यक्ति उत्तीर्ण मात्रा में ही संतुलित आहार एवं विहार का सेवन करे जितना उसके शरीर के लिए आवश्यक है। अतिरिक्त मेंदो धातु को कम करने के लिए समुचित एवं नियमित व्यायाम करना अत्यावश्यक है। कर्षण एवं गुरु अपर्तर्ण प्रधान चिकित्सा स्थौल्य के रोगी में विशेष लाभकारी रहती है।

- (2) संशोधन चिकित्सा संशोधन चिकित्सा के अंतर्गत निम्नलिखित चिकित्सा स्थौल्य रोगों के लिए विशेष उपयोगी रहती है—

- (i) वर्मन
- (ii) विरेचन
- (iii) निरुह बर्सित प्रयोग
- (iv) कर्षण नस्य प्रयोग

(3) संशमन चिकित्सा संशमन चिकित्सा के अंतर्गत निम्न औषध द्रव्यों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है—

1. रस/भरम/पिण्डी	मात्रा : 125-250 मि.ल.
2. अनुपान	शाहद

प्रमेहपिङ्गात्मक व्यायाम विकारित्वाकरणामन्यतम्। (सु.नू. 15/37)

1. प्रमेहपिङ्गात्मक व्यायाम विकारित्वाकरणामन्यतम्। (सु.नू. 15/37)
2. सतत चोपचर्यो हिकर्खीरपि: ॥ (च.म. 21/16)
3. गुरुचापत्तेन वेष्ट स्थानान् कर्षन् प्रति ॥ (च.म. 21/20)

(i) पारद भस्म	: पारद	: गंधक, लौह भस्म	(vi) लोहरिट	: शालसारादि गण की औषधियाँ, पिपलचादि
(ii) चिमूर्ति रस	: पारद, गंधक, ताप्र भस्म, हरताल भस्म			गण की औषधियाँ, पिपलती, लौह
(iii) बड़वानि रस				: विंडग, शुण्ठी, पिपलती, मारिच, पाता, रासना
2. बटी				: लौह भस्म, त्रिफला, त्रिकटु, यवानी,
मात्रा	: 250-500 मिल.			विंडग, मुस्तक
(i) आरोग्यवर्धनी बटी				
(ii) भेदनी बटी	: शहद/उज्जोदक			
(iii) कुटकी बटी	: पारद, गंधक, लौह भस्म, अश्रुक भस्म,			
	कुटकी	गोड्डु, सुही, पिपलती		
3. चूर्ण				
मात्रा	: 3-6 ग्राम			
अनुपान				
(i) त्रिफला चूर्ण	: शहद/उज्जोदक			
(ii) चचा चूर्ण	: हरीतकी, विभीतकी, आमलकी			
(iii) पुष्कर मूल चूर्ण	: चचा			
(iv) त्रिकटु चूर्ण	: पुष्कर मूल			
(v) फलत्रिकादि चूर्ण	: शुण्ठी, पिपलती, मारिच			
अनुपान				
(vi) गुड्हादि चूर्ण	: त्रिफला, त्रिकटु			
अनुपान				
(vii) विंडगादि चूर्ण	: तेल एवं लवण			
4. चवाचा/आसव-अष्टि				
मात्रा	: 20-30 मिल।			
अनुपान				
(i) मुस्तादि कवाथ	: समभाग जल			
	: नारामोथा, त्रिफला, हरिद्रा, देवदार, मूर्खा,			
	इंसरबारणी, लोध्र			
(ii) अग्निमन्थ कवाथ	: अग्निमन्थ			
(iii) बृहत् पञ्चमूल कवाथ	: उयोनाक, बिल्ब, पाटला, गाम्भारी,			
	अग्निमन्थ			
(iv) महामंजिष्ठादि कवाथ	: मंजिष्ठा, कुटज, गुड्हची, मुस्तक, चचा,			
	कुटकी			
(v) फलत्रिकादि कवाथ	: हरीतकी, विभीतकी, आमलकी, दारहरिदा,			
	इन्द्रयण			

(vi) लोहरिट	: पान एवं गण्डूष-5-10 मि.ली.	: शालसारादि गण की औषधियाँ, पिपलचादि
(vii) विंडगासव		: विंडग, शुण्ठी, पिपलती, मारिच, पाता, रासना
(viii) लोहसव		: लौह भस्म, त्रिफला, त्रिकटु, यवानी,
		विंडग, मुस्तक
5. तेल-योग (वाहू एवं आध्यान्तर प्रयोगार्थ)		
मात्रा	: नस्य-4-8 बिंदु	: पान एवं गण्डूष-5-10 मि.ली.
		बर्ति 30-50 मि.लि.
		अग्न्यार्थ-आवश्यकतानुसार
		: उष्णोदक
		: तिल, सुरसादी गण, त्रिफला,
		अतिविषा
		: पान, अग्न्या, नस्य, बर्सित, गण्डूष
		: चन्दन, कुंकुम, छोटी एला, कर्पूर, खस
		: अग्न्यार्थ प्रयुक्त
		: 250-500 मि.ग्रा.
		: शहद/गोडूध
		: विंडग, त्रिफला, त्रिकटु, लौह
		: लौह भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, बाकुचो
		: 500-1000 मि.ग्रा.
		: शहद/गोडूध/उच्च जल
		: त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद, गुण्गुल
		: अमृता, एला, विंडग, गुण्गुल
		: बबूल, अशगन्धा, शुण्ठी, गुण्गुल
		: त्रिकटु, वच, गुण्गुल
6. लौह योग		
मात्रा		
अनुपान		
(i) महासुग्रीच्य तेल	: गुड्हची, नारामोथा, त्रिफला	
(ii) उपयोग	: शहद/तकरिष्य	
		: विंडग, यवक्षर, लौह भस्म, आवंता।
7. गुण्गुल योग		
मात्रा		
अनुपान		
(i) विंडगादि लौह	: तेल एवं लवण	
(ii) त्रृष्णाद्य लौह	: गुड्हची, नारामोथा, त्रिफला	
		: शहद/गोडूध
		: अमृता, एला, विंडग, गुण्गुल
		: अमृता एवं गुण्गुल
		: त्रियोदशांग गुण्गुल
		: मेदोहर गुण्गुल
8. रसायन		
मात्रा		
अनुपान		
(i) मुस्तादि कवाथ	: समभाग जल	
	: नारामोथा, त्रिफला, हरिद्रा, देवदार, मूर्खा,	
	इंसरबारणी, लोध्र	
(ii) अग्निमन्थ कवाथ	: अग्निमन्थ	
(iii) बृहत् पञ्चमूल कवाथ	: उयोनाक, बिल्ब, पाटला, गाम्भारी,	
	अग्निमन्थ	
(iv) महामंजिष्ठादि कवाथ	: मंजिष्ठा, कुटज, गुड्हची, मुस्तक, चचा,	
	कुटकी	
(v) फलत्रिकादि कवाथ	: हरीतकी, विभीतकी, आमलकी, दारहरिदा,	
	इन्द्रयण	
		: 1-2 ग्राम
		: शहद/कोण्ठ जल
		: शिलाजटु रसायन
		: गुण्गुल रसायन

- (iii) आमलकी रसायन
(iv) लौह रसायन

10. एकल औषधियाँ

: गुण्डु त्रिफला, लोह, निशेथ, वासा

(i) गुण्डु

: शिलाजतु

(ii) वच्च

: हरीतकी

(v) विधीतकी

: आमलकी

(vii) गुइची

: नागरमोथा

(ix) बिंदा

: शुण्ठी

(xi) बिल्व

: रसोनक

(xiii) पाटला

: गम्भारी

(xv) अग्निमंथ

: अपामर्ण

(xvii) गोमूत्र

: रसाज्जन आदि

एकल स्थौल्य नाशक औषधियाँ हैं जिनका प्रयोग प्रायः स्थौल्य रोग चिकित्सा में किया जाता है।

11. सतु योग

मात्रा : 20-40 ग्राम

अनुपात : शहद/जल

(i) चब्बादि सतु : चब्बा, जीरा, त्रिकट्टु, हिंगु चित्रक

(ii) व्योषाख सतु : त्रिकट्टु, बिंदा, शिगु त्रिफला

(iii) जरूरणाद्य सतु : त्रिकट्टु, कुटकी, कण्टकारी, हरिद्रा

12. शार योग

मात्रा : 125-250 मि.ग्रा.

अनुपात : तण्डुलोतक/शहद

(i) एण्ड भार : एण्ड

(ii) यव शार : यव

(iii) पुनर्नवा शार : पुनर्नवा

(iv) अपामार्ण शार : अपामार्ण

13. स्वेदहर एवं दीर्घनिष्ठ नाशक लेप

मात्रा : आवश्यकतानुसार

(i) शिरियादि प्रलेप : शिरीष, खस, नागकेशर, लोध

(ii) चासादि लेप : चासा, शांखभस्त्र

(iii) हरीतक्यादि प्रलेप : हरीतकी, लोध, निबू, आम

(iv) हरितालादि योग : हरताल, गोदुग्राघ

प्रथम प्रथम
प्रथम

आहार^{१,२}

पुराना शालि चावल, मूँगा, कुलथ वाव, कोटे, जौ, चना, सांबा, बाजरा, मस्तका, मसूर, अरहर, धान का लावा, देंगन, परवल, सहिजन, तक्क, इलायची, आंबला, सर्प तेल, उज्जोडक, बांस का चावल, प्रियंगु कट्ट, तिक्क, कक्षाय रस वाले द्रव्य, गुण्डु, लौह भर्स, शिलाजुए एवं भोजन के पूर्व जल पीना आदि।

अपथ्य

आहार^३

चिर्ता, श्रम, रात्रि जागरण, स्त्री सेवन, उबटन, लंघन करना, धूपसेवन, हाथी घोडे की सवारी, ऐदल चलना, अपरपण करना, व्यायाम करना एवं आंबला, सर्प तेल, उज्जोडक से स्नान करना इत्यादि। चावल, प्रियंगु कट्ट, तिक्क, कक्षाय रस वाले द्रव्य, गुण्डु, लौह भर्स, शिलाजुए एवं भोजन के पूर्व जल पीना आदि।

विहार^४

नवोन शालिधान्य, गेहू, चावल, उड्ड, आलू, दुध, मलाई, राबड़ी, खीर, दही, मस, मछली, अंडा, पक्कड़न, घूत, गुड़, राब, भोजन के पश्चात अधिक जल देर तक ठंडे जल में स्नान करना एवं पीना एवं तैलायंग करना इत्यादि।

(i) प्रथम

(a) पुबर्टी अदिपो

(b) ब्रिंजाल

(c) महान अदिपो

(d) प्रेगनेंसी

(e) ठार्डाइज्योइडिस्म

(f) कृष्णेश्वरी अदिपो

(g) कृष्णेश्वरी अदिपो

(h) प्रेगनेंसी

(i) प्रेगनेंसी

(j) प्रेगनेंसी

(k) प्रेगनेंसी

(l) प्रेगनेंसी

(m) प्रेगनेंसी

(n) प्रेगनेंसी

(o) प्रेगनेंसी

(p) प्रेगनेंसी

(q) प्रेगनेंसी

(r) प्रेगनेंसी

(s) प्रेगनेंसी

(t) प्रेगनेंसी

(u) प्रेगनेंसी

(v) प्रेगनेंसी

(w) प्रेगनेंसी

(x) प्रेगनेंसी

(y) प्रेगनेंसी

(z) प्रेगनेंसी

(aa) प्रेगनेंसी

(bb) प्रेगनेंसी

body fat.

Aetiological Factors

There is no satisfactory aetiological classification of obesity. The important factors include-

1. **Age-** Obesity is most prevalent in middle age group, but it can occur at any stage of life.
2. **Socio-Economic Status-** In developed countries obesity is more common in the lower socioeconomic group while in developing countries it can occur only in the prosperous elite.

3. **Over eating**
4. **Lack of exercises**
5. **Hereditary predisposition or idiopathic or genetic obesity.**
6. **Endocrinial Factors of Obesity-** These include-
 - (i) **Pituitary**
 - (a) **Puberty adiposity**
 - (b) **Pregnancy**
 - (c) **After menopause**
 - (ii) **Thyroids, Hypothyroidism**
 - (iii) **Adrenal cortex, Cushing's syndrome**
 - (iv) **Pancreas**
 - (ii) **Islet cell tumours and chronic hypoglycemia often associated with adiposity.**
 - (iii) **Energy Balance-** A very small excess of calories if habitual can lead eventually to a large amount of fat.

Type of Body fat distribution

1. **Pear Type-** Fat accumulates mainly around hips and thighs (Gynoid Distribution)
2. **Apple Type-** Fat storage mainly in the abdomen (Android Distribution) found in both sexes.

Systemic Effects of obesity

1. **Cardiovascular System-** Coronary Heart Disease, Hypertension, Varicose veins, pedal oedema.
2. **Brain-** Cerebrovascular accidents, mental disturbances.
3. **Respiratory system-** Breathlessness
4. **Gastrointestinal System-** Hiatus Hernia, Gallstones, Gastric disease, constipation.
5. **Joints-** Osteoarthritis, Backache
6. **Pregnancy-** Neural tube defects, perinatal mortality, pre-eclampsia, gestational diabetes, preterm labour, deep vein thrombosis.

Latest Developments

OBESITY

स्थैतिक रोग का सामंजस्य अधृतिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Obesity नामक रोग से किया जा सकता है।

Definition

Obesity is the most common nutritional disorder of societies. Obesity is also expressed in terms of body mass index (BMI). BMI of 30 or more in males and 28.6 or more in females indicates obesity. Obesity may be defined as a condition in which there is an excessive amount of

1. पुराणा शाला यो मुट्ठाकुलथवकोद्रवा।
लेखना वस्त्रयाकै सेवा मेदिनी ना मदा॥ (देवि. ३९/६६)
2. चिर्ता श्रमो जागरण क्वाजायः.....
देवोगतं पञ्चिन्द निहित॥ (देवि. ३९/६७-७१)
3. स्नानं सायनं शुल्लीनं.....
अतिमात्रपूर्वितो विशेषद् यमन् क्लवान्॥ (देवि. ३९/७२-७४)

कुपोषण जन्य विकार

7. **Endocrine and Metabolic-** Non insulin dependent diabetes mellitus (NIDDM), Hyperlipidemia, Hirsutism, Menstrual irregularities, menorrhagia, impotence.

8. Skin- Dermal and sweat rashes.

9. Postoperative complications.

Management : Principles

1. **Exercise-** It is very useful to treat obesity. Extra calories should be burnt with exercises unless there is medical contraindication.
2. **Diet-** Long term results are best where patients are well motivated and educated, follow a clear programme designed to provide 800 to 1600 k.cal. daily.

3. Use of appetite suppressants.
4. Reduction in dietary fat absorption.
5. Use of bulk agents.
6. Psychotherapy.
7. Starvation.
8. Surgical Procedures.

••• ऐडीजीए •••

2. काश्चर्य रोग (Emaciation)

परिचय

काश्चर्य रोग एक प्रमुख कृपोषण जन्य व्याधि है। निभिन्न कारणों से सम्बन्धित पोषण नहीं मिलने के परिणामस्वरूप अल्प प्रमाण में उत्पन्न रसधातु शरीर को पूर्णतः पुष्ट नहीं कर पाता है जिसके कारण थातु पुष्टि नहीं होती है और अन्ततः व्यक्ति कृश हो जाता है। काश्चर्य रोग में मुख्य रूप से रसवह स्रोतस की दुष्टि प्रतीत होती है। आचार्य चरक ने भी रसवह स्रोतों दुष्टि जन्य विकारों में कृशता का उल्लेख किया है।

रसवह स्रोतस के मूल

आचार्य चरक ने रसवह स्रोतस के दो मूल वर्णित किए हैं जो निम्न हैं—

1. हृदय
2. दश धमनियाँ
3. आचार्य सुश्रुत ने रसवह स्रोतस के दो मूल निष्ठ प्रकार से वर्णित किए हैं—
1. हृदय
2. रसवाहिनी धमनियाँ

१. रसवहानां स्रोतसां हृदयं पूर्णं दशा च धमन्यः । (च.वि. 5/8)
सम्बहु द्वे, तथोर्मुलं हृदयं रसवाहिन्यश धमन्यः । (सु.शा. 9/12)

वस्तुतः उपरोक्त दोनों मूलों में कोई विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता। आहार के पाचन के उपरान्त "रस" रसवहानी धमनियों के द्वारा ही सम्पूर्ण शरीर में संचरित होता है एवं शरीर के प्रत्येक अवयव का पोषण करता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दुष्टि से सम्बन्धित: Portal vein को ही रसवह स्रोतस मूल माना युक्ति संगत लगता है। क्योंकि आहार रस का अवरोधण होने के पश्चात Portal vein से ही वह यकृत (Liver) में पहुंचता है जहां पर अनेक प्रकार की उपापचय क्रियाएं (Metabolic activities) सम्पन्न होती हैं तथा शरीर के मूलतात्त्विक सम्पूर्ण अवयवों का पोषण होता है।

रसवह स्रोतस दुष्टि के कारण

रसवह स्रोतस दुष्टि के निम्नलिखित प्रमुख कारण शास्त्रों में वर्णित हैं—

1. अत्यन्त गुरु, शीत, स्नायु आहार सेवन
2. अधिक मात्रा में आहार ग्रहण करना
3. अत्यधिक चिन्तन करना

रसवह स्रोतस दुष्टि से उत्पन्न विकार

रसवह स्रोतस की दुष्टि होने से निम्नलिखित विकार उत्पन्न होते हैं—

1. भोजन में अप्राप्ति
2. असन्तुष्टि, मुख विरस्ता
3. जिह्वा से रस जान नहीं होना
4. हल्लास
5. शरीर में गुरुता (भारीपन)
6. तन्त्रा
7. आंगमदि
8. ज्वर
9. नेत्र के सामने अंधकार प्रतीत होना
10. पाण्डु रोग
11. स्रोतवरोध
12. कलीकता (नपुंसकता)
13. शरीर शैयित्य
14. आंगों में कृशता होना
15. मन्दानिन
16. अकाल में शरीर पर दुर्योगों एवं पालित्य उत्पन्न होना।

आचार्य सुश्रुत ने रसवह स्रोतस दुष्टि के परिणाम स्वरूप शोष रोग एवं प्राणवह स्रोतों दुष्टि के समान लक्षण तथा मृत्यु होना वर्णित किया है।

1. गुरुशोत्रमिति-स्वप्नमित्यावं सम्प्राप्तम्!
2. अप्रदा चारलंचास्य वैरस्यमस्तता।
- इत्वासो गौरत्वं तत्रा साक्षमदोऽवरस्तमः॥
- पाण्डुत्वं स्रोतासा रोधः कृत्वैव सादः कृशाङ्गता।
- तस्वन्दे द्वे, तथोर्मुलं हृदयं रसवाहिन्यश धमन्यः । (सु.शा. 9/12)

रसवह लोतस से बस्तुतः शरीर को सूक्ष्मतिपूर्कम केशिकाओं (Microchannels/Microcapillaries) का ग्रहण करना ही उचित प्रतीत होता है। अधिनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार गरीबी, कुपोषण एवं असंतुलित आहार का सेवन कृशता के मुख्य कारण है।

व्याधि परिचय

मुख्यतः कुपोषण के कारण अथवा सम्यक रूप से संतुलित भोजन के अभाव से काश्य रोग की उत्पत्ति होती है। भोजन के परिपक्व के फलस्वरूप यदि रसधातु की सम्यक रूप से उत्पत्ति नहीं होती है तो वह अन्य अधिग्राम धातुओं का उचित पोषण नहीं कर पाता है जिसके परिणामस्वरूप अन्य धातुओं में क्रमशः क्षीणता उत्पन्न होती है। परिणामतः पुरुष धीरे-धीरे कृशता को प्राप्त होता रहता है।

अधिनिक चिकित्सा विज्ञान की इड्डि से विचार करें तो काश्य वस्तुतः कैलोरी हास जन्य विकृति प्रतीत होती है। यदि मनुष्य शरीर की आवश्यकता के अनुसुरक्षा कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा एवं जीवनीय तत्व शरीर को नहीं मिल पाते हैं तो व्यक्ति कुपोषण का शिकार हो जाता है और अन्तः उमस्के शरीर में कृशता उत्पन्न हो जाती है तथा व्यक्ति अनेक प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

1. चरक संहिता सूत्रस्थान - अध्याय 21
2. सुशूल संहिता सूत्रस्थान - अध्याय 15
3. अष्टांग संग्रह सूत्रस्थान - अध्याय 24
4. भाव प्रकाश मध्यम खण्ड चिकित्सा प्रकरण - अध्याय 40

परिभाषा¹

अतिकृश पुरुष के स्फिङ्ग प्रदेश (नितन्त्र), उदर एवं ग्रीवा अत्यवृत्त शुष्क हो जाते हैं तथा शरीर में धर्मनियों के जाल दृष्टिगोचर होते हैं एवं संधियां स्थूल हो जाती हैं। इस प्रकार का पुरुष अत्यन्त कृश तथा उत्पन्न रोग को काश्य रोग कहा जाता है।

निदान^{2, 3, 4}

संहिता ग्रंथों में काश्य रोग के अनेक प्रकार के निदान बताए गए हैं। प्रमुख निदानों को निम्नलिखित वार्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. सुक्कस्टिक्टुटिकृशो धमनी जाल सन्ततः ।
त्वास्थिसोऽतिकृशः स्थूलपर्व नरो भतः ॥ (च.सू. 21/15)
2. सेवा रूक्षान्तपानां लहून् प्रभिताशनम् ।
क्रियतिवेगः शोकश्च वेगनिद्राविनिग्रहः ॥
रूक्षस्त्रोदर्तन् स्नानस्त्राघ्यासः प्रकृतिर्जर्ज ।
विकारानुपः क्रोधः कुर्वन्त्यात्कृशं त्रस् ॥ (च.सू. 21/11-12)
3. वाले रूक्षान्तपानानि लहून् प्रभिताशनम् ।
क्रियातिवेगः शोकश्च वेगनिद्राविनिग्रहः ।
नित्यं रोगे गतिनियं व्यायामो भोजनालप्ततः ।
भोजनादिविळा च कार्यकाणपर्वितम् ॥ (भा.ग्र.म.प. 40/1-2)
4. तत्रपुनर्वर्तलाहरसेवितोऽतिल्वायाम-
व्यावायाग्रयनभयशोक्यात्त्रात्तिजागरण-
पिपासात्पृष्ठक्षयात्प्रभृतिः... ॥ (सु.सू. 15/39)
5. शरीरमनुक्रमान्तरात्त्रात्तिकार्यं भवति । (सु.सू. 15/39)

सम्प्राप्ति चक्र

विविध निदान सेवन

अत्यत्य मात्रा में रसधातु उत्पत्ति

रक्तादि अग्रिम धातुओं का सम्यक पोषण नहीं होना

कार्यर्थ रोग

सम्प्राप्ति घटक	
दौध	: वात प्रधान
स्नोत्स	: रस
लोतो दुष्ट प्रकार	: सर्व शरीर
आर्गिस्थिति	: विमार्गमन
व्याधिस्थाव	: नवीन-मृदु जीर्ण-दारण
साध्यात्साध्यता	: साध्य/कष्टसाध्य

तत्क्षण

कार्यर्थ रोग से ग्रसित व्यक्ति में मुख्यतः निम्न लक्षण प्रकट होते हैं—

- श्रोणि प्रदेश (नित्ताख) में शुष्कता
- उदर में शुष्कता
- ग्रीवा में शुष्कता
- सर्वशरीर में धमनी जात दृष्टिगोचर होना
- शरीर पर लचा एवं अस्थिपञ्जर दिखाई देना
- मुख एवं अस्थिस्थिति नोटे अर्थात् स्थूल हो जाना
- व्यायाम, परिश्रम एवं आहार ग्रहण आदि के प्रति अनिच्छा
- आलस्य एवं थकान की निरन्तर प्रतीति होना
- उज्ज्ञाता, शीता को सहन करने में असमर्थता
- मैथुन क्षमता में कमी
- प्रायः वात रोग से ग्रसित होना

सार्वेश निदान

कार्यर्थ रोग की उत्पत्ति मुख्यतः दो प्रकार से होती है—

- स्वतंत्र रूप से कार्यर्थ रोग की उत्पत्ति
- विविध प्रकार की व्याधियों के उपद्रव या लक्षण स्वरूप कार्यर्थ रोग की

उत्पत्ति संहिता ग्रंथों में वर्जित कार्यर्थ रोग वास्तव में स्वतंत्र रूप से उत्पन्न कार्यर्थ रोग का वर्णन प्रतीत होता है। प्रायः निम्न रोगों/विकृतियों से सारोक्ष निदान करना चाहिए—

- कुपोषण जन्य कार्यर्थ रोग
- शोष
- राजयक्षमा
- निम्न रक्तचाप
- जीर्ण ज्वर
- वातव्याधि
- वातव्याधि

कार्यर्थ रोग प्रायः साध्य होता है। कार्यर्थ में मुख्यतः रसधातु की कमी होती है। अतः

रोगी को समुच्चित रूप से भधुर, अस्त, लवण, शीत, गुरु, बुंदेल इत्यों का विविध कल्पनाओं के रूप में नियमित सेवन कराया जाये तो रोगी शोष स्वस्थ हो जाता है। यदि वात प्रकृति के पुरुष को कार्यर्थरोग है तो वह कृच्छ्रसाध्य होता है क्योंकि वातज प्रकृति के व्यक्ति में बुंदेल शीष्राता से नहीं होता है। स्वभाव से कुश रोगी डुब्बल हो, अनेक व्याधियों से पीड़ित हो अथवा अन्तः लाली गंधियों की विकृति के कारण कार्यर्थ रोग हो अथवा बीज दोष के कारण कार्यर्थ रोग उत्पन्न हुआ हो तो वह प्रायः याप्य या असाध्य होता है। ऐसे व्यक्ति की अग्नि भी शीण रहती है।

उपद्रव

कार्यर्थ रोग यदि स्वतंत्र रूप से उत्पन्न हुआ है तो विशेष उपद्रव उपस्थित नहीं होते हैं। लेकिन किसी व्याधि के उपद्रव स्वरूप उत्सन्धि कार्यर्थ की लिकित्सा शीघ्रतापूर्वक करनी चाहिए अत्यथा अनेक प्रकार के उपद्रव उत्सन्धि होने की सम्भावना रहती है। आचार्य चरक ने कार्यर्थ रोगी में निनलिलिखित उपद्रवों की उत्पत्ति होने का उल्लेख किया है—

- प्लीहा वृद्धि (Splenomegaly)
- कास (Cough)
- श्वास (Tuberculosis)
- श्वास (Dyspnoea)
- गुल्म (Tumour)
- अर्झ (Piles)

- स्वभावादीकरण्यों यः स्वभावादल्पप्राप्तवक्ता ॥ (भा.प्र.म.स. 40/11)
- प्लीहा कासः श्वासे गुल्मोऽशायुदराणि च।

- कुपोषणस्थायोदातिक्षमोजातसन्ततिः ।
- कृशं प्रायोऽभिग्नाति रोगाश्च ग्रहणोगतः ॥ (च.मू. 2/14)

कार्यविकित्सा

- (i) अश्रांथारिष्ट : अश्रांथा, मूसली, हरिद्रा, विदरी, मर्जिषा
- (ii) बलारिष्ट : बला, अश्रांथा, धूतकी, एण्ड, गोमुक
- (iii) द्राक्षासब : द्राक्षा, धातकी, बेर, त्रिकटुंड
- (iv) सारस्वतारिष्ट : ब्राह्मी, शतावरी, विदरी, हरीतकी, आदर्क, सोफ
- (v) कुमार्यसब : शृतकुमारी, लौहभस्म, निकटुंड, धातकी, त्रिफला, पृष्ठण इत्यादि
- 5. घृत/तैल (वाह्य/आध्यात्मक प्रयोगार्थ)**
- मात्रा : 10-20 मिली.
- अनुपान : उष्णजल/दुग्ध
- (i) अश्रांथा तैल : अश्रांथा, तिलतैल, कमल, केशर, त्रिफला इत्यादि
- (ii) महानररथण तैल : तिल तैल, शतावरी, गोमुख, केशर, कस्तुरी, कपूर इत्यादि
- (iii) बला घृत : बला, गोमुक, आँखला, कण्ठकारी बृहती, गोमुख इत्यादि
- (iv) अश्रांथा घृत : अश्रांथा, शतावरी, अच्छवर्ण, विदरी, मधुमध्यी इत्यादि
- (v) त्रिफलादि घृत : त्रिफला, वारसा, भुंगराज, अजाशीर, गोमुक इत्यादि
- 6. अबलेह/पाक**
- मात्रा : 10-20 ग्राम
- अनुपान : दुग्ध
- (i) च्यवनप्रसा : आमलकी, दशमूल, भूत्यामलकी, बंशलोचन, पिपली, एला, नागकेशर आदि
- (ii) ब्रह्म रसायन : हरीतकी, आमलकी, पांचों पंचमूल, मण्डूकपणी, पिपली, शंखपुष्पी इत्यादि
- (iii) आमल्क्यावलेह : आमलकी, पिपली, शुण्ठी, बंशलोचन इत्यादि
- (iv) हरीतक्यादि अबलेह : हरीतकी, विधीतकी, आमलकी, पांचों पंचमूल, विदरी, गोमुख
- (v) यवानीषाडब्ब चूर्ण : यवानी, इमली, शुण्ठी, अमलकेत

कुपोषण जन्य विकार

7. एकल औषधियाँ
- (i) अश्रांथा : शतावरी
- (ii) मांस या मांसरस : बला
- (iv) महा बला : दुग्ध
- (vii) महा बला : दुग्ध
- (x) मूसली : सलमपञ्जा
- (xi) सलमपञ्जा : कुम्हारण्ड
- (xiii) बृहती : पिपली
- (xiv) बृहती : मिश्री
- (xvi) मुट्ठीका : फलसा
- (xx) क्षीरकाळी : विदरी
- (xxi) खर्जी : जीवन्ती
- (xxii) यष्टीमधु : शीरकाळी
- (xxv) माषपणी इत्यादि : मुट्ठीपणी
- (xxvii) यष्टीमधु : गुदापणी
- (xxviii) यष्टीमधु : गुदापणी
- (xxix) यष्टीमधु : गुदापणी
- (xxx) यष्टीमधु : गुदापणी
- (xxxii) यष्टीमधु : गुदापणी
- (xxxiii) यष्टीमधु : गुदापणी
- (xxxiv) यष्टीमधु : गुदापणी
- सकता है।
- (4) योगासन एवं प्राकृतिक चिकित्सा
- यम, नियम, प्राणायाम, आसन इत्यादि के नियमित प्रयोग से व्याकुल स्थिर चित्त बाला हो जाता है। वह निःश्वसन, प्रब्रह्म सत्त्व युक्त एवं सम्प्रक अग्नि बल युक्त होता है, जिसके फलस्वरूप ग्रहण किया गया आहार शरीर में अच्छी प्रकार से सात्य होकर बल और आयु की वृद्धि करता है।
- निम्नलिखित आसनों का प्रयोग कार्यरोग में लाभकारी रहता है—
1. शवासन
 2. सुखासन
 3. व्रासन
 4. प्राणायाम
 5. योगासाधना
- प्राकृतिक चिकित्सा के रूप में ताजे फलों का रस तथा समुचित पोषण करने वाले आहार द्रव्यों का प्रयोग कार्यरोग में करना चाहिए जिससे सम्यक् धृत पोषण होकर कार्यरोग का शमन हो जाता है।
- आदर्श चिकित्सा पद**
1. निदान परिवर्जन
 2. शोधन चिकित्सा
- (i) अनुवासन बस्ति प्रयोग
 - (ii) बृहण बस्ति प्रयोग
 3. योगासन, प्राणायाम, ध्यान
 4. संशमन चिकित्सा
- प्रातः : सायम
- (i) शतावरी चूर्ण : 2 ग्राम
- प्रवाल पंचमूल : 250 मिली
- शहद/दुग्ध से : 1 × 2 मात्रा

- (ii) यावानी थाड़व चूर्ण : ३ ग्राम
वित्रकादि बटी : $\frac{500 \text{ मिम्बां}}{1 \times 2 \text{ मात्रा}}$
- कोष्ठा जल से
- (iii) भोजनोत्तर द्रष्टव्यारित : २० ग्र.लि.
वलारिट : $\frac{20 \text{ ग्र.लि.}}{1 \times 2 \text{ मात्रा}}$
- समझगा जल से : २० ग्राम
- (iv) चक्षवन्प्राश अवत्तेह वा लहरा रसायन : $\frac{20 \text{ ग्राम}}{1 \times 2 \text{ मात्रा}}$
- दुध से : १५ ग्राम
- (v) सर्वांग शरीर में चक्षवन्प्राश तैल से निर्धारित अभ्यंग
5. पथ्यापच्य पालन
- पथ्यापच्य
- पथ्य

आहार

नवोन अन्न, नवनिर्मित मध्य, ग्राम्य, निद्रा, हर्ष, सुखद शाय्या, मानसिक विश्राम, शांति, चिन्ता, मैथुन एवं व्यायाम आनुप एवं जांगल जन्तुओं का मांसरस, विश्राम, शांति, चिन्ता, मैथुन एवं व्यायाम, अन्नपूर्ण जन्तुओं का लाभ, प्रिय वस्तु अथवा इष्य देखना, दधि, दुध, घृत, इक्षु, शालि चावल, गेहूँ, गुड़ से निर्मित द्रव्य, स्त्रिय एवं तैलांयंग, उबटन, स्नान, सुगंधित माला गेहूँ, गुड़ से निर्मित द्रव्य, स्त्रिय एवं तैलांयंग, उबटन, स्नान, सुगंधित माला धारण, श्वेतवस्त्र धारण एवं दोषों का धारण, श्वेतवस्त्र धारण एवं दोषों का समय-समय पर निर्हारण इत्यादि।

अपच्य

आहार

कट्टु, तिर्क, कषाय रस प्रधान द्रव्य, लंघन, अति व्यायाम, अति परिश्रम एवं यव, चना, मसूर, सहिजन, सांचा एवं बार-बार पंचकर्म का प्रयोग इत्यादि। कोटों इत्यादि।

Latest Developments**EMACIATION**

काशर्य रोग का सामन्जस्य आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Emaciation नामक रोग से किया जा सकता है।

Definition

— Emaciation is a state of extreme leanness. It is not a disease, but is an important symptom of various disorders.

Etiology

The main etiological factors of emaciation are listed below-

1. Malnutrition
2. Diseases of Gastrointestinal tract
3. Marasmus
4. Addison's disease
5. Tuberculosis
6. Anorexia nervosa
7. Cancer
8. Diabetes
9. Suppuration
10. Hyperthyroidism
11. Chronic Diarrhoea
12. Structure of Oesophagus
13. Pyloric Obstruction
14. Parasites
15. Loss of sleep
16. Exophthalmic Goiter
17. Starvation
18. AIDS

Management : Principles

1. To treat the underlying cause
2. Symptomatic Management
3. Rich, nutritious easily digestible diet.

••••• लूँगी •••••

3. कुपोषणजन्य विकारों के प्रमुख कारण**(Causative Factors of Deficiency Disorders)**

1. नवाकानि नवं मध्य ग्राम्यान्तरेका यसः। संकृतानि च मांसानि दधि चर्षि: पर्याप्ति च च ॥
इक्षवः शालयो माषा गोधूमा गुड़वैकृतम्। बस्तयः स्नाधमपुरुत्सेलाम्याश्च सर्वता ॥
(च.मृ. 2/130 31)
2. स्वादो हर्षः सुखा शर्या मनसो निर्वितः यसः। चित्तात्यवायव्यायामविरामः प्रियतर्णनम्॥
(च.मृ. 2/129)
3. मिन्नामाल्पतानं स्मृतं ग्राम्यान्तरेकानाम्। शूक्रतं वासो यथाकालं दोषेणामव सेचनम्॥
(च.मृ. 30/32)

1. सामाजिक एवं आर्थिक विषमता (Social and Economic Variations)

आर्थिक विषमताओं का कुपोषण से गहरा संबंध है। गरीबी कुपोषण का प्रमुख कारण है। भन के अभाव में व्यक्ति को क्रय शक्ति कम हो जाती है जिससे वह आवश्यक खाद्यानों की खरीद नहीं कर पाता है और जो भी रुखा रुखा मिलता है उसका सेवन करता है। गरीबी के कारण कई बार व्यक्ति को भूखा भी होना पड़ता है। फलस्वरूप वह कुपोषण का शिकार होकर अनेक प्रकार की कुपोषण जन्य व्याधियों से ग्रसित हो जाता है। सामाजिक कारण भी कुपोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रायः समाज में कई प्रक्रिया हैं और उनके सामाजिक प्रभाव के स्तर में भी अंतर होता है। यह एक सामान्य परिणामस्वरूप समाज में कुछ व्यक्तियों के पास तो अत्यधिक आहार द्रव्य संग्रह होता है, वहाँ दूसरी ओर अन्य कुछ लोगों को आहार द्रव्यों के अत्यन्त अभाव में जीवन व्यतीत करना पड़ता है और वे कुपोषण का शिकार हो जाते हैं।

2. शिक्षा का अभाव (Lack of Education)

शिक्षा समाज का दर्पण होती है। अशिक्षित व्यक्ति आहार विधि विधान को नहीं समझ पाता है। अशिक्षित व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के विषय में भी सचेत नहीं रहता है। फलस्वरूप वह कुपोषण का शिकार हो जाता है। अशिक्षित व्यक्ति आहार उपलब्धता होने के बावजूद भी कुपोषण जन्य व्याधियों का शिकार हो जाता है।

3. आहार में आवश्यक तत्वों की कमी होना (Qualitative Dietary Deficiency)

संतुलित आहार (Balanced Diet) के छः मुख्य घटक होते हैं—कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, लवण एवं जल। इन सभी द्रव्यों की एक निश्चित मात्रा स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक होती है। इन आहार द्रव्यों की मात्रा में कमी अथवा अधिकता कुपोषण का कारण होती है। जैसे प्रोटीन की कमी से Marasmus आदि रोग उत्पन्न होते हैं। विटामिन की कमी से नकारात्मक, स्कर्बी, बेरी-बेरी, रिकेट्से आदि रोग उत्पन्न होते हैं। आचार्य चरक ने भी संतुलित भोजन एवं उसके घटक द्रव्यों का स्पष्ट संकेत किया है। आचार्य चरक के अनुसार गृहिक, शालि, मुद्रा, सैन्धव लवण, आमलकी, चन्द्र, अंतरिक्ष जल, दुध, सार्पि, जांगल मांस रस एवं मधु का सेवन नियमित रूप से करना चाहिए जो कि स्पष्ट रूप से संतुलित आहार सेवन का सकेत है।

4. आहार की अधिक मात्रा का सेवन (Over Nutrition)

अधिक मात्रा में आहार ग्रहण करना भी अनेक प्रकार की व्याधियों को उत्पन्न करता है जैसे—स्थौर्त्य, प्रमेह, मेदोरोग मधुमेह इत्यादि।

Variations)

5. एक ही प्रकार के आहार का अत्यधिक सेवन (Excessive intake of a single diet)

आहार द्रव्यों में विभिन्नता नहीं होना भी कुपोषण का प्रमुख कारण है। कुछ लोग एक ही प्रकार के आहार द्रव्यों का अत्यधिक सेवन करते हैं। प्रायः अशिक्षित एवं गरीब लोगों में यह प्रदृढ़त अधिक पायी जाती है जिसके फलस्वरूप एक पोषक तत्व की अधिकता एवं अन्य पोषक तत्वों की न्यूनता से व्यक्ति कुपोषण का शिकार हो जाता है।

6. प्राकृतिक रूप से विषाक्त आहार द्रव्यों का सेवन (Intake of Naturally Toxic Food Materials)

कुछ आहार द्रव्यों में विषाक्तता होती है। अतः इन आहार द्रव्यों का सेवन करना अनेक रोगों का कारण होता है। जैसे— खेती की दाल का अधिक सेवन पक्षात्मक उत्पन्न कर सकता है। इसी प्रकार कोदों का चावल, आम की सड़ी इव गुरुली आदि भी विषाक्तता उत्पन्न करते हैं।

7. शरीर की संस्थानिक व्याधियाँ (Systemic Diseases of Body)

शारीरिक व्याधियाँ भी कुपोषण उत्पन्न करती हैं। कुछ प्रमुख व्याधियाँ जिनमें कुपोषण परिलक्षित होता है निम्नलिखित हैं—

(i) आमाशय में अम्ल द्रव्य का अभाव (Achlorhydria) होना जिससे भोजन का सायक पाचन नहीं होता है तथा पाण्डु रोग (Anaemia) उत्पन्न हो जाता है।

(ii) वसा का ठीक प्रकार पाचन नहीं होने के फलस्वरूप पुरीष में वसा की अधिकता हो जाती है (Steatorrhoea)

(iii) आमाशयात अर्बुद (Cancer of Stomach)

(iv) अरुचि (Anorexia Nervosa)

8. आहार ग्रहण की अनुचित आदत (Defective Habits of food intake)

(i) एक ही प्रकार के आहार का अधिक समय तक सेवन

(ii) अनिवार्य रूप से शाकाहारी होना

(iii) सुरा (Wines) का अधिक मात्रा में सेवन शरीर को ऊर्जा तो प्रदान करता है परन्तु वास्तविक पोषण नहीं करता है। सुरा का लगातार सेवन अनेक प्रकार की व्याधियों को उत्पन्न करता है।

(iv) विभिन्न प्रकार की आन्तरिक शल्यांक्य, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति को एक निश्चित दिशा निर्देश के अनुसार ही आहार लेना पड़ता है एवं यह व्यवस्था दोष पूर्ण होने से शरीर में कुपोषण उत्पन्न कर सकती है।

9. अत्यधिक कम मात्रा में आहार ग्रहण एवं उपवास करना (Very low quantity of intake of food and frequent fasting)

शरीर की आवश्यकता के विपरीत अल्प आहार ग्रहण करने से भी कृपोषण उत्तर होता है। अधिक ब्रह्म, उपवास से भी ऊर्जा नष्ट होती है तथा धीरे-धीरे व्यक्ति कृपोषण का शिकार हो जाता है। कम मात्रा में आहार लेने से शरीर की चयापचय प्रक्रियाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिससे असुचि, मूत्राशय एवं ब्रूक के विकार, गर्भीर स्वरूप के जीण रोगों की उत्पत्ति होना एवं शरीर के ओज का क्षय होकर अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।

10. शरीर से पोषक तत्वों का अतिहास (Excessive Loss of Nutritious substances from body)

कई प्रकार की व्याधियों के कारण शरीर में अधिक मात्रा में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। फलस्वरूप शरीर में उन तत्वों की कमी होकर-धीरे-धीरे कृपोषण उत्तर होने लगता है। इसके कुछ प्रमुख उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

(i) मधुमेह (Diabetes Mellitus) में अनियन्त्रित शर्करा का निःसंरण होने से शरीर में शर्करा की कमी होने लगती है जिसकी चिकित्सा व्यवस्था शीघ्र न की जाए तो सार्वदेहिक लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

(ii) वृक्ष की व्याधियों जैसे- वृक्षाधात (Renal Failure) या अन्य वृक्ष जन्य व्याधियों में प्रायः ग्रोटीन का यूत्र के माध्यम से अधिक साव होकर मृत्यु शरीर में कृपोषण उत्तर हो सकता है।

(iii) अतिसार में अत्यधिक जल की कमी होने के साथ-साथ विप्रिण Electrolytes की भी कमी हो जाती है।

(iv) रक्त प्रदर, परिणाम शूल, अनन्द्रवशूल एवं अर्था इत्यादि व्याधियों में रक्षण होने से रक्ताल्पता हो सकती है।

कृपोषण से बचाव

(Prevention from Malnutrition)

कृपोषण से बचाव के लिए सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता होती है जिसके लिए बृहत् स्तर पर लोगों को जागरूक बनाना चाहिए। उनमें शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार, जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाना, टीकाकरण कार्यक्रम चलाना एवं कृपोषण व्यक्तियों की उचित देखभाल आदि अत्यन्त आवश्यक हपय है। कृपोषण से बचाव के लिए निम्नस्थित उपाय करने चाहिए—

1. पर्याप्त आहार द्रव्यों की उपलब्धता (Sufficient availability of food Materials)

संवर्धन यह प्रता लगाना चाहिए कि किस प्रकार के आहार द्रव्य की कमां से होनेपाल हैं? तथा जन्य उपलब्धों की प्राप्ति मात्रा में जगत् मात्रा में उपलब्धता

एवं वितरण सुनिश्चित करना चाहिए। इस कार्य में विशेषकर सरकारी एवं स्वयंसेवी संगठनों को प्रमुख भूमिका रहती है।

2. आय के साथनों में वृद्धि (Increasing Per Capita Income)

गरीब एवं पिछड़े क्षेत्रों की पहचान सुनिश्चित करके वहां पर इस प्रकार के रोजगार सूचन करने का प्रयास करना चाहिए जिससे आम व्यक्ति का जीवन स्तर ऊँचा उठ सके और उसको क्रूर शक्ति में वृद्धि हो। फलस्वरूप कृपोषण पर काढ़ पाया जा सकता है।

3. पोषण संबंधी शिक्षा व्यवस्था (Nutritional Education)

पोषण के संबंध में आम व्यक्ति को शिक्षित करना चाहिए कि उनके लिए संतुलित आहार का क्या महत्व है। पोषण की कमी से कोन-कोन से विकार उत्पन्न होते हैं। समाज में इस संबंध में जागरूकता फैलानी चाहिए तथा लोगों को प्रेरित करना चाहिए कि वे नियमित रूप से संतुलित आहार सेवन करें। इससे ही कृपोषण पर नियंत्रण पायी जा सकती है। यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि सर्वसुलभ, मस्ते एवं उगायोगी आहार द्रव्यों पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाए जो कि आम आदमी के पहुँच के भीतर हों।

4. जनसंख्या नियंत्रण (Population Control)

कृपोषण के संदर्भ में जनसंख्या नियंत्रण करना अत्यन्त महत्वपूर्ण उपाय है। समाज भ्रातीयों एवं कुरीतियों को दूर करना चाहिए। यदि पाकार का आकार छोटा होगा तो उनको आसानी से संतुलित भोजन उपलब्ध कराया जा सकता है। वर्तमान अंम आदमी को संतुलि नियंत्रण के लिए ग्रोत्साहित करना चाहिए तथा उसके लाभ को प्रभावशाली ढंग से प्रतिक्रित एवं प्रसारित करना चाहिए।

5. खाद्य सामग्री में आवश्यक तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चित करना (Availability of food Materials with Essential Elements)

सामाजिक संरचना तथा उपलब्ध आहार द्रव्यों की युग्मवता को जांच के पश्चात जिस तत्व की उपर्युक्त कमी हो उसे अलग से नियंत्रित करने के पश्चात ही उनकी उपलब्धता बाजार में सुनिश्चित करनी चाहिए। जैसे-नमक में आयोडीन ने मसुचित मात्रा होनी चाहिए। समय-समय पर विटामिन “ए” का वितरण करना, महिलाओं, विशेषकर गर्भवती महिलाओं में लौह की गोलियाँ एवं फोलिक अम्ल की उचित मात्रा का सेवन सुनिश्चित करना इच्छादि।

6. कृपोषण के कारणों की शीघ्र पहचान एवं उनका शीघ्र नियंत्रण (Early Detection of causes of malnutrition and its Timely Management)

नियंत्रितक कारणों का यह नैतिक दायित्व है कि वह समाज में फैले कृपोषण के कारणों का शीघ्रातिशीघ्र नियन्त्रण कर उन्हें दूर करने का उपाय सुझाए जिससे अतिशीघ्र समस्या का निवारण किया जा सके।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णित विभिन्न उपायों से कृपोषण को नियंत्रित किया जा सकता है।

•••• नृ० ८८० ••••

4. रिकेट्स

(Rickets)

व्याधि परिचय

रिकेट्स मुख्यतः कैल्सियम और फॉस्फोरस के चयापचय (Metabolism) में विकृति के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होता है। शरीर में विटामिन 'डी' की कमी हो जाने पर यह महत्वपूर्ण व्याधि उत्पन्न होती है। विटामिन 'डी' की कमी के अतिरिक्त भी अनेक कारण हैं जो रिकेट्स की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। रिकेट्स मुख्यतः बाह्यावस्था में बच्चों में पाया जाता है। युवा व्यक्तियों में रिकेट्स नहीं मिलता है। रिकेट्स में अस्थियों का सम्यक रूप से पोषण नहीं हो पाता है, जिसके कारण अस्थियाँ कमज़ोर एवं टेड़ी-मेढ़ी हो जाती हैं तथा शिशु कमज़ोर होने लगता है।

निदान

रिकेट्स के प्रमुख निदान निम्नलिखित हैं—

1. शिशु को वस्त्रों से अधिक ढककर रखना, जिसके कारण सूर्य का प्रकाश उसके शरीर पर नहीं पढ़ता।
2. आहार में कैल्सियम एवं फॉस्फोरस की अल्पता होना।
3. ग्रहण किए गये आहार का आन्त द्वारा सम्यक अवशोषण नहीं होना।
4. शरीर में विटामिन 'डी' की कमी होना।
5. निरंतर ऐसे स्थान पर रहना जहां सूर्य की किरणें न पहुंचती हों।

सम्प्राप्ति

सूर्य की उल्फिएट किरणों (Ultraviolet Rays) के त्वचा के सम्पर्क में आने से विटामिन 'डी' का निर्माण होता है जो अस्थियों के समुचित विकास के लिए अत्यावश्यक होता है। किन्तु कारणों से मनुष्य शरीर के सूर्य की किरणों से सम्पर्क न होने से शरीर में विटामिन 'डी' का निर्माण न होने अथवा अल्प मात्रा में होने की स्थिति में मनुष्य शरीर में 'रिकेट्स' नामक रोग उत्पन्न हो जाता है जिसका सीधा दुष्प्रभाव शरीर की हड्डियों पर पड़ता है।

विविध प्रकार के निदान सेवन के कारण सम्भवतः शरीर में अस्थि धातु का निर्माण सम्पर्क रूप से नहीं हो पाता है तथा अन्य उत्तरोत्तर धातु (यथा-मज्जा इत्यादि) निर्माण में भी विकृति उत्पन्न होती है। अस्थि निर्माण सुचारू रूप से नहीं होने से शारीरिक विकास प्रभावित होता है एवं अस्थियाँ दुर्बल होकर टेड़ी हो जाती हैं और शरीर में रिकेट्स रोग की उत्पत्ति हो जाती है।

कुपोषण जन्य विकार

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन

त्रिदोष प्रकोप

अग्निमांद्य

आमरस धातु की उत्पत्ति

आत्मविन मांद्य

धात्वानिन मांद्य

अपक रक्त, मांस, मेद एवं अस्थि धातु का अल्प निर्माण

रिकेट्स रोग

(Rickets)

सम्प्राप्ति घटक	
दोष	: त्रिदोष
दूष्य	: अस्थि, मज्जा
अधिष्ठान	: अस्थियाँ (साखाएँ)
स्रोतस	: रसवह, अस्थिवह
स्रोतो दुष्टि प्रकार	: विमार्गांगन
अग्निस्थिति	: अग्निमांद्य
व्याधित्वभाव	: नवोन-मृदु, जीर्ण-दारुण
साध्यासाध्यता	: साध्य/कष्टसाध्य

पूर्वरूप

छोटे बच्चों में रिकेट्स की उत्पत्ति के पूर्व निम्न पूर्वरूप उत्पन्न हो सकते हैं—

1. उर्द्धिनाता (Uneasiness)
2. चिड़ीचड़ान (Irritability)
3. लालाट पर अधिक स्वेद (Excessive sweating over Forehead)
4. कृशता (Emaciation)
5. पाण्डुता/पीलापन (Anaemia)

कार्याधिकाराता

कुपोषण जन्य विकार

सामान्य लक्षण

- रिकेट्स प्रायः शिशु के वृद्धि काल में ही स्वाभाविक भिलता है। तीन माह से कम आयु के शिशु में यह रोग नहीं भिलता है। रिकेट्स के सर्वाधिक रोगी प्रायः छः माह से छाइ वर्ष तक की आयु के बच्चे होते हैं। रिकेट्स में निम्नलिखित लक्षण प्रायः भिलते हैं—
1. सिर के अगले एवं पिछले भाग की अस्थियों में उभार होना (Bossing of the Head)
 2. सिर का बड़ा होना (Enlargement of head)
 3. जाहारनश्च का बड़ा होना एवं देर से बढ़ होना (Delayed closing of cranial sutures)
 4. कपालास्थियों की मृदुता (Softness of scalp bones)
 5. दातोदभव देर से होना एवं कमिदन्ता (Late Dentition and Dental carries)
 6. दक्ष के सामने चाले भाग पर जहाँ दोनों तरफ की पश्चकाएँ (Ribs) संस्थिच चानती हैं उसके फूलने से रुकाक्ष की माला के समान रखना बन जाना (Ricket Rosary)
 7. मेरुदण्ड का पार्श्व में अथवा पीछे की तरफ मुड़ जाना (Scoliosis or Kyphosis)
 8. माणिक्य संष्प. जातुसंष्प का अधिक मोटा एवं उभया हुआ होना तथा पैर की अस्थियों का टेहा हो जाना (Bossing of wrist and knee joints with curvature of extremities)
 9. शारीरिक वृद्धि रुक जाना (Retardation of Growth)
 10. पाद तल का चपटा हो जाना (Flattening of soles of feet)
 11. उत्तर का बाहर की तरफ निकल जाना (Protrusion of Abdomen)
 12. विकंध गर्व आक्षेप (Constipation and Tetany)
 13. यकृत का सामान्य स्थान से नीचे की ओर आ जाना (Enlarged liver)
 14. शिशु के सायक रूप से चलने-फिरने, उठने बैठने में कठिनाई (Difficulty in movements)
 15. दौर्बल्य (Weakness)

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
2. अतिविध विशेषायतन एवं द्वादशासन विधि के अनुसार बालक को आहार देना
3. आहार में दुध की मात्रा अधिक देना

4. शिशु को अधिक से अधिक सूर्य प्रकाश में रखना एवं कम से कम कपड़ों से हड़करा

आदर्श चिकित्सा पद्धति

1.	निदान परिवर्जन	2.	सायक पथ्यपालन
3.	दुध युक्त पदार्थों का अधिक मात्रा ऐप्रयोग	4.	शिशु को प्रतिदिन 20-30 मिनट तक धूप में, खुले में रखना
5.	प्रातः : सायम् अग्निकूपार रस : 65 मि.ग्रा. प्रवाल पंचामूत : 120 मि.ग्रा. शंखभूम्य : 120 मि.ग्रा.	6.	दुध से : 1 × 2 मात्रा कृमिमुद्गर रस : 120 मि.ग्रा. गुड़ से : 1 × 2 मात्रा चित्रकादि वटी : 120 मि.ग्रा. कोणारकत/शहद से : 1 × 2 मात्रा
7.	भोजनेतर अरबिदासव : 15 मि.लि.	8.	समभाग जल से : 1 × 2 मात्रा
9.	वातानाशक तैलों से सर्वशरीर अध्यग्न		

पथ्यापाय्य

पथ्य	अपाय्य
दुध एवं दुध से बने पदार्थ, मधुर एवं स्निग्ध द्रव्य, स्तन पान, दलिया, मूंगा, मधुर, अंडा, मांस, Cod Liver Oil, सूर्य प्रकाश, खुला एवं सच्चड चातावरण इत्यादि।	स्तन्यपान का अभाव, दुध न देना, सर्वदा शरीर को ढक कर रखना एवं सूर्य प्रकाश में शिशु को नहीं रखना

Management : Principles

1. Rich Diet- Containing plenty of milk.
2. Vitamin "D", Calcium and phosphorus supplements.
3. Symptomatic Management.
4. Regular exposure to sun rays for 20-30 minutes daily.
5. Proper sanitation and hygienic environment.

••• लैट्टी कूली •••

5. अस्थि मार्दव (Osteomalacia)

व्याधि परिचय
अस्थि मार्दव वयस्क व्यक्तियों में उत्पन्न होने वाला प्रमुख कुपोषण जन्य रोग है। अस्थियों में दृढ़ता नहीं रहती एवं उनका स्वरूप सम्पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाता है। अस्थिमार्दव रोग भी लाभा रिकेट्स के समान ही होता है परन्तु मौलिक अन्तर यह है कि रिकेट्स बच्चों की और अस्थिमार्दव प्रौढ़वस्था की व्याधि है। यह रोग इन्हीं में विशेषकर अधिक मिलता है।

निदान
अस्थिमार्दव रोग के निदान लाभा रिकेट्स के निदान के समान ही होते हैं जो निम्न हैं—

1. सूर्य के प्रकाश का शरीर पर न लगान (Lack of exposure of solar rays)
 2. वसा का आंत्र से कम मात्रा में अवशोषण होना (Fat malabsorption from gut)
 3. घटक जन्य व्याधियाँ (Liver disorders)
 4. आहार में कैल्सियम एवं फॉस्फोरस की कमी होना (Dietary deficiency of Calcium and Phosphorus)
 5. वृक्त जन्य व्याधियाँ (Kidney Disorders)
 6. बीज दोष जनित अस्थिमार्दव (Type II Rickets)
 7. मूत्राशय एवं मूत्र निलिका के अवृद्धि (Renal Tumours)
 8. जीर्ण चायापचय जन्य विकृतियाँ (Chronic Metabolic Disorders)
 9. असम्युक्त आहार (Incompatible Diet)
- लक्षण**
अस्थिमार्दव के निम्न लक्षण होते हैं—

1. अस्थियों में शूल एवं बेदना (Bony pains and tenderness)
2. अस्थियों का विकृत होना (Deformity of Bones)
3. मांसपेशियों में दुर्बलता (Weakness of muscles)
4. शरीर में कम्पन होना (Tremors of body)
5. धीरे-धीरे पर्सिकाइ (Ribs), निकासी (Sacral Bone), बक्सिगुहा की अस्थि (Pelvic Bone) एवं धौरों (Legs) का बार-बार रोग से आक्रान्त होना
6. रोगी के चलने की दिक्कतें में कठिनाई (Difficulty in movements)

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
 2. रोगी को दुग्ध एवं दुग्ध निकारों का अधिक मात्रा में सेवन कराना
 3. संतुलित आहार एवं विहार प्रयोग
 4. सूर्य प्रकाश (किरणों) में रोगी को अधिक समय तक रखना
 5. शरीर को वस्त्रों से अधिक न ढकना
 6. लाक्षणिक चिकित्सा
- आदर्श चिकित्सा प्रति**
1. निदान परिवर्जन
 2. पथ्यपालन
 3. दुग्ध पदार्थों का अधिक प्रयोग
 4. रोगी को प्रतिदिन 20-30 मिनट तक धूप में रखना
 5. सितोपलादि चूर्ण : 2 ग्राम
 6. यवनी घाड़व चूर्ण : $\frac{3}{2}$ ग्राम
 7. शहद से खोजोत्तर : 500 मिली
 8. शूल भस्म प्रवर्त लिप्ती : 500 मिली
 9. दुध से शूल भस्म : $\frac{500}{500}$ मिली
 10. चित्रकादि वटी : $\frac{1 \times 2}{1 \times 2}$ मात्रा
 11. जल से भोजनोत्तर : 20 मिलिलि.
 12. या बलारिष्ठ : $\frac{20}{1 \times 2}$ मात्रा
 13. समभाग जल से जलनाशक तैलों से सर्वशरीर अध्यंगा : 1 \times 2 मात्रा
 14. वातानाशक तैलों से सर्वशरीर अध्यंगा : 1 \times 2 मात्रा
- पथ्यापचय**
- | पथ्य | अपचय |
|---|--|
| दुध, दधि, मक्खन, केला, अखोटे, परीता, आहर, उड्ड, चना, मूंगा, मसूर, अंडा, मासरस, यकृत एवं धीरे-धीरे पर्सिकाइ। | कट्ट, तिक पदार्थ, कुलथ, यव, दिवाशयन, मिथ्याहार एवं विहार, अतिविरेचन एवं अतिवस्त्रधारण इत्यादि। |
- Management : Principles**
On the principles of management of Rickets.

6. रात्रि अंधता या नक्कास्य (Night Blindness)

व्याधि परिचय

रात्रि अंधता एक प्रमुख कृपोषण जन्य व्याधि है जो प्रायः बच्चों में अधिक पार्दी जाती है। रात्रि अंधता जीवनीय तत्व "ए" की कमी से होती है। यह जीवनीय तत्व केवल जन्म उत्तकों में हो मिलता है। जीवनीय तत्व "ए" का Precursor बनस्पतियों में भी मिलता है जो मनुष्य की ओर में पहुंचकर जीवनीय तत्व "ए" में बदल जाता है। यह तत्व शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है। संतुलित आहार सेवन नहीं करने के कारण भी जीवनीय तत्वों की शरीर में कमी हो जाती है। शरीर में जीवनीय तत्व "ए" की कमी से अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्तर होती हैं परन्तु उनमें से रात्रि अंधता प्रमुख रोग है।

निदान

- कृपोषण
- कुछ निदानर्थकर रोग है जिनको सम्पूर्ण चिकित्सा नहीं करने पर ये रात्रि अंधता उत्पन्न कर सकते हैं यथा - जीर्ण अतिसार (Chronic Diarrhoea, Malabsorption syndrome), अग्नयाय (Pancreas) की विकृतियाँ, यकृत संबंधी विकार (Liver Disorders) आदि।
- संतुलित आहार का अभाव
- चापापचय जन्य विकृतियाँ जिनके परिणामस्वरूप आत्र से खाद्य पदार्थों का सम्यक् अवशोषण नहीं होता।

लक्षण

- रात्रि में देखने में असमर्थता (Night Blindness)
- नेत्र कला में शुष्कता (Xerosis)
- नासा की ओर नेत्र प्रदेश में शुष्कता, खरता, सुरियाँ एवं गंदला भूरा वर्ण (Dryness, roughness and wrinkles at nasal side of the eyes)
- नेत्र के बाहू किनारों पर धब्बे (Biot's spots)
- चिकित्सा के अभाव में नेत्र के कृष्ण पटल में विकृति उत्पन्न होना (Keratomalacia)
- संक्रमण के कारण सम्पूर्ण नेत्र में शोथ
- हाथ एवं पैर की त्वचा में शुष्कता एवं शल्क युक्त त्वचा (Toad skin or follicular hyper-keratosis)
- जिहा का विकृत हो जाना (Hypertrophy of tongue)
- शरीर के विभिन्न संस्थानों जैसे- मूत्रवह, श्वसन इत्यादि में उपर्या होना

रात्रि अंधता या नक्कास्य

(Infections of Urinary, Respiratory and other systems of body)

प्र शरीर वृद्धि में अवरोध (Retardation of growth)

चिकित्सा तिद्दांत

- मर्यादित रूप से संतुलित आहार-विहार पालन
- पथ्यपच्य पालन
- उपद्रवों को शीशातिशीघ्र चिकित्सा
- आदर्श चिकित्सा पत्र
- निदान परिवर्जन
- शोधन चिकित्सा
 - नेत्रतर्पण : दुध, घृत, तैल से
 - शिरो बस्ति
 - नस्य कर्म
- शमन चिकित्सा
- पिपलत्यजन
- नकारात्यहरवर्ति से
- नेत्र बिन्दु
 - स्थानिक प्रयोग (नेत्रों में) : $\frac{4-6}{1 \times 4}$ मात्रा
 - महात्रिकलाई घृत : $\frac{20}{1 \times 2}$ मिल.
 - दुध से
 - त्रिफलादि योग : $\frac{6}{1 \times 2}$ मात्रा
 - गोघृत एवं शहद से : $\frac{1}{1 \times 2}$ मात्रा

पथ्यपच्य

अपश्य

गोघृत, गोदुध, मक्खबन, गाजर, पालक, टमाटर, पपीता, नारंगी, यकृत, अंडा, मांस एवं यकृत से निकाला हुआ तैल इत्यादि।

Management : Principles

- Rich Diet- Containing lot of milk, dark green and leafy vegetables and yellow fruits.
- Oral administration of periodic high doses of vitamin "A" (60mg or 20,000 IU) at 4-6 months intervals.
- Symptomatic Management.

••• नोटे कृपा

7. बेरीबेरी (Beriberi)

व्याधि परिचय

बेरीबेरी रोग भी कुमोषण के कारण फैलता है। पूर्वकाल में यह रोग विश्वभर में पाया जाता था। परन्तु वर्तमान समय में यह रोग कम मिलता है। बेरीबेरी रोग से ग्रस्त रोगी थोरे-धोरे विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक विकारों से ग्रस्त रहते हुए चलने-फिरने में भी असमर्थ हो जाता है तथा कभी-कभी चिकित्सा न करने पर रोगी की मृत्यु भी हो सकती है।

निदान

बेरीबेरी रोग के निम्नलिखित प्रमुख निदान हैं—

1. छिलका हटाकर पालिश किये हुए चावल का अधिक मात्रा में प्रयोग
2. सतुलित भोजन का अभाव
3. आहर में दातें, अनाज, सब्जी आदि पर्याप्त मात्रा में नहीं होना
4. आन्त की विकृति जिसके कारण जीवनीय तत्व 'बी' (Vitamin B₁) के अवशोषण में कठिनाई होना
5. जीण अतिसार

थेट
बेरीबेरी व्याधि निज दो प्रकार की होती है—

1. शुष्क बेरीबेरी (Dry Beriberi)
2. आई बेरीबेरी (Wet Beriberi)

1. शुष्क बेरीबेरी के लक्षण

(i) शुष्क बेरीबेरी रोग में मुख्यतः से शरीर का तीनिका तन्त्र (Nervous system) अथवा चावलह नाड़ियाँ प्रभावित होती हैं

- (ii) चिड़चड़ापन (Imitability)
- (iii) थकावट (Letharginess)
- (iv) मानसिक रूप से अस्थिरता (Emotional Disturbances)
- (v) शिर: शूल (Headache)
- (vi) तीनिका तन्त्र में शोथ होना (Polyneuritis)
- (vii) पैर की पिण्डलियों को दबाने पर उनमें दर्द होना (Tender calf muscles)
- (viii) शिशु को उठने-बैठने में कठिनाई होना (Difficulty in sitting & standing)

- (ix) झुधानाश (Poor Appetite)
- (x) विकार्य (Constipation)

- (xi) खोजन का सम्यक पाचन नहीं होना (Indigestion)
- (xii) शरीर वृद्धि रुक जाना (Retardation of Growth)
- (xiii) कार्सर्य (Emaciation)

2. आई बेरीबेरी के लक्षण

- (i) हृदय की पड़कन तीक्र होना (Palpitation)
- (ii) हृदय गति में तीव्रता (Tachycardia)
- (iii) श्वासक स्थूलता (Dyspnoea)
- (iv) शोथ (Oedema), शोथ विशेषकर पैर, मुख प्रदेश एवं जंधा पर उत्तर लेता है।

- (v) फैंसे में पेशिकाम्ल (Lactic Acid) जमा हो जाने के कारण चलने में कठिनाई एवं शूल
- (vi) चिकित्सा न करने पर हृदय का आकार बढ़ जाता है (Cardiomegaly)
- (vii) त्वचा में शीतलता का अनुभव (Cold skin)

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
 2. मशीन से छिलका साफ किए गये चावल का पूर्णतः निषेध
 3. सम्यक पथ एवं अपथ्य पालन
 4. रोगी को पूर्ण विश्राम
- | आदर्श चिकित्सा पत्र | | | |
|---------------------|---------------|---------------------|--------------|
| 1. | प्रत | : | सायम |
| अश्वाधा चूर्ण | : | 3 ग्राम | |
| गोदन्ती भस्म | : | 250 मि.ग्रा. | |
| अग्नि कुमार रस | : | <u>125 मि.ग्रा.</u> | |
| तण्डुलोदक के साथ | : | 1 × 2 मात्रा | |
| 2. | चित्रकादि वटी | : | 500 मि.ग्रा. |
| विषतिनुक वटी | : | <u>250 मि.ग्रा.</u> | |
| कोजा जल से | : | 1 × 2 मात्रा | |
| 3. | भोजनोत्तर | | |
| यचानी घाड़व चूर्ण | : | 1 ग्राम | |
| पुष्कर मूल चूर्ण | : | 1 ग्राम | |
| अर्जुन चूर्ण | : | <u>1 ग्राम</u> | |
| शहद के साथ | : | 1 × 2 मात्रा | |

4. भोजनोत्तर : 20 मि.लि.
अमर्जनरिट : $\frac{20 \text{ मि.लि.}}{2 \text{ मि.लि.}}$

समभाग जल से : 1×2 मात्रा
5. रानि में प्रिफला चूप : $\frac{3 \text{ ग्राम}}{1 \text{ मात्रा}}$

कौशल जल से :
6. योगासन एवं प्राणायाम

पथ्यापथ्य पथ्य अपथ्य
गेहूँ, यन, चावल, मूंगा, उड़द, मसूर, छिलका रहित पालिश किया हुआ चावल, कटु, उष्ण, तीक्ष्ण, विदाही, अधिष्ठन्दी, शुष्क, रुक्ष एवं बासी पदार्थ सोयाबीन, सहिजन, परबल, मांस, अंडा, मस्त्य, पालक, टमाटर, गाजर, चौलाई, गुड़ची, पुनर्नवा एवं पपीता इत्यादि।

7. वैशिखक स्तर पर दक्षिण अफ्रीका, यूरोप, अमेरिका एवं एशिया के कुछ देशों में यह व्याधि अधिक मिलती है।
निदान
पेलाग्रा रोग के प्रमुख निदान निम्नलिखित हैं—

1. संतुलित भोजन का अभाव
 2. मवका का अधिक समय तक लगातार सेवन
 3. अल्पधिक मद्दापन
 4. आन्कगत जीर्ण व्याधियां जैसे— जीर्ण अतिसार, ग्रहणी से ग इत्यादि
 5. आहार में सम्यक पोषक तत्वों का अभाव
 6. गरीबी एवं अशिक्षा
- प्रमुख लक्षण**
पेलाग्रा रोग को तीन "Ds" का रोग कहा जाता है—
- (i) Dermatitis (ii) Diarrhoea (iii) Dementia
- पेलाग्रा रोग में निम्न लक्षण प्रकट हो सकते हैं—
1. अतिसार (Diarrhoea/Loose motions)
 2. शुष्य नाश (Poor Appetite)
 3. हळास (Nausea)
 4. वमन (Vomiting)
 5. मांस भोजनों में दुबलता (Weakness in Muscles)
 6. मानसिक विकास में अवरोध (Mental Retardation)
 7. स्मृति नाश (Loss of memory)
 8. त्वचा पर चकते (Pigmented and scaly skin)
 9. त्वचा का शुष्क, खर, रक्ताभ एवं पपड़ी युक्त होना (Dry, rough, reddish coloured and scaly skin)
- चिन्ता (Anxiety)
11. उत्साहीनता (Inertness)
12. प्रलाप (Delirium)
13. रोगी के शरीर भार में कमी (Body weight loss)
- विकितसा सिद्धांत**
1. निदान परिवर्जन
 2. लाक्षणिक चिकित्सा
 3. संतुलित आहार सेवन
 4. पथ्यापथ्य यालन

Management : Principles

1. Complete rest to the patient.
 2. Balanced diet.
 3. 50-100mg Thiamine Hydrochloride by slow I.V. injection immediately followed by 50-100mg I.M. daily for a week.
 4. Symptomatic Management.
- नोट क्लैश •••

8. पेलाग्रा (Pellagra)

व्याधि परिचय

पेलाग्रा एक प्रमुख कुपोषण जन्य रोग है। यह वस्तुतः जीवनीय तत्व "नियामिन" (PP Factor) की कमी से उत्पन्न होता है। पेलाग्रा प्रायः उन व्यक्तियों में अधिक होता है जो मवका (Maize) लाजू भवे समय तक लगातार अधिक सेवन करते हैं। उन सभी देशों में यह व्याधि अधिक होती है जहां पार मवका मुख्य भोजन होता है। पेलाग्रा रोग में नारंदेहिक लक्षणों की उत्पत्ति होती है। भारत में मुख्तातः राजस्थान, महाराष्ट्र प्रदेशों में

आदर्श चिकित्सा पत्र

1.	निट्रन परिवर्जन	प्रति	: सायम्
2.	दाइमाइक्रो-पूर्ण आमलकी चूर्ण गंधक रसायन रस मापिक्ष नवायस लोह कोणा जल से खोजने तरीका	प्रति	: 2 ग्राम : 2 ग्राम : 250 मि.ग्रा. : 125 मि.ग्रा. : 250 मि.ग्रा. : 1 × 2 मात्रा
3.	भोजनोत्तर विक्रकादि वटी ब्राह्मी वटी कोणा जल से सारस्वतारिषि समभाग जल से ब्रह्म रसायन दुग्ध से पच्चापथ्य पालन	प्रति	: 500 मि.ग्रा. : <u>500</u> मि.ग्रा. : 1 × 2 मात्रा : 20 मि.लि. : <u>20</u> मि.लि. : 1 × 2 मात्रा : <u>20</u> मि.ग्रा. : 1 × 2 मात्रा
4.	पच्चापथ्य	अपथ्य	
5.			
6.			

स्थाथि परिच्छय (Scurvy)

स्कर्वी रोग प्रायः उन व्यक्तियों में अधिक पाया जाता है जो पतेदार सब्जियों, फल, नौबू आदि का सेवन नहीं करते हैं। स्कर्वी रोग का मुख्य कारण जीवनीय तत्व "सी" (Ascorbic Acid) की कमी होना है। शरीर में लौह तत्व, प्रोटीन आदि की कमी भी स्कर्वी रोग की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत में स्कर्वी रोग प्रायः कम पाया जाता है लेकिन शुष्क प्रदेशों जैसे राजस्थान, मध्य प्रदेश, परिचमी उत्तर प्रदेश में अभी भी यह रोग बहुतायत से पाया जाता है।

निट्रन

स्कर्वी रोग उत्पत्ति के प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं—

1. संतुलित भोजन का अभाव
2. आहार में नौंगी, नौबू, अनार, ऑबला, टमाटर जैसे फलों की कमी
3. आन्वगत कृषि
4. आन्वगत जीर्ण रोग जिनके कारण पोषक द्रव्यों का अवशोषण कम होने से कुपोषण होकर स्कर्वी रोग की उत्पत्ति हो जाती है।

सामान्य लक्षण

1. क्षुधा में कमी (Anorexia)
2. दाँत के मसूड़ों में शोथ एवं रक्त झाव (Swelling and bleeding from gums)

3. कंधी-कंधी लम्बी अस्थियों के शीर्ष प्रदेश से भी रक्तसाव होता है (Haemorrhage from periosteum of long bones)

4. ल्वचा पर रक्तवर्ण के चकते होना (Patechiae)
5. रक्ताल्पता (Anaemia)
6. दांतों के बीच पपड़ी बन जाना (Tartar on Teeth)
7. सर्वांग में वेदना (Bodyache)
8. जोड़ों में दर्द (Joint pains) एवं शोथ (Oedema)
9. दौर्बल्य (Weakness)
10. सुस्ती एवं थकान (Letharginess)

11. व्याधिशमत्व में कमी (Decreased Immunity)
12. शरीर के घाव भरने में देरी (Delayed healing of wounds)

चिकित्सा सिद्धांत

1. निट्रन परिवर्जन
2. संतुलित आहार
3. ताजे, खट्टे फलों का अधिक प्रयोग
4. सम्यक् दिनचर्या पालन
5. पच्चापथ्य का नियमानुसार पालन

आदर्श चिकित्सा पत्र ०००८०५५८००

		प्रत : सांघ
1.	आपलकी चूर्ण नागराद्य चूर्ण	$\frac{1}{2}$ ग्राम
	इध से	$\frac{1}{2}$ ग्राम
2.	भोजनोत्तर बोल चूर्ण नागकेशर चूर्ण	$\frac{1}{2}$ ग्राम $\frac{1}{2}$ ग्राम
	शहद से	$\frac{1}{2}$ ग्राम
3.	आपलक्यावलेह च्ववन्नाश्रावलेह	$\frac{1}{2}$ ग्राम $\frac{1}{2}$ ग्राम
	इध से	$\frac{1}{2}$ ग्राम
4.	नवायस लौह प्रवालपिणी	$\frac{1}{2}$ ग्राम $\frac{1}{2}$ ग्राम
	बोल बड्ड रस	$\frac{1}{2}$ ग्राम
5.	शहद से	$\frac{1}{2}$ ग्राम
	भोजनोत्तर	$\frac{1}{2}$ ग्राम
6.	द्राक्षासव	$\frac{1}{2}$ ग्राम
	समभाग जल से	$\frac{1}{2}$ ग्राम
7.	सुश्रा (सफटिका) युक्त जल से गण्डूष एवं कवलधारण स्थानीय प्रयोगार्थ	$\frac{1}{2}$ ग्राम
	दशन संस्कार चूर्ण	$\frac{1}{2}$ ग्राम
	शीतल जल से	$\frac{1}{2}$ ग्राम

पश्चापथ्य

नीबू, नारंगी, अंबला, अनार, केला, यव, कोदो, मका, शयामक, तले-भुने, चांगेरी, बेर, टमाटर, अमलद, गोभी, बासी पदार्थ, विदाही अच, अति पालक, मेथी, ब्रशुआ, चौलाई, अंकुरित व्यवाय, अति क्रोध एवं अति व्यायाम चना, अंकुरित मूँग, अंकुरित उड्ड, इच्छादि ! अंकुरित अन्य अनाज, पपीता, सरसा, घृत, मांस एवं मत्त्व इत्यादि !

Management : Principles

1. Balanced diet containing plenty of citrus fruits.
2. Vitamin "C" 250 mg 8 hourly by mouth for two months.
3. Adequate supplements of Iron and Folic acid.
4. Symptomatic Management.

अध्याय ३

विभिन्न अंतः स्नावी गंथियों की व्याधियाँ

(VARIOUS DISORDERS OF ENDOCRINE GLANDS)

परिचय

आयुर्वेदीय संहिता ग्रंथों में अंतःस्नावी गंथियों एवं उनके स्नाव के संदर्भ में वर्णन नहीं मिलता है। वस्तुतः अंतःस्नावी गंथियों का विस्तृत वर्णन, उनकी संरचना, कार्य प्रणाली तथा उनके द्वारा स्नावित प्रकार के हार्मोन का वर्णन आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आयुर्वेद में सूक्ष्म त्वरण में अंतःस्नावी गंथियों को कार्य प्रणाली का संकेत मिलता है। आयुर्वेद में स्थूल एवं सूक्ष्म दो प्रकार के स्रोतस का वर्णन मिलता है। स्थूल स्रोतस भी सामन्यतः 13 प्रकार के होते हैं एवं 14वाँ आर्तवह स्रोतस माना गया है। इसीरी तरफ सूक्ष्म स्रोतसों की संख्या अंतर्भूत बतायी गयी है। सूक्ष्म स्रोतस (Microcirculatory channels) के द्वारा ही सम्भवतः अंतःस्नावी गंथियों को किंवा प्रणाली का सामनजस्य स्थापित हो सकता है। आयुर्वेद में आम एवं अग्नि का भी व्यापक वर्णन उपलब्ध होता है। अतः आयुर्वेदिय दृष्टिकोण से समग्र रूप से अध्ययन करने पर अन्तःस्नावी गंथियों के क्रिया विन्यास को समझा जा सकता है।

अंतःस्नावी संस्थान (Endocrine System)

अंतःस्नावी गंथ विज्ञान, हार्मोन के निर्माण, स्नाव एवं उनकी क्रिया (Action) से संबंधित है। हार्मोन्स एक प्रकार के रासायनिक दूत (Chemical messengers) होते हैं जो मनुष्य की कोशिकाओं (Cells) की गतिविधियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं। शरीर में दो प्रकार के नियंत्रण तंत्र (Control Systems) होते हैं—

1. तंत्रिका तंत्र (Nervous system)
 2. अंतःस्नावी संस्थान (Endocrine system)
- इनमें से तंत्रिका तंत्र (Nervous system) विद्युत रासायनिक (Electrochemical) संकेतों को विशिष्ट तंत्रिका सूत्रों (Nerve Fibres) के द्वारा नियंत्रित करता है जबकि दूसरी ओर, अंतःस्नावी संस्थान अपने हार्मोन्स को रक्त संवहन (Blood circulation) में छोड़ते (Release) हैं जहाँ से वह अपने निर्धारित स्थान पर पहुंचकर नियंत्रित विशेष कार्य को मंपादित करते हैं।

विभिन्न अंतःस्रावी ग्रॅंथियों की व्याधियां

213

सबसे प्रमुख अंतःस्रावी ग्रॅंथियों की व्याधियों में अवटु ग्रॅंथ (Thyroid gland), परा अवटु ग्रॅंथ (Parathyroid gland), अन्त्याशय (Pancreas), पीपूष ग्रॅंथ (Pituitary Gland), इत्यादि की व्याधियों की गणना की जाती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organisation) के अनुसार 1-5% व्यक्तियों की मृत्यु अंतःस्रावी ग्रॅंथियों की व्याधियों के फलस्वरूप होती है। परंतु बड़ी संख्या में लोग अंतःस्रावी ग्रॅंथियों के रोगों से पीड़ित रहते हैं, हालांकि उनमें मृत्यु दर कम रहती है।

अंतःस्रावी ग्रॅंथियों की क्रियाविधि में निमंत्रिता एवं सम्पर्क कार्यशक्ति अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि वह प्रमुख शरीर को स्वस्थ रखने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि किसी प्रकार से इनके स्रावों में कमी या अधिकता उत्पन्न हो जाती है तो व्यक्ति अनेक प्रकार की दीर्घकालीन व्याधियों से ग्रसित हो जाता है। इनमें से कुछ व्याधियां घातक भी होती हैं। अंतःस्रावी संस्थान की कार्य प्रणाली एवं उनकी विकृतियों का समुचित ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। यहां प्रमुख अंतःस्रावी ग्रॅंथियों की सामान्य क्रियाविधियों एवं उनकी विकृतियों से उत्पन्न व्याधियों का वर्णन किया जा रहा है।

1. अवटु या चुल्लिका ग्रॅंथ (Thyroid Gland)

परिचय

अवटु ग्रॅंथ ग्रीवा में, शस्त्र पथ (Trachea) के उर्ध्वभाग में 5वें, 6वें एवं 7वें ग्रीवा कर्शेरुका (Cervical Vertebrae) के ठीक सामने स्थित होती है। इसके दो खण्ड (Lobes) होते हैं जो रुक्कु (Cone) के आकार के होते हैं। अवटु ग्रॅंथ का सामान्य भार (Weight) लगभग 20-30 ग्राम तक होता है। ग्रॅंथ का आकार पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में कुछ बड़ा होता है। गर्भावस्था (Pregnancy) एवं मासिक लाव (Menstrual Cycle) के समय ग्रॅंथ का आकार कुछ और बढ़ जाता है।

अवटु ग्रॅंथ के सामान्य कार्य (Functions of the Thyroid Gland)

एवं कार्यों को प्रभावित करती है। अवटु ग्रॅंथ के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—

- अवटु ग्रॅंथ के स्राव में महत्वपूर्ण ग्रॅंथ है जो कि पूरे शरीर के चयापचय (Metabolism) एवं कार्यों को प्रभावित करती है। अवटु ग्रॅंथ के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—
 - अवटु ग्रॅंथ के स्राव में मुख्यतः "T₄" एवं "T₃" हार्मोन होते हैं। जिन्हें क्रमसः "थायराक्सिन" (Thyroxine) एवं "ट्राईआयडोथायरोनिन" (Triiodothyronine) कहते हैं। इन हार्मोन्स में आयोडीन की मात्रा अधिक होती है। यह हमें शरीर की त्रुटि, चिकास एवं पूर्णता के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनकी शरीर में सामान्य मात्रा निम्न अनुसार होती है—

- T₃ (Tri-iodothyronine): 80-100 ng/dl
- T₄ (Thyroxine) : 4-12 µg/dl

धायराइड हामोन शरीर की सामान्य चयापचय दर को बढ़ाता है (Increases the Basal Metabolic Rate)। चयापचय दर अधिक होने के कारण शरीर धार कम होता है एवं शरीर में उष्ण (Temperature) की अधिक उत्सर्जित होती है।

अवटु ग्रॅंथ का स्राव एन्जाइम की क्रियाविलता को बढ़ाता है तथा कोलेस्ट्रल के निर्माण (Synthesis) एवं विषटन (Catabolism) को नियमित करता है।

थायराक्सिन हार्मोन यकृत को भी प्रभावित करता है तथा शरीर की रक्तगत शर्करा (Blood Sugar) को बढ़ा देता है एवं अंत के द्वारा रक्त शर्करा के अवश्योषण को भी नियमित करता है।

थायराक्सिन हार्मोन प्रोटीन के निर्माण (Synthesis) तथा विषटन (Catabolism) को प्रेरित (Stimulate) करता है।

थायराक्सिन हार्मोन मूत्र के माध्यम से शरीर से कैल्सियम को निष्कासित करता है। अंतःस्रावी ग्रॅंथ की स्थिति में अस्थियां होने लगती हैं।

थायराक्सिन हार्मोन की अधिक मात्रा हृदय गति को बढ़ाती है एवं उच्चरक्त चाप की स्थिति को उत्पन्न करती है।

बाल्यावस्था (एक वर्ष की आयु तक) में तंत्रिका तंत्र के पूर्ण विकास के लिए थायराक्सिन हार्मोन की अत्यन्त आवश्यकता होती है, अत्यथा मासिक (Brain) का आकार छोटा रह जाता है एवं मानसिक विकास भी अवरुद्ध हो जाता है।

अस्थियां एवं अस्थियां (Ossification) के लिए भी थायराक्सिन हार्मोन आवश्यक होता है।

थायराक्सिन हार्मोन की कमी से स्त्रियों में रज़: स्राव अधिक (Menorrhagia) होता है।

अवटु ग्रॅंथ की अतिक्राशीलता/अथवा अवटु ग्रॅंथ के स्राव का अतियोग (Hyper Thyroidism)

अवटु ग्रॅंथ के स्राव का अतियोग (Hyperthyroidism) में अनेक लक्षण एवं स्थितियां एक साथ उत्पन्न होती हैं। यह व्याधि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों में पाँच गुना अधिक पायी जाती है। अवटु ग्रॅंथ स्राव की अधिकता में शरीर के सभी संस्थान

आवश्यक रूप से प्रभावित होते हैं। अवटु ग्रॅंथ की अतिक्राशीलता (Hyperthyroidism)

में T_4 एवं T_3 हामोन का रक्तगत स्तर बढ़ जाता है इनमें भी T_3 की मात्रा T_4 की तुलना में अधिक बढ़ी हुई होती है। पीयुप ग्रंथि से साधित होने वाले TSH हामोन (Thyroid Stimulating Hormone) की मात्रा भी सामान्यतः अधिक होती है।

(Aetiology of Hyper Thyroidism)

अबडु ग्रंथि के अतिक्राव अथवा अतिक्रियाशीलता के प्रमुख निदान निम्नलिखित हैं—

1. ग्रेव की व्याधि (Grav's Disease)
2. गलाण्ड अथवा बैंचा रोग (Goiitre)
3. अबडु ग्रंथि में शोथ (Thyroiditis)
4. कुछ आधुनिक औषधियाँ भी अबडु ग्रंथि की अतिक्रियाशीलता उत्पन्न करती हैं।

आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से विचार करते पर अबडु ग्रंथि की अतिक्रियाशीलता का कारण पित दोष की विकृति प्रतीत होती है। पित दोष की अधिकता से जाठरानि की अतिवृद्धि हो जाती है जिसके कारण भूतान्नि एवं धात्वानियों की भी अतिक्रियाशीलता उत्पन्न होने लगती है। वृद्धि को प्राप्त धात्वानियाँ सम्भवतः धातुपाक की क्रिया को तीव्र करती है जिससे सभी धातुओं का क्षय होने लगता है। फलस्वरूप व्याकुक्ति का शारीरिक भार कम होने लगता है लेकिन उसकी जाठरानि अप्रभावित अथवा तीव्र रहती है। अबडु ग्रंथि की अतिक्रियाशीलता के जो लक्षण आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में बताए गये हैं उनका सूक्ष्म विवेचन करते पर वह पित वृद्धि के लक्षणों से पर्याप्त सम्पत्ति रखते हैं। अतः अबडु ग्रंथि की अतिक्रियाशीलता का कारण आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से पित दोष विकृति को माना जा सकता है।

(Clinical Features of Hyper Thyroidism)

अबडु ग्रंथि का साधारण के प्रायः सभी संस्थानों को प्रभावित करता है और इसके निम्नलिखित मुख्य लक्षण होते हैं—

1. गलगण्ड (Goiitre)

गलाण्ड सामान्य स्वरूप का अथवा ग्रंथियुक्त गलगण्ड (Nodular Goitre) भी हो सकता है।

2. पाचन संस्थान गत लक्षण (Gastrointestinal Symptoms)
 - (i) सामान्य क्षेत्र अथवा अधिक क्षेत्र के बावजूद शरीर भार कम होना (Weight loss despite normal or increased Appetite)
 - (ii) अधिक मल प्रवृत्ति (Excessive defecation)
 - (iii) अतिसार (Diarrhoea)

- (iv) अरुचि (Anorexia)
- (v) बम्प (Vomiting)
3. रक्तबह एवं श्वसन संस्थान के लक्षण (Cardiorespiratory Symptoms)
 - (i) हृदय की थड़कन एवं हृदयगति बढ़ जाना (Palpitation and Tachycardia)
 - (ii) नाड़ी का दबाव बढ़ना (Increased Pulse Pressure)
 - (iii) जिना हृदय गत व्याधि के गुलफ संधि में शोथ (Ankle Oedema without cardiac disease)
 - (iv) हृस्थूल (Angina)
 - (v) कार्य करने पर श्वास कुचला (Dyspnoea on exertion)
 - (vi) तमक श्वास (Bronchial Asthma)

4. तंत्रिका तंत्र एवं मांसपात लक्षण (Neuromuscular symptoms)

- (i) घबराहट, चिड़चिड़ापन, भावनात्मक फ़रशानी (Nervousness, Irritability and Emotional Conflicts)
- (ii) उमाद (Psychosis)
- (iii) मांसपात कमजोरी (Muscular Weakness)
- (iv) कभी-कभी पक्षाशात जैसी अवस्था (Periodic/Transient Paralysis)

5. त्वचा गत लक्षण (Dermatological Symptoms)

- (i) स्वेदन अधिक होना (Increased Sweating)
- (ii) त्वचा में कंपदू (Itching)
- (iii) हथेली की त्वचा में तिकार (Palmar Erythema)
- (iv) चकते के रूप में बालों का गिरा (Alopecia)
- (v) त्वचा पर चकते अथवा सफेद दाग (Hypopigmentation/Vitiligo of skin)

6. प्रजनन संस्थानगत लक्षण (Symptoms of Reproductive System)

- (i) रजोनाश (Amenorrhoea)
- (ii) अल्पार्थ (Oligomenorrhoea)
- (iii) अवानक गर्भसाव हो जाना (Spontaneous Abortion)
- (iv) रतिकिया में अनिक्षा (Loss of Libido)
- (v) नंपुसकता (Impotence)

7. नेत्रगत लक्षण (Ocular Symptoms)

- (i) नेत्र बाहर की ओर निकल जाना (Exophthalmos)
- (ii) नेत्र की पलक का ऊपर चढ़ जाना (Lid Retraction)
- (iii) नेत्र में कुछ किराकिराहट अथवा कुछ पड़ हुए होने का आभास (Feeling of some foreign body in the eyes)
- (iv) नेत्र से अत्यधिक अशुशाव (Excessive Lacrimation)
- (v) नेत्र का रक्तवर्ण होना (Congestion of Eyes)
- (vi) नेत्र से देखने में कठिनाई अथवा दिखायी न देना (Loss of Visual Acuity)

8. अन्य लक्षण (Other Symptoms)

- (i) उष्णता को सहन न कर पाना (Heat Intolerance)
- (ii) थकावट (Fatigue)
- (iii) पुरुषों में स्तन का विकास होना (Gynaecomastia)
- (iv) यास (Thirst)

अबटु ग्रैंथ (Thyroid Gland) के अंतःस्नाव थायराक्सिन (Thyroxin) का मुख्य घटक द्रव्य आयोडीन होता है जिसके साथ टाइरोसिन नामक एमिनो एसिड फिल्कर थायराक्सिन हामोन का निर्माण करता है। शरीर में जब आयोडीन की कमी हो जाती है अथवा आंत या ग्रहणी द्वारा आयोडीन का प्यास अवशोषण नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे शरीर में थायराक्सिन हामोन की कमी होने लगती है तथा पूर्वोक्त वर्णित लक्षण शरीर में उत्पन्न होने लगते हैं।

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
2. शोधन चिकित्सा
 - (i) भ्रमक रोग के समान ही अबटुग्रैंथ की अतिक्रियाशीलता में पित्र की अत्यधिक वृद्धि होती है। अतः इसमें पित्तनाशक विरेचन कराना चाहिए।
 - (ii) रक्तमोक्षण
3. शमन चिकित्सा
 - (i) यवापू बनाकर उसमें मधु का मोम और घृत मिलाकर सेवन कराना चाहिए।
 - (ii) बेर की गुरुत्वी की मजा का कल्क पान कराना।
 - (iii) स्त्री उत्तम में उत्तम छात पीसकर पान कराना।
 - (iv) मधुर, मेघ, कफकारक, गुरु आहार का लगातार प्रयोग।
 - (v) आयोडीन युक्त आहार द्रव्य अथवा आयोडीन नमक का प्रयोग, दूध, च्याज, गाजर का अधिक प्रयोग।

4. शस्त्र कर्म	
5. प्रथापथ्य का पालन	
आदर्श चिकित्सा पत्र	
1. प्रातः	: सामग्र
वौसर प्रहरी पिघली	: 500मि.
जलकुम्मी भस्त्र	: 500मि.
दुध से	1 × 2 मात्रा
शतावरी चूर्ण	: 2 ग्राम
आमलकी रसायन	: 2 ग्राम
कोण्ठ जल से	1 × 2 मात्रा
अपामार्ग तण्डुल पायस	: 40मि
जल से	: 1 × 2 मात्रा
भोजनोत्तर	
कुमार्यास्त्रव	: 20 मि.ली.
समधान जल से	: 1 × 2 मात्रा
योगासन	: हलासन, सर्वाग्रासन, शोषणसन,
	जनुशादासन, इत्यादि।

विशेष-अबटु ग्रैंथ अतिक्रियाशीलता (Hyperthyroidism) रोग की चिकित्सा भ्रमक रोग के चिकित्सा सिद्धांत के अनुसार करनी चाहिए।

Management : Principles

1. Anti Thyroid Drugs- Carbimazole 5-20 mg daily for 18-24 months.
2. Subtotal Thyroidectomy.
3. Radio Iodine.

अबटु ग्रैंथ स्नाव की अल्पता

(Hypo Thyroidism)

अबटु ग्रैंथ (Thyroid Gland) की अतिक्रियाशीलता के कारण शरीर में थायराइड हामोन का अपर्याप्त मात्रा में स्नाव होता है इस अवस्था को (Hypothyroidism) कहते हैं। Hypothyroidism में "T₄" हामोन की रक्तगत मात्रा कम हो जाती है (सामान्य मात्रा 4-12 μg/dl)। "TSH" हामोन का रक्तगत स्तर सामान्य से बढ़ जाता है जो लगभग 15-20 mU/L से अधिक होता है। Hypothyroidism में "T₃" हामोन की रक्तगत

सांदर्भ का कोई विशेष महत्व नहीं होता है और प्रायः इसकी जांच की आवश्यकता नहीं होती है।

प्रायः अबटु ग्रंथि की अल्ट्यक्रियाशीलता से दो तरह के लक्षण उत्पन्न होते हैं—

1. बच्चों में उत्तर की होने वाले लक्षण
2. वयस्क व्यक्तियों में उत्तर होने वाले लक्षण

1. बच्चों में उत्तर अबटु ग्रंथि स्त्राव की अन्तर्वता

(Criticism)

शिशु जन्म के समय यदि अबटु ग्रंथि अविक्रियित अथवा रोगिस्त होती है तो “क्रिटिनिज्म” नामक व्याधि उत्पन्न होती है। यह व्याधि प्रायः शिशु की दो वर्ष की आयु तक होती है। इस अवस्था में मरित्यक का सर्वाधिक विकास होता है तथा इसके लिए समुचित मात्रा में अबटु ग्रंथि स्त्राव की आवश्यकता होती है। इस अवस्था में अबटु ग्रंथि स्त्राव की अन्तर्वता के कारण मुख्यतः शिशु का शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है।

निदान एवं सम्प्राप्ति

जन्मगत अबटु ग्रंथि अल्प स्त्राव के प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं—

1. अबटु ग्रंथि में विकास जन्य विकृति होना (Developmental Anomalies) जैसे- अबटु ग्रंथि का अपने स्वस्थान पर नहीं होना (Ectopic Thyroid)
2. वंशानुत विकृति (Genetic Defect) : वंशानुत विकृति में प्रायः आयोडीन के ग्रहण एवं उससे हार्मोन निर्माण प्रक्रिया में विकृति होती है जिससे समुचित मात्रा में हार्मोन का निर्माण नहीं हो पाता है।
3. गर्भवत्था में विवारक औषधियों का सेवन अथवा अबटु ग्रंथि प्रतिरोधी (Anti Thyroid) औषधि प्रयोग।
4. जनपदोष्यस जन्य अबटु ग्रंथि अल्प क्रियाशीलता (Endemic Cretinism) : इस प्रकार की समस्या प्रायः उन स्थानों पर देखी जाती है जहाँ उस क्षेत्र में उत्पलब्ध खाद्य पदार्थों में आयोडीन की कमी होती है।
5. अपरोक्ष दुध पान (Poor Milk Feeding)

उपरोक्ष सभी कारणों के परिणाम स्वरूप क्रिटिनिज्म व्याधि की उत्पत्ति होती है।

सामान्य लक्षण

क्रिटिनिज्म के लक्षण प्रायः जन्म के कुछ सप्ताह से लेकर महीनों तक प्रकट होते हैं। इस व्याधि के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. शुष्क एवं मछली की शल्क के समान त्वचा (Dry and scaly skin)
2. विंबंध (Constipation)
3. भासे आवाज में रोना (Hoarse Cry)
4. हृदय गति सामान्य से कम होना (Bradycardia)
5. अस्थि का अपर्याप्त विकास (Impaired skeletal Development)

6. गोलाकार चेहरा (Rounded face)
 7. बौनापन (Dwarfism)
 8. ललाट पतला, नेत्र दूर-दूर तथा नाक चपटी एवं चौड़ी होती है (Narrow fore head, widely set eyes and flat, broad nose)
 9. उदर प्रदेश आगे की तरफ निकला रहता है (Protuberant Abdomen)
 10. बहरापन (Deafness)
 11. अवरुद्ध मानसिक विकास (Mental Retardation)
 12. मांस पेशियों में कड़ापन (Spasticity in muscle)
2. वयस्क व्यक्तियों में अबटु ग्रंथि स्त्राव की अन्तर्वता
 - (Myxoedema)

शिशु जन्म के समय यदि अबटु ग्रंथि अविक्रियित अथवा रोगिस्त होती है तो वयस्क अवस्था में यदि अबटु ग्रंथि की क्रिया मंद पड़ जाती है तो उस अवस्था को विक्रिस्डिमा कहते हैं। विक्रिस्डिमा के निदान, सम्प्राप्ति एवं लक्षण निम्न प्रकार हैं—

निदान एवं सम्प्राप्ति

1. शाल्य क्रिया अथवा विकिरण द्वारा अबटु ग्रंथि को निकाल देना
2. क्षेत्र विशेष में आयोडीन की कमी (Endemic Goitre)
3. अबटु ग्रंथि में अर्बुद (Thyroid cancer)
4. लंबे समय तक अबटु ग्रंथि प्रतिरोधी औषधियों का सेवन (Prolonged Administration of Anti thyroid Drugs)
5. बिना निश्चित कारण के अबटु ग्रंथि क्रियाशीलता में कमी (Idiopathic Myxodema)

सामान्य लक्षण

विक्रिस्डिमा के सामान्य लक्षणों की उत्पत्ति धीरे-धीरे होती है। कई वर्षों के पश्चात पूर्ण विकसित स्वरूप में यह व्याधि निम्न लक्षणों के साथ प्रकट होती है—

1. शीत असहिष्णुता (Cold Intolerance)
 2. मानसिक एवं शारीरिक थकान (Mental and Physical Lethargy)
 3. विंबंध (Constipation)
 4. आवाज एवं मानसिक कार्यक्षमता में धीरे-धीरे कमी (Slowing of Speech and Intellectual functions)
 5. चेहरे पर हल्का शोष (Puffiness of face)
 6. बालों का गिरना (Loss of Hairs)
 7. त्वचा के स्वरूप में परिवर्तन (Altered texture of skin)
- अबटु ग्रंथि का स्त्राव अल्प से लेकर महीनों तक प्रकट होता है तथा शरीर का सामान्य चयापचय प्रभावित होता है।

है। प्रत्येक संस्थान गत लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. **प्रमुख लक्षण (Main Symptoms)**
 - (i) थकावट (Tiredness)
 - (ii) शरीर भार में वृद्धि (Weight Gain)
 - (iii) शीत असहिष्णुता (Cold Intolerance)
 - (iv) आवाज में भारीपन (Hoarseness of voice)
 - (v) गलगण्ड (Goitre)
2. **रक्तबह एवं श्वसन संस्थान के लक्षण (Cardio Respiratory Symptoms)**

- (i) हृदय गति में कमी (Bradycardia)
- (ii) अल्टरक्टाप (Hypotension)
- (iii) हृदयाघात (Cardiac Failure)
- (iv) हृच्छृत (Angina)
- (v) हृदयाकरण एवं फ्रूफ़ुसाकरण में द्रव पदार्थ एकत्र होना (Pericardial & Pleural Effusion)
3. **तंत्रिका एवं मांसपन लक्षण (Neuromuscular Symptoms)**
 - (i) शरीर में ऐंडेन एवं बैदना (Aches and body pains)
 - (ii) मांसपेशियों में कड़ापन (Stiffness of muscles)
 - (iii) बहरापन (Deafness)
 - (iv) चलने-फिरने में एक तरफ लुढ़क जाना (Cerebellar Ataxia)
 - (v) मांस पेशियों में खिंचाव के पश्चात अस्थायी कठोरता (Tonic spasm of muscles or temporary rigidity after muscular contraction)
4. **त्वकगत लक्षण (Dermatological Symptoms)**
 - (i) शुष्क त्वचा (Dry Skin)
 - (ii) गंजापन (Alopecia)
 - (iii) होठों का अधिक रक्तवर्ण का होना (Purplish Lips)
 - (iv) सफेद दाढ़ा (Vitiligo)
 - (v) मिक्सिडिमा (Myxoedema)
5. **प्रजनन संस्थानगत लक्षण (Reproductive Symptoms)**
 - (i) अत्यधिक रक्तस्राव (Menorrhagia)
 - (ii) बन्ध्यत्व (Infertility)
 - (iii) स्तन से अत्यधिक दुध प्रवृत्ति (Galactorrhoea)
 - (iv) नमुस्करता (Impotence)

6. **पाचन संस्थानगत लक्षण (Gastrointestinal Symptoms)**
 - (i) विंबंध (Constipation)
 - (ii) जलोदर (Ascites)
- चिकित्सा सिद्धांत
 1. निदान परिवर्जन
 2. संतुलित आहार की व्यवस्था करना
 3. पथ्यापथ्य का पालन करना
 4. शायराक्सिन युक्त आहार द्रव्यों अथवा औषधि युक्त द्रव्यों का प्रयोग
- आदर्श चिकित्सा पत्र

1.	प्रातः	:	सायम्
	पिप्पली वर्धमान रस	:	250 मि.प्र.
	जलकुम्भी धूपम्	:	50 मिमि.
	अजमोदादि दूषण	:	2 ग्राम
2.	शहद/कोणा जल से	:	1 × 2 मात्रा
	कांचनार गुण्जतु	:	50 मिमि
	चित्रकादि वटी	:	<u>50 मिमि</u>
	शहद से	:	1 × 2 मात्रा
3.	पिप्पली वर्धमान रसायन	:	10 पिप्पली अथवा 6 पिप्पली अथवा हीन बल व्यक्तियों में 3 पिप्पली से प्रारंभ कर आरोही एवं अवरोही क्रम से कुल 1000 पिप्पली का सेवन घृत एवं दुध के साथ करना चाहिए। 10 पिप्पली से प्रारंभ पिप्पली वर्धमान रसायन 19 दिन में, 6 पिप्पली से प्रारंभ कर 25 दिन में अथवा 3 पिप्पली से प्रारंभ कर 36 दिन में पिप्पली वर्धमान रसायन का प्रयोग सम्पन्न होता है।
	प्रारंभ कर 36 दिन में पिप्पली वर्धमान रसायन का प्रयोग सम्पन्न होता है।	:	कट्टुकुम्भी स्वरस एवं सैंधव लवण से इत्यादि
- पथ्य सेवन
 4. नस्य
 5. योगासन
- Management : Principles
 1. Drug of choice is Thyroxine.
 2. It is customary to start slowly and a dose of 50 µg per day

- should be given for 3 weeks, increasing thereafter to 100 µg per day for a further 3 weeks and finally to 150 µg per day.

 3. Symptomatic management.
 4. Rich protein diet.
 5. Active Exercises.

三

2. परा अक्टूबर्यांश

۱۰۷

पराअवटु ग्राथया 4 होती है। यह अवटु ग्राथ के पश्चिमण्ड के कन्तरारे में जुड़ा हुई रहती है। दो पराअवटु ग्रंथयां दार्थी तरफ एवं दो ग्रंथयां बार्थी तरफ होती हैं। वस्तक व्यक्ति में प्रत्यक्त ग्रंथ गोलाकार, कुछ चपटी सी एवं पोले भूंग की होती है। पराअवटु ग्रंथयि का सामन्य भार 35-40 मिली ग्राम तक होता है।

- सामान्य कार्य (Functions of the Parathyroid Glands)**

पराअवटु ग्रंथि के प्रमुख कार्य निम्न प्रकार हैं—

 1. पराअवटु ग्रंथि का सर्वप्रमुख कार्य कैल्सटोनिन हार्मोन (Calcitonin Hormone) एवं जीवतिक डी (Vitamin D) के साथ जुड़कर शरीर में कैल्सियम के स्तर एवं अस्थि के चयापचय को नियमित करना है।
 2. पराअवटु ग्रंथि हार्मोन शरीर में कैल्सियम के स्तर को बढ़ाता है एवं फास्फोरस के स्तर को कम करता है।
 3. पराअवटु ग्रंथि हार्मोन वृक्ष नलिकाओं के द्वारा कैल्सियम के पुनर्अवशोषण (Reabsorption) को बढ़ाता है एवं फास्फोरस के अवशोषण को कम करता है। कैल्सिटोनिन हार्मोन फास्फोरस के उत्सर्जन (Excretion) को बढ़ाता है।
 4. पराअवटु ग्रंथि हार्मोन वृक्ष के द्वारा विटामिन “डी” के कार्यकारी तत्व (Active metabolites of "Vitamin D") के उत्पादन को बढ़ाता है जो छोटी आंत्र द्वारा कैल्सियम के अवशोषण को बढ़ाता है।

पराअवट ग्रंथि के स्थाव का अतियोग
(Upper Parathyroidism)

(Hyper Parathyroidism)

३८

परा अबदु ग्रंथ की अतिक्रियाशीलता
दोनों होता है। यह तीव्र प्रकार का होता है।

- should be given for 3 weeks, increasing thereafter to 100 µg per day for a further 3 weeks and finally to 150 µg per day.

1. प्राथमिक Parathyroidism)

यह मुख्य रूप से पराअवटु ग्रंथ को स्वयं की विकृति से उत्पन्न होता है। कभी-कभी पराअवटु ग्रंथ के अवृद्ध (Cancer of Parathyroid Glands) के काण भी इसकी उत्पत्ति होती है।

2. द्वितीयक पराअवटु ग्रंथि अतिक्रियाशीलता (Secondary Hyper

(Para Thyroid Gland)

ପାତ୍ର

- द्वितीयक प्रकार की पराअवटु ग्रंथि अतिक्रियाशीलता, द्वितीयक पराअवटु ग्रंथि की अतिक्रियाशीलता के उपचर्व (Complications) के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। द्वितीयक पराअवटु ग्रंथि अतिक्रियाशीलता की सम्बुचित चिकित्सा नहीं करने पर यह विकारित उत्पन्न होती है।

सामान्य कार्य (Functions of the Parathyroid Glands)

- पराअवटु ग्रंथ के प्रमुख कार्य निम्न प्रकार हैं—

 1. पराअवटु ग्रंथ का सर्वप्रमुख कार्य कैल्सिटोनिन हार्मोन (Calcitonin Hormone) एवं जीवतिक डी (Vitamin D) के साथ बुड़कर शरीर में कैल्सियम के स्तर एवं अस्थि के चयापचय को नियमित करना है।
पराअवटु ग्रंथ हार्मोन शरीर में कैल्सियम के स्तर को बढ़ाता है एवं फास्फोरस के स्तर को कम करता है।
 2. पराअवटु ग्रंथ हार्मोन वृक्ष नलिकाओं के द्वारा कैल्सियम के पुनर्अवशोषण (Reabsorption) को बढ़ाता है एवं फास्फोरस के अवशोषण को कम करता है। कैल्सिटोनिन हार्मोन फास्फोरस के उत्सर्जन (Excretion) को बढ़ाता है।
 3. पराअवटु ग्रंथ हार्मोन वृक्ष नलिकाओं के द्वारा कैल्सियम के पुनर्अवशोषण (Active metabolites of "Vitamin D") के उत्पादन को बढ़ाता है जो छोटी आत्र द्वारा कैल्सियम के अवशोषण को बढ़ाता है।
 - 4.

पराअवट ग्रंथ के स्वाव का अतियोग

(Hyper Parathyroidism)

३८

15. नेत्र में रक्तबर्णना (Congestion of Eyes)

तत्त्वात् होना है। यह तीन प्रकार का होता है।

16. कभी-कभी रक्त मिश्रित मूत्र प्रवृत्ति (Some times Haematuria)
17. उच्च रक्त चाप (Hypertension)
18. अचानक अस्थि भन्द (Pathological Fractures)
19. अस्थि में जाह-जाह उभार होना (Bony cysts)
20. रुक्कगत व्याधियों की उत्पत्ति (Renal Disorders)
21. शरीर में कैल्सियम की मात्रा में अधिकता
- चिकित्सा सिद्धांत**
- निदान परिवर्जन
 - संतुलित आहार
 - पराअबट्ट ग्रॅंथ को शरीर से बाहर निकाल देना
 - शल्य क्रिया के बाद कुछ दिन तक अधिक मात्रा में कैल्सियम सेवन
- आदरणीयिकता पत्र**
- प्रत : सांच
मुनर्नवा मण्डर : 250 मिंग्रा.
ब्राह्मी बटी : 250 मिंग्रा.
नवायस लौह : 250 मिंग्रा.
 - राहद से चित्रकादि वटी : 500 मिंग्रा.
अजमोदादि चूर्ण : 2 ग्राम
 - कोणा जल से ब्रह्मा रसायन : 20 ग्राम
 - तुराध से भोजनोत्तर : 1 × 2 मात्रा
- प्रत : सांच**
पराअबट्ट ग्रॅंथ साव के हीन योग का सर्वाधिक प्रमुख कारण अबट्ट ग्रॅंथ की ग्रॅंथ का क्षतिग्रस्त होना है।
बिना किसी निश्चित कारण के स्वतः ही साव में कभी होना।
आनुवर्तीशक (Hereditary) रूप से पराअबट्ट ग्रॅंथ साव में चूर्नता।
यकृत की जीर्ण व्याधि (Chronic Liver disorders)
ओंत्र द्वारा समुचित अवशोषण में कभी (Malabsorption)
सामान्य लक्षण
पराअबट्ट ग्रॅंथ के साव के अल्प मात्रा में होने पर निम्न प्रमुख लक्षण उत्पन्न होते हैं—
- प्रक्षारिण
अश्वगांधारिष
समधान जल से
 - योगासन : सवर्णासन, हलासन, जानुपादासन, भद्रासन
 - प्रथमपत्र
प्रथमपत्र
प्रथमपत्र
 - योगासन : सवर्णासन, हलासन, जानुपादासन, भद्रासन
- प्रथमपत्र**
- मांसपेशियों एवं तंत्रिका तंत्र में कठोरता होना (Neuromuscular irritability and tetany)
 - नेत्र के दृष्टि पटल (Lens) में कलोराता (Calcification) एवं लिमिर (Cataract) रोग की उत्पत्ति
 - हृदयगति संबंधन में विषमता (Abnormalities in cardiac conduction)
 - मस्तिष्क में भी कैल्सिफिकेशन के कारण कोन्ड्रिय तंत्रिका तंत्र (Central Nervous system) की व्याधियों की उत्पत्ति
 - दन्तात विषमता (Dental Abnormalities)
 - मस्तिष्कात तनाव में चुड़ि (Raised intracranial pressure)
 - कुछ मनोदैहिक लक्षणों की उत्पत्ति (Origin of Psychosomatic symptoms)

- Management : Principles
- Lower the serum Calcium concentration.
 - Surgery: Excision of Parathyroid glands.
 - Symptomatic Management.

पराअबट्ट ग्रॅंथ साव की अल्पता

(Hypo Parathyroidism)

पराअबट्ट ग्रॅंथ के साव में चूर्नता होने से वस्तुतः शरीर में कैल्सियम की मात्रा में कमी तथा रुक्कगत फार्स्टेट की मात्रा में अधिकता होने लगती है। पराअबट्ट ग्रॅंथ के साव की अल्पता के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

निदान

- पराअबट्ट ग्रॅंथ साव के हीन योग का सर्वाधिक प्रमुख कारण अबट्ट ग्रॅंथ की ग्रॅंथ का क्षतिग्रस्त होना है।
 - बिना किसी निश्चित कारण के स्वतः ही साव में कभी होना।
 - आनुवर्तीशक (Hereditary) रूप से पराअबट्ट ग्रॅंथ साव में चूर्नता।
 - यकृत की जीर्ण व्याधि (Chronic Liver disorders)
 - ओंत्र द्वारा समुचित अवशोषण में कभी (Malabsorption)
- सामान्य लक्षण**
- पराअबट्ट ग्रॅंथ के साव के अल्प मात्रा में होने पर निम्न प्रमुख लक्षण उत्पन्न होते हैं—
- मांसपेशियों एवं तंत्रिका तंत्र में कठोरता होना (Neuromuscular irritability and tetany)
 - नेत्र के दृष्टि पटल (Lens) में कलोराता (Calcification) एवं लिमिर (Cataract) रोग की उत्पत्ति
 - हृदयगति संबंधन में विषमता (Abnormalities in cardiac conduction)
 - मस्तिष्क में भी कैल्सिफिकेशन के कारण कोन्ड्रिय तंत्रिका तंत्र (Central Nervous system) की व्याधियों की उत्पत्ति
 - दन्तात विषमता (Dental Abnormalities)
 - मस्तिष्कात तनाव में चुड़ि (Raised intracranial pressure)
 - कुछ मनोदैहिक लक्षणों की उत्पत्ति (Origin of Psychosomatic symptoms)

मधुर, लघु, शीत, मुपाच्च आहार का प्रहार, नियमित दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं सदरुत का पालन आदि।

प्रथमपत्र
प्रथमपत्र
प्रथमपत्र

मधुर, लघु, शीत, मुपाच्च आहार का प्रहार, नियमित दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं सदरुत का पालन आदि।

पराअबटु ग्रंथि स्नाव का मिश्या योग (Pseudo Hypo Parathyroidism)

पराअबटु ग्रंथि के स्नाव के मिश्यायोग में पराअबटु ग्रंथि की कार्य प्रणाली पूर्णतः समान्य होती है एवं सम्यक् मात्रा में हार्मोन का स्नाव भी होता रहता है परन्तु मुख्य उल्कोय अवरोध (Tissue Resistance) के कारण यह स्नाव अपना सामान्य कार्य करने में असमर्थ रहते हैं। कलत्स्वरूप पराअबटु ग्रंथि के स्नाव के हीन योग (Hypo Parathyroidism) के समान ही शरीर में लक्षण उत्पन्न होते हैं। यह व्याधि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों में अधिक पायी जाती है।

प्रमुख लक्षण

- पराअबटु ग्रंथि स्नाव के हीन योग (Hypo Parathyroidism) के समस्त लक्षण
- शरीर की बृद्धि नहीं होना (Short Stature)
- जग्जक चबूतरी होना (Flat Nose)
- गोलाकार चेहरा (Rounded face)
- मूत्र में कैल्सियम की अधिक मात्रा निकलना (Hypercalciuria)
- शरीर में कैल्सियम की कमी (Hypocalcaemia)
- शरीर में फास्फेट की मात्रा में बढ़दा (Hyperphosphataemia)

पराअबटु ग्रंथि स्नाव के हीन योग एवं मिश्या योग का चिकित्सा सिद्धान्त (Principles of Management of Hypo Parathyroidism and Pseudohypo Parathyroidism)

- निदान परिवर्तन
 - संतुलित आहार विवर सेवन
 - रोगी को सुधा द्रव्य (Calcium) की अधिक मात्रा का सेवन कराना
 - लाक्षणिक चिकित्सा
 - योगासन एवं प्राणायाम
 - आदर्श चिकित्सा पत्र
- | | |
|--------------------|-----------------------|
| 1. प्रातः | : साथम् |
| पिपलत्त्वादि चूर्ण | : 1 ग्राम |
| कपदं भस्म | : 250 मि.ग्रा. |
| प्रवाल पिण्डी | : <u>250 मि.ग्रा.</u> |
| शहद से | : <u>1 × 2 मात्रा</u> |
| 2. अमलक्यावलेह | : <u>20 मि.ग्रा.</u> |
| दुध से | : <u>1 × 2 मात्रा</u> |

3. धोजनेतर	: 10 मि.लि.
द्राक्षारिष्ट	: <u>10 मि.लि.</u>
समभाग जल से	: 1 × 2 मात्रा
4. सुधाष्टक योग (सि.यो.सं.)	: <u>250 मि.ग्रा.</u>
दुध से	: 1 × 2 मात्रा
5. स्थानीय अध्यार्थ	: बलालाक्षादि तैल
	या : महानारायण तैल

टिटेनी

(Tetany)

टिटेनी पराअबटु ग्रंथि स्नाव के हीन योग से उत्पन्न होने वाला प्रमुख रोग है। इसका विस्तार से वर्णन किया जा रहा है—

निदान

पराअबटु ग्रंथि स्नाव में कमी से नाड़ी एवं मांसपात संस्थान उत्तेजित हो जाते हैं तथा टिटेनी रोग उत्पन्न हो जाता है। इसके प्रमुख निदान निम्न प्रकार हैं—

- आंत्र द्वारा पोषक द्रव्य अवशोषण में कमी (Malabsorption)
- अस्थि मार्दव (Osteomalacia)
- तोन्न अन्त्याय शोथ (Acute Pancreatitis)
- जीण वृक्षाशात (Chronic Renal failure)
- बार-बार वर्मन होना (Repeated vomitings)
- आहार द्रव्यों में क्षारीय द्रव्यों की मात्रा अधिक होना (Excessive intake of Oral Alkalies)

सामान्य लक्षण

- हाथ एवं पैरों के अग्रभाग में कठोरता (Carpopedal spasm)
- गले में श्वासवरोध की प्रतीती (Stridor)
- आक्षेप (Convulsions)
- यह तीनों लक्षण प्रयः बच्चों में अधिक मिलते हैं।
- हाथ की मांसपेशियों का मुड़ जाना
- अंगूठा हथेली के प्रथम जोड़ पर हथेली की तरफ मुड़ा हुआ एवं दूसरे जोड़ पर फैला हुआ रहता है
- वेगावस्था में समस्त शरीर का अंदर की ओर मुड़ा
- क्षयक व्यक्तियों में हाथ, पैर एवं मुख के पास झनझनाहट का होना।

(Tingling sensations of hand, feet and around the mouth)

8. चेहरे की नाड़ियों पर ताड़न करने से चेहरे की मासपेशियों में ऐठन उत्पन्न होना (Twitching of the facial muscles after tapping over facial nerves)

चिकित्सा सिद्धांत

- निटन परिवर्जन
 - संतुलित आहार का नियमित सेवन
 - लाक्षणिक चिकित्सा
 - योगासन, ध्यान, प्राणायाम
- आदर्श चिकित्सा पत्र**
- | | | |
|----|-----------------|---|
| 1. | प्रातः | : साथ्यम् |
| | | : 3 ग्राम |
| | प्रवाल पिण्ठी | : 250 मिमी. |
| | शंख भस्त्र | : <u>250 मिमी.</u> |
| 2. | शहद से | 1 × 2 मात्रा |
| | अनिन्तुण्डी वटी | : <u>250 मिमी.</u> |
| | कोणा जल से | 1 × 3 मात्रा |
| 3. | भीजनोत्र | : 20 मिलि. |
| | दशमूलारिघ्या | : <u>20 मिलि.</u> |
| | अशगधारिघ्या | 1 × 2 मात्रा |
| | समभाग जल से | : महानारायण तैल एवं प्रसारिणी तैल से |
| | सर्वांग अध्यंग | : दशमूल क्वाश से |
| | सर्वांग स्वेदन | : मात्रा बास्ति 30-50 मि.लि. दशमूल तैल से |
| | बस्ति कर्म | प्रतिदिन एक माह तक |
| 7. | योगासन | : सर्वांगासन, हलासन, मधुरासन, प्राणायाम इत्यादि |
| 8. | पथ्यापथ्य पालन | |

Management : Principles

- To raise serum Calcium concentration immediately.
- Inj. Calcium Gluconate 10%, 20ml slowly I.V.
- Symptomatic Management.

••• लैज़ और लैन्डर •••

3. उपचूक्क गंधि

(Adrenal or Suprarenal Glands)

परिचय

उपचूक्क गंधियां संख्या में दो होती हैं। प्रत्येक चूक्क के ऊपर एक-एक गंधि दोपी के समान लगी रहती है इसीलिए इसे उपचूक्क अथवा अधिचूक्क गंधि कहा जाता है। प्रत्येक गंधि का सामान्य भार लगभग 4 ग्राम होता है। बच्चों में उपचूक्क गंधि के दो भाग होते हैं—

1. बहिर्वस्तु अथवा वाह्य भाग (Cortex)

2. अंतर्वस्तु अथवा अंतर्द्धा अथवा अधिचूक्क गंधि (Medulla)

उपचूक्क दोनों भागों के लाव एवं उनके कर्म भिन्न-भिन्न होते हैं।

उपचूक्क गंधि के कार्य (Functions of Adrenal Glands)

उपचूक्क गंधि के कार्यों को निम्न दो भागों में बांट सकते हैं—

1. वाह्य भाग के कार्य (Functions of Cortex of Adrenal Glands)

उपचूक्क गंधि के वाह्य भाग के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—

1. यह भाग मिनरलोकोटिकोयड (Mineralocorticoid) हामोन का लाव करता है जो शरीर में लवण एवं जल की आवश्यकता को नियमित करता है।

2. उपचूक्क गंधि के वाह्य भाग (Cortex) के अधिकांश भाग में वसा का आधिकार्य होता है जो स्टीरोइड हामोन (Steroid Hormone) के निर्माण में सहायता करता है। यह हामोन जनन ग्रंथियों एवं जननांगों के विकास के लिए आवश्यक होता है।

2. अंतर्द्धा भाग के कार्य (Functions of Medulla of Adrenal Glands)

उपचूक्क गंधि के अंतर्द्धा भाग (Medulla) के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—

1. यह रक्तचार (Blood pressure) को बढ़ाता है।

2. अनैच्छक मासपेशियों (Involuntary Muscles) को उत्तेजित करता है।

3. इसके द्वारा स्नायित हामोन से यकृत में शर्करा निर्माण की प्रक्रिया तीव्र होती है।

4. आपातकालीन अवस्थाओं में (In Emergency conditions) उसके द्वारा स्नायित हामोन उन परिस्थितियों से मुकाबले के लिए शरीर को तैयार करता है।

उपबुद्ध ग्रंथि के अंतःस्वाव का अविद्योग (Hyper Adrenalinism)

उपबुद्ध ग्रंथि के अविद्याव के कारण मुख्यतः तीन प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। प्रत्येक का सक्षित वर्णन यहां किया जा रहा है।

1. कुशिंग सिन्ड्रोम

(Cushing Syndrome)

कुशिंग सिन्ड्रोम को Chronic Hypercortisolism भी कहते हैं। इस व्याधि में कार्टिसोल हार्मोन (Cortisol Hormone) की अधिक मात्रा का साव होता है।

निदान एवं सम्प्राप्ति

प्रकार के कुशिंग सिन्ड्रोम होते हैं जिनको चिकित्सा की दृष्टि से अलग-अलग समझना अत्यन्त आवश्यक है।

(i) पीयुष ग्रंथि का कुशिंग सिन्ड्रोम (Pituitary Cushing Syndrome)

इस व्याधि का सर्वप्रथम वर्णन अमेरिकी बैज़ानिक हार्वे कुशिंग ने किया था। लगभग 60-70 प्रतिशत कुशिंग सिन्ड्रोम का मुख्य कारण पीयुष ग्रंथि द्वारा साक्षित हार्मोन ACTH (Adrenocorticotrophic Hormone) होता है। इस हार्मोन के अधिक स्वाव का कारण पीयुष ग्रंथि का अर्द्ध (Adenoma of the Pituitary Gland) होता है। इस प्रकार की व्याधि में Steroids प्रयोग जैसे- Dexamethasone से पर्याप्त लाभ होता है।

(ii) उपबुद्ध ग्रंथि का कुशिंग सिन्ड्रोम (Adrenal Cushing Syndrome)

लगभग 20-25 प्रतिशत कुशिंग सिन्ड्रोम का कारण उपबुद्ध ग्रंथि का अर्द्ध या उपबुद्ध ग्रंथि बुद्धि (Hyperplasia of Adrenal Gland) होता है। इस कारण की व्याधि में ACTH हार्मोन की मात्रा कम होती है तथा Glucocorticoids के प्रयोग से कोई लाभ नहीं होता है।

(iii) स्थानांतरित कुशिंग सिन्ड्रोम (Ectopic Cushing Syndrome)

लगभग 10-15 प्रतिशत कुशिंग सिन्ड्रोम का कारण पीयुष ग्रंथि के अतिरिक्त अन्य स्थान से साक्षित ACTH होता है। इस प्रकार का कुशिंग सिन्ड्रोम बिना किसी अतः स्वावी अर्द्ध के कारण ही उत्पन्न होता है। यह मुख्यतः कूफ्फन्स के अर्द्ध, थायमस ग्रंथि अर्द्ध अथवा आन्ताशय अर्द्ध के कारण उत्पन्न होता है। इसमें भी Steroids के प्रयोग से लाभ नहीं होता है।

(iv) चिकित्सकीय कुशिंग सिन्ड्रोम (Iatrogenic Cushing Syndrome)

दीर्घ अवधि तक अधिक मात्रा में Glucocorticoids या ACTH के प्रयोग से भी कुशिंग सिन्ड्रोम की उत्पत्ति होती है। कुछ व्याधियों जैसे- Autoimmune व्याधि अथवा

कुशिंग सिन्ड्रोम के संदर्भ में Glucocorticoids का अधिक प्रयोग किया जाता है जो बाद में कुशिंग सिन्ड्रोम उत्पन्न कर सकता है।

कुशिंग सिन्ड्रोम के सामान्य लक्षण (Clinical Features of Cushing Syndrome)

कुशिंग सिन्ड्रोम के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. सामान्यतः 20-40 वर्ष की आयु में यह व्याधि अधिक मिलती है।
2. स्त्रियों में पुरुषों की तुलना में तीन युना अधिक कुशिंग सिन्ड्रोम उत्पन्न होता है।
3. स्थौल्य (Obesity)
4. हाथ एवं पैर पतले हो जाते हैं (Thin arms and legs)
5. कंधे के नीचे एवं पश्चर्भ भाग में अत्यधिक वसा एकत्र होने से वे स्थूल हो जाते हैं (Buffalo Hump)
6. चेहरा गोलाकार हो जाता है (Moon face)
7. रजोधर्म में अनियमितता (Menstrual Irregularities)
8. पृष्ठ भाग में बेदाना (Backache)
9. मांसपेशियों में दुर्बलता (Weakness of Muscles)
10. उच्च रक्तचाप (Hypertension)
11. त्वचा में विद्या अथवा धाव होना (Bruising or wounds in skin)
12. उदर प्रदेश (Abdomen) एवं जांघ (Thighs) में रेखाओं (Striae) की उत्पत्ति
13. अस्थिक्षण (Osteoporosis)
14. मधुमेह रोग की उत्पत्ति (Diabetes Mellitus)
15. अनिद्रा (Insomnia)
16. मनोवसादता (Depression)
17. भ्रम (Confusion)
18. उम्माद (Psychosis)
19. अनारंभ (Amenorrhoea)
20. बक्ष्यत्व (Infertility)

1. निदान परिवर्जन
2. सम्यक दिनचर्या गतिचर्या पालन
3. पथ्य आहार एवं विहार
4. संतुलित आहार
5. लाक्षणिक चिकित्सा
6. योगसन, ध्यान, प्राणयाम

आदर्श चिकित्सा पत्र

1.	प्रातः	: साथ
2.	शिलाजल्तादि लौह	: 250 मि.ग्रा.
	मल्लसिन्दूर	: 125 मि.ग्रा.
	आमलकी चूर्ण	: <u>3 ग्राम</u>
	शहद से	1 × 2 मात्रा
2.	नवक गुण्डू	: <u>500मि.ग्रा</u>
	अग्नितुण्डी वटी	: <u>250 मि.ग्रा</u>
	शहद से	1 × 3 मात्रा
3.	भौजनोत्र	: 3 ग्राम
	अक्षगंधा चूर्ण	: 250 मि.ग्रा.
	प्रवाल पञ्चमूर्त	: <u>250 मि.ग्रा.</u>
	विषाण भस्म	1 × 2 मात्रा
4.	भौजनोत्र (स्त्रियों में)	: 10मि.लि.
	दशमूलारिष्ट	: <u>10मि.लि.</u>
5.	रात्रि में	: 3 ग्राम
	हरीतकी चूर्ण	1 मात्रा
	उज्ज जल से	1 × 2 मात्रा
6.	योगासन	: पश्चिमोत्तनासन, विपरीतकरणी, अर्धमत्त्येत्तरासन, उत्तन कूर्मासन, कूर्मासन इत्यादि
7.	पश्यापथ्य पालन	
	Management : Principles	
1.	Untreated Cushing Syndrome has a 50%, 5 year mortality.	
2.	Medical Therapy: To inhibit Corticosteroid biosynthesis by the drugs Metyrapone, aminoglutethimide or ketoconazole.	
3.	Surgery: Selective removal of the adenoma is the treatment of choice.	
	••• लै छै लै •••	
2.	कान सिन्ड्रोम	
	(Conn's Syndrome or Primary Hyper Aldosteronism)	
	यह व्याधि एल्डोस्टेरोन हामोन के अत्यधिक साव के कारण उत्पन्न होती है।	

निदान

कान सिन्ड्रोम के प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं—

1. उपचक गंधि के बाह्य भाग का अर्द्ध
2. दोनों उपचक ग्रंथियों की अतिशय वृद्धि
3. सम्पूर्ण उपचक गंधि का अर्द्ध

सामान्य लक्षण (Clinical Features)

शास्त्रों में कान सिन्ड्रोम के सामान्य लक्षण निम्न प्रकार वर्णित किए गए हैं—

1. उच्च रक्तचाप (Hypertension)
2. पोटेशियम की कमी के कारण मांसपेशियों में दुर्बलता, बाह्य नाड़ी जन्य विकृति (Peripheral Neuropathy) एवं हृदय गति में अनियमितता (Cardiac Arrhythmia) उत्पन्न होती है
3. शरीर में लवण एवं जल की अधिक मात्रा का संचय होना (Retention of salt and water)
4. अत्यधिक मूत्र प्रवृत्ति (Polyurea)
5. अत्यधिक तुषा (Polydipsia)

चिकित्सा सिद्धांत

निदान परिवर्जन

संतुलित दिनचर्या एवं पश्यापथ्य का पालन

लाक्षणिक चिकित्सा

योगासन, ध्यान तथा प्राणायाम

आदर्श चिकित्सा पत्र

1.	प्रातः	: साथ
	सर्पगंधा घन वटी	: <u>500मि.ग्रा.</u>
	अर्क मक्कोय से	1 × 2 मात्रा
2.	भौजनोत्र	
	अशगंधा चूर्ण	: 2 ग्राम
	गोधूरादि चूर्ण	: <u>2 ग्राम</u>
	20 मि.लि. गोधूरादि कवाख से	: 1 × 2 मात्रा
3.	भौजनोत्र	
	षड्गणानीय	: <u>40मि.लि.</u>
4.	योगासन	: प्राणायाम, घटकर्म, योगमुद्रा, का प्रयोग करना

3. एड्रेनोजेनाइटल सिन्ड्रोम

(Adrenogenital Syndrome or Adrenal Virilism)

उपवृक्ष ग्रंथि का बाहु भाग (Adrenal Cortex) कुछ मात्रा में जनन हार्मोन का स्राव करता है। इस हार्मोन का स्राव अधिक होने पर जनन संबंधी कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं।

निदान सम्प्राप्ति

जनन हार्मोन का स्राव शिशु एवं वयस्क दोनों में अधिक हो सकता है।

- बच्चों में उपरोक्त हार्मोन के अधिक स्राव का कारण जन्मजात उपवृक्ष ग्रंथि की अतिशय वृद्धि (Congenital Adrenal Hyperplasia) होती है।
- वयस्क व्यक्ति में उपवृक्ष ग्रंथि के अंडुड के कारण हार्मोन का स्राव अधिक होता है।

सामान्य लक्षण (Clinical Features)

एड्रेनोजेनाइटल सिन्ड्रोम के सामान्य लक्षण व्यक्ति के आयु एवं लिंग पर निर्भर करते हैं।

- स्त्री शिशु के बाहु जननांग विकृत हो जाते हैं। लड़कों में सामान्य अवस्था से पूर्व ही तरुणावस्था (Puberty) आ जाती है।
- वयस्क स्त्रियों में दाढ़ी मूँछ का उगाना, रज़: स्राव में कमरी (Oligomenorrhoea) आवाज में भारीपन एवं भागशिश्रिका (Clitoris) के आकार में वृद्धि हो जाती है।
- पुरुषों में अत्यंत कम व्याक्तियों में स्त्री के समान लक्षणों की उत्पत्ति होती है।

चिकित्सा सिद्धांत

- निदान परिवर्जन
- समुचित दिनचर्या एवं आहार विवाह का पालन
- तनाव मुक्त रहना
- लाक्षणिक चिकित्सा

उपवृक्ष ग्रंथि के अंतःस्राव का हीन योग

(Hypo Adrenalinism)

उपवृक्ष ग्रंथि के स्राव के हीन योग का प्रमुख कारण पर्यास मात्रा में अंतःस्राव (Hormone) का निर्मित नहीं होना अथवा पीयुष ग्रंथि द्वारा उपवृक्ष उत्तेजक हार्मोन (ACTH) की कमी होना है। उपवृक्ष ग्रंथि अंतःस्राव का हीन योग कई प्रकार की व्याख्याएँ उत्पन्न कर सकती हैं—

1. प्राथमिक उपवृक्ष स्राव न्यूनता

(Primary Adrenocortical insufficiency)

प्राथमिक उपवृक्ष स्राव न्यूनता पुनः दो प्रकार की होती है—

- उपवृक्ष अंतःस्राव की सद्यः कमी (Adrenal crisis)
- उपवृक्ष अंतःस्राव की धीरे-धीरे कमी होना (Addison's Disease)

(1) प्राथमिक सद्यः उपवृक्ष अंतःस्राव न्यूनता (Primary Acute Adrenocortical Insufficiency or Adrenal Crisis)

- प्राथमिक ग्रंथि के सामान्य कार्यों के अचानक बंद हो जाने की स्थिति को उपवृक्ष उपवृक्ष ग्रंथि के अंतःस्राव में अचानक न्यूनता उत्पन्न होने के प्रमुख कारण संकट कहते हैं।

निदान सम्प्राप्ति

उपवृक्ष ग्रंथि के अंतःस्राव में अचानक न्यूनता उत्पन्न होने के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

- दोनों उपवृक्ष ग्रंथियों को शल्य किया के द्वारा निकाल दिया जाना
- उच्च रक्तचाप (Hypertension) एवं स्ट्राईड (Breast Cancer) चिकित्सा।
- तीव्र संक्रमण (Septicaemia)
- तीव्र रक्तस्राव (Severe Haemorrhage)
- स्ट्रियड चिकित्सा को अचानक बंद कर देना
- अत्यंत तीव्र तनाव की अवस्था (Acute Anxiety)

सामान्य लक्षण (Clinical Features)

उपवृक्ष ग्रंथि अंतःस्राव में सद्यः न्यूनता का प्रमुख कारण मिरेलोकार्टिकोयड एवं गलुकोकार्टिकोयड हार्मोन की कमी होना है। अतः इस स्थिति में निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न होते हैं—

- अचानक रक्त दाढ़ गिर जाना (Sudden fall of blood pressure)
- हाथ एवं पैरों का ठंडा तथा नीलाभ होना (Cold and cyanosed Extremities)
- हल्लास (Nausea)
- वैमन (Vomiting)
- अतिसार (Diarrhoea)
- मुक्का (Syncope)

चिकित्सा सिद्धांत

- निदान परिवर्जन
- समुचित दिनचर्या एवं आहार विवाह का पालन
- तनाव मुक्त रहना
- लाक्षणिक चिकित्सा
 - प्रति : साथ्य
 - कृष्ण चतुर्भुज रस : 125 मि.ग्रा.
 - प्रवाल पिण्डी : 250 मि.ग्रा.

शुद्ध कुपीत	: <u>125 मि.ग्र.</u>
शहद से	1×2 मात्रा
भोजनोत्तर	
सिद्धप्राणेश रस	: 125 मि.ग्र.
मधूतिष्ठ भस्म	: 250 मि.ग्र.
नागराद्य चूर्ण	: <u>1 ग्राम</u>
शहद से	1×2 मात्रा
भोजनोत्तर	
जीरकादृष्टि	: <u>20 मि.लि.</u>
समधारा जल से	1×2 मात्रा
उष्ण जल से	: <u>40 मि.लि.</u>
पथ्यापाथ्य पालन	1×2 मात्रा

(2) एडिसन की व्याधि (Addison's Disease - Primary Adrenocortical Failure)

जब दोनों उपपृष्ठक ग्रंथियां धीरे-धीरे लाभगा 90 प्रतिशत से भी अधिक नष्ट हो जाती हैं तब शरीर में असामान्य लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं । इसे ही एडिसन की व्याधि कहते हैं क्योंकि इस व्याधि का सर्वप्रथम वर्णन एडिसन नामक वैज्ञानिक ने किया था ।

निदान

एडिसन की व्याधि के प्रमुख निदान निम्न प्रकार हैं—

1. राजयदमा (Tuberculosis)
 2. उपपृष्ठक ग्रंथि का स्वरूप: शोथ होना (Adrenalitis)
 3. अबुर्द (Metastatic Cancer)
 4. विषाणु संक्रमण (Cytomegalovirus)
 5. एडिस (AIDS)
 6. कवक जन्य संक्रमण (Fungul Infection)
 7. उपपृष्ठक ग्रंथि में रक्त साव (Haemorrhage of Adrenals)
- उपरोक्त कारणों से उपपृष्ठक ग्रंथियां धीरे-धीरे छोटी होकर सिकुड़ जाती हैं फलस्वरूप एडिसंस व्याधि उत्पन्न हो जाती है ।

सामान्य लक्षण (Clinical Features)

एडिसंस व्याधि के सामान्य लक्षण धीरे-धीरे एवं लगातार उत्पन्न होते हैं । प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. शरीर में धीरे-धीरे उर्बलता, शरीर भार में कमी एवं आलस्य होना एडिसंस

व्याधि का प्रत्यात्म लिङ्ग है । (Progressive weakness, weight loss and lethargy are the cardinal symptoms of Addison's disease)

2. त्वचा में विवरणता उत्पन्न होना (Discolouration of skin)
3. सफेद दाग (Vitiligo)
4. शरीर के छुले भाग पर कृष्ण वर्णना (Hyperpigmentation of exposed skin)
5. शरीर के रक्त भार में कमी (Hypotension)
6. उड़े होने पर मूँछर्त हो जाना (Faintness on erect posture)
7. कमी-कमी श्वासकृच्छ्वास (Occasional breathlessness)
8. अरुचि (Anorexia)
9. हँखास/वमन (Nausea/Vomiting)
10. विवेद के साथ कमी-कमी अतिसार (Constipation with intermittent Diarrhoea)
11. उदर शूल (Pain abdomen)
12. मांसपेशियों में दुर्बलता एवं शुष्कता (Muscular weakness and wasting)
13. श्वकावट (Lassitude)
14. स्मृतिनाश (Loss of memory)
15. तन्त्रा (Drowsiness)
16. अनिद्रा (Insomnia)
17. चिड़चिड़ापन (Irritability)
18. न्युसंकर्ता (Impotence)
19. अनारेंट (Amenorrhoea)
20. अल्पमूत्रा (Diminished urination)
21. रक्तात् प्रोटीन एवं यूरिना में वृद्धि (Increased level of protein and blood urea)
22. शरीर का तापमान सामान्य से कम (Subnormal temperature)
23. स्त्रियों में कम्भा प्रदेश एवं जघन प्रदेश के बालों में कमी होना (Loss of axillary and public hairs in females)
24. पाण्डु रोग (Anaemia)
25. माझमेह (Diabetes Mellitus)

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
2. संतुलित आहार द्रव्यों का सेवन
3. पथ्यापाथ्य का उचित पालन
4. लाक्षणिक चिकित्सा

5. योगसन, ध्यान, योगमुद्रा एवं प्रणायाम का नियन्त्रित अभ्यास करना

आदर्श चिकित्सा पत्र

- बल्य, बूंदण, पोषक आहार द्रव्यों का प्रयोग
- प्रातः : साथम्
- अंशगंधा चूर्ण : 3 ग्राम
नागरादि चूर्ण : $\frac{1}{1} \text{ ग्राम}$
शहद/दुध से 1×2 मात्रा
- गोक्षुरादि गुण्डुल : 500 मिली
- अग्नितुण्डी वटी : 250 मिली
- उषा जल से 1×2 मात्रा
- भोजनोत्तर : 500 मिली
- आगोच्चर्वद्धनी वटी : 500 मिली
- चित्रकादि वटी : 250 मिली
- शहद से 1×2 मात्रा
- भोजनोत्तर : 10 मिलिलि.
- पुनर्वर्तित द्राक्षारिष्ट : 10 मिली
- समभाग जल से 1×2 मात्रा
- ब्रह्मसाधन : 20 ग्राम
- दुध से 1×2 मात्रा
- रात्रि में हरीतकी चूर्ण : 3 ग्राम
- कोणा जल से : 1 मात्रा
- योगसन : वज्रासन, पद्मासन, कूर्मासन, मधूरासन
- दुध से : इत्यादि

पथ्यापन्थ्य पालन

Management : Principles

- Corticosteroid replacement therapy- Mineralocorticoids.
- Sympiomatic Management.

••• नै ज्ञे क्लॉनी •••

2. द्वितीयक उपचूक स्थाव न्यूनता

(Secondary Adrenocortical Insufficiency)

यदि पीयुष ग्रंथि (Pituitary Gland) द्वारा स्थावित ACTH हार्मोन जो कि उपचूक ग्रंथि को अंतःस्थाव स्थावित करते के लिए उत्तेजित करता है, की कमी हो जाये अर्थात् पर्याप्त मात्रा में ACTH हार्मोन का स्थाव नहीं हो तो द्वितीयक उपचूक अंतःस्थाव न्यूनता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

सामान्य लक्षण (Clinical Features)

इस स्थिति में नियन्त्रित लक्षणों को छोड़कर शेष लक्षण पूर्व में वर्णित एडिसन की व्याख्या के लक्षणों के समान होते हैं—

- त्वचा पर कृष्ण वर्णना नहीं होती है (Lack of Hyperpigmentation)
 - रक्तात् ACTH की मात्रा अति अल्प अथवा ACTH की अनुपस्थिति
 - एल्डोस्ट्रीरोन हार्मोन की रक्तगत मात्रा सामान्य होती है।
- चिकित्सा सिद्धांत एवं आदर्श चिकित्सा पत्र
- यह व्याख्या लाभगा एडिसन्स व्याधि से मिलती जुलती है। अतः चिकित्सा करते समय एडिसन्स व्याधि में वर्णित चिकित्सा सिद्धांत एवं चिकित्सा व्यवस्था पत्र का प्रयोग करना ही उचित रहता है।

••• नै ज्ञे क्लॉनी •••

4. थायमस ग्रंथि

(Thymus Gland)

परिचय

यह ग्रंथि ऊरोस्थि (Sternum) के पीछे वक्ष प्रदेश में अवस्थित होती है। शैशवावस्था में थायमस ग्रंथि का भार लगभग 10-15 ग्राम तक होता है। यववावस्था में ग्रंथि के आकार में बढ़ि होकर यह लगभग 30-40 ग्राम तक की हो जाती है। युवावस्था के पश्चात् पुरुष ग्रंथि का आकार छोटा होने लगता है तथा अंततः 5-10 ग्राम तक की रह जाती है। थायमस ग्रंथि का वर्ण गुलाबी धूसर होता है। ग्रंथि के दो भाग होते हैं दक्षिण खंड (Right Lobe) तथा उत्तर खंड (Left Lobe)।

थायमस ग्रंथि के कार्य (Functions of Thymus Gland)

थायमस ग्रंथि के प्रमुख कार्य निम्न प्रकार हैं—

- थायमस ग्रंथि के व्याधिक्षमित्व शक्ति को बनाए रखने में सहायक होती है।
- थायमस ग्रंथि शरीर की व्याधिक्षमित्व शक्ति को बनाए रखने में सहायक होती है।

2. यह दो प्रकार के अंतःसावों का साव करती है।
 3. शायमस गंधि बाल्यावस्था में ज्ञी एवं पुरुष दोनों में कुछ समय तक जननांगों के विकास को रोकती है जिससे शरीर के अन्य अंग पुष्ट हो जाते हैं।
 4. यह कैल्सियम के चयापचय में सहायता करती है।
 5. शरीर को संक्रमण से सुरक्षा प्रदान करती है।
- शायमस गंधि विकृति**
- शायमस गंधि में प्रायः दो प्रकार की विकृति मिलती है। कभी-कभी गंधि का आकार बढ़ जाता है अथवा अत्यधिक छोटा हो जाता है। शायमस गंधि को यदि उवावस्था में शरीर से बाहर निकाल दिया जाए तो भी प्रायः शरीर में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता है। परंतु यदि बाल्यावस्था में ही गंधि विकृत हो जाए तो प्रभावित व्यक्ति की लंबाई कम रह जाती है एवं वह अतिक शारीरिक रूप से उर्बल हो जाता है।

••• ऐसी झड़ी •••

5. पीनूष गंधि

(Pituitary Gland)

परिचय

पीनूष गंधि (Pituitary Gland) का दूसरा नाम हाइपोफाइसिस (Hypophysis) भी है। वयस्क व्यक्ति में पीनूष गंधि का सामान्य भार लाभग 500 मिलिग्राम होता है तथा स्त्रियों में उच्च अधिक होता है। यह गंधि मरिटिक के तल भाग सेला टर्सिका (Sella Turcica) में स्थित होती है। पीनूष गंधि के दो प्रमुख भाग होते हैं—

1. अग्रिम खण्ड (Anterior Lobe or Adenohypophysis)
 2. पश्चिम खण्ड (Posterior Lobe or Neurohypophysis)
- दोनों खण्डों की सूक्ष्म संरचना एवं उनके अंतःसाव तथा कर्म अलग-अलग होते हैं। पीनूष गंधि शरीर की सर्वधिक महत्वपूर्ण गंधि होती है। इसके अंतःसाव अन्य गंधियों को उनके अंतःसाव के लिए उत्तमता करती है जिसके कारण पीनूष गंधि को मुख्य गंधि (Master Gland) भी कहा जाता है।

अभियं खण्ड के अंतःसाव एवं उनके प्रमुख कार्य (Functions of Hormones of Anterior Lobe of Pituitary Gland)

पीनूष गंधि के अग्रिम खण्ड (Anterior Lobe) द्वारा कुल 6 प्रकार के अंतःसावों का निर्माण होता है। इनके नाम एवं प्रमुख कार्य निम्न प्रकार हैं—

1. वृद्धिकारक अंतःसाव (Growth Hormone or Somatotrophic Hormone)

यह अंतःसाव अस्थियों की लंबाई (Length) एवं चौड़ाई (Width) में वृद्धि करता है तथा उनको पुष्ट करता है।

विभिन्न अंतःसावी गंधियों की व्याधियाँ

241

2. दुध उत्पादक अंतःसाव (Prolactin or Lactogenic Hormone)
3. सहायक होता है। पुरुषों में भी यह हामोन मिलता है तथा यौवनावस्था के समय रूप में इसकी मात्रा बढ़ जाती है।

3. उपद्रवक वर्तक प्रवर्तक अंतःसाव (Adrenocorticotropic Hormone- ACTH)

यह अंतःसाव उपद्रवक गंधि को उसके अंतःसावों के निर्माण एवं साव के लिए प्रेरित करता है। इस हामोन की अधिक मात्रा शरीर में कृष्णवर्णना उत्पन्न करती है। यह हामोन तनाव को कम करने में भी सहायक होता है।

4. अवटु गंधि प्रवर्तक अंतःसाव (Thyroid Stimulating Hormone-TSH)

यह अंतःसाव अवटु गंधि को उत्तेजित करता है जिसके फलस्वरूप अवटु गंधि का अंतःसाव स्त्रियों में होता है। यह हामोन अवटु गंधि की वृद्धि में भी सहायक होता है।

5. बीज गंधि प्रवर्तक अंतःसाव (Gonadotrophic Hormone)

बीज गंधि प्रवर्तक अंतःसाव दो प्रकार के होते हैं—

(i) बीजपुट प्रेरक अंतःसाव (Follicle Stimulating Hormone- FSH)

यह साव स्त्रियों में बीज पुट (Graffian Follicles) की वृद्धि एवं पूर्णता (Growth and Maturation) का कार्य करता है एवं पुरुषों में शुक्राणु निर्माण (Spermatogenesis) तथा सुक्राशय (Seminal Vesicle) के सामान्य कार्यों को सम्पादित करता है।

(ii) अंतःसाव प्रेरक अंतःसाव (Lutinizing Hormone-LH)

यह अंतःसाव स्त्रियों में बीज विपाक (Ovulation) का कार्य करता है। पुरुषों में यह अंतःसाव पुरुष हामोन (Male sex Hormone or Testosterone) के साव को उत्पन्न करता है।

पीक्षम खण्ड के अंतःसाव एवं उनके प्रमुख कार्य (Functions of Hormone of Posterior Lobe of Pituitary Gland)

पीनूष गंधि के पीक्षम खण्ड (Posterior Lobe) द्वारा कुल 6 प्रकार के अंतःसावों (Hypothalamus) द्वारा उत्पन्न होते हैं तथा यह पीनूष गंधि के पीक्षम खण्ड (Posterior Lobe) में एकत्र होते हैं। यह हामोन दो प्रकार के होते हैं जिनके कार्य निम्नलिखित हैं—

(i) पूर्व संग्रहणीय अंतःसाव (Anti Diuretic Hormone-ADH)

यह अंतःसाव शरीर में जल का संग्रहण करता है अर्थात् शरीर में जलीयांश की कमी नहीं होने देता है। दूसरे शब्दों में यह मूत्र प्रवृत्ति को कम करता है। कुछ मात्रा में यह जिसाओं को मंकूप्ति (Vasocostriction) भी कहता है।

(ii) गर्भ प्रवर्तक अंतःस्राव (Oxytocin Hormone)

गर्भप्रवर्तक अंतःस्राव का मुख्य कार्य गर्भाशय पेशियों को संकुचित करना है। यह हास्पैन स्टन की कोशिकाओं को भी उत्तेजित या संकुचित करता है जिसके फलस्वरूप दुध प्रवृत्ति (Ejection of Milk) होती है।

(Hyper Pituitarism)

(Hyperpituitarism)

पीयूष ग्रंथि अतिस्राव का प्रमुख कारण उसका रोग प्रस्त होना है। पीयूष ग्रंथि में जब एक प्रकार का अर्बुद (Adenoma) विकसित हो जाता है तब पीयूष ग्रंथि के अंतःस्रावों की मात्रा बढ़ जाती है। पीयूष ग्रंथि के अंतःस्रावों की अधिकता से निम्नलिखित प्रमुख विकार उत्पन्न होते हैं—

1. दानवकायता एवं भीमकायता (Gigantism and Acromegaly)
2. दुध प्रवर्तक अंतःस्रावाधिक्य (Hyperprolactinaemia)
3. कुशिंग सिन्ड्रोम (Cushing Syndrome)
4. मूत्र संग्रहणीय अंतःस्रावाधिक्य (Hypersecretion of Anti Diuretic Hormone-ADH)
5. शीघ्र योवनावस्था (Precocious Puberty)

1 (i) दानव कायता (Gigantism)

जब वृद्धि हास्पैन (Growth Hormone) का स्राव योवनावस्था के पूर्व अधिक हो जाता है, तब दानवकायता उत्पन्न होती है। अस्थृत लंबी अस्थियों (Long Bones) के अद्य एवं पक्ष भाग में वृद्धि पूर्णता के पूर्व ही, वृद्धि हास्पैन की अधिक मात्रा उन अस्थियों की ओर वृद्धि को प्रेरित करती है। जिसके परिणामस्वरूप शरीर की लंबाई अत्यधिक बढ़ जाती है।

प्रमुख लक्षण (Clinical Features)

1. शिशु की अत्यधिक वृद्धि (Excessive and Proportionate growth of child)
2. अस्थियों की वृद्धि के साथ-साथ उनकी मोटाई में भी वृद्धि होती है। फलस्वरूप व्यक्ति की लंबाई (Height) एवं चौड़ाई (Width) दोनों में वृद्धि होती है।

1 (ii) भीमकायता (Acromegaly)

शरीर की लंबाई जब लक्ज जाती है, अर्थात् अस्थि का विकास जब लक्ज जाता है उसके पश्चात् भी वृद्धि हास्पैन के अत्यधिक स्राव से भीमकायता (Acromegaly) उत्पन्न हो जाती है। भीमकायता के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

प्रमुख लक्षण (Clinical Features)

1. थकावट (Fatigue)
 2. शरीर भार अधिकता (Weight Gain)
 3. उष्ण असहिष्णुता (Heat Intolerance)
 4. अत्यधिक पसीना आना (Excessive Sweating)
 5. ललाट नम बाहर की ओर निकल जाना (Enlargement of Supraorbital Ridge)
 6. हाथ एवं पैर में वृद्धि (Enlargement of Hand & Feet)
 7. शरीर का आगे की तरफ झुक जाना (Kyphosis)
 8. जिहा की लंबाई में वृद्धि (Enlarged Tongue)
 9. ओष्ठ एवं नासा की मोटाई में वृद्धि (Thickening of Lips and Nose)
 10. ऊच रक्तचाप (Hypertension)
 11. हृदयाधात (Cardiac Failure)
 12. आवाज में भारीपन (Deepening of voice)
 13. कभी-कभी अनारंभ (Occasional Amenorrhoea)
 14. नपुंसकता (Impotence)
- चिकित्सा सिद्धांत
1. निदान परिवर्जन
 2. नियमित दिनचर्या पालन
 3. पश्चाप्य सेवन
 4. संतुलित आहार प्रणाली
 5. लाक्षणिक चिकित्सा
 6. योगासन, प्राणायाम, ध्यान, योगमुद्रा इत्यादि आदर्श चिकित्सा पत्र
1. निदान परिवर्जन
 2. गुरु एवं अपर्णण आहार तथा विहार का निर्देश
 3. शोधन चिकित्सा
 4. वचादि चूर्ण
मेदोहर विंडगादि लौह
सर्पांथा चूर्ण
शहद से
- प्रातः : सांय
: 500 मिली.
: 250 मिली.
: 500 मिली.
- 1 × 2 मात्रा।

5. भौजनोत्तर पंचकोल चूर्ण : 2 ग्राम

5. योगाभ्यास, प्राणायाम 6. लाक्षणिक चिकित्सा
 3. कर्षिंग सिड्डोम

- | | |
|--------------------|---|
| चौष्ठ प्रहरी पिपली | : 250 मि.ग्रा. |
| शिलाजित्वादि लौह | : <u>250 मि.ग्रा.</u> |
| शहद से | 1 x 2 मात्रा |
| मेदेहर मुग्गु | : 500 मि.ग्रा. |
| नवक गुग्गु | : <u>500 मि.ग्रा.</u> |
| मधूटक से | 1 x 2 मात्रा |
| योगायास | : शीर्षसन, सर्वायासन, शतासन, चत्रासन,
प्राणायाम, षट्कर्म आदि |
| पथ्यापथ्य पालन | |

(Cushing Syndrome)

कुशिं सिन्होम का विस्तृत वर्णन उपर्युक्त ग्रंथ के वर्णन के अतारत किया जा सका है। अतः इसे बहीं देखें।

4. मूत्र संग्रहणीय अंतःस्नावाधिक्य
(Hyper Secretion of ADH)

मूत्र संग्रहणीय अंतःस्नाव (Antidiuretic Hormone) का निर्माण एवं स्नाव पीयुष गंधि के पश्चिम खण्ड (Posterior Lobe) से होता है। यह हमोनेनिम्न कारणों से अधिक मात्रा में बढ़ावित होता है—

卷之三

- Management : Principles**

 1. Medical : To lower growth Hormone levels- Somatostatin analogues.
 2. Surgical: Trans sphenoidal surgery.
 3. Radiotherapy : To stop tumour growth and lower growth hormone levels.

2. दुग्ध प्रवर्तक अंतःस्नावाद्यिक्य (Hyper Prolactinaemia)

यह प्रोटैक्स्टन हामोन के अधिक शाव के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। इसके प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं—

प्रमुख लक्षण (Clinical Features)

दुर्ध प्रवर्तक अंतःसावाधिक्य का प्रभाव पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों में दिखाई देता है।

चिकित्सा सिद्धांत

- | | |
|---|---------------------------|
| 1. जैवाय (Ovulation) 3. बन्यत्व (Infertility) | 2. जाय (Alleviation) |
| 4. चहरे पर दाढ़ी, मौछ उगना (Hirsutism) | पुरुषों में उत्पन्न लक्षण |

गोधुरादि चूर्ण : ३ ग्राम

1. कामेच्छा में कमी (Reduced Libido)

2. नपुंसकता (Impotence)
 3. बन्धवत्त (Infertility)
 4. कभी कभी दुध साक्ष (Occasional Galactorrhoea)

पुनर्नवादि चूर्ण श्वेत पर्पटी	: 1 ग्राम : $\frac{250 \text{ मि.ग्रा.}}{1 \times 2 \text{ मात्रा}}$
कोणा जल से	
2. भोजनोत्तर	
नवायस योगराज हीरक भस्म शंख भस्म प्रवाल पिण्डी	: 250 मि.ग्रा. : 125 मि.ग्रा. : 250 मि.ग्रा. : $\frac{250 \text{ मि.ग्रा.}}{1 \times 2 \text{ मात्रा}}$
शहद से	
3. पुनर्नवादि गुण्डु अमृतादि गुण्डु	: 500 मि.ग्रा. : $\frac{500 \text{ मि.ग्रा.}}{1 \times 2 \text{ मात्रा}}$
शहद से	
4. भोजनोत्तर	
पुनर्नवादि अमृतादि	: 10 मि.लि. : $\frac{10 \text{ मि.लि.}}{1 \times 2 \text{ मात्रा}}$
समभाग जल से	
5. रात्रि में	
त्रिफला चूर्ण कोणा से	: $\frac{3 \text{ ग्राम}}{1 \times 2 \text{ मात्रा}}$
6. योगासन	: शोषणसन, सर्वांगासन, प्राणायाम इत्यादि
7. पश्चापथ्य का समुचित पालन	
	5. पूर्व यौवनावस्था

(Precocious Puberty)

निदान

पूर्व यौवनावस्था के प्रमुख निदान निम्न प्रकार हैं—

1. अधो आज्ञा केंद्र में अर्बुद (Tumour in Hypothalamus)
2. पोनिन्यल ग्रंथि में अर्बुद (Tumour of Pineal Gland)

प्रमुख लक्षण (Clinical Features)

पूर्व यौवनावस्था उत्पन्न होने के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं—

1. जनन हार्मोन के अत्यधिक स्रोत के कारण प्रायः 9 वर्ष की अवस्था के पूर्व ही बयस्क के लक्षण शरीर में विकसित होने लगते हैं।
2. पुरुष एवं स्त्री दोनों में जननांगों का तीव्र विकास होता है (Premature development of genitalia both in males and females)

निदान

पीयूष ग्रंथि के अंतःस्नावों के हीनयोग (Hyposecretion) के प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं—

1. पीयूष ग्रंथि का अर्बुद (Pituitary Tumours)
2. अधो आज्ञाकेंद्र में अर्बुद (Tumours in the regions of Hypothalamus)

पीयूष ग्रंथि के अंतःस्नावों का हीन योग

(Hypo Pituitarism)

पीयूष ग्रंथि के अंतःस्नावों की कमी से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। क्योंकि पीयूष ग्रंथि ही प्रायः सभी प्रकार की ग्रंथियों के अंतःस्नावों को नियंत्रित करती है।

3. राजक्षसा (Tuberculosis)
 4. फिरिंग (Syphilis)
 5. अभिघात (Trauma)
 6. पौष्ट्र ग्रंथि कोरोनोकाइओं का नष्ट हो जाना (Necrosis of the Pituitary cells)
- प्रमुख लक्षण (Clinical Features)**
1. वृद्धिकारक अंतःस्रोत (Growth Hormone) की कमी यदि यौवनारम्भ के पूर्व होता है तो शरीर की लंबाई में कमी, स्थलता, शारीरिक एवं मानसिक विकास में कमी होती है। शरीर की अस्थियाँ पुष्ट नहीं होती हैं तथा बन्धनत एवं न्युसंस्करण भी उत्पन्न हो जाती हैं।
 2. बीजग्रंथि प्रवर्तक अंतःस्रोत (Gonadotrophic Hormone) की कमी होने पर रिंगयों में अत्पार्तिव (Oligomenorrhoea), अनार्तिव (Amenorrhoea), बन्ध्यत्व (Infertility), रतिक्रिया में कठिनाई (Dyspareunia) आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।
 3. उपर्युक्त वल्कल प्रवर्तक अंतःस्रोत (Adrenocorticotrophic Hormone) की कमी से शरीर में थकावट (Fatigue), अरुचि (Anorexia), शरीर भार में कमी (Weight Loss), शरीर की रक्तगत शर्करा में न्यूनता (Hypoglycaemia), स्थियों में जघन प्रदेश एवं कंकश में बालों में कमी (Loss of Pubic & Axillary hairs) आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।
 4. अवदृ ग्रन्थि प्रवर्तक अंतःस्रोत (Thyroid stimulating hormone) की कमी होने से शरीर भारीगिरी, (Weight gain) विबंध (Constipation), थकावट (Fatigue), शीत असहिष्णुता (Cold Intolerance), त्वक् शुष्कता (Dryness of skin) आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।
 5. मूत्र संग्रहणीय अंतःस्रोत (Anti-Diuretic Hormone) की कमी होने से अत्यधिक तुषा (Polydipsia), अतिमूत्र प्रवृत्ति (Polyurea), आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। शरीर में सोडियम लवण की कमी हो जाती है तथा जन्मगत मधुमेह (Diabetes Insipidus) रोग की उत्पत्ति भी हो सकती है।
- चिकित्सा सिद्धांत**
1. निदान परिवर्जन
 2. संतुलित आहार एवं विहार
 3. समुचित दिनचर्या एवं रात्रिचर्या पालन
 4. पथ्यापच्य सेवन
 5. लाक्षणिक चिकित्सा
 6. योगासन, प्राणायाम, ध्यान इत्यादि

आदर्श चिकित्सा पत्र	प्रातः : सांय
पिपलती चूर्ण	: १ ग्राम
पचकोल चूर्ण	: १ ग्राम
शंख भस्म	: २५० मि.ग्रा.
शुद्ध शिलाजतु	: <u>२५०</u> मि.ग्रा.
शहद से	1×2 मात्रा
भोजनोत्तर	
चिक्रकादि वटी	: ५०० मि.ग्रा.
अग्नितुण्डी वटी	: २५० मि.ग्रा.
प्रवाल पंचामृत	: ५०० मि.ग्रा.
बस्तर्कुसुमाकर रस	: <u>१२५</u> मि.ग्रा.
शहद से	1×2 मात्रा
भोजनोत्तर	
बलारिट	: १० मि.लि.
दशमूलारिट	: <u>१०</u> मि.लि.
समभाग जल से	1×2 मात्रा
अश्वगंधा पाक	: <u>२०</u> प्रस.
दुग्ध से	1×2 मात्रा
रानि में	
हरीतकी चूर्ण	: <u>३</u> ग्राम
उष्ण जल से	1 मात्रा
	••••• और •••••

6. अन्याशय (Pancreas)

परिचय

अन्याशय शरीर की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपच शारी (Both Exocrine and Endocrine) ग्रंथि है। यहाँ पर अन्याशय के अंतःशारी (Endocrinal) कार्यों एवं विकृतियों का वर्णन किया जा रहा है। अन्याशय की सामान्य लंबाई १५ सेटोमीटर एवं भार लगभग ९० ग्राम होता है। अन्याशय के ३ प्रमुख भाग होते हैं—

- (i) सिर (Head)
- (ii) मध्य भाग (Body)
- (iii) उङ्ग (Tail)

अन्याशय का वह भाग जो अंतःशारी का निर्माण एवं लाव करता है उसका कुल भाग लगभग १-१.५ ग्राम तक होता है तथा यह मुख्यतः अन्याशय के उङ्ग भाग की

ओर अवस्थित होता है। अन्तःस्नावी का स्नाव अन्य अंतःस्नावी ग्रंथियों के स्नाव की तरह सीधे रक्त में निलंबन होता है।

प्रमुख कार्य

अन्तःस्नाव के लैंगरहैंस नामक द्वीप समूह में मुख्य रूप से चार प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं जो अलग-अलग निम्न कार्यों का सम्पादन करती हैं—

- बीटा कोशिकाएँ (β Cells)**

बीटा कोशिकाओं की संख्या लगभग 70 प्रतिशत तक होती है तथा यह कोशिकाएँ इन्सुलिन नामक हार्मोन का स्नाव करती हैं। इन्सुलिन (Insulin) हार्मोन की कमी से मधुमेह रोग की उत्पत्ति होती है।

- अल्फा कोशिकाएँ (α cells or A cells)**

अल्फा कोशिकाएँ लगभग 20 प्रतिशत तक होती हैं एवं ग्लूकोगोन (Glucagon) नामक हार्मोन का स्नाव करती हैं। यह स्नाव शरीर की रक्तगत शर्करा में बढ़ादिया करता है।

- डेल्टा कोशिकाएँ (δ cells or D cells)**

यह कोशिकाएँ लैंगरहैंस के द्वीपों के लगभग 5-10 प्रतिशत तक होती हैं। यह सोमाटोस्टेनिन (Somatostatin) नामक हार्मोन का स्नाव करती है। यह हार्मोन इन्सुलिन एवं ग्लूकोगोन हार्मोन के स्नाव को कम करता है।

- पैक्टियाटिक पालीपेटाइड कोशिकाएँ (PP cells or F cells)**

यह कोशिकाएँ लगभग 1-2 प्रतिशत तक होती हैं एवं इनका आंत्र की क्रियाओं पर प्रभाव होता है। भोजन ग्रहण करने के उपरान्त उसका पाचन होकर यह विभिन्न प्रकार की शर्कराओं के रूप में यकृत से होते हुए रक्त में मिश्रित हो जाता है। बस्तुतः इन्सुलिन के कारण ही रक्तगत शर्करा का दहन अथवा संचय होता है। यदि इन्सुलिन हार्मोन की कमी हो जाती है तो शारीरिक रक्तगत शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है। इसे मधुरक (Hyperglycaemia) की अवस्था कहते हैं। मधुरक उत्पन्न होने के परिणामस्वरूप वृक्ष द्वारा जब पुनः शर्करा का अवशोषण नहीं हो पाता है तो यह रक्तगत शर्करा पूत्र में संचित होने लगती है, जिससे मधुमेह नामक रोग की उत्पत्ति होती है। रक्तगत शर्करा की अधिक मात्रा को शरीर से शीघ्रतापूर्वक बाहर निकालने के लिए अधिक जल की आवश्यकता होती है फलस्वरूप रोगी के शरीर से मूत्र का निकालन भी बढ़ जाता है। इस अवस्था को उद्कमेह भी कहा जाता है। ऐसी स्थिति में रोगी के शरीर में बहुमृता (Polyurea), अत्यधिक तुषा (Polydipsia) और धुधाधिक्षम (Hunger) एवं दौर्बल्य (Weakness) आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

मधुमेह रोग का विस्तृत वर्णन लेखक की पुस्तक कार्याचिकित्सा भाग II में किया गया है। अतः विस्तृत ज्ञान के लिए उसे वहाँ देखें।

7. वृषण ग्रंथियाँ

(Testicular Glands)

परिचय
वृषण भी अन्तःस्नाव की तरह एक उभय स्नावी ग्रंथि है। वृषण संख्या में दो होते हैं और प्रत्येक वृषण का सामान्य भार लगभग 25 ग्राम होता है। वृषण के मुख्यतः दो कार्य होते हैं—

1. शुक्राणु निर्माण (Spermatogenesis)
 2. पुरुष अंतःस्नाव का उत्पादन (Production of Male Hormones)
- वृषण के अंतःस्नाव (Hormones of the Testis)
- वृषण ग्रंथियों से निप्रिलिखित दो प्रकार के अंतःस्नावों का निर्माण एवं स्नाव होता है—
1. टेस्टोस्टीरोन (Testosterone)
 2. एन्ड्रोस्टेनोडीआन (Androstenedione)
- इसमें टेस्टोस्टीरोन ही मुख्य हार्मोन है। एन्ड्रोस्टेनोडीआन की मात्रा अत्यधिक होती है। अत्यन्त अत्यधिक हार्मोन में वृषण से इस्ट्रोजेन (Estrogen) हार्मोन का भी स्नाव होता है। टेस्टोस्टीरोन हार्मोन का स्नाव वृषण की लेडिंग कोशिकाओं (Leyding cells) के द्वारा होता है।
- वृषण के अंतःस्नाव के कार्य (Functions of Testosterone)
1. टेस्टोस्टीरोन हार्मोन का स्नाव गर्भावस्था में ध्रूण (Foetus) जब सात सप्ताह का हो जाता है, तभी से प्रारम्भ हो जाता है। यह गर्भावस्था में पुरुष जननांगों के विकास को प्रेरित करता है।
 2. गर्भावस्था में ही टेस्टोस्टीरोन हार्मोन उपआज्ञाकेंद्र (Hypothalamus) एवं मस्तिष्क (Brain) को प्रभावित करता है जिससे जन्म के पश्चात यौवनावस्था में पुरुषोचित व्यवहार जैसे- स्त्री के प्रति आकर्षित होना इत्यादि का विकास होता है।
 3. यौवनावस्था में टेस्टोस्टीरोन जननांगों के सम्पूर्णत विकास के लिए उत्तर दायी होता है।
 4. पुरुषों में द्वितीयक जनन लक्षणों (Secondary sexual characters) जैसे- मुँछ एवं दाढ़ी का उगाना, जघन प्रदेश (Pubic Region) पर बालों की उत्पत्ति, मांसप्रेरणियों में दृढ़ता (Muscular Strength), आवाज में भारीपन (Deepening of voice) आदि लक्षणों को उत्पन्न करता है।
 5. टेस्टोस्टीरोन शुक्र के निर्माण (Spermatogenesis) एवं शुक्र की गति (Motility of sperm) को बनाए रखता है।

6. टेस्टोस्ट्रोरॉन पुरुषों में आक्रामकता (Aggressive Behavior) के लिए भी कार्य करता है।
7. टेस्टोस्ट्रोरॉन हामोन के कारण ही शरीर में उपचय (Anabolism) की दर (Rate) बढ़ जाती है एवं शरीर भार में भी वृद्धि होती है।
- वृषण गंभीर स्नाव को हीन योग**
- (Male Hypogonadism)
- वृषण गंभीर अंतःस्नावों के हीन योग (Hypogonadism) के अनेक कारण होते हैं।
- कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—
1. वृषण में किसी प्रकार की व्याधि (Diseases of Testes)
 2. पीयूष गंभीर में किसी प्रकार का विकार होना जिससे वृषण गंभीर प्रेरक हामोन का साव का उत्तर नहीं होना।
 3. अन्य कारण जो स्पष्ट नहीं हैं।
- प्रमुख लक्षण (Clinical Features)**
- वृषण गंभीर के अंतःस्नावों के हीन योग में निम्नलिखित प्रकृत होते हैं—
1. स्वर में परिवर्तन नहीं होना (No deepening of voice)
 2. दाढ़ी, मूँछ का अत्यल्प प्राङ्गभव (Not well developed beard and Moustache)
 3. वृषण, शुक्राणश एवं पौरुष गंभीर का अत्यल्प विकसित रहना (Inadequate development of testes, Seminal vesicles and Prostate gland)
 4. अल्प मैथुन क्रियाशीलता (Loss of Libido)
 5. आक्रामकता की कमी (Lack of aggressiveness)
 6. मास पेशियों का अल्प विकास (Lack of muscular development)
- चिकित्सा सिद्धांत**
1. निदान परिवर्जन
 2. सुव्यवस्थित दिनचर्या, गत्रिचर्या एवं ऋतुचर्या पालन
 3. संतुलित एवं पौष्टिक आहार सेवन
 4. हार्मोन्स (Hormones) का अंतः प्रयोग (Internal Use)
 5. लाक्षणिक चिकित्सा
 6. योगासन, योगमुद्रा, प्राणयाम

••• कृपा करें •••

विभिन्न अंतःस्नावी गंभीरियों की व्याख्यायां

8. अंतः फल अथवा बीज कोश (Ovary)

परिचय

अंतःफल भी एक प्रकार की उभय स्नावी गंभीर है। यह संख्या में दो होती हैं और इनके द्वारा भूख्यतः दो प्रकार के हामोन्स का स्नाव होता है—

1. इस्ट्रोजेन (Estrogen) एवं
2. प्रोजेस्टेरॉन (Progesterone)

इनके अतिरिक्त भी अन्य अंतःस्नावों का प्राङ्गभव होता है परन्तु वे मात्रा में नापाय होते हैं।

अंतःफल के अंतःस्नावों के कार्य (Functions of Ovaries of Ovary) हैं—

1. इस्ट्रोजेन हामोन के कार्य (Functions of the Estrogen Hormone)

(i) इस्ट्रोजेन हामोन का प्रधान कार्य गर्भधारण करने के लिए गर्भाशय की तैयारी करना है। अंतः यह गर्भाशय के अंतः भाग की वृद्धि करता है, रजोधर्म की प्रथम अवस्था (Proliferative stage of Endometrium) को विकसित करता है एवं गर्भाशय के ग्रीवा (Cervix of Uterus) में स्नाव (Mucus) उत्पन्न करता है जो शुक्राणुओं की गति के लिए आवश्यक है।

(ii) इस्ट्रोजेन हामोन यौवनावस्था के समय योनि वृद्धि (Growth of vagina) एवं उसमें अम्लीयता उत्पन्न करता है।

(iii) यह हामोन स्तन एवं दुध नालिकाओं के विकास का कार्य करता है।

(iv) इस्ट्रोजेन हामोन अधर्स्तवक (Subcutaneous layer) में वसा संचय एवं स्त्रियोर्चित व्यवहार के विकास को प्रेरित करता है।

(v) आहार को कम मात्रा ग्रहण करने, जनन अथवा रतिक्रिया के प्रति अधिक रुचि को जागृत करता है।

2. प्रोजेस्टेरॉन हामोन के कार्य (Functions of Progesterone Hormone)
- प्रोजेस्टेरॉन हामोन के मुख्य कार्य निम्न प्रकार हैं—
- (i) प्रोजेस्टेरॉन हामोन गर्भाशय में रजोधर्म की द्वितीय अवस्था (Secretory Phase) को प्रेरित करता है। गर्भाशय के संकुचन (Constriction) को रोकता है, गर्भाशय ग्रीवा गत स्नाव (Mucus) को अत्यधिक घन (Concentrated) बना देता है।

- (ii) स्तन को और अधिक विकसित करता है।
 (iii) शरीर के तापक्रम को कुछ मात्रा में बढ़ाता है।

अंतःस्नावी का हीन योग (Hypofunctions of the Ovarian Hormones)

अंतःफल के अंतःस्नावी की कमी से निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं—

1. स्त्री सुलभ लक्षणों की कमी।
 2. अल्प इन्हान विकास।
 3. अल्पार्थव अथवा अनार्थव।
 4. बीजोत्सर्व (Ovulation) नहीं होना।
 5. स्त्रियों में फुरों और से कुछ लक्षणों की उत्पत्ति होना।
- चिकित्सा सिद्धांत**
1. निदान परिवर्जन
 2. पश्च एवं संतुलित आहार विहार सेवन
 3. नियमित दिनचर्या, रात्रिचर्या पालन
 4. हार्मोन्स का अंतः प्रयोग (Internal use of Hormones)
 5. लाक्षणिक चिकित्सा
 6. योगाभ्यास, प्राणायाम, ध्यान इत्यादि
- न्यू लाइन •••

9. अपरा एवं अंतःस्नाव (Hormones of Placenta)

परिचय

अपरा एक अस्थायी (Temporary) अंतःस्नावी ग्रन्थि का कार्य करती है। गर्भधारण के लगभग 6-8 सप्ताह पश्चात अपरा निर्माण हो जाता है तथा इससे अंतःस्नावों का निकलना प्रारंभ होता है। अपरा से लगभग 5 प्रकार के प्रोटीन हार्मोन्स एवं दो प्रकार के स्टीरोयड हार्मोन्स का स्नाव होता है।

अपरा के प्रमुख अंतःस्नावी कार्य (Endocrinological Functions of Placenta)

अपरा के प्रमुख अंतःस्नावी कार्य निम्न प्रकार हैं—

1. अपरा द्वारा स्थावित प्रोटीन हार्मोन गर्भावस्था के समय प्रोजेस्टेरॉन हार्मोन के स्नाव को बनाए रखने को प्रेरित करता है।
2. पूर्ण दीजग्रंथि प्रवर्तक अंतःस्नाव (Human Chorionic Gonadotrophic-hin-

आनुवंशिक एवं पर्यावरणजन्य व्याधियाँ

अध्याय-4

आनुवंशिक एवं पर्यावरणजन्य व्याधियाँ

(HEREDITARY AND ENVIRONMENTAL DISORDERS)

2. आनुवंशिक व्याधियाँ

(Hereditary Disorders)

परिचय

आनुवंशिक काल में आनुवंशिकी का अत्यधिक एवं बहुमुखी विकास हुआ है। अनेक अनुसंधानों के फलस्वरूप मनुष्य में उत्पन्न होने वाले अनेक कष्ट साध्य या असाध्य रोगों का ज्ञान, उनकी उत्पत्ति का प्रकार एवं उनका पारिवारिक इतिहास जात हुआ है जिससे चिकित्सा के क्षेत्र में नयी क्रांति का संचार हुआ है। पिछले कुछ दशकों में युग्मसूत्र (Chromosomes) एवं जीन (Gene) को समझने में अत्यधिक प्रगति हुई है जिसके कारण वैज्ञानिक जीन को बदलने में भी सफल हो चुके हैं एवं विज्ञान की एक नयी शाखा Genetic Engineering का जीव विकास हुआ है। कुछ देशों में वैज्ञानिक अनेक प्रतिबंधों के बावजूद मनन व्यक्ति की दिशा में भी सफलता की ओर अग्रसर है। वैज्ञानिक यहाँ तक सफलता प्राप्त कर चुके हैं कि किसी जीव के शरीर की सामान्य कोशिकाओं (Somatic Cells) को सहायता से भी उसी प्रकार का प्रतिरूप (Clone) तैयार किया जा सकता है।

चिकित्सा के क्षेत्र में भी नित्य प्रति नये अनुसंधानों के फलस्वरूप जो व्याधियाँ कुछ समय पहले असाध्य समझी जाती थीं आज उनकी चिकित्सा सुगमता से की जाने लागी है एवं उत्पन्न होने से पूर्व ही ऐसे रोगों से बचा जा सकता है।

आनुवंशिक व्याधियों का जनन आयुर्वेद के प्राचीन मनोविद्यों को भी था। इस पद्धति में अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। आचार्य सुश्रुत ने आनुवंशिक रोगों को "आदिबल प्रवृत्त" बताया है। आचार्य याज्ञवल्य ने इसे "संचारी", आचार्य चरक ने "कुलज", आचार्य वापट ने "सहज", एवं आचार्य भेल ने "प्रकृति प्रभाव" नाम से इनका उल्लेख किया है।

प्रमुख संदर्भ ग्रन्थ

- | | | |
|-------------------------------|---|----------------|
| 1. चरक संहिता शारीर स्थान | - | अध्याय 2, 3, 8 |
| 2. चरक संहिता चिकित्सा स्थान | - | अध्याय 14 |
| 3. सुश्रुत संहिता सूत्रस्थान | - | अध्याय 24 |
| 4. अष्टांग संग्रह शारीर स्थान | - | अध्याया 2 |
| 5. भाव प्रकाश पाठ्यम खण्ड | - | अध्याय 59 |

परिभाषा

मनुष्य की उत्पत्ति का कारण पुरुष शुक्राणु (Sperm) एवं स्त्री जीव (Ovum) की परस्पर क्रिया होती है। माता एवं पिता के शुक्र शोणित में अवैस्थित दोषों के कारण होने वाली संतान अथवा शिशु में उत्पन्न विकार या रोग को आनुवंशिक रोग (Hereditary disease) कहते हैं।¹

पर्याय

आनुवंशीय संहेता ग्रंथों में अनेक ऐसे शब्द वर्णित हैं जिनका आनुवंशिकी के पर्याय रूप में प्रयोग होता है जैसे- सहज विकार, कुलज विकार, मातृपितृज विकार, आदिबल प्रवृत्त विकार, संचारी रोग एवं प्रकृति प्रभावज रोग इत्यादि।

निदान

आयुर्वेद में विदेश की अवधारणा सबसे प्रधान मानी जाती है। आचार्य सुश्रुत ने स्पष्ट लिखा है कि सर्व प्रकार के रोगों की उत्पत्ति में वात, पित्त और कफ के लक्षण मिलने से तथा उन लक्षणों के अनुसार चिकित्सा करने पर रोग शांत होने से एवं शास्त्रों में भी प्रमाण मिलते हैं कि वातादि दोष ही सब रोगों के उत्पादक कारण हैं।²

अतः आयुर्वेद मतानुसार आनुवंशिक व्याधियों के निम्न कारण हो सकते हैं—

1. माता का आर्तव दूषित होना 2. पिता का शुक्र दूषित होना
3. गर्भवस्था में माता द्वारा मिथ्या आहार विहार सेवन
4. आचार्य चरक ने बीज भाग, बीजभागवयव (Chromosomes and Genes) का दूषित या विकृत होना भी आनुवंशिक रोगों का कारण माना है।³

1. तत्र बीजं गुरुवलिबीजोपतसमायतनमर्थां सहजानों।
तत्र द्विविधां बीजोपतां हेतुः- मातापित्रोपत्पत्राः:

पूर्वकृतं च कर्मं, तथाऽन्येषामपि सहजानं विकाराणाम्। (च.च. 14/5)
2. सर्वेषाज्ज्ञ व्याधीनं वातपित्रस्तेषाम एवं मूलं, तिक्तिक्त्वाद इष्टफलत्वादामागच्च।
(सु.स. 24/9)

3. यस्य यस्य हङ्गावयवस्य बीजे बीजभाग उपतां भवति, तस्य तस्याङ्गावयवस्य विकृतिरसजायते॥
(च.सा. 3/17)

आनुवांशिक एवं पर्यावरणात्म व्याधियाँ

(xviii) ओष्ठ भेद (Hare lips, cleft lips)

(xix) तालु विकृति या खण्ड तालु (Cleft palate)

(xx) अंगुलियों में संख्यात्मक अंतर (Difference in number of fingers)

उपरोक्त व्याधियों में से कुछ व्याधियाँ प्रत्येक पीढ़ी में कुछ मात्रा में अवश्य होती हैं। जैसे निमित्त इत्यादि। जबकि कुछ व्याधियाँ उन पुरुषों की पुत्रियों के कुछ व्याधियों के बहुत पुरुषों में मिलती हैं। जबकि कुछ व्याधियाँ उन पुरुषों की पुत्रियों के पुरुष शिशु में धीरे-धीरे विकसित हो जाती हैं। अर्थात् पीढ़ी दर पीढ़ी आदिबल प्रवृत्त रोगों की उत्पत्ति होती रहती है।

2. जन्मबल प्रवृत्त व्याधियाँ

आचार्य मुश्तुत के अनुसार गर्भ के समय माता के मिथ्या आहार विहार के सेवन करने से जो रोग उत्पन्न होते हैं जैसे पटु, जात्यन्ध, बधिर, मूक, मिनिन एवं वामन आदि विकार, उन्हें जन्मबल प्रवृत्त व्याधियाँ कहते हैं। यह भी दो प्रकार की होती हैं—

(अ) दौहद उपचार कृत^१

गर्भवस्था के समय गर्भ के भौतिक गर्भ के समय माता के मिथ्या आहार विहार के सेवन अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं उनका यदि सम्पर्क रूप से परिपालन नहीं किया जाये तो उससे उत्पन्न व्याधियों को "दौहद अपचार कृत व्याधियाँ" कहते हैं। इससे अनेक प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। दौहद अपचार से कुबड़ा, कुणि (लूला), खञ्ज, जड़, वामन, विकृताक्ष (टेढ़ी आंख वाला) एवं अनक्ष (अंधा) संतान पैदा होती हैं।

(ब) रस कृत^२

उत्पत्ति होती है, उन्हें "रसकृत व्याधि" कहते हैं। यह व्याधियाँ भी कालान्तर में आनुवंशिक व्याधियों के रूप में विकसित हो सकती हैं। जैसे—

- (i) मधुर रस के अत्यधिक सेवन से : मृक्त्व, अतिस्थौल्य, प्रमेह रोग
- (ii) अम्ल रस के नित्य सेवन से : रक्षित, नेत्र रोग, त्वक् रोग
- (iii) लवण रस के अत्यंत सेवन से : शोष वली, पालित्य, खालित्य

द्विविधा: रसकृता दौहदउपचारकृताक्ष (सु.मु. 24/6) विमाननात्, कुञ्ज, कुणि, खञ्ज, जड़, वामन विकृताक्षमनक्ष वा नारी मुत्तं जनयन्ति।

2. दौहद विमाननात्, कुञ्ज, कुणि, खञ्ज, जड़, वामन विकृताक्षमनक्ष वा नारी मुत्तं जनयन्ति। (सु.मा. 3/15)

3. पशुपतिनित्या प्रमेहिङं पूर्कमित्सथलं वा, अम्लतिनित्या रक्षितिनं त्वाक्षिरोगिणं वा, तिकोनित्या गोगिष्माप्तवताम् पृष्ठिनित्यं वा, कमयनित्या श्याकमानहिन्मुदवतिनं वा। (च.शा. 8/21)

1. यदा च लव्यार्थाऽवृक्षमेव वातलान्यसेवे तदाऽस्या वायुः प्रकृष्टिः शरीरमनुरूपं गर्भस्येऽवतिष्ठ मात्रा गर्भस्य जड़ बधिर मूक मिन्मिन गदगद खञ्ज कुञ्ज वामन हीनाज्ञाधिकाङ्गतान्यच्च वा वातविकारं करोति॥ तदा वायुप्रत पितमपि खालितपितिरमशुभीना त्वङ्गत्वक्षेष्वपूर्वतादीनि॥ श्येष्मातु कुष्ठकिलास दत्तत्वादीनि। त्रिकांगो मिश्रन विकाराद्॥ (अ.सं.शा. 2/34)

- (iv) कटु रस के निरंतर सेवन से : दौर्बल्य, अल्पशुक्रता
- (v) तिक्क रस के अत्यन्त सेवन से : शोष, यक्षमा, बलहस
- (vi) कषाय रस के अति सेवन से : आनाह, उदावत रोग इसी प्रकार आचार्य चरक ने भी अनेक प्रकार के हानिकारक आहार द्रव्यों का वर्णन किया है जिनके अत्यन्त सेवन से संतान में विकृति उत्पन्न हो सकती है। आचार्य वाग्भट ने दोषानुसार रसकृत व्याधियों का विस्तृत उल्लेख किया है जैसे— वात प्रधान रस सेवन से उत्पन्न व्याधियाँ, इसी प्रकार पित प्रधान, कफ प्रधान एवं त्रिदोषज प्रधान रस सेवन से उत्पन्न होने वाली व्याधियाँ।

1. वातज्ञ आहार रस से उत्पन्न व्याधियाँ

जड़ता, बाधिर्य, मूकात्व, मिन्मिन, खञ्ज, कुञ्ज, वामन एवं हीनाधिकाङ्गी (अर्थात् सामान्य से कम अथवा अधिक अंगों वाला) इत्यादि।

2. पित्तज्ञ आहार रस से उत्पन्न व्याधियाँ

खालित्य, पालित्य, दाढ़ी मूळ के बालों का न आना, त्वचा, नख एवं नेत्र का पिङ्गल वर्ण होना इत्यादि।

3. कफज्ञ आहार रस से उत्पन्न व्याधियाँ

कुष्ठ किलास एवं दंतगत व्याधियाँ

4. त्रिदोषज आहार रस से उत्पन्न व्याधियाँ

त्रिदोषज आहार रस से मिश्रित विकार उत्पन्न होते हैं। आनुवंशिक चिकित्सा विज्ञान की कोसोटी पर कुष्ठ, राजयक्षमा एवं अर्ध अथवा एवं राजयक्षमा रोग उपर्गण (Infection) के कारण उत्पन्न होते हैं। परंतु कुष्ठ अथवा राजयक्षमा से ग्रस्त माता-पिता की संतानें उनके अत्यन्त निकट सम्पर्क में रहने के कारण उनमें भी कुष्ठ एवं राजयक्षमा रोग उत्पन्न होने की संभावना अधिक रहती है। परंतु जन्म के तत्काल बाद यदि इन बच्चों को माता पिता से अला रखकर उनका पालन पोषण किया जाये तो उनमें यह व्याधियाँ उत्पन्न नहीं हो सकतीं।

आनुवंशिक व्याधियों के सामान्य लक्षण

आनुवंशिकों के कारण उपरोक्त जिन व्याधियों का उल्लेख किया गया है उनका वर्णन

लोखक की पुस्तक कार्यचिकित्सा भाग II एवं भाग III के बातव्याधि प्रकाश में किया जा चुका है। अतः उन्हें बहीं देखें।

साम्यासाध्यता

आनुवंशिक व्याधियाँ प्रायः अमाध्य होती हैं। परंतु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में अनेक प्रकार की औषधियाँ एवं उपकरणों का आविष्कार हो चुका है जिनके समुचित प्रयोग से इन व्याधियों को दूर करने में अंशतः सफलता प्राप्त होती है। इनके युक्ति पूर्वक प्रयोग ही ऐसी के जीवन को अधिक समय तक और बेहतर बनाया जा सकता है।

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
2. रोगी को समुचित परामर्श (Counselling of the patients)
3. पथ्यापद्धति का पालन
4. संतुलित आहार विहार
5. नियमित दिनचर्या, गत्रिचर्या एवं ऋतुचर्या पालन
6. उत्पन्न व्याधि के अनुसार उसके चिकित्सा सूत्र के आधार पर चिकित्सा करना
7. सामोनी विवाह का निषेध

यह आचार्य मनु की आनुवंशिक रोगों के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण मौलिक अवधारणा है। यदि दमाता एवं पिता के विरुद्ध गोत्र में विवाह कार्य किया जाए तो आनुवंशिक व्याधियों के उत्पन्न होने की साम्भावना कम हो जाती है।

8. आनुवंशिकी परामर्श (Genetic Advise)

आनुवंशिक रोगों से बचाव करने के लिए परामर्श अत्यंत आवश्यक है। सर्वप्रथम सारभागी यूर्बिक रोग निदान करना चाहिए। वह सिद्ध होने के पश्चात कि अमुक व्याधि आनुवंशिक है, यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इसका आगमन माता या पिता किससे हुआ है? इसके पश्चात ही रोगी को उचित परामर्श देना चाहिए। अनेक व्याधियाँ ऐसी होती हैं जिनमें एक ही माता-पिता से उत्पन्न थाई-बहन में थाई प्रभावित रहता है तोकिन बहन में व्याधि का कोई लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होता है। परंतु आलीं पीढ़ी में बहन से उत्पन्न पुत्रों में पुनः वह व्याधि प्रकट हो जाती है। इसलिए भी संबंधित रोगी को आनुवंशिक परामर्श दिया जाना अत्यंत आवश्यक है।

Latest Developments Genetic Disorders

Introduction

Genetically determined diseases are 2-3% of all pregnancies which result in the birth of child with a defective or absent gene. Up to 12% of paediatrics hospital admissions are the result of single gene disorders or chromosomal abnormalities. Although the frequency of adult diseases with a strong genetic component is more difficult to estimate, it may be as high as 50%.

Categories of Genetic Diseases

Diseases influenced by genetic factors may be grouped into following categories-

1. **Mendelian Disorders**
It is caused by mutation at single locus. It can be inherited or may result from new mutation.
2. **Chromosomes Disorders**
Usually caused by new mutation, when inherited show modified patterns of Mendelin Transmission.
3. **Multifactorial Disorders**
Diseases influenced rather than caused by genetic factors. No clear pattern of transmission.
4. **Mitochondrial Disorders**
Caused by mutations in the mitochondrial genome. Transmitted through the maternal line.
5. **Somatic Cell Disorders**
Involve mutations in the somatic cells. Tissue limited, Somatic mutations are not inherited or transmitted.

Single Gene Disorders

It is more accurately termed single locus disorders, refer to mutation in either one or in a pair of homologous alleles at a single locus. It has 3 categories namely-

1. Autosomal dominant
2. Autosomal recessive
3. X-linked recessive

Autosomal Dominant

These disorders include-

- (i) Familial combined Hyperlipidaemia
- (ii) Familial Hypercholesterolaemia
- (iii) Dominant otosclerosis
- (iv) Adult polycystic kidney disease

1. अस पिण्डा च या मातुरस गोत्रा च या पितुः ।
सा प्रस्ता द्विजातीनां दारकर्मणं मैथुने॥ (मनुस्मृति)

(v) Huntingtons disease

(vi) Myotonic dystrophy.

2. Autosomal Recessive

These disorders include-

(i) Cystic fibrosis

(ii) α_1 -antitrypsin deficiency

(iii) Phenylketonuria

(iv) Congenital adrenal hyperplasia

(v) Sickle cell anaemia

(vi) β Thalassemia**3. X-Linked Recessive**

These Disorders include-

(i) Haemophilia A and haemophilia B

(ii) Becker muscular dystrophy.

(iii) Duchenne Muscular Dystrophy.

Multifactorial Disorders

These includes-

1. Congenital Malformations

(i) Cleft Lip and Cleft Palate

(ii) Club foot

(iii) Dislocation of Hip

(iv) Pyloric Stenosis

(v) Spina Bifida

2. Adult Diseases

(i) Alzheimer's disease

(ii) Epilepsy

(iii) Hypertension

(iv) Manic depression

(v) Multiple sclerosis

Management : Principles and Prevention of Genetic Diseases

Very few genetic diseases can be successfully treated. The emphasis in clinical genetics is therefore to assist people to avoid occurrences and recurrences by genetic counselling and if need be, by prenatal diagnosis.

Features of Genetic Counselling

There are generally three groups in genetic counselling-

1. To take History

(i) Construct Pedigree

(ii) Examine proband

2. Counselling

(i) Risk Estimation

(ii) Options Available

3. Follow up

(i) Arrange necessary procedures

(ii) Review & support

Gene Therapy

Attempts to treat genetic diseases have tended to focus on alleviating the metabolic or biochemical consequences of the gene defect for e.g. by dietary restriction of phenylalanine in children with phenylketonuria. None of these approaches have been very successful, and genetic diseases are conventionally regarded as untreatable. However the advent of gene therapy, the introduction of normal genes into tissue expressing defective ones, promises to change this dismal conclusion.

...•••

**2. पर्यावरण जनित व्याधियाँ एवं उनका प्रतिकार
(Environmental Disorders and their Management)****परिचय**

मनुष्य जब आदि काल में पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ उस समय उसके जीवन यापन करने के लिए पर्याप्त संभावन नहीं थे, लेकिन उन्हें प्रकृति के निकट रहने का अवसर प्राप्त था। उस समय का पर्यावरण मानव जीवन के पूर्णतः अनुकूल था अथवा यह कहा जा सकता है कि प्रकृति ही मनुष्य को सबसे महत्वपूर्ण मित्र थी जो उन्हें सब कुछ जैसे-जल, वायु भोजन, इत्यादि निःशुल्क एवं शुद्ध स्वरूप में उपलब्ध कराती थी। परंतु धीरे-धीरे सभ्यता का विकास होने लागा तथा मानव महिलाएँ सक्रिय होकर अपने लिए नित नयी आवश्यकताएँ एवं उनकी पूर्ति के उपायों के लिए क्रियान्वयन में संलग्न हो गया। फलस्वरूप धीरे-धीरे मानव प्रकृति से दूर होता चला गया। सुधृष्टि में दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि मानव अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु अपने ही कार्यों से प्राकृतिक पर्यावरण को प्रदूषित करने लगा। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध एवं बीसवीं सदी में विश्व के अधिकांश देशों में अत्यधिक तीव्र गति से औद्योगिक क्षेत्र का विकास हुआ है जिसके कारण प्राकृतिक पर्यावरण भी लातार एवं तेजी से अत्यधिक प्रदूषित होता गया। आज के युग में भौतिकतावादी विकास एवं आर्थिक सम्बन्धों के कारण एक और तो मनुष्य के कदम चढ़ाया पर पहुंच गये हैं और आज का मानव मांगल ग्रह पर पहुंचने की तैयारी में है। पूरा विश्व एक छोटे से गांव के रूप में बदलता जा रहा है जिसका कारण संचार क्रांति है। इंटरनेट को सहायता से विश्व के एक कोने में बैठा व्यक्ति अन्य किसी भी व्यक्ति से तकाल सम्पर्क कर विचार विमर्श कर सकता है। विज्ञान के क्षेत्र में विश्व व्यापी अतिश्वशनीय प्रगति होने के परिणामस्वरूप आज मनुष्य को समस्त प्रकार की सुख एवं सुविधाएँ उपलब्ध हैं। परंतु दूसरी ओर भयंकर त्रासदी है कि विश्व की एक बहुत बड़ी जनसंख्या को यीनों का स्वच्छ जल भी समुचित मात्रा में उपलब्ध नहीं है और रहने के लिए भी पर्याप्त स्थान उपलब्ध नहीं है। सम्पूर्ण विश्व में समस्त वातावरण की वायु गंभीर

स्तर तक प्रदूषित हो रही है जिससे महानारों में सामान्य रूप से सांस लेना भी मुश्किल होता जा रहा है।

प्रदूषण के कारण प्रतिक्षण ग्रन्थि की समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं जिनका मनुष्य के स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव दिखायी दे रहा है। भारत, श्रीलंका एवं इन्डोनेशिया आदि देशों में आयी सुनामी नामदी का कारण भी वैज्ञानिक, बातावरण एवं प्रदूषण जन्य परिवर्तनों को ही मान रहे हैं। सुनामी नामदी के बाद पुनः बातावरण में गंभीर परिवर्तनों को सूचनाएँ प्राप्त हो रही हैं। जहां पर पहले मीठा पानी था वह स्थान अब खारे पानी के तालाब में बदल चुका है जिसके कारण वहां सामान्य जनजीवन पर धातक प्रभाव पड़ रहा है। सुनामों प्रभावित स्थानों का परिस्थितीकीय तंत्र (Ecosystem) ही बदल गया है। विश्व के अनेक भागों में चल रहे युद्ध, लड़ाइयाँ, औद्योगीकरण, तीव्र शहरीकरण एवं जंगलों का सफाया भी पर्यावरण को बातक नुकसान पहुंचा रहे हैं। भोपाल गैस त्रासदी भी असंयमित पर्यावरण एवं विभिन्न प्रकार के प्रदूषण का परिणाम थी जिसके कारण हजारों लोग अकाल मृत्यु की प्राप्त हुए थे।

पर्यावरण के क्षेत्र अनंत हैं तथा अलग-अलग स्थानों का पर्यावरण अलग-अलग प्रकार से प्रभावित हो रहा है। जीवन को सुखद, संतुलित एवं उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए जिन मौलिक तत्वों को व्यान में रखने की आवश्यकता है उनका वर्णन यहां किया जा रहा है। इन तत्वों की शुद्धता बनी रहने पर भव्य का जीवन संतुलित एवं व्यवस्थित रूप से बलता रहता है और इनके प्रदूषण से प्राणी जगत के अस्तित्व पर ही खतरे के बादल मंडराने लगते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख विषय

पर्यावरण के प्रमुख विषयों को चिह्नित करना एक कठिन कार्य है क्योंकि प्राणी जगत को पर्यावरण संबंधी अनेक भाव (विषय) प्रभावित करते हैं। प्राथमिकता के आधार पर पर्यावरण के कुछ प्रमुख विषयों को निम्न प्रकार वर्णकृत किया जा सकता है—

1. वायु प्रदूषण
2. जल प्रदूषण
3. ध्वनि प्रदूषण
4. औद्योगिक
5. व्यावसायिक
6. भूमि (देश)
7. काल प्रदूषण
8. शब विनाश एवं पर्यावरण
9. युद्ध जनित पर्यावरण प्रदूषण

••• नै फै ऊ •••

3. वायुप्रदूषण

परिचय

जीवन के लिए वायु अत्यंत महत्वपूर्ण है। जीवन की गतिशीलता के लिए भीजन, जल एवं वायु सर्वाधिक आवश्यक तत्व हैं। इनमें वायु सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि वायु के बिना क्षण भर भी जीवित रहना असम्भव है। शरीर की सम्पूर्ण प्रक्रियाओं को संचालित करने में शुद्ध वायु की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वायु के संयोग से ही आहार द्रव्यों का चयापचय (Metabolism) होकर ऊर्जा की प्राप्ति होती है एवं जीवन का क्रम निरंतर, निर्बाध गति से चलता रहता है। श्वसन क्रिया द्वारा रक्त का शुद्धिकरण, शक्ति का उत्पादन, शरीर ताप का परिस्थक्षण तथा जीवन की अन्य प्रक्रियाएँ उचित क्रम में सम्यक रूप से तभी सम्पादित होती हैं जब जीवित शरीर को शुद्ध एवं स्वच्छ वायु पर्याप्त मात्रा में निरंतर प्राप्त होती रहे।

शुद्ध वायु की उपलब्धता से शारीरिक क्रियाएँ सम्यक रूप से संचालित होती हैं। इसके विपरीत अशुद्ध वायु शरीर में अनेक प्रकार की व्याधियों की उत्पत्ति करता है तथा इससे निरंतर जीवन की क्षति होती रहती है। शास्त्रों में वायु के जीवनोपयोगी प्राकृत कर्म बताए गये हैं, वे अधिकांशतः प्राण वायु के कर्म हैं। प्राणवायु को ही आवस्त्रिजन (Oxygen) कहा जाता है जो जीवन के लिए अनिवार्य है। आचार्य चरक ने वायु को “तन्त्रव्यन्धर” कहा है। यह प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान स्वरूप है तथा शरीर की समस्त चेष्टाओं द्वारा प्रवर्तक है, मन का प्रणेता एवं नियन्ता है, सभी इन्द्रियाओं को ग्रहण करने वाला है और शरीर का संधान करने वाला है। शरीर में होने वाले समस्त कर्म अप्रकृतिपूर्ण कर्म हैं।

सभी जीवधारी श्वसन प्रक्रिया द्वारा वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड छोड़ते हैं। यदि कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा वातावरण में सामान्य से अधिक बढ़ती है तो वायु प्रदूषित हो जाती है। इस प्रदूषण को रोकने के लिए प्रकृति ने स्वतः व्यवस्था की है जिसके अंतर्गत वनस्पतियां कार्बन डाई ऑक्साइड का उपयोग क्लोरोफिल की सहायता से अपना खाद्य पदार्थ बनाने में प्रयोग करती हैं एवं आवस्त्रिजन वायमंडल में छोड़ती हैं। जिसका प्रयोग प्राणी जगत द्वारा श्वसन कार्य के लिए किया जाता है। इससे पर्यावरण संतुलन बना रहता है। यात्रि में वनस्पतियां भी कार्बन डाई ऑक्साइड का ही त्याग करती हैं। इसीलिए रात्रि में फेफड़े के पास रहने, सोने के लिए आचार्यों ने मना किया है।

वायु प्रदूषण के कारण

वायु प्रदूषण के अनेक कारण हैं जिनमें से कुछ प्रमुख कारणों का उल्लेख यहां किया जा रहा है—

1. शहरी क्षेत्रों में मोटर गाड़ियां वायु प्रदूषण का प्रमुख कारण हैं। उनसे निकलने

1. वायुस्तन्त्रयन्धर:। (च.पृ. 12/6)

- वाले हाइड्रोकार्बन, कार्बन मोनोक्साइड, सीसा, नाइट्रोजन आक्साइड प्रमुख होते हैं। डीजल इंजन इत्यादि से निकलने वाला काला धुआं अत्यंत वायु प्रदूषक होता है।
2. विभिन्न उद्योगों द्वारा अनियंत्रित रूप से प्रचुर मात्रा में वायु प्रदूषण करते हैं।
 3. विभिन्न शरेत्, कार्यों के लिए कोयला, लकड़ी, डीजल, मिट्टी का तेल इत्यादि के प्रयोग से वायु मंडल प्रदूषित होता रहता है।
 4. धूत, रुई के कण एवं रेशे, पराग, खनिज इत्यों के सूक्ष्म कण आदि का वायुमंडल में प्रवेश।
 5. मल-मूत्र इत्यादि के समुचित निष्कासन प्रक्रिया के अभाव में उग्रीभृत एवं अस्वास्थ्य कर वायु तथा सूक्ष्म संक्रामक जीवाणुओं, विषाणुओं द्वारा वायु का प्रदूषण।
 6. जीवधारियों एवं वनस्पतियों के सड़ने से दूषित एवं उग्रीभृत वायु द्वारा वातावरण का प्रदूषण।
 7. मनुष्यों, पशुओं एवं अन्य जीवधारियों द्वारा बहिश्वास के समय छोड़े जाने वाले कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा में वृद्धि।
 8. अभियंत्रित रूप से अनेक प्रकार के कीट नाशकों का छिड़काव, विभिन्न प्रकार के कवक, मिसाइल परीक्षण, परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम इत्यादि से भी वायु प्रदूषण होता है।
- वायु प्रदूषण से उत्पन्न प्रमुख व्याधियाँ**
- वर्तमान समय में विश्व की लाभगत 1.3 बिलियन (Billion) शहरी जनसंख्या वायु प्रदूषण की निर्धारित सीमा से अधिक प्रदूषित वातावरण में निवास करती है। जिसके फलस्वरूप मनुष्य के स्वास्थ्य पर अत्यंत खातक प्रभाव देखा जा रहा है। वायु प्रदूषण के कारण निम्नलिखित प्रमुख व्याधियाँ उत्पन्न होते हैं—
1. कास (Cough)
 2. श्वास (Asthma)
 3. राजयक्षमा (Tuberculosis)
 4. शिरः शूल (Headache)
 5. कुप्रकृत्याङ्क (Lung Cancer)
 6. श्वसन अनुरूपता (Respiratory Allergy)
 7. मरीज़िक एवं तंत्रिका तंत्र का अत्यंत विकास (Impaired development of brain and nervous system)
 8. आलस्य (Lethargy)
 9. अरोचक (Anorexia)
 10. पाण्डु (Anaemia)
 11. प्रतिश्वाय (Rhinitis)
 12. निर्बंध (Constipation)
 13. अनिमाद्य (Poor Appetite)
 14. दीर्घत्व (Weakness)
 15. कुष (Leprosy)

16. चैचक (Small Pox)
 17. रोहिणी (Diphtheria)
 18. मसूरिका (Chicken Pox)
 19. सिलिकोसिस (Silicosis)
 20. सिड्रोसिस (Sidrosis)
 21. एथ्राकोमिस (Anthracosis)
- वायु प्रदूषण का नियंत्रण एवं बचाव (Prevention and control of air pollution)**
- विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organization) ने वायु प्रदूषण के नियंत्रण एवं इसके बचाव हेतु निम्नलिखित उपाय प्रयोग में लाने का निर्देश दिया है—
1. विषाक्त पदार्थों को वातावरण में विलेसे रोकना। यह प्रक्रिया विभिन्न प्रकार की वैज्ञानिक प्रणालियों के प्रयोग से संभव है।
 2. वायु प्रदूषक तकनीकों को हटाकर उनके स्थान पर नयी विधियों का प्रयोग।
 3. औदौर्गीक श्वेत्रों एवं शहरी श्वेत्रों के बीच पर्याप्त मात्रा में हरा शेत्र (Green belt) का निर्माण करना जिससे वायु प्रदूषक तंत्रों की मात्रा में पर्याप्त कमी आती है।
 4. वायु प्रदूषण रोकने हेतु कड़े नियम-कानून बनाकर उन्हें समुचित रूप से लागू करना।
 5. विश्व में आम व्यक्ति को जागरूक बनाना।
- वायु शुद्धकरण के उपाय**
- वायु शुद्धकरण के लिए निम्न उपाय करने चाहिए—
1. वायुशुद्धि के लिए संबंधित स्थान पर शुद्ध वायु का अधिकाधिक प्रवाहण करना। इसके लिए आसपास का वातावरण खुला होना चाहिए।
 2. धूपन इत्यों से धूपन करना चाहिए जैसे— धूप, गुण्डु कपूर, देवदार, चंदन, सर्ज, आर, निम्ब, तेजपत्र, गंधक, राजिका, श्वेत मर्षप इत्यादि।
 3. घरों में वायु शीतलीकरण यंत्र (Air conditioner) का प्रयोग।
 4. कमरों में वायु निष्कासक पंखों (Exhaust fans) एवं कूलर का प्रयोग।
 5. खस की टट्टी अथवा खसखस के पदे का प्रयोग।
 6. कमरों में अत्यधिक सूर्य की ऊँचा का प्रवेश रोकना, खिड़की एवं दरवाजे बंद करके होसे-नीले पदे का प्रयोग भी कमरे में आतप प्रवेश को रोकता है।
 7. आवास में वायु प्रवेश-निकास व्यवस्था (Ventilation)
- वायु के समुचित आवास में वायु प्रवेश-निकास व्यवस्था की जाती है—
1. बहिर्बोन्टलेशन (External Ventilation)
 2. अंतर्बोन्टलेशन (Internal Ventilation)

1. बहिर्बैन्टलेशन

बहिर्बैन्टलेशन का तात्पर्य नगर अथवा ग्राम के अंदर चारों तरफ वायु का परिपूर्ण आवागमन होता है। यदि बहिर्बैन्टलेशन उपयुक्त नहीं होता तो अंतर्वैन्टलेशन भी प्रभावी नहीं हो सकता है। अतः बहिर्बैन्टलेशन को व्यवस्थित करने हेतु निम्न उपाय करने चाहिए—

- ग्राम अथवा नगर का निर्माण खुले स्थान पर तथा स्वच्छ भूमि एवं स्वच्छ वातावरण में करना चाहिए।
- आवासीय घृणों का निर्माण अलग-अलग पक्षियों में करना चाहिए।
- प्रत्येक घृ के चारों तरफ अथवा कम से कम दो तरफ खुला स्थान होना चाहिए, विशेष कर सामने की ओर।
- ग्राम एवं ग्राम की सड़क या गलियाँ पर्यास चौड़ी होनी चाहिए।
- घर की छतें पर्यास ऊँची होनी चाहिए।
- नगर या ग्राम के पास में ही पार्क अथवा बाग बगीचे अवश्य होने चाहिए।
- पक्षी सड़कों के अभाव में गलियों में जल छिड़काव होना चाहिए जिससे धूल उड़कर वायु प्रदूषण न कर सके।
- मल-पूर्व विसर्जन की समुचित व्यवस्था आवश्यक है।
- अपदब्य निवारण की उचित व्यवस्था अनिवार्य है।
- कल-कारखाने, उद्योग धंधे, आवासीय स्थान से पर्यास दूरी पर होने चाहिए।
- अंतर्वैन्टलेशन से तात्पर्य घर के अंदर शुद्ध वायु के प्रवेश तथा अशुद्ध वायु के निकासन से है। इसके लिए घरों में पर्यास खिड़कियां, रोशनदान का निर्माण अवश्य किया जाना चाहिए।

2. अंतर्वैन्टलेशन (Internal Ventilation)

अंतर्वैन्टलेशन से तात्पर्य घर के अंदर शुद्ध वायु के प्रवेश तथा अशुद्ध वायु के निकासन से है। जल की अशुद्धियों को निम्न रेखा चित्र द्वारा और स्पष्ट किया जा सकता है—

••• नीले लकड़ी •••

4. जल प्रदूषण

परिचय

जल ही जीवन है। जल के बिना जीवित रहना असम्भव है। प्राचीन नदी घाटी सम्यताएं इस्तीलिए नदियों के किनारे ही विकसित हुई थीं। मानव शरीर में लगभग 80 प्रतिशत भाग जल ही होता है। अस्थियाँ जो किं मार्फीथक कठोर होती हैं उनमें भी 10 अवश्यक होता है। जल शरीर की बाल्य एवं आँध्यान्तर स्वच्छता के लिए अत्यन्त अवश्यक होता है। जलीयांश के माध्यम से ही पोषक तत्वों का अवशोषण होकर एवं रक्त के साथ मिश्रित होकर शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयवों तक पहुंच कर उनका समुचित रूप से पोषण होता है।

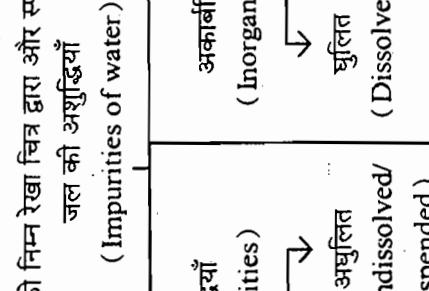
शरीर में जल के प्रमुख कार्य

- शरीर में जल निम्न कार्य सम्पादित करता है—
- शारीरिक उष्मा का शरीर में यथावश्यक विकिरण करना
 - शरीर के तापक्रम को संतुलित बनाए रखना
 - पाकक रसों की उत्पत्ति में सहायता करना
 - शरीर से उत्सर्जन योग्य तत्वों को शरीर से बाहर निकालने में सहायता करना
 - उत्कों के जल संचय को सामान्य प्रमाण में बनाए रखना
 - शरीरात रक्त एवं लसीका को तरलत को बनाए रखना
 - आहार रस के सर्व शरीर में संचरण में सहायता करना
- जल की प्रमुख अशुद्धियाँ
- जल की अशुद्धियाँ प्रायः निम्न दो प्रकार की होती हैं—
- शुलित अशुद्धियाँ (Dissolved Impurities)
 - अवलम्बित अशुद्धियाँ (Suspended or Undissolved Impurities)
- जल की शुलित अशुद्धियाँ (Dissolved Impurities of Water)
 - जल की शुलित अशुद्धियों के अंतर्गत कई प्रकार की ऐसे, कार्बनिक अम्ल, आवस्मीजन, सल्परेटेड हाइड्रोजन, क्लोराइड लवण, कैल्सियम सलफेट, मैनिनशियम सलफेट, लौह, सीमा आदि धातुएँ और भूमि से मिलने वाले विभिन्न प्रकार के कार्बनिक (Organic) पदार्थ होते हैं।

Impurities of water)

जल की अवलम्बित अशुद्धियाँ (Undissolved or Suspended Impurities of water)

- जल की अवलम्बित अशुद्धियों के अंतर्गत बनस्पतियाँ, पशुओं से प्राप्त अशुद्धियाँ, बालू, मिट्टी, जीवाणु तथा कृमि आदि पाए जाते हैं। यह अशुद्धियाँ जल में बुलनशील नहीं होती हैं।
- जल की अशुद्धियों को निम्न रेखा चित्र द्वारा और स्पष्ट किया जा सकता है—



आनुवांशिक एवं पर्यावरणजन्य व्याधियाँ

उद्गम स्थल पर जलाशय में संचय के समय जलपृष्ठ के समय
 (At the site of (In ponds, (At storage (At the
 origin) Rivers etc.) Level) time of supply)

जल प्रदूषण से उत्पन्न प्रमुख व्याधियाँ
 सकती हैं—

प्रदूषित जल अथवा अशुद्ध जल के सेवन से निम्नलिखित व्याधियाँ उत्पन्न हो

1. कठिन जल (Hard water) से उत्पन्न होने वाले रोग-अजीण (Indigestion), अनिमांसा (Anorexia), उद्वार्ता (Belching), अतिसार (Diarrhoea) इत्यादि।

2. जीवाणु एवं विषाणुओं से उत्पन्न होने वाले रोग जैसे- आंत्रिक ज्वर (Typhoid fever), ज्वर (Fever), प्रवाहिका (Dysentery), अतिसार (Diarrhoea), विसूचिका (Cholera), कामला (Infective or Viral Hepatitis) इत्यादि।

3. परजीवी (Parasitic) कृमियों से उत्पन्न होने वाले रोग- गाहड़पद कृमि (Ascariasis), अंकुश मुख कृमि (Hook worms), अमीबिक प्रवाहिका (Amoebic Dysentery) एवं मलेरिया (Malaria) इत्यादि।

जल शोधन की विधियाँ

जल का शोधन मुख्यतः निम्न दो प्रकार से किया जाता है—

1. मर्जन 2. प्रसादन

1. मार्जन विधि
 आचार्य सुश्रुत के मतानुसार जल शोधन की इस विधि के अंतर्गत अनेक प्रक्रियाएं आती हैं जैसे—

(i) जल को आगि पर गर्म करना

(ii) जल को धूप में तथाकर गर्म करना

(iii) आगि नहर लौह पिण्ड, ईट-इत्यादि को जल में डालकर पुनः जल को छान लेना

(iv) विशेष चंत्र में जल को गर्म कर उसकी वाष को तीर्यक पातन चंत्र से बाहर निकालकर उत्पन्न किया गया जल (Distilled water) अत्यंत शुद्ध एवं उत्तम होता है।

1. व्यापक्या चारिनक्वथने सूखांतप्रतापनं तसायः पिण्डिकतालोषणाम् वा निर्वपणं प्रसादनञ्च कर्तव्यम् । (सु.सृ. 45/12)

2. प्रसादन विधि
 इस विधि के अंतर्गत निम्नली बीज, शैवाल, फिटकरी, तृतीया, ल्लीचिंग पाउडर अथवा पोटेशियम परमैग्नेट इत्यादि को जल में डालकर जल शोधन करना प्रसादन कहलाता है। आचार्य सुश्रुत ने कल्याणित जल को शुद्ध करने के लिए निम्न सात वस्तुओं का प्रयोग करने का निर्देश किया है—

- (i) निम्नली के बीज (v) वस्त्र से छानना
- (ii) गोमेद मणि (vi) मुका प्रक्षेप
- (iii) कमल नाल (vii) स्फटिक प्रक्षेप
- (iv) शैवालमूल

जल शोधन की आधुनिक विधियाँ

अशुद्ध जल को निम्नलिखित विधियों से शुद्ध किया जा सकता है—

1. प्राकृतिक विधि

इसके अंतर्गत दो उपाय किए जाते हैं—

(i) बड़े-बड़े जलाशयों में जल का संग्रहण (Storage of water)

(ii) जल स्थिर होने पर उसे दूसरे एवं तीसरे जलाशय में संचयन किया जाता है एवं वृषभागत पाइप के एवं वहां पर क्लोरोन डालकर पुनः संग्रहित कर लिया जाता है एवं वृषभागत पाइप के माध्यम से जल का यथावत्यक वितरण किया जाता है।

2. कृत्रिम विधि (Artificial Method)

इसके अंतर्गत जल शोधन की प्रयतः तीन विधियाँ आमतया जाती हैं—

(i) भौतिक विधि (Physical Method)

इस विधि के अंतर्गत (Distillation) एवं (Boiling) की प्रक्रियाओं के द्वारा अशुद्ध जल को शुद्ध किया जाता है।

(ii) रासायनिक विधि (Chemical Method)

इस विधि के अंतर्गत Precipitation, Disinfection अथवा Sterilization की प्रक्रियाओं की सहायता से अशुद्ध जल के निपटीकरण का प्रयास किया जाता है।

(iii) छन विधि (Filtration Method)

छन विधि के अंतर्गत निम्न प्रक्रियाएं अपनायी जाती हैं—

- (अ) Slow sand Filtration
- (ब) Rapid Mechanical Filtration

(स) Domestic Filtration

1. तत्र सप्त कल्याण्यं प्रसादनानि चर्चितः। तद्वा कल्याणम् विस्त्रित्वा वालमूलवस्त्राणि तुष्णामणिश्वेते ॥ (सु.सृ. 45/17)

जल शोधन की रासायनिक विधियों में सबसे उत्तम विधि बल्लोरिनेशन है जो प्रायः बल्लीचिंग पाउडर से किया जाता है। बल्लोरिनेशन के अतिरिक्त ओजोनाइजेशन, अल्ट्राकायलेटिकरण एवं केटाडिन सिल्वर विधि के द्वारा भी जल का शोधन किया जाता है। घेरू प्रयोग के लिए जल का शोधन Distillation, Boiling या Filtration द्वारा अथवा फिटरकी, तूतिया, चूना, कल्परीन, ब्रोमीन, आयोडीन एवं पोटेशियम परमैग्नेट आदि की सहायता से किया जाता है।

••••• छू छू •••••

5. ध्वनि प्रदूषण

परिचय

वर्तमान समय में तीव्र औद्योगिक विकास, क्रय शक्ति में वृद्धि, आधुनिक सुविधाओं की बढ़ती उपलब्धता एवं तीव्र आधुनिकीकरण के कारण ध्वनि प्रदूषण भी एक गंभीर समस्या के रूप में प्रकट हुआ है। ध्वनि प्रदूषण के फलस्वरूप मानव स्वास्थ्य पर गंभीर विपरीत प्रभाव पड़ता है। वर्तमान समय में ध्वनि प्रदूषण से बचाव पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

ध्वनि कि तीव्रता प्रायः डेसिबल इकाई में मापी जाती है। मनुष्य द्वारा 80 डेसिबल तक की ध्वनि को सहन किया जा सकता है तथा इससे कोई हानि नहीं होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organization) के अनुसार 120 डेसिबल से अधिक तीव्रता की ध्वनि से स्त्रितर्द प्रभाव हो जाता है जबकि 140 डेसिबल की ध्वनि व्यक्ति को पागल बना सकती है।

ध्वनि प्रदूषण के प्रमुख कारण

ध्वनि प्रदूषण के प्रमुख कारण निम्न हैं—

1. दुपहिया, तिपहिया वाहनों कार, बस, ट्रक, रेलगाड़ियों आदि की तीव्र ध्वनि।
2. हवाई जहाज की तीव्र आवाज।
3. प्रदाणों के फटने की ध्वनि, विवाह समारोह इत्यादि में बजने वाले वाद्य यंत्रों का शोर।
4. प्रार्थना, कीर्तन, भजन, आरती, नमाज इत्यादि का शोर।
5. तीव्र आवाज में गाना बजाना, सिनेमा इत्यादि की ध्वनि।

ध्वनि प्रदूषण का स्वास्थ्य पर प्रभाव

ध्वनि की तीव्रता का स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ध्वनि प्रदूषण से निम्न विकार उत्पन्न हो सकते हैं—

1. कर्ण का अत्यधिक क्षति होती है एवं बधिर (Deafness) होने की संभावना बढ़ जाती है।

औद्योगिक इकाइयों का पर्यावरण सामान्य पर्यावरण से पूर्णतः ध्वनि प्रकार का होता है। अनेक प्रकार के रासायनिक द्रव्यों, धूल, धुआं, डीजल, पेट्रोल, कोयला आदि के द्वारा पर्यावरण निरंतर प्रदूषित होता रहता है। डीजल, पेट्रोल एवं कोयला इत्यादि के अत्यधिक

••••• छू छू •••••

6. औद्योगिक प्रदूषण

परिचय

औद्योगिक इकाइयों का पर्यावरण सामान्य पर्यावरण से पूर्णतः ध्वनि प्रकार का होता है। अनेक प्रकार के रासायनिक द्रव्यों, धूल, धुआं, डीजल, पेट्रोल, कोयला आदि के द्वारा पर्यावरण निरंतर प्रदूषित होता रहता है। डीजल, पेट्रोल एवं कोयला इत्यादि के अत्यधिक

संभावना बढ़ जाती है।

प्रयोग से बातावरण में कार्बनमोनोक्साइड एवं कार्बनडाइऑक्साइड नामक गैसों की मात्रा बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप बातावरण में आक्सीजन की कमी होने लगती है।

औद्योगिक पर्यावरण को रक्षा तथा बातावरण से बचाव के उपाय

औद्योगिक पर्यावरण को रक्षा तथा बातावरण से बचाव के उपाय लिए निम्न उपाय करने चाहिए—

1. औद्योगिक संस्थानों की स्थापना नार से पर्याप्त दूरी पर होनी चाहिए।
 2. औद्योगिक संस्थान खुले बातावरण में होने चाहिए जहां पर आबादी नहीं हो।
 3. औद्योगिक प्रखंडों में अलग-अलग कक्ष होने चाहिए, जैसे- कार्यालय, कार्यशाला, आलासीय गृह, कच्चे एवं निर्मित सामान के लिए अलग-अलग कक्ष एवं अपद्रव्य निवारण की समुचित व्यवस्था इत्यादि।
 4. औद्योगिक संस्थानों में ही स्कूल, बाजार, मनोरज्ञन केंद्र, सिनेमा हाल, खेल के मैदान, पार्क, स्वास्थ्य केंद्र आदि की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।
 5. प्रत्येक कक्ष में सभी मूलभूत सुविधाओं की उपलब्धता होनी चाहिए।
 6. सभी कमरों में Cross ventilation, पंखे, एजास्ट पंखे, शुद्ध जलापृष्ठ इत्यादि की व्यवस्था आवश्यक है।
 7. प्रदूषित वायु जल, अपद्रव्य निकास की उचित व्यवस्था अनिवार्यतः होना चाहिए।
 8. सुधोमय, प्रशिक्षित, कार्यशील एवं दक्ष कर्मचारी होने चाहिए।
 9. समस्त क्षेत्र में सड़क, प्रकाश व्यवस्था, शौचालय एवं सीधेरेज आदि के लिए उचित प्रबंधन होना चाहिए।
 10. धुआंनिकलने के लिए कंची-कंची चिमनियां तथा गंदे जल निकास के लिए पक्की एवं बंद नालियों की व्यवस्था अनिवार्य रूप से होनी चाहिए।
-

7. व्यावसायिक प्रदूषण

परिचय

तीव्र औद्योगिकरण के फलस्वरूप अनेक ऐसे व्यवसायों का विकास हुआ है, जिससे पर्यावरण के प्रदूषित होने की सम्भावना अधिक हु, जैसे-

1. पशुपालन
2. पशुवध
3. फल एवं सब्जी व्यवसाय
4. चीनी मिल

5. लकड़ी व्यवसाय

6. इंट भट्ठा व्यवसाय इत्यादि

व्यवसायिक उपकरणों से पर्यावरण प्रदूषण होने से बचाव के उपाय

(i) पशुओं को शुद्ध जल, पौष्टिक आहर, समुचित प्रकाश एवं पर्याप्त शुद्ध वातावरण मिलना चाहिए।

(ii) दुग्ध देने वाले पशुओं की विशेष देखभाल होनी चाहिए एवं समय-समय पर उनका निकितस्कीय परीक्षण होना चाहिए।

(iii) पशुओं से दुग्ध निकालना, उसका भंडारण, एवं तिक्रय स्थल तक पहुँचने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

(iv) सुयोग्य पशु चिकित्सकों कि स्थायी नियुक्ति होनी चाहिए।

(v) रुग्ण पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए।

(vi) पशुओं के मल, पूत्र निस्तारण की निरापद व्यवस्था आवश्यक है।

2. पशुवध व्यवसाय

(i) पशुवध स्थल नार या गांव से पर्याप्त दूरी पर स्थित होना चाहिए।

(ii) वध स्थल की विधित सफाई, अपद्रव्य निवारण व्यवस्था, रक्त आदि की उचित निर्हरण व्यवस्था होनी चाहिए।

(iii) पशु चिकित्सक की देखरेख में स्वस्थ पशुओं का ही मास विक्रय होना चाहिए।

(iv) रुग्ण पशु मास विक्रय पर पूर्ण प्रतिबंध होना चाहिए।

(v) मास विक्रय स्थल पर मार्कियरों से बचाव की पूरी व्यवस्था होना चाहिए।

3. फल विक्रय एवं सब्जी व्यवसाय

(i) यह व्यवसाय स्वास्थ्य विभाग की देखरेख में होना चाहिए क्योंकि सड़े, गले, कटे एवं संक्रमित फल एवं सब्जियों के सेवन से अनेक रोग फैलते हैं।

(ii) फलों, सब्जियों की उकाने बाजार के एक किनारे स्वच्छ स्थल पर होनी चाहिए।

(iii) खराब एवं मड़े हुए फल एवं सब्जियों के निस्तारण की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

4. चीनी मिल व्यवसाय

चीनी मिलों से निकलने वाले कचरे से पर्यावरण प्रदूषण होता है। अतः चीनी मिलों भी रहर की आबादी से दूर होनी चाहिए तथा चिमनियों से पर्याप्त ऊंचाई पर ही धुआं आदि निकलना चाहिए। मिल से निकलने वाले कचरे की समुचित निस्तारण की व्यवस्था अनिवार्य है।

5. लकड़ी व्यवसाय
लकड़ी चीरों की मशीनें एवं कारखाने भी आबादी से पर्याप्त दूरी पर स्थित होने चाहिए तथा अपद्रव्य निकास की वैज्ञानिक व्यवस्था होनी चाहिए।
6. ईट भदडा व्यवसाय
तीव्र शहरीकरण के कारण आवासीय निर्माण में तेजी से इस उद्योग का भी तीव्र विकास हुआ है। यह व्यवसाय भी शहर से दूर होना चाहिए तथा बहां कारबर कर्मचारियों के संबंधित परीक्षण होना चाहिए। प्रयुक्त चिमनियों की ऊचाई अधिक होनी चाहिए जिससे चिमनियों से निकलने वाला धुआं पर्याप्त ऊचाई पर ही वायुमंडल में फिल सके।
- नमस्कार •••

8. भूमि (देश) प्रदूषण

परिचय

आयुर्वेदिय संहिता ग्रन्थों में देश शब्द से दो अर्थ ग्रहण किये जाते हैं— 1. भूमिदेश एवं 2. देह देश। पर्यावरण के संदर्भ में भूमिदेश का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। आयुर्वेद में 3 प्रकार के भूमि (देश) का उल्लेख प्राप्त होता है।

1. जाङ्गल देश
 2. आनुप देश
 3. साधारण देश
- इनमें से जाङ्गल देश वातपित प्रधान, आनुप देश वात कफ प्रधान और साधारण देश समत्रिदोषज होते हैं। अतः निवास करने के दृष्टि से साधारण देश ही सर्वोत्तम होते हैं।

निवास के योग्य भूमि (देश)

निम्न गुणों से युक्त भूमि निवास के योग्य मानी जाती है—

1. स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से स्वच्छ, समतल, कोष्ठ, वनस्पतियों को उत्पन्न करने में सक्षम हो।
2. निवास के लिए बलुई-दोमट मिट्टी सर्वोत्तम होती है।
3. निवास योग्य भूमि हाथी, गो, घोड़े, बीणा, जलाशय युक्त, नागकेश, चमेली, तुलसी एवं कमल आदि अनेक प्रकार की वनस्पतियों से सुंगीधित होनी चाहिए।
4. निवास योग्य भूमि स्वच्छ, सुंदर, मन एवं नेत्रों को प्रसन्नता प्रदान करने वाली होनी चाहिए।
5. उस भूमि में शयन कक्ष, भंडारकक्ष, पाकशाला, शौचालय, स्नानघर आदि अलग-अलग प्रदेशों में विभिन्न प्रकार की व्याधियों को उत्पन्न होती है।

भूमि प्रदूषण के प्रमुख कारण

- भूमि प्रदूषण के अनेक कारण होते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—
1. उद्योग धर्थों की अव्यवस्थित रूप में स्थापना
 2. संवर्धित स्थल पर अत्यधिक कचरा डालना
 3. खुले स्थान पर शौच के लिए जाना
 4. प्लास्टिक, अपद्रव्य, किटटमल के निर्हरण की समर्चित व्यवस्था का अभाव

^{1.} निविधः खतु देशः- जाङ्गलः, आनुपः साधारणक्षेत्रिः। (च.क. 1/8)

6. निवास योग्य स्थान से कुछ ही दूर पर अस्पताल, स्कूल, बाजार एवं अन्य सामग्री आसानी से प्राप्त हो सकें।
7. घर का निकास द्वार दक्षिण अथवा पूर्व दिशा में करने की सुविधा हो।
8. निवास योग्य स्थान वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण एवं जल प्रदूषण से मुक्त होना चाहिए।

निवास के अव्याय भूमि (देश)

निम्न प्रकार की भूमि निवास के अयोग्य मानी जाती है—

1. जहां का वातावरण विभिन्न प्रकार के प्रदूषण से प्रदूषित हो।
2. सभा भवन, चैत्य वृक्ष, राजप्रासाद एवं देवमंदिर के पास।
3. कंटीले वृक्षों से युक्त भूमि।
4. गोल, त्रिकोण, विषम, उक्त टीलेदार भूमि।
5. जहां पर अत्यधिक कल-कारखाने अवस्थित हों।
6. मुर्गी पालन, सूअर पालन, डेयरी के पास, चर्म उद्योग के पास की भूमि।
7. ईट-भट्टा, लकड़ी चीरने के कारबाने, गंदे नाले, सीवर के पास, नदी के तट पर, शमशान के पास की भूमि निवास के अयोग्य होती है।
8. जिस स्थान पर आवश्यक मूलभूत सुविधाओं का अभाव हो, वह भूमि निवास के अयोग्य होती है।

भूमि (देश) के व्याधियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। किसी स्थान की जलवायु मुख्यतः निम्न अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

1. भूमिक देश (देश) की जलवायु एवं तापक्रम पर्यावरण की दृष्टि से भूमि का तापक्रम यथोचित होना चाहिए अत्यथा वहां पर आनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। किसी स्थान की जलवायु मुख्यतः निम्न भावों पर निर्भर करती है—

1. भूमध्य रेखा से दूरी
 2. समुद्र से दूरी
 3. समुद्र तल से ऊचाई
 4. वायु चलने की दिशा
 5. वायु में नम्र्मी की मात्रा
 6. भूमि की प्रकृति
 7. पर्वत एवं अन्य स्थल
 8. वर्षा इत्यादि
- उपरोक्त सभी भाव पर्यावरण पर अत्यंत महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं जिसके फलस्वरूप अलग-अलग प्रदेशों में विभिन्न प्रकार की व्याधियों को उत्पन्न होती है।

5. खुले स्थानों पर पशुवध, पशुओं का चमड़ा उतारना, मांस विक्रय इत्यादि भूमि (देश) पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख लक्षण आचार्य चरक ने भूमि (देश) के प्रदृष्टि होने से उत्पन्न लक्षणों का विस्तृत वर्णन किया है जो निम्न प्रकार हैं—

1. विकृत वर्ण, गंध, रस, स्पर्श युक्त

2. सर्प, हिंसक जीव, टिङ्गी, मक्खियों, चूहों, उल्लू, गृष्ठ एवं सियार इत्यादि

जनुओं से व्याप

3. तुण अथवा विशाल लताओं से युक्त

4. नष्ट हुए अथवा सूखे हुए वृक्ष

5. लगातार शब्द करते पक्षियों का समूह, जहां कुते चिल्हते हों, मूग, पक्षी आदि इधर-उधर दौड़ते हुए रिखायी देते हों

6. जहां धर्म, सत्य, लज्जा, आचार, स्वभाव एवं गुण विकृत हो जाते हैं

7. पशु-पक्षियों से पूर्णतः रहित स्थान

8. जलाशयों में तोक्र लहरें उठती हों, आकाश से उल्कापात होता हो, बिजली गिरती हो, भूकंप आता हो एवं जहां भयंकर शब्दोत्पत्ति होती हो

9. चर्दमा, सूर्य, तारा अपने स्वाभाविक वर्ण से इतर वर्ण वाले हो जाते हैं अथवा मेघ, जल, आदि से घिर जाते हैं

10. अधिकांश पशु-पक्षी, स्नी-पुरुष, जीव-जनु दुःखी प्रतीत होते हैं

भूमि (देश) के पर्यावरण के प्रदृष्टित होने के उपरोक्त लक्षण अत्यन्त वैज्ञानिक हैं। कुछ ही समय पूर्व आयी सुनामी से भी उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि होती है, जब सार में 20-30 फुट उठती ऊंची-ऊंची लहरों ने हजारों लोगों को असमय ही काल कवलित कर दिया था। पर्यावरण में परिवर्तन से पेड़-पौधों एवं जीवों के व्यवहार में भी विचित्र परिवर्तन देखे गये हैं। इन परिवर्तनों पर वैज्ञानिक अनुसंधान प्रारंभ हो गये हैं और वैज्ञानिकों द्वारा इस दिशा में किस्त जान प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है।

भूमि (देश) के प्रदृष्टित होने से उत्पन्न व्याधियाँ

भूमि के प्रदृष्टित होने से अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। भारतवर्ष में बहुत अधिक भौतिक विभिन्नताएँ हैं। एक साथ एक ही समय पर कहीं पर सूखा तो कहीं पर बाढ़ जैसी स्थिति अथवा अन्य प्रकार के जलवायु जन्य परिवर्तन देखने को मिलते हैं। भूमि (देश) के प्रदृष्टित होने से प्रायः निम्नलिखित व्याधियाँ उत्पन्न हो सकती हैं—

1. रस्लीपद (Filaria)

2. कामला (Jaundice/Viral Hepatitis)

3. विषम ज्वर (Malaria) 4. कालाजार (Kalaazar)

5. मलिक्क शोथ (Encephalitis)

6. यकृतजन्य अमीबियोसिस (Amoebic liver Abscess)

7. कास (Cough) 8. श्वास (Asthma)

9. अतिसार (Diarrhoea) 10. प्रवाहिका (Dysentery)

11. अनिमाद्य (Poor Appetite) 12. ग्रहणी दोष (Sprue Syndrome)

13. उदावर्त (Tympanitis/Belching) 14. वातरक (Gout)

15. आमतात (Rheumatoid Arthritis)

16. शित्र (Vitiligo) 17. कुर्ढ (Leprosy)

18. राजव्यक्षमा (Tuberculosis) 19. धनुवर्ति (Tetanus)

20. कोथ (Gangrene)

21. अन्त्रविषमयता (Food Poisoning)

22. वातालिका (Plague)

23. जलसंसारास (Hydrophobia)

24. पुम्फस शोथ (Pneumonitis) 25. विसूचिका (Cholera)

उपरोक्त व्याधियाँ अलग-अलग भूमां में वहां के पर्यावरण के अनुसार उत्पन्न हो सकती हैं जैसे- श्लीपद, मलिक्क शोथ, कालाजार प्रायः पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार में अधिक पाया जाता है। कुछ का सर्वाधिक प्रसार बिहार एवं पश्चिम बंगाल राज्य में देखने को मिलता है।

चिकित्सा सिद्धांत

भूमि (देश) के प्रदृष्टित होने से उत्पन्न व्याधियों की चिकित्सा उन व्याधियों के चिकित्सा सूत्रों के अनुसार ही करनी चाहिए। निम्नलिखित उपायों से इन व्याधियों को उत्पत्ति पर प्रभानी नियंत्रण पाया जा सकता है—

1. नितान परिवर्जन

2. पर्यावरण संरक्षण

3. संतुलित आहार का सेवन

4. समुचित दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या एवं सदृश्वत का मर्यादित पालन

5. रोगनुसार चिकित्सा व्यवस्था करना

- परिचय
- काल पर्यावरण के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। आयुर्वेद के संहिता ग्रंथों में भी काल का उल्लेख मिलता है। आचार्य मुश्तिन ने काल को भागवान् स्वयम्भू कहा है। अर्थात् यह स्वयं उत्पन्न होता है तथा आदि, मध्य एवं अंत रहित होता है।
9. काल प्रदृष्टण

1. देश-प्रकृतिविकृतवर्णणग्रहस्तस्यां कलेद बहुलमुपसं समीम् शब्दबहुलं चाहित विद्यत्॥ (च.त्रि. 3/6/3)

1. कालो हि नाम भगवान् स्वयम्भूर्नामिदमध्यनिधनः। (मु.सू. 6/3)

काल के द्वारा भी पर्यावरण का प्रदूषण होता है जिसके फलस्वरूप अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।

काल के द्वारा पर्यावरण प्रदूषण एवं उत्पन्न लक्षण काल के पर्यावरण संबंधी प्रदूषण से निम्न प्रकार के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं—

1. **ऋतुओं का अतियोग** शिशिर ऋतु में अत्यन्त शीत, ग्रीष्म ऋतु में अत्यन्त भयंकर गर्मी, वर्षा ऋतु में अत्यधिक वर्षा होना ऋतुओं का अतियोग है।

2. **ऋतुओं का मिथ्या योग**

शिशिर ऋतु में अत्यन्त शीत, ग्रीष्म ऋतु में मामूली गर्मी, इसी प्रकार वर्षा ऋतु में वर्षा नहीं होना अथवा अत्यन्त वर्षा होना ऋतुओं के हीन योग का लक्षण है।

सन् 2004 में सऊदी अरब के रेपिस्टानों में अनेक वर्षा बाद भारी वर्षा हुई थी जो कि पर्यावरण में परिवर्तन का संकेत देती है जबकि वहां पर वर्षा अत्यत्य अश्वम् अत्यत्य अश्वम् होती है। देश के कई हिस्सों में भी असामान्य ऋतु जन्य परिवर्तन हो रहे हैं जो पर्यावरण में बदलाव का द्योतक हैं।

काल के जो भी नियत गुण हैं उनमें परिवर्तन होने के कारण अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो रही हैं।

काल प्रदूषण से उत्पन्न प्रमुख व्याधियाँ

काल अर्थात् विभिन्न ऋतुओं में उत्पन्न होने वाली व्याधियाँ कई मार्गों से शरीर में अंतः प्रवेश द्वारा अथवा स्वाभाविक रूप से काल विशेष जनित बल हानि उत्पन्न होने से व्याधिक्षमित्व में आयी कहीं के परिणामस्वरूप अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।

शरीर में वाह्य कारणों द्वारा व्याधि उत्पन्न होने के प्रमुख रोग मार्ग एवं व्याधियाँ निम्नलिखित हैं—

1. त्वच मार्ग से संक्रमण

कुछ संक्रमण सीधे त्वचा के द्वारा प्रविष्ट होकर रक्त में मिलकर व्याधि की उत्पत्ति करते हैं जैसे-ऐथ्रेक्स (Athrexarax), घनवर्त (Tetanus), जलसन्त्रास (Hydrophobia or Rabies), त्वक् में बाण होने या घाव से फिरंग (Syphilis) एवं पूयमेह (Gonorrhoea) आदि। कई प्रकार के कीटों द्वारा काटने से भी त्वच मार्गात व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं यथा-मलेरिया, पीतज्वर, डेन्गू (Dengue), श्लीपद (Filaria) एवं बालातिका (Plague) इत्यादि।

2. श्लेष्म मार्ग से संक्रमण

हमारे चारों ओर के वातावरण में अनेक प्रकार के हानिकारक जीवाणु हमेशा

उपरिथित रहते हैं। शरीर की व्याधिक्षमता (Immunity power) जब कम हो जाती है तो यह जीवाणु व्याधि उत्पन्न करते में समर्थ हो जाते हैं। इनके प्रमुख उदाहरण निम्न हैं— रोहिणी (Diphtheria), कुकुरकास (Whooping cough), खसरा (Measles), इन्स्पूर्ना, प्रतिश्वाय (Rhinitis) एवं राजयक्षमा (Tuberculosis) इत्यादि।

3. मुख मार्ग से उत्पन्न होने वाले संक्रमण

मुख मार्ग से संक्रमण होने के परिमाण स्वरूप महास्रोतस (Gastrointestinal Tract) में अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं जैसे- विस्त्रिका (Cholera), अतिसार (Diarrhoea), अंग्रिक ज्वर (Typhoid), कूपि विकार (Worm Infestation) एवं संग्रहणी (Sprue/Malabsorption Syndrome) इत्यादि।

4. सहवास से उत्पन्न होने वाले संक्रमण

सहवास के परस्पर सहवास से मैथुन जन्य रोग उत्पन्न होते हैं जैसे- गोग्रस्त स्त्री अथवा पुरुष के परस्पर सहवास से मैथुन जन्य रोग उत्पन्न होते हैं जैसे- फिरंग, उपरंश एवं एडीएस (AIDS) इत्यादि।

प्रक्रियास्त्रिद्वारा

1. निदान परिवर्जन
2. पर्यावरण शोधन
3. स्वच्छ वातावरण में निवास
4. संतुलित एवं पौष्टिक आहार
5. पथ्यपद्धति का समुचित पालन
6. गोग्रानुसार चिकित्सा व्यवस्था

10. शब्द विनाश एवं पर्यावरण

परिचय

जीवन का अंतिम सत्य मृत्यु है। मृत्यु कई प्रकार से होती है, जैसे स्वाभाविक अथवा काल मृत्यु व्याधिक्षमता मृत्यु दुर्घटना, विषप्रयोग, आत्महत्या एवं युद्ध इत्यादि में मृत्यु। मृत्यु के पश्चात शब्द के समुचित विनाश हेतु निर्धारित विधियों का प्रयोग नहीं करने से पर्यावरण प्रदूषित होता रहता है।

शब्द विनाश की प्रमुख विधियाँ

शब्द विनाश हेतु मुख्य प्रचलित विधियाँ निम्न प्रकार हैं—

1. विद्युत दाह
 2. अग्नि दाह
 3. भूमि (कब्ज) में टफनाना
 4. जल में प्रवाहित करना (जल समाधि)
- उपरोक्त विधियों में विद्युत दाह विधि सर्वोत्तम एवं अत्यधिनिक है। परंतु यह सुविधा देश के कुछ बड़े शहरों तक ही सीमित है एवं भारत में अनेक प्रकार के धार्मिक रीति विवाजों के कारण यह विधि लोकप्रिय भी नहीं है।

शब्द विनाशन की अन्य विधियों में से अग्निदाह से बायु का सर्वाधिक प्रदूषण होता है एवं अधजले शब्द के जल प्रवाह से जल प्रदूषण भी होता है। भूमि में दफन करने की शब्द विनाश विधि पर्यावरण की दृष्टि से उचित है परंतु इसके लिए पर्यात भूमि की आवश्यकता होती है। शब्द के जल में प्रवाहित करने से जल एवं बायु दोनों प्रदूषित होते हैं। अतः पर्यावरण की दृष्टि से विद्युत शब्दाव विधि को प्रचलित एवं लोकप्रिय बनाया जाना चाहिए।

संक्रामक रोगों से मृत व्यक्तियों के शवों के निवारण में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए एवं शब्द विनाशन से पूर्व जीवाणुनशक द्रव्यों से शब्द को विसंक्रमित कर लेना चाहिए। दुर्घटना एवं विष इत्यादि से मृत व्यक्तियों के शब्द विनाशन से पूर्व पोस्टमार्टम आदि कानूनी औपचारिकताओं को पूर्ण करना आवश्यक होता है। तत्पश्चात उचित प्रकार से शब्द विनाशन करना चाहिए।

•••॥५५॥•••

11. युद्ध जनित पर्यावरण प्रदूषण

युद्ध क्षेत्र में प्राचीन काल में अनेक प्रकार के विशेष क्रियाएँ की प्रयोग कर शान्त सेना को परास्त करने का प्रयास किया जाता था, जिससे पर्यावरण प्रदूषित होता था। वर्तमान काल में भी विश्व के अनेक क्षेत्रों में युद्ध चलता रहता है जिसके फलस्वरूप अनेक प्रकार के अस्त्र-शास्त्रों, रसायनिक पदार्थों के प्रयोग से जल, बायु एवं अन्न इत्यादि प्रदूषित हो जाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप उस स्थान के प्राणी विभिन्न रोगों से प्रस्त हो जाते हैं। विवैती ऐसों के प्रयोग से शुआं पैदा कर बायु को विशक बनाकर सामूहिक नरसंहर किया जाता है। हिरोशिमा और नागासाकी में परमाणु बमों के प्रयोग से बड़ी संख्या में नरसंहर के साथ ही प्रभावित क्षेत्रों में ऐसी विषमयता का वातावरण बन गया कि आने वाले बहुत लंबे समय तक अनेक लोग न्यौप्रकार की असाध्य व्याधियों से पीड़ित हुए। खाड़ी युद्ध के समय समुद्र में कच्चे तैल के प्रवाह के कारण समुद्री जीवन पर विनाशकारी प्रभाव हुआ है। इससे अनेक प्रकार की दुर्लभ प्रजातियों के समुद्री पक्षी, कछुए, मछलियां एवं समुद्र की प्राकृतिक खाद्य शूखला का अत्यधिक विनाश हुआ है। युद्धों में किये गये विवाहक प्रयोग महामारी के रूप में अत्यन्त ही धातक एवं विनाशकारी होते हैं जिनके परिणाम स्वरूप विभिन्न प्राणधातक रोग उत्पन्न होते हैं जो सामूहिक नरसंहर का कारण बनते हैं। मानवता की रक्षा, पर्यावरण एवं जीव और जीवन के अस्तित्व के लिए इस प्रकार के युद्धों को रोकना हम सभी का प्राथमिक उत्तराधिकार है। इस प्रकार से उत्पन्न रोगों की चिकित्सा रोगानुसार ही करनी चाहिए।

•••॥५६॥•••

12. पर्यावरण परिवर्तन जन्य प्रमुख व्याधियां (DISORDERS OF THE CLIMATIC CHANGES)

1. आतप दग्ध, लू लगना

(Sun Burn, Sun Stroke)

निदान

जब कोई व्यक्ति अधिक समय तक सूर्य प्रकाश में रहता है, जैसे-खुले स्थल पर व्याकुल अथवा खेतों में कृषि कार्य करने वाले इत्यादि कारणों से सूर्य की तीव्र किरणों के आघात से मनुष्य को आतप दग्ध हो जाता है। इसे लू लगना (Sun Stroke) भी कहते हैं।

प्रमुख लक्षण

आतप दग्ध के रोगी में निम्न-लक्षण प्रमुखता से पाए जाते हैं—

1. शरीर के अधिकांश खुले भाग जैसे ललाट, चेहरा, गला, वक्ष का ऊपरी भाग एवं हाथों पर गुलाबी वर्ण की पिङ्किकाएं उत्पन्न होना (Pinkish Rashes over exposed body parts)
2. आक्रांत प्रदेश में तीव्र कण्ठ (Itching)
3. लत्चा पर फफोले (Blisters/Erythema) एवं बाद में पपड़ी (Scales) की उत्पत्ति
4. बेचैनी, घबराहट, शिःशूल (Restlessness, Nervousness, Headache)
5. अत्यधिक देर तक धूप लगने से रोगी में शोथ (Oedema) की उत्पत्ति
6. स्वेद के साथ तीव्र ज्वर (Sweating with hyperpyrexia)

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
2. धूप में जाने से बचाव
3. प्रभावित भाग को स्वच्छ एवं शोतूल जल से बार-बार धोना
4. चेहरे पर प्रकाश अवरोधक क्रीम लगाकर ही धूप में निकलना
5. लत्चा पर फफोले हो तो वेधन करके उसे त्रिफला क्वाथ अथवा चमेली स्वास से सिंचन करना चाहिए।

•••॥५७॥•••

13. सौर गजचर्म (Solar Keratosis)

निदान

वस्तुतः सौर गजचर्म एक त्वक् गत रोग है जो प्रायः उन लोगों में होता है जो अत्यधिक कंचाई जैसे- पहाड़ी पर कार्य करते हैं जिसके लिए उन्हें अधिक प्राणवायु (Oxygen) की आवश्यकता होती है परंतु वहां पर आक्सीजन की कमी होती है।

प्रमुख लक्षण

- त्वचा पर धब्बे
- धब्बे विशेषकर ललाट, ग्रीवा एवं हाथों के ऊपरी तल पर होते हैं
- पश्चात तत् त्वचा पर हस्तिचर्म अथवा मछली के शल्कों (Scales) की तरह विकृति उत्पन्न होती है जो बाद में त्वकगत अर्बुद (Carcinoma of skin) में परिणत हो सकती है
- कभी-कभी शल्क हट जाने पर एक गंभीर श्वेत कुछ (Solar Keratosis) जैसी त्वक् विकृति हो जाती है

चिकित्सा सिद्धांत

- निदान परिवर्जन
- संतुलित आहार विवाह
- धूप में निकलने से पूर्व संदेह त्वचा को वस्त्र से ढककर ही निकलना चाहिए।
- प्रभावित त्वचा पर जात्यादि घृत अथवा शतधूत घृत का लेप करना चाहिए।
- ब्रण बन जाने पर त्रिफला क्वाथ अथवा दशमूल क्वाथ से प्रशालन करके दशांग घृत का आलेप करना चाहिए।

- लेखे कुछ •••
- हाथ पैर की अंगुलियों में अत्यन्त तीव्र वेदना (Severe and intense pain in fingers of hands and feet)
 - अंगुलियों का सुन हो जाना (Loss of sensation of fingers)
 - त्वचा पर फफोले उत्पन्न होना (Blistering)
 - ऊतकों का नष्ट होना
 - अंत में कोथ की उत्पत्ति (Origin of Gangrene)
- चिकित्सा सिद्धांत
- तत्काल एवं अति शीघ्रता पूर्वक चिकित्सा करनी चाहिए।
 - अति शीघ्र रोगी के शरीर को उष्ण करना चाहिए।
 - रोगी को उष्ण पेय पदार्थों जैसे- चाय, काफी पिलाना चाहिए।
 - शीत प्रभावित अंगों को 40°C उष्ण जल में डालकर उष्णता प्रदान करनी चाहिए।
 - पुनः शीतता होने से बचाव करना चाहिए।
- लेखे कुछ •••

15. आकस्मिक शीतता (Hypothermia)

निदान

- शरीर ताप क्रम 35°C से नीचे पहुंच जाना आकस्मिक शीतता (Hypothermia) कहलाती है।
 - पुख्ता: बयस्त व्यक्तियों एवं अकेले रहने वाले व्यक्तियों में यह अवस्था उत्पन्न होती है।
 - कुछ व्याधियों के द्वारा भी शीतता उत्पन्न होती है, जैसे- एडिसन की व्याधि (Addison's disease), मर्क्षिक्षाधात, यकृतथात, शरीर में रक्त शर्करा की मात्रा सामान्य से कम होना इत्यादि अवस्थाएँ।
 - अत्यधिक सुरा (Alcohol) का सेवन करने से।
 - शीतल जल के तालाब या समुद्र में गोता लगाने से।
 - बृद्ध और रोगी व्यक्ति द्वारा सर्दियों की रात में ठीक से वस्त्र न पहनना।
- लेखे कुछ •••

14. शीतताजनित विकार (Frost Bite or Cold Injury)

निदान

सामान्यतः जब तापक्रम 0°C से नीचे चला जाता है तब वहां पर कार्यरत व्यक्तियों के हाथ-पैर की अंगुलियाँ, नासा, चेहरा आदि अवयव अत्यन्त शीत के कारण जम जाते हैं।

प्रमुख लक्षण

1. गुदा का ताप कम 35°C से कम हो जाता है (Rectal temperature goes below 35°C)
2. शक्तावट (Fatigue)
3. शीतलता का अनुभव (Feeling of cold)
4. मांसपेशियों में कड़ागन (Stiffness in muscles)
5. शरीर का पीला पड़ जाना (Pallor)
6. हृदय गति एवं नाड़ी गति में कमी (Fall in heart rate and pulse rate)
7. 26°C से कम ताप होने पर रोगी अचेत हो जाता है तथा सर्वाङ्ग शोथ उत्पन्न हो जाता है।
8. नेत्रगत प्रतिक्रिया समाप्त हो जाती है (Loss of pupillary Reflexes)

चिकित्सा सिद्धांत

1. रोगी को गर्म कमरे में कम्बल से लपेट कर रखना चाहिए।
 2. प्रतिघटे कम से कम 0.5°C से 1.0°C तक शरीर तापक्रम बढ़ाने की चेष्टा करनी चाहिए।
 3. हृदय गति को नियंत्रित करना चाहिए।
 4. रक्तदाब एवं नाड़ी गति को बार-बार जांच करनी चाहिए।
 5. गर्म प्राणवातु (Warm Oxygen) एवं अंतः सूचिका जल (Intravenous fluid) भरण करना चाहिए।
- ॥५॥•••

16. आतपजन्य श्रम**निदान**

1. तीव्र ग्रन्ति में अथवा अत्यंत उष्ण वातावरण में असामान्य परिश्रम करने से
2. स्वेदन के पश्चात पर्याप्त मात्रा में जल अथवा जलीय पदार्थों का सेवन नहीं करना
3. अत्यधिक स्वेदन होने के फलस्वरूप शरीर में लवण (Sodium Chloride) की कमी हो जाती है जिससे थकान तथा मांसपेशियों में दीर्घल्य उत्पन्न हो जाता है।
4. वैषिक पदार्थों का अल्प मात्रा में सेवन

प्रमुख लक्षण

1. शिरःशूल (Headache)
2. घबराहट (Nervousness)
3. अरति (बेचैनी) (Restlessness)
4. वमन की इच्छा, उत्सर्जना (Nausea)
5. मांस पेशियों में रेंटन (Cramps in muscles)

17. क्रोटिमांडलीय स्वेदावरोधजन्य दीर्घल्य**(Tropical Anhidrotic Asthenia)****निदान**

1. अत्यधिक उष्णता
2. शरीर में समुचित पोषण का अभाव
3. पर्याप्त मात्रा में जल ग्रहण नहीं करना
4. विशेषकर यह व्याधि पूरे ग्रीष्म काल में होती है

प्रमुख लक्षण

1. स्वेदावरोध (Loss of sweating)
2. शिरःशूल (Headache)
3. दीर्घल्य (Weakness)

4. मूत्र की अधिकता (Polyuria)
 5. ज्वर (Fever)
 6. घबराहट एवं बेचैनी (Nervousness, Restlessness)
 7. सर्व शरीर में बेदना (Bodyache)
- चिकित्सा मिन्ड्रांत**
- निदान परिवर्जन
 - रोगी को शोतूल वातावरण में रखें
 - लाक्षणिक चिकित्सा के साथ शीतोपचार
 - रोगी को दीर्घ काल तक समुचित चिकित्सा करनी चाहिए
 - पौष्टिक आहार द्रव्यों का प्रयोग
- आदर्श व्यवस्था पत्र**
- प्रात : साथ
संजीवनी बटी : 500 मि.ग्र.
गोदत्ती भ्रम : 250 मि.ग्र.
पितान्तक योग जल से : 250 मि.ग्र.
 - भोजनोत्तर : 20 मि.ली.
समझा सब : 1 × 2 मात्रा
 - शर्वत वनस्पा : 50 मि.ली.
समझा जल से : 1 × 2 मात्रा
 - पथ्यपथ्य का पालन : लैंग ५०००

18. अंशुयात

(Heat Hyper Pyrexia or Heat Stroke)

परिचय

अंशुयात अत्यन्त घातक व्याधि है। यदि समुचित रूप से व्यवस्थित चिकित्सा नहीं की जाये तो व्यक्ति की मृत्यु भी हो सकती है। अस्वाभाविक रूप से जो लोग उच्च तापमान लाते वातावरण में लंबी अवधि तक रहते हैं उन्हें अंशुयात रोग होने की सम्भावना अधिक रहती है।

- निदान**
 अंशुयात व्याधि के प्रमुख निदान निम्न हैं—
- दुर्बल व्यक्तियों को तीव्र धूप लाने से
 - अत्यन्त उष्ण प्रदेश या स्थिर वायु में रहने से
 - उष्णता युक्त कार्यों को देर तक करना
 - ग्रीष्म ऋतु की तीव्र धूप में देर तक रहना
 - बस्त्र, जूता इत्यादि का सम्यक रूप से धारण नहीं करना
 - वायु रहित उष्ण गृह में निवास करना
 - अत्यं वस्त्र धारण करके अधिक उष्ण कार्य करना
- सम्प्राप्ति^१**
 अत्यन्त तीव्र ताप से शरीर के कोषणाओं (cells) का विश्लेषण हो जाने पर एक प्रकार का विष उत्पन्न होता है जो रक्त में मिलकर उसे विषाक बना देता है एवं अंशुयात रोग उत्पन्न होता है अथवा सूर्य की तीक्ष्ण किरणें सुषुना केंद्र स्थित तापकेंद्र को अत्यन्त कृपित कर देती हैं जिससे अंशुयात रोग उत्पन्न हो जाता है।
- सम्प्राप्ति चक्र**
- अत्यन्त तीव्रताप या सूर्य प्रकाश
- ↓
- खुले शरीर अधिक समय तक प्रचण्ड उष्णता में रहना
- ↓
- शरीर कोषणाओं का विषटन एवं विष (Toxins) की उत्पत्ति
- विष का रक्त में सम्मिलित होना
- ↓
- सुषुना स्थित तापकेंद्र का उत्तेजित होना
- ↓
- अंशुयात रोग

- 1.** भूमायुग्रतपहेतु: सदा स्थानदशुधातः खस्तु दर्ढलादिषु।
 उष्णप्रदेशो त्वेव भूमैर्दत्त्वाः स्थैर्यत एवं वायोः ॥
 उष्णानि कार्याण्यनिश्च प्रकृत्वत्स्वेतत्र भावान्तु ज्ञेषु दृत्यम् ।
 ग्रीष्मप्रचण्डशुनिषेविषूष्टानदातत्त्वादिमात्रात्तेषु ॥
 निर्वातकारात्यवासित्येषु प्राणान्तो योदश्यजनेष्ववश्यम् ॥
 मन्यथेऽपाणि वपुर्वमदौ घोरो गदः सौदृढश्चां मतेन ॥ (मा.नि. परिशिष्ट अंशुयात निदान 1-5)
- 2.** भवेच्छीराणुक कोशादित्येषाम् विषेषदत्तीक्रेतापात् ।
 ततः स्पृत्य विष प्रकृत्यदृक् विषाकं मिलितं च तेन ॥
 किंवा प्रचण्डः किंवा: खांशेनैन् सूष्णमास्थिताप केन्द्रम् ।
 संकोपयेषुर्वत एव काले स्थानंरुधातेस्य गदस्य जम् ॥ (मा.नि. परिशिष्ट अंशुयात निदान 4-5)

भेदः

अंशुधात के तीन भेद बताये गये हैं—

1. शीता अंशुधात
2. साधरणी अंशुधात
3. तीव्रा अंशुधात

शीता प्रकार के अंशुधात के लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. त्वचा में किरणता एवं शीतलता (Cold skin)
2. थकावट (Fatigue)
3. मूँछन्न (Fainting)
4. दौर्बल्य (Weakness)
5. नाड़ी गति में तीव्रता (Fast Pulse Rate)

‘साधरणी’ अंशुधात के लक्षण³

1. शिरःशूल (Headache)
2. त्वचा में शुष्कता एवं उम्फता (Dry and Hot skin)
3. नाड़ी गति में तीव्रता, शीतलता एवं दुर्बलता (Fast and weak Pulse)
4. हृद दौर्बल्य (Impaired cardiac functions)
5. श्वास कठिन्य (Diminished Respiration)
6. मूँछन्न (Syncope)
7. थकावट (Fatigue)
3. ‘तीव्रा’ अंशुधात के लक्षण⁴

तीव्रा अंशुधात के लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. तीव्र ज्वर (High Grade Fever)
2. श्वास कष्ट (Breathlessness)
3. प्रलाप (Delirium)

1. अस्यांशुधातस्य गदस्य वैद्योस्सिस्तस्वस्था: परिकोटिता वै।

शीतलीभावज्ञा च तीव्रे द्वितीया साधरणी चाहताता हि तीव्रा ॥ (मा.नि. परिशेष अंशुधात निदान 6)

2. विस्फूलवशीतस्यमित्वा त्वा। मूँछन्न प्रप्त: स्थातथ दुर्बलत्वम्।

तीव्रत्वमुक्तं ननु नाड़ीकाकायासत्रादिमया हि रुजो दर्शयाम् ॥ (मा.नि. परिशेष अंशुधात निदान 7)

तथा द्वितीया हि दृश्यां गतस्यांशुधातिनो मूँछन्न भवेद्वि शूलम्।

पीड़ाजपि शुखलत्वमेणांता च त्वचो धमन्याश्वातत्वमुक्तम्॥

शोणन्तमेव वहु दुर्बलत्वं हृद्यवासयारप्यतिनिश्चयेन ॥

मूँछन्नाद्विचक्षित्वात् भवेद्युक्तं प्रायेण पूर्वोक्तदशसमानिः (मा.नि. परिशेष अंशुधात निदान 9-10)

एवं दशामाप्तुवतोऽनिमा च ज्वरस्तु तीव्रः श्वसं प्रलापः।

प्रवेद गदार्तस्य च वर्णनीलतां सम्यासरोगो मरणं तथाऽन्ते ॥

4. शरीर का वर्ण नीला होना (Cyanosis)

5. सन्धास (Deep Coma)

6. मृत्यु

साध्यासाध्यता

अंशुधात प्रारम्भिक अवस्था में समुचित चिकित्सा करने से ठीक हो जाता है परंतु

लापरवाही अथवा तत्काल चिकित्सा व्यवस्था नहीं करने से यह असाध्य हो जाता है।

असाध्य अंशुधात के लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. दोनों हाथ एवं पैरों का नील वर्ण हो जाना (Cyanosis of both upper and lower extremities)
2. नाड़ी गति बीच-बीच में रुक जाना (Interrupted Pulse Rate)
3. आंगों में विक्षेप होना (Convulsions)

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्कन
2. तापक्रम नियंत्रित करने का प्रयास-शीतल उपचार
3. प्राणवायु (Oxygen) की व्यवस्था
4. सहस्रधारा नान (Shower Bath)
5. लाक्षणिक चिकित्सा

आदर्श चिकित्सा पद्धति

1. शीतल जल के भ्रे टब में रोगी को तब तक बैठाये रखना चाहिए जब तक रोगी का तापक्रम सामान्य न हो जाये।
2. रोगी को चूषणार्थ बर्फ के ड्रेकडे देना चाहिए।
3. प्रातः : रात्रि

अमृतधारा : 05 मि.लि.

जूलाब जल : $\frac{20}{20}$ मि.लि.समधारा सौंफ के अर्क से : 1×3 मात्रा

4. धौनेत्रर

पित्तान्तक योगा : 250 मि.ग्रा.

चन्दनादि चूर्ण : 1 ग्राम

उशीरादि चूर्ण : $\frac{2}{2}$ ग्राम20 मि.लि. आम्र के पानक से : 1×2 मात्रा

1. काढ्येऽविभित्तिये च नीलिमा तथा धमन्या: क्षणतुदत्ता च।

विशेषणे चावयवस्थ रोगिणोऽशुष्टातिनो मृत्युकृते भवन्ति॥

(मा.नि. परिशेष अंशुधात निदान 11)

(मा.नि. परिशेष अंशुधात निदान 12)

5. त्रिफला कवाथ : 20 मि.लि.
समझग जल से : 1 x 2 मात्रा
6. समुचित पथ्य सेवन

पथ्यापथ्य

बलकारक, बुंदण, स्नाध, सुखविरेचक, गिया आहार एवं विहार, रुक्ष, तीक्ष्ण, पौष्टक आहार, दुध, दलिला, कृशरा, विवंध कारक, तला, भुज, बासी, गुण, मसूर, मुनक्का, खजूर, अंगूर एवं फालसा इत्यादि। शीत स्थान, शीतल जल एवं शीतल वातावरण में निवास।

Latest Developments Heat Stroke

Definition

Heat stroke is a syndrome due to over heating of the body. It occurs when the core or rectal temperature of body rises through 41°C . It is associated with cessation of sweating and leads to tissue injury.

Aetiological Factors

- High environmental temperature and humidity.
- Environmental temperature more than 35°C , humidity more than 75% causing heat stroke.
- Endogenous causes include deficient sweating, obesity, debility and alcoholism.
- Exogenous causes include-Inappropriate clothings, dehydration, febrile illness and exertion etc.

Pathogenesis

In heat stroke blood is directed to periphery, depriving organs of oxygen and causing brain and liver damage, rhabdomyolysis, disseminated intravascular coagulation. Above 42°C hypothalamic control of temperature is lost.

Signs and Symptoms

- Diminished perspiration.
- Loss of consciousness is rapid and produces cerebral irritation.
- Dry and burning skin.
- When the temperature reaches upto 41°C to 42°C the patient loses consciousness and dies.

5. Hyperpyrexia may be complicated by acute circulatory failure, hypokalaemia, acute renal or hepatic failure and haemorrhages.

Management : Principles

- Patient should be moved to shade, clothes removed, skin kept wet and fanned vigorously.
- Cooling should be stopped when rectal temperature comes to 39°C .
- The airways must be maintained and oxygen should be given.
- Symptomatic treatment.

••• नो झूला •••

19. यात्रा जनन्ति विकार

(TRAVEL SICKNESS)

पर्वतीय यात्रा विकार

(Acute Mountain Sickness)

परिचय

इस प्रकार के विकार प्रायः उन व्यक्तियों द्वारा अनुभव किये जा सकते हैं जो शीघ्रता पूर्वक अधिक कंचाई की यात्रा करते हैं। कुछ व्यक्तियों को 2500 मीटर की कंचाई पर ही विकार उत्पन्न हो सकते हैं जबकि कुछ व्यक्तियों को 5500 मीटर की कंचाई पर भी कोई विकार उत्पन्न नहीं होता है। अतः यह अलग-अलग व्यक्तियों की क्षमताओं पर निर्भर करता है।

प्रमुख लक्षण

- शिरःशूल (Headache)
- श्वास में कमी (Loss of Appetite)
- वर्मन की इच्छा अथवा वर्मन हो जाना (Nausea/Vomiting)
- थकावट (Fatigue)
- मासेपेशियों में दुर्बलता (Muscular weakness)
- श्वास कुच्छूत (Breathlessness)
- आलस्य (Drowsiness)
- आनिद्रा (Insomnia)
- नाड़ीगति में तीव्रता (Rapid Pulse rate)

१) दृष्टिगत रक्त साव (Retinal Haemorrhage)

उपद्रव

उपरोक्त वर्णित लक्षणों के अंत में मुख्यतः दो प्रकार हैं— उपद्रव उत्पन्न होते हैं—

1. **फुफ्फुस शोथ (Pulmonary Oedema)**
2. **मस्तिष्क शोथ (Cerebral Oedema)**

प्रय: अत्यन्त साहसी एवं युवा व्याकुल अति आत्म विश्वास के कारण शीघ्रता से पर्वतरोहण करते हैं जिसके फलस्वरूप यह उपद्रव उत्पन्न होता है। मस्तिष्क शोथ उत्पन्न होने से रोगी में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं—

- (i) आलस्य (Drowsiness) (ii) चिड़चिड़ापन (Irritability)
- (iii) भ्रम (Confusion/Vertigo) (iv) पूर्ख (Fainting)
- (v) सन्यास (Deep Coma)
- (vi) त्रिस्त्राम घासास्ता (Venous Thrombosis)
1. धीरे-धीरे पर्वतरोहण करना चाहिए
2. शयन करने के लिए जहां पर पड़ौच गये हैं वहां से कुछ नीचे उतरकर शयन करना चाहिए
3. पर्याप्त जल का सेवन करना चाहिए
4. सुरा (Alcohol) का पूर्णतः निषेध
5. हृदय एवं श्वसन संस्थानात व्याधियों में पर्वतरोहण नहीं करना चाहिए
6. आक्सीजन चिकित्सा (Oxygen Therapy)
7. नियमित व्यायाम

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. पर्याप्त मात्रा में जल एवं प्राण वायु (Oxygen)
2. प्रातः : साथं
संजीवनी बटी : 50 मिंट.
श्वेत पर्फर्टी : 250 मि.ग्रा.
- पुनर्नवादि चूर्ण : 1 ग्राम
शहद से 1 × 2 मात्रा
- भोजनोत्तर पुनर्नवादि चूर्ण : 2 ग्राम
श्वेत पर्फर्टी : 250 मि.ग्रा.
शहद से 1 × 2 मात्रा
- पुनर्नवादि समझाग जल से 1 × 2 मात्रा
- प्रातः : 20 मि.ति.
गोक्षुरादि कवाय : 20 मि.ति.
समझाग जल से 1 × 2 मात्रा
- पश्चापचय का पालन

20. जीर्ण पर्वतरोहण विकार
(Chronic Mountain Sickness)

निदान
यह विकार पर्याप्त वायु संचार की कमी के कारण होता है, अर्थात् अल्प वायु संचार युक्त धरों में रहने से या आक्सीजन की कमी के कारण पर्वतरोहण करने अथवा नीचे उतरने वाले व्यक्तियों में यह विकार उत्पन्न होता है।

प्रमुख लक्षण

जीर्ण पर्वतरोहण के परिणाम स्वरूप निम्न विकार उत्पन्न होते हैं—

1. शरीर में श्यावर्णता (cyanosis)
2. हृदयावात (Cardiac failure)
3. फुफ्फुसीय दाढ़ में वृद्धि (Pulmonary Hypertension)
4. नाड़ी एवं अन्य मानस विकृतियों के लक्षण (Neuropsychiatric Symptoms)

चिकित्सा सिद्धांत
जीर्ण पर्वतरोहण से उत्पन्न विकारों की चिकित्सा के लिए सर्वप्रथम रोगी को समुद्र तल के समान नीचे के स्थान पर लाकर लक्षणों के अनुसार समुचित चिकित्सा करनी चाहिए।

आदर्श चिकित्सा पत्र

- | | |
|-------------------------------|-----------------------|
| 1. अग्नितुण्डी बटी | प्रातः : साथं |
| रसराज रस | : 125 मि.ग्रा. |
| संजीवनी बटी | : <u>500 मि.ग्रा.</u> |
| शहद से | 1 × 2 मात्रा |
| 2. भोजनोत्तर पुनर्नवादि चूर्ण | : 2 ग्राम |
| श्वेत पर्फर्टी | : <u>250 मि.ग्रा.</u> |
| शहद से | 1 × 2 मात्रा |
| 3. पुनर्नवादि समझाग जल से | : <u>20 मि.ति.</u> |
| 4. समझाग जल से | 1 × 2 मात्रा |

4. विषमिश्रित अन्न को देखकर जीवजीवक पक्षी तुरंत मर जाता है।
5. विषाक्त अन्न सेवन से कोयला का स्वर विकृत हो जाता है।
6. विषाक्त अन्न से क्रौंचव पक्षी को मर चढ़ जाता है।
7. विषमिश्रित अन्न से मर्यू अस्तंत चंचल हो जाता है।
8. विषमिश्रित अन्न से तोता एवं मैना कंदन करने लगते हैं।
9. हंस नामक पक्षी जोर-जोर से शब्द करने व चिल्लाने लगता है।
- पृष्ठ नामक प्राणी (हरिण का भेद) के नेत्रों से अश्रुकाव होने लगता है।
11. भूगरज नामक जीव कूजन करने लगता है।
12. विषाक्त अन्न को देखकर एवं सूखकर बंदर तुरंत मलत्या कर देता है।

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में विषाक्त अन्न परीक्षण को दैनिक जीवन एवं संस्कारों में साम्मालित किया गया था तथा पशु पक्षी पालन से अनेक लाभ होते थे।

प्रमुख संदर्भ ग्रन्थ

1. चरक संहिता चिकित्सा स्थान - अध्याय 23
2. सुशूत संहिता कल्प स्थान - अध्याय 01
3. अष्टंग हृदय सूत्र स्थान - अध्याय 07
4. अष्टंग संग्रह सूत्र स्थान - अध्याय 08
5. भाव प्रकाश मध्यम खण्ड - अध्याय 67

विषाक्तता के प्रकार, लक्षण एवं उनकी चिकित्सा

1. विषमिश्रित आहार के वाष्पजन्य विकार : लक्षण एवं चिकित्सा विषमिश्रित आहार दव्य जब खाने के लिए पान में रखा जाता है तो उसके वाष्पने से निम्नलिखित विकार उत्पन्न होते हैं—

1. हृदय में पीड़ा (Cardiac Pain)
2. नेत्रों में भ्रांति (Difficulty in normal functions of eyes)
3. शिरः शूल (Headache)

चिकित्सा सिद्धांत²

1. नस्य
2. अञ्जन
3. लेप

1. उपक्षिप्तस्य चावस्य वाष्पेणोर्ध्वं प्रसरता। हृतीः इति भ्रातनेत्रवं शिरोदुःखं च जायते॥ (सु.क. 1/34)
2. तत्रः नस्याञ्जने कुष्ठं लामज्जं नलन्दं मधु। कुर्याच्छुरीषजनीचन्द्रदेशं प्रतेपनम्॥ हृदि चन्दनलेपस्तु तथा सुखमवन्यात्। (सु.क. 1/35-33)

खाद्यान्न विषाक्तता एवं भारी ध्रातुजन्य विषाक्तता

(Food Poisoning and Heavy Metal Poisonings)

1. खाद्यान्न विषाक्तता

(Food Poisoning)

परिचय

मनुष्य को जीवित रहने के लिए आहार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता और जीवन की गतिशीलता के लिए आहार अत्यन्त आवश्यक है। स्वस्थ रहने के लिए खाद्यान्न की स्वच्छता, पौष्टिकता इत्यादि आवश्यक है। यदि खाद्यान्न के रखरखाव, उपयोग, वितरण इत्यादि में असावधानी हो जाय तो इसमें विषाक्तता हो सकती है। विष देने के लिए अनेकों विधियों प्रयोग की जाती हैं जैसे-आहार दव्यों में, फेय पदार्थों के साथ, पान, चाय, शर्बत, बीड़ी, सिरोट इत्यादि। अध्यांग के तेल, पाउडर, स्नान जल, वस्त्र, आधुषण, आसन इत्यादि के मध्यम से भी विष का प्रयोग किया जाता है। भारत की प्राचीन सभ्यता के अंतर्गत अनेक ऐसे संस्कार अपनाये जाते थे जो जीवन को सुरक्षा प्रदान करने के साथ विष से रक्षा में भी सहायक होते थे। जैसे- भोजन करने से पूर्व भोज्य पदार्थों को अग्नि में डालना, घर के पालतू पशु-पक्षियों को थोड़ी मात्रा में अग्न देने के पक्षात ही आहार ग्रहण करने का प्रचलन था। यदि भोजन में विष मिश्रित होता है तो अग्नि में डालने पर विविध प्रकार की लापते निकलती हैं और अग्नि शीघ्र बुझ जाती है। घर के पालतू जीव जैसे तोता, मैना, कौवा, इत्यादि चीखने, चिल्लाने लगते हैं। इस प्रकार विषाक्त दव्य की पहचान आसानी से हो जाती थी और यह जीवन रक्षक उपाय प्रचलन में था। कुछ प्राचीन विष परीक्षण के प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं¹—

1. विषाक्त भोजन गहण करने से मासिका, कौवे शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होते हैं। धूंपं में तीक्ष्णता रहती है।
2. विषाक्त भोजन अग्नि में डालने से अग्नि से चटचट की आवाज आती है एवं अग्नि शिखा का रंग मोर की ग्रीवा के समान हो जाता है। धूंपं में तीक्ष्णता रहती है।
3. विषाक्त अन्न खाने से चकोर पक्षी के नेत्र की लालिमा समाप्त हो जाती है।

1. रुपभक्ताद्विं न्यस्तं सर्विं भक्षयन्ति ये।
2. विषूर्ध्वं रक्षार्थं चालन्यः सदा॥ (सु.क. 1/28-33)

चिकित्सा

- कुछ, खस एवं जटामांसी के दूर्ण का नस्य है।
- कुछ, खस एवं जटामांसी के बारीक दूर्ण में शहद मिलाकर अंजन करें।
- ललाट पर शिरीष, हीरिदा एवं चंदन का लेप करें।
- हृदय प्रदेश पर चंदन का लेप करें।
- विषाक्त अन्न स्पर्श के लक्षण एवं चिकित्सा

सामान्य लक्षण

विषाक्त अन्न के स्पर्श से निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न होते हैं—

- कण्डू (Itching) 2. दाह (Burning)
- जर (Fever) 4. बेदना (Pain)
- स्फोट (Blisters) 6. स्पर्श जान का नाश (Loss of touch sensations)
- नख अथवा बालों का गिरना (Brittleness of nails and falling of nails and hair)
- शोथ (Oedema)

चिकित्सा²

- विषनाशक परिषेक एवं अध्यांग करें।
- उशीर, चंदन, पद्मक, खदिर, तत्त्वीस पत्र, कुछ, गिलोच एवं तगर का प्रयोग लेप, परिषेक एवं अध्यांग के रूप में करें।
- विषाक्त आहार के मुख में पहुँचने पर उत्पन्न लक्षण एवं चिकित्सा

सामान्य लक्षण

यदि विषमिक्त आहार का भक्षण किया जाये अर्थात् मुख एवं उसके अवयवों से विष का सम्पर्क हो जाये तो निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न होते हैं—

- ओष्ठ में चिमचिमाहट (Burning sensation in lips)
- जिहा में शोथ, जड़ता एवं विवर्णता (Oedema, numbness and cyanosis of tongue)
- दन्तहर्ष (Hypersensitive teeth)
- हनुस्तम्प (Lock Jaw)

उच्चान विषाक्तता एवं भारी धातुजन्य विषाक्तता

- मुख में दाह (Burning in oral (mouth) cavity)
- लाला लाव (Excessive salivation)
- गले के अन्य विकार (Disorders of the throat)

चिकित्सा

- इस व्याधि में जिन औषधि द्रव्यों का प्रयोग करता चाहिए—
1. धाय के पुष्ट, हरीतकी एवं जम्बू बीज को पीसकर शहद में लित कर मुख में लेप एवं दांतों तथा मसूड़ों पर दिन में अनेक बार लगाना चाहिए।
2. अंकोल की भूल या सतपर्ण की छाल एवं शिरीष के बीज को शहद के साथ मिलाकर मुख, दांत एवं मसूड़ों पर दिन में अनेक बार लगाए।
4. आमाशयात विषाक्त आहार : लक्षण एवं चिकित्सा

विषयुक्त अन्न का सेवन करने पर जब वह आमाशय में पहुँचता है तो निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न होते हैं—

- स्वेदन (Excessive sweating)
- मूर्छा (Fainting)
- आध्यात (Tympanitis/Belching)
- मद (Alcoholism type of confusion)
- भ्रम (Vertigo)
- रोमहर्ष (Horripilation)
- वमन (Vomiting)
- दाह (Burning)
- नेत्र स्थब्दता (Fixed eye balls)
- हृदय स्थब्दता (Cardiac arrest)

11. शरीर पर जल बिन्द अर्थात् फफोते बनना (Blisters on skin)

आचार्य सुश्रुत ने निम्न प्रकार से आमाशय गत विष के लक्षणों का उल्लेख किया है—

- अथात्य धतकोपुष्टपथ्याजवृक्षलाइथियः । सक्षेत्रः प्रिच्छेते शोफ कर्तव्यं प्रतिसारणम्॥
अथात्क्लोदमूलानि त्वचः सात्त्वदस्य च । शिरीषमाषका वाऽपि सक्षेत्रः प्रतिसारणम्॥
- आमाशयाते स्वेदमूल्याऽधारमप्रभ्रमः । रोमहर्षे वमिदहश्चशुहर्दयरोधनम्॥
विद्युपिश्चाचयोऽङ्गानां.....॥ (अ.ह.सू. 7/22)
- मूर्छाऽर्धिर्दम्पत्सारमायानं दाहवेपथु । इन्द्रियाणां च वैकृतं कुर्यादामारायांतम्॥
हिन्दर्हस्तुस्तम्पात्सदाहलालगतिकाराः ॥ (च.चि. 23/113)

1. स्पृहे तु कार्यदाहोषाचर्यार्तिस्कोसुस्यः । नखरोमन्युति: शोफः..... (अ.ह.सू. 7/19)

2.सेकाया विषतामाः । सात्त्वात्त्वं प्रतेपाप्त सेव्यवद्वन्पत्तमः ।

3. पुरुषो लोषीचिमीनमा जिहा शूना जड़ा विवर्णा च ।

हिन्दर्हस्तुस्तम्पात्सदाहलालगतिकाराः ॥ (च.चि. 23/113)

(मु.क. 1/40)

1. पूर्छी (Fainting)
 2. वमन (Vomiting)
 3. अतिसार (Diarrhoea)
 4. आधमान (Tympanitis/Belching)
 5. दाह (Buring)
 6. कम्पन (Tremors)
 7. इर्द्रिय विकार (Disturbances in Sensory perceptions)
- चिकित्सा**
1. पक्वाशय में निम्न प्रकार से चिकित्सा करनी चाहिए—
 1. नीलिनी फलचूर्ण को 6 ग्राम घृत के साथ चटाकर विरेचन कराएं।
 2. इच्छाभेदी रस या नाशाच रस से भी विरेचन कराया जा सकता है।
 3. दृष्टिविषदि आग का प्रयोग (छोटी एला, हुरहुर, स्वर्ण गैरीक सम्पाग चूर्झ बनाकर 4-4 ग्राम की मात्रा में 3-3 घंटे पर शहद से दें।
 2. विषमिश्रित द्रव पदार्थ : लक्षण एवं चिकित्सा
- सामान्य लक्षण**
- यदि ऐय पदार्थ जैसे क्षीर, मद्य, जल इत्यादि में विष मिश्रित कर दिया जाये तो निम्न लक्षण इष्टिगोचर होते हैं—
1. द्रव्य में अनेक प्रकार की रेखाएं (Appearance of different coloured lines)
 2. द्रव द्रव्यों में फेन की उत्पत्ति (Formation of Bubbles in liquids)
 3. किसी प्रकार का प्रतिविन्द दिखायी नहीं देता है (No visible shadows)
 4. यदि प्रतिविन्द दिखाई भी देता है तो युग्मित, छिप्रान्वित अथवा विकृत आकार प्रकार का होता है।
- उपरोक्त वर्णन को इस प्रकार समझा जा सकता है कि द्रुध को यदि ताप्र पात्र में रखें तो वह नीला हो जाता है अथवा द्रुध में ताप्र यौगिक का विष मिला देने से वह नीला हो सकता है। इसी प्रकार दही में ताप्र युक्त विष से हेरे रंग की रेखाएं बन जाती हैं। इस प्रकार विषाक्तता की पहचान की जा सकती है।
- चिकित्सा**
1. पक्वाशय में दाह (Burning in lower part of G.I.T.)
 2. पूर्छी (Fainting)
 3. अतिसार (Diarrhoea)
 4. अति तुष्णा (Excessive thirst)
 5. इर्द्रिय विकार (Disturbances in sensory perception)
 6. आटोप (Tympanitis/Belching)
 7. पाण्डुता (Pallor)
 8. कृशता या दौर्बल्य (Weakness)

है—

1. तत्राश् पदनालालवृक्षिक्षोकोशातकोफलैः ।
छर्दन् दृश्युदश्विद्यामथात् तण्डुलाद्वना ॥
दाहं पूर्छांमत्तोसारं तृष्णामिन्द्रिय वैकृतम् ।
आटोपं पाण्डुतां कारण्यं कृशत्यं पक्वाशयं गतम् ॥ (सु.क. 1/42)
2. विरेचनं सम्पर्कं तत्रोक्तं नीलिनीफलम् ।
दधा दृश्युविषार्थं पेयो वा मधुसूतः ॥ (सु.क. 1/43)
द्रवद्रव्येषु सर्वेषु क्षीरमध्योदकादिषु ।
भवत्त्वं विकिया गन्धः फेनबुद्बुदजन्म च ॥
छाया शाव्र न दृश्यते दृश्यते यदि वा पुनः ।
भवत्त्वं यमलाश्चिदासत्सन्धो वा विकृतास्तथा ॥ (सु.क. 1/44-45)

7. सविष अन्न, शाक, मांस के लक्षण
उनें योग्य शाक, दाल, अन्न, मांस इत्यादि में विष मिश्रित होने पर निम्न लक्षण

दृष्टिगोचर होते हैं—

1. भोज्य पदार्थ किलन एवं स्वाद रहित हो जाते हैं (Tastelessness)
2. ताजा निर्मित होने पर भी विस्त (बासी) हो जाते हैं (Feeling of tastelessness in the food)
3. गंध, रंग एवं रस से रहित हो जाते हैं (Loss of odour, colour and taste from edibles)
4. पके फल शोषी ही सड़ जाते हैं (Early decomposition of ripe fruits)
5. कच्चे फल शोषी पक जाते हैं (Early ripening of unripe fruits)

खाद्यान विषाक्तता के प्रमुख कारण

1. खाद्यान विषाक्तता अनेक प्रकार से उत्पन्न हो सकती है इनके कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—
2. ग्रीष्मऋतु में अधिक समय तक रखे हुए आहार द्रव्य संक्रमित होकर विषाक्त हो जाते हैं।
3. डिब्बा बंद खाद्य पदार्थों में यदि उचित मात्रा में परिरक्षक पदार्थ (Preservatives) नहीं मिलाया गया हो अथवा निर्धारित समय के बाद में उपयोग से उसमें विषाक्तता उत्पन्न हो सकती है।
4. निवाह भोजन, भोजनात्य, अस्तात, सिनेमा हाल के पास एवं अत्यधिक घनत्व वाली आबादी के बीच भोजन विषाक्ता अधिक होती है।
5. किसी पात्र में यदि पहले विषाक्त द्रव्य रखा गया हो तथा उसके खाली होने पर उसमें खाद्यान रखने से वह भी विषाक्त हो सकता है।
6. किसी भोज्य पदार्थ के प्रति अनुरुद्धर्ता (Allergy) के कारण भी खाद्यान विषाक्तता होती है।
7. कुछ विशेष पात्रों की धूतु किसी विशेष द्रव्य के लिए विषाक्त हो सकती है जैसे घर में बनी सुरा (Alcohol) को शोशे के पात्र में रखने से वह विषाक्त हो जाती है।
8. टिन के डिब्बों में रखा मत्स्य, परिरक्षक पदार्थ (Preservatives) मिला होने पर भी विषाक्त हो जाती है।

8. खट्टे पदार्थों को जस्ते के पात्र में रखने से उसकी सतह छूटकर उस पदार्थ से मिलकर उसे विषाक्त बना देती है।

खाद्यान विषाक्तता के सामान्य लक्षण

किसी भी खाद्यान की विषाक्तता के लक्षण उसमें मिश्रित विष के आधार पर ही उत्पन्न होते हैं। परंतु कुछ लक्षण प्रायः अधिकांश खाद्यान विषाक्तता में दृष्टिगोचर होते हैं। खाद्यान विषाक्तता में निम्न लक्षण प्रायः प्रकट होते हैं—

1. सामूहिक भोज इत्यादि की विषाक्तता में अधिकतर व्यक्ति एक ही साथ पोषित होते हैं।
2. एक-एक लक्षण प्रकट होकर किसी विशेष विष के लक्षण के अनुसार बढ़ने लगते हैं। लक्षणों की तीव्रता तेजी से उत्पन्न होती है। गोंगी की शोषी मृत्यु हो जाती है अथवा वह शोषी ठीक हो जाता है।
3. अफोम के विष में प्रायः एक बार लक्षण शांत होकर पुनः प्रकट होने लगते हैं क्योंकि आन्न में उत्सर्जित अफोम पुनः अवशोषित होने लाती है।
4. अनेक रोग जैसे वर्मन, लालासाव, विसृचिका, अतिसार, आन्तशूल, आन्तशोथ, आन्याशय शोथ एवं आन्त्रितार (Perforation of G.I.T.) आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। विसृचिका एवं संखिया विषाक्तता के लक्षण एक दूसरे से मिलते जुलते हैं।

जीवाणुजन्य विषाक्तता (Bacterial poisoning) में वर्मन, विशेष, पिपासा, लालासाव, श्वासकष्ट एवं वायोनी राश आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

5. रोग की अधिक गम्भीरता में अतिस्वेतन (Excessive sweating), जलत्तता (Dehydration) एवं पुरुष उत्पन्न हो सकती है।
6. सुझना प्रभावी निष खाद्यान के माध्यम से देने पर धनुर्वर्त (Tetanus), एवं माध्याक्षावरण शोथ (Encephalitis) के समान लक्षण उत्पन्न होते हैं।
7. लक्षणों की गम्भीरता विष की मात्रा पर निर्भर करती है।

खाद्यान विषाक्तता के सामान्य चिकित्सा मिळांत एवं चिकित्सा

विषाक्त पुरुष की विषाक्तता को नष्ट करना ही विष चिकित्सा का प्रधान उद्देश्य होता है। इसके लिए निम्नलिखित चिकित्सा सिद्धांत अपनाते हैं—

1. अशोषित विष जो अभी आमाशय में अवस्थित हो सकता है, उसे शरीर से बाहर निकालना।
2. प्रतिविवेद (Antidiots) का प्रयोग करके विष को अवशोषित होने से रोकना।
3. शरीर में अवशोषित विष को शरीर से बाहर निकालना।
4. विष के लक्षणों की युक्ति पूर्वक चिकित्सा।

1. शाकसूपमासमानि विलग्नानि वितरमनि च।
सदा: पृष्ठितानीव विग्नानि भवन्ति च॥
गन्धवर्णरसेहीना: सर्व भक्षया: फलगानि च।
पत्तानायाम् विशोर्यने पाकमामानि यान्ति च॥ (सु.क. 1/46-47)

- अशोषित विष को शरीर से बाहर निकालना
शरीर में विष का प्रवेश मुख्यतः मुखमार्ग के द्वारा होता है। इसे बाहर निकालने के द्वेष से निम्न उपाय करने चाहिए—
 - आमशय प्रक्षालन (Stomach wash)
 - बमन करना (To induce vomiting-emesis)

(i) आमशय प्रक्षालन करने के लिए आमशय नलिका (Stomach tube) का प्रयोग किया जाता है। यह नलिका $\frac{1}{2}$ इंच व्यास की 5 कुट लंबी होती है। इसे मुख मार्ग से डालकर आमशय में पहुंचने की निश्चित जांच करके अतिरीछ आमशय का प्रक्षालन करना चाहिए जिससे विष को आमशय से अवशोषित होने से रोका जा सके।

(ii) बमन करना (To induce vomiting-emesis)
यदि रोगी संज्ञाहीन नहीं हो एवं तीव्र दाहक विष की आशंका नहीं हो तो अशोषित विष निष्कासन के लिए विभिन्न प्रक्रियाओं / वामक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए—

 - अंगुली अथवा पसे के ढण्डल से गले को उत्तेजित कर बमन कराएं।
 - 30 ग्राम सैन्धव लवण को एक लीटर जल में घोलकर पिलाकर बमन कराएं।
 - राई चूना 30 ग्राम एक लीटर जल में घोल पर पिलाएं।
 - दो ग्राम निंजक सलफेट एक लीटर पानी में घोलकर रोगी को पिलाकर बमन कराएं।
 - कापर सलफेट (तुल्थ) एक ग्राम एक लीटर जल में घोलकर फास्फोरेस की विषाक्तता में रोगी को पिलाना चाहिए।
 - मदनफल, जीमूतक, इक्षवाकु, धार्मार्ब, वत्सक, कृतवेधन, नीम, इक्खायण मूला, विडंगा, चिक्रक पूल, अरिष्क, लवण, राई एवं करञ्ज आदि वामक औषधियों का भी युक्त पूर्वक प्रयोग किया जा सकता है।

2. प्रतिविषों (प्रति कारकों) का प्रयोग (Use of Antidots)
प्रतिविषों (प्रति कारकों) का प्रयोग करके विष को शरीर में अवशोषित होने से रोका जा सकता है। प्रतिकारक तीन प्रकार के होते हैं—

 - यार्थिक अथवा भौतिक प्रतिकारक (Mechanical Antidots)
 - रासायनिक प्रतिकारक (Chemical Antidots)
 - क्रिया विरुद्ध प्रतिकारक (Physiological Antidots)

(i) यार्थिक या भौतिक प्रतिकारक
जो पदार्थ अपनी भौतिक क्रिया द्वारा विषों को निष्काय बनाने में सक्षम होते हैं उन्हें भौतिक प्रतिकारक कहते हैं। इन्हें तीन भागों में बाट सकते हैं—

- (ii) भोजन की अधिक मात्रा
यह भी पिसे कांच इत्यादि के लिए प्रतिकारक का कार्य करती है तथा आन्व की से क्षत भी नहीं होता।
- (iii) भोजन की अधिक मात्रा
यह भी पिसे कांच इत्यादि के लिए प्रतिकारक का कार्य करती है तथा आन्व की दोवारों की सुरक्षा भी करती है।
- (iv) रासायनिक प्रतिकारक
रासायनिक प्रतिकारक विषों के समर्क में आकर हानिरहित या अशुलनशील वैयिक बनाते हैं जिसके परिणामस्वरूप विषाक पदार्थ शरीर में हानि कारक प्रभाव पैदा होते हैं। कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं—
 - (a) क्षारीय विष में अस्त्र का प्रयोग एवं अस्त्रीय विष में क्षार का प्रयोग करना चाहिए।
 - (b) खनिज अम्लों के लिए मैनिनशिया या कार्बोनेट्स देना चाहिए।
 - (c) चूने का प्रयोग आकृतेजिक अम्ल को निष्क्रिय करता है।
 - (d) नाग एवं ईनन विष के लिए सोडियम सल्फेट का प्रयोग करना लाभकारी रहता है।
 - (e) रस कपूर के लिए एल्क्युमिन का प्रयोग करना हितकारी है।
 - (f) दाहक क्षारीय विषों के लिए नीबू के रस अथवा सिरका का प्रयोग उपयोगी है।
 - (g) पिसा हुआ कोयला या जला हुआ टोस्ट- 2 भाग, ईनिक अम्ल या तेज चाय-1 भाग, मैनिनशियम आव्साइड या मैनिनशियम दूध-1 भाग को सार्वभौमिक प्रतिकारक के रूप में प्रयोग करना चाहिए। तीन ग्राम सम्मिलित चूर्ण 250 मि.लि. जल में घोलकर पिलाना चाहिए।
 - (h) शरीर क्रियात्मक प्रतिकारक शरीर क्रियात्मक प्रतिकारक के कुछ प्रमुख उदाहरण निम्न हैं—
 - (a) एटोपिन के लिए मार्फिया का प्रयोग।
 - (b) क्लोरोफार्म के लिए एपिमल नाइट्रॉट का प्रयोग।
 - (c) बाबीट्यूरिक अम्ल के लवणों की विषाक्तता में पिक्रोटाक्सिन और बेम्फ्रिड प्रतिकारक हैं।

खदान विषाक्तता एवं भारी धातुजन्य विषाक्तता
पुनर्जन्वा, गोक्षुर, यवशार एवं शेत पर्फटी आदि का प्रयोग लाभकारी रहता है।

(d) डिजिटैलिस के लिए वर्तमान का प्रयोग।

(e) बी.ए.एल. (British Anti Levesite-BAL)

यह अनेक धात्तिक विषों, तिशेषकर संबिहया एवं पारद के लिए प्रतिकारक

का कार्य करता है। यह शरीर कोशिकाओं से विष को अलग कर उसे पूँज के

पाठ्यम से बाहर निकालता है।

3. शरीर में अवशोषित विषों को शरीर से बाहर निकालना

(i) शरीर में अवशोषित विष बाहर निकालने के लिए मुख्यतः स्वेदन, पूत्रल एवं विरेचक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

(ii) उष्ण जल, उष्ण वास्त्र, उष्ण वायु एवं आतप आदि से स्वेदन किया समादित होती है।

(iii) अर्कमूल, चित्रकमूल, सहिजन छाल, कुटकी, अनन्तमूल, अतिविषा, पुनर्वा एवं कम्पूर आदि स्वेदन द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए।

(iv) पूत्रल औषधियों में गोक्षुर, पुनर्जन्वा, शेत पर्टटी, अपामार्ग, कुश, काश, नल, दर्ढ, काण्डेशु, नारियल जल, कमलगट्टा, खीरा, अनन्त मूल, सहिजन, यवशार, दुध, शब्द एवं शिकंजी आदि का प्रयोग करने से भी लाभ होता है।

(v) विरेचनार्थ- निशेष, अमलतास, सुही, सत्यानशी मूल, हंडीतकी चूर्ण, निफला चूर्ण, पंचसकार चूर्ण, मुनक्का, गम्भरी एवं फलतासा आदि का प्रयोग उत्तम है।

4. विष के लक्षणों के अनुसार चिकित्सा करना

विष सेवन से उत्पन्न प्रमुख लक्षण एवं उनकी चिकित्सा निम्न प्रकार है—

(i) वेदना वेदना शमन के लिए रुजाहर एवं स्निग्ध औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। जैसे तुदरशल में अविषितकर चूर्ण, पितानक चूर्ण, शंख भास्म एवं सूतशेखर रस इत्यादि का प्रयोग। सर्वांग वेदना में गुण्डु के घोग प्रयुक्त करने चाहिए।

(ii) वमन एवं अतिसार वमन एवं अतिसार को नहीं रोकना चाहिए। विष निकल जाने पर वमन एवं अतिसार नाशक औषधियों का प्रयोग करें।

(iii) कोष्ठबन्दता यह लक्षण मुख्यतः शोशक विष में होता है। इसमें त्रिफला चूर्ण, पंचसकार चूर्ण, नाराच रस एवं इच्छाभेदी रस देना चाहिए।

(iv) पूत्रावरोध पूत्रावरोध में अधिक जलनापान, शिकंजी, नींव पानी तथा पूत्रल औषधियों जैसे

(v) नापमान वृद्धि में शोतल चिकित्सा करें।

(vi) तापक्रम कम होने पर उष्ण कमरे में कम्बल में लपेट कर रोगी को रखना चाहिए।

(vii) रक्तदाब कम होने पर रोगी का शिर नीचे एवं पैर की तरफ का हिस्सा कुछ उठाकर रखना चाहिए। अग्नितुण्डी वटी, अकोक पिण्ठी, कहरवा पिण्ठी, प्रवाल पचामृत का प्रयोग करना चाहिए।

(viii) प्रलाप, आङ्गेप, अनिद्रा इन अवस्थाओं में निद्राकर औषधियों जैसे सार्वगंधा चूर्ण, सारस्वत चूर्ण, सारस्वतारिष, शंखपुष्पी, जटामासी एवं ब्रह्मी वटी आदि का प्रयोग करें।

(ix) श्वासावरोध में प्राणवायु (Oxygen Therapy) की व्यवस्था करें।

(x) हृदयावरोध की अवस्था में हृदय उत्तेजक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

•••••

भारी धातुओं से उत्पन्न विषाक्तता (Heavy Metals Poisoning)

सामान्य परिचय

भारी धातुओं से उत्पन्न विषाक्तता अत्यन्त धातक होती है। आसौनिक, पारद, नाग, ताम्र इत्यादि अत्यन्त धातक स्वरूप के धातु विष होते हैं। ब्रिंहिन स्वरूप में निर्मित विष शरीर के विभिन्न भागों से प्रयुक्त किये जा सकते हैं। जैसे खाद्य इत्य अथवा पेय पदार्थ के मांस से, आलेप, उट्टन, लेप के रूप में त्वचा द्वारा, सूची वेध द्वारा अथवा शरीर के प्रकृतिक स्रोत जैसे कण्ठ, नासा, गौंत्रि, गुदा इत्यादि के द्वारा भी विषों का अंतः प्रवेश किया जा सकता है। शरीर में विष के प्रभाव के पश्चात उनका उत्सर्जन, मल, पूँज, लालासाव, स्वेद इत्यादि द्वारा होता है।

शरीर पर विष का प्रभाव अनेक तथ्यों पर निर्भर करता है जैसे विष की मात्रा, विष की प्रभावी शक्ति या वीर्य, विष प्रयोग की विधि एवं विष ग्रहण करने वाले व्यक्ति की आयु, स्वास्थ्य, मनोबल, प्रकृति इत्यादि के अनुसार शरीर पर विष का प्रभाव होता है।

विषाक्तता का निदान रोगी के परिजनों, मित्रों के माध्यम से रोगी की प्रकृति इत्यादि का पता लगाकर किया जा सकता है अथवा रोगी के कमरे का सूक्ष्म निरीक्षण करके उसके पास अथवा कमरे में उपलब्ध - खाद्य पदार्थ अथवा विषाक्त द्रव्यों की बच्ची मात्रा या शीशी इत्यादि के द्वारा विषाक्तता का आसानी से निदान किया जा सकता है।

विष से ग्रस्त रोगी की प्रत्यक्ष परिक्षा करनी चाहिए तत्पश्चात विशेष लक्षणों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए क्योंकि कुछ विशेष विषों के सेवन से उनके लक्षण भी सामान्य से अलग प्रकार के होते हैं। कुछ विष जैसे सर्खिया, कार्बन मोनो आक्साइड, हाइड्रोसायनिक अम्ल तत्काल मारक होते हैं। इसी प्रकार अफीम, मद्य, कर्पूर आदि मूँछांकारक होते हैं। धूरा, भांग, खुरासानी अजवायन के सेवन से रोगी प्रलाप करता है एवं नेत्र की पुतलियों का प्रसार हो जाता है। फेनाशम, नीलाञ्जन, वर्तसनाभ आदि विष द्रव्य वर्मन लक्षण उत्पन्न करते हैं।

विषाक्तता की सामान्य चिकित्सा के अंतर्गत सर्व प्रथम आमाशय प्रक्षालन करना चाहिए अथवा रोगी को वामक द्रव्य पिला कर वर्मन कराना चाहिए। पवक्वाशयगत विष में विरोचन उत्पन्न होता है। शरीर में अवशोषित हो चुके विष को नष्ट करने के लिए उस विष का प्रतिविष (Antidots) सूचिका द्वारा अथवा आमाशय नलिका द्वारा प्रयोग करना चाहिए। विष की तीव्रता को कम करने के समस्त उपाय करते हुए रोगी में उत्पन्न विषक्त लक्षणों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

••• नू छु झु •••

2. पारद विषाक्तता

(Mercury Poisoning)

परिचय

रसशास्त्र के दृष्टिकोण से पारद अत्यन्त महत्वपूर्ण धातु है जिसके साथ गंधक का संयोग करके अनेक प्रकार की प्रभावी औषधि द्रव्यों का निर्माण होता है। पारद एक ऐसी धातु है जो द्रव स्वरूप में होती है। पारद का स्वरूप पिघली हुई चांदी के समान होता है। यह अत्यन्त विषाक्त धातु है।

पर्याय

रस, रसेन्ट, सूत, पारद, रसराज, शिव, मिश्रक, सिद्ध धातु, हरबीज, शिवबीज, त्रिनेत्र, त्रिलोचन इत्यादि।

पारद के प्रमुख यौगिक

- पर्याप्त यौगिक वस्तोराइड ($HgCl_2$)
- पर्याप्त वस्तोराइड (Hg_2Cl_2)

200 मि.ली. से 300 मि.ली. तक

- येलो मरक्यूरिक आक्साइड (HgO)
 - रेड मरक्यूरिक आयोडाइड (HgI_2)
 - अमोनिएट एस्ट मरकरी (NH_4HgCl)
 - मरक्यूरस आक्साइड (Hg_2O)
 - मरक्यूरिक सल्फाइड (HgS)
 - मरक्यूरिक सल्फेट ($HgSO_4$)
- पारद विषाक्तता के प्रमुख लक्षण**
- पारद के कारबानों में लापरवाही पूर्वक कार्यरत व्यक्तियों अथवा किन्हीं कारणों से विषाक्त पारद सेवन से व्यक्ति में विषाक्तता का लक्षण उत्पन्न होने में लाभा एक से डेढ़ घंटे का समय लगता है। पारद विषाक्तता के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—
- मुख में धातवीय स्वाद (Metallic taste in mouth)
 - मुख, गला, आमाशय में तीव्र दाह युक्त पीड़ा (Burning pain in oral cavity, throat and stomach)
 - स्वरभेद (Hoarseness of voice)
 - लालाश्व (Salivation)
 - मस्तुड़ों में शोथ (Swelling in gums)
 - मस्तुड़ों से पूयुक्त रक्तसाव (Bloody pus discharge from gums)
 - श्वास कृक्षता (Breathlessness)
 - वमन (Vomiting)
 - अरिसार (Diarrhoea)
 - मूत्र की मत्रा में क्रमशः कमी (Progressive oliguria)
 - मूत्राधात (Retention of urine)
 - नाड़ी गति तीव्र, डुबल एवं अनियमित (Fast, weak and irregular pulse)
 - हृदयावसाद (Cardiac Depression)
 - शीतल स्वेद (Cold Perspiration)
 - आक्षेप (Convulsions)
 - तर्दा (Drowsiness)
 - मूर्छा (Fainting)
 - मृत्यु (Death)
- घातक मत्रा**

खदान विषाक्तता एवं भारी धारुजन्य विषाक्तता

धारद काल
एक से पांच दिन—कम से कम आधा घंटा।

चिकित्सा

पारद विषाक्तता में निम्न प्रकार से चिकित्सा करनी चाहिए—

1. सर्वप्रथम अण्डे की सफेदी, दूष अदि एल्ज़िमिन युक्त पदार्थ गोगी को पिलाना चाहिए। इससे अधुलनशील गौणिक एल्ज़िमिन में छुल जाते हैं।
2. आमाशय प्रशालन (Stomach wash)
3. कोयले का बारीक चूर्ण एवं बैंडिंशियम सल्फेट को पानी में खोलकर बार-बार पिलाएं।
4. सोडियम थायोसल्फेट एवं "BAL" का प्रयोग अंतिशोष प्रारम्भ करें।
5. यव का पानी या आटे को पानी में खोलकर पिलाएं।
6. शरीर की उष्णता को बनारे रखें।
7. अन्य उपचारों की लाक्षणिक चिकित्सा करें।
8. वेदनाशामक एवं हृदयोत्तेजक औषधि द्रव्यों का प्रयोग करें।

पारद की जीर्ण विषाक्तता

(Chronic Poisoning of Mercury)

निदान

पारद के सम्पर्क में अधिक समय तक रहने से जीर्ण पारद विषाक्तता के लक्षण उत्पन्न हो सकती है। पारद के कारणाने में अधिक समय तक कार्यरत व्यक्तियों में पारद के जीर्ण विषाक्तता के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रमुख लक्षण

पारद की जीर्ण विषाक्तता में निम्न लक्षण व्यक्त हो सकते हैं-

1. उदर शूल (Pain Abdomen)
2. हल्लास एवं वमन (Nausea/Vomiting)
3. मसूड़ों में शोथ (Swelling in gums)
4. अत्यधिक लालाक्षत (Excessive salivation)
5. दांतों में कृमि (Dental caries)
6. दौर्बल्य (Weakness)
7. पाण्डुता (Pallor)
8. त्वचा में पीड़िकाओं की उत्पत्ति (Blisters/Rashes over skin)
9. हाथ एवं पैरों में कम्पन (Tremors in extremities)
10. शाखाओं में पक्षाघात (Paralysis in extremities)
11. मानस रोगों की उत्पत्ति (Precipitation of Mental Disorders)

12. रक्त मिश्रित कास (Cough with haemoptysis)
13. फुफ्फुस, वृक्ष एवं नाड़ी संस्थान की विकृति (Disorders of lungs, kidneys and nervous system)

चिकित्सा

1. निदान परिवर्तन
2. मुख्यत एवं दंतगत विकारों की चिकित्सा हेतु हाइड्रोजेन पराक्साइड से कवल अथवा आयुर्वेदीय कालक चूर्ण, पीतक चूर्ण का प्रयोग करें।
3. विरचनार्थ पंचसकार चूर्ण, नाराच रस, जयपाल, त्रिफला चूर्ण, हरीतकी चूर्ण का प्रयोग।
4. बार-बार कोष्ण जल से स्त्रान।
5. पानार्थ पर्यास मात्रा में दुग्ध का प्रयोग।
6. अंतिशोष BAL या सोडियम थायोसल्फेट का प्रयोग प्रारम्भ करें।
7. पोटेशियम आयोडाइड का उचित मात्रा में प्रयोग।
8. अन्य लाक्षणिक चिकित्सा।

••••• ₹ ५०•••

3. संसिखिया अथवा फेनाश्म विषाक्तता

(Arsenic Poisoning)

परिचय

संसिखिया का सर्वप्रथम वर्णन आचार्य मुश्त ने फेनाश्म के नाम से धारुविष के रूप में किया है। संसिखिया में रासायनिक दृष्टि से आर्सेनिक एवं आक्सीजन तत्व पाये गये हैं। देखने में यह स्फटिक के समान पारदर्शक तथा शुभ्र रंग का होता है। संसिखिया निम्न दो प्रकार का होता है—

1. ध्वेत संसिखिया - कृत्रिम
2. रक्ताभ संसिखिया - खनिज

संसिखिया में किसी प्रकार का गंध अथवा स्वाद नहीं होता है। प्राचीन काल से ही चिकित्सा में संसिखिया की अत्यल्प मात्रा का प्रयोग होता रहा है।

पर्याय²

शंख विष, शंखमूष, गौरीपाषाण, दारमूष, दारमोच, मळ, मळक, फेनाश्म, आत्मपाषाण,

सम्भूलखार, विकट एवं हत्तूर्चणक इत्यादि।

1. फेनाश्म हरितालं च द्वे धातु विषे (सु.क. २/५)
2. शंखमूष शंखविष गौरीपाषाणकम् तथा। दारमूष दारमोच दारमोचश मळकः।

¹ फेनाश्म भव्य संज्ञश सोनलः सम्बलं तथा। आत्मपाषाणकं चैव रसेऽन्नं परिकोतितः॥

खदान विषाक्तता एवं भारी धातुन्य विषाक्तता

प्रसाद योगिक

संक्षिप्त वाचन

1. आर्सेनियम आक्साइड (Arsenious Oxide) — (As_4O_6) इसे क्षेत्र संखिया या फेनाइम कहते हैं। यह गंधहीन, स्वादहीन एवं जल में अविलेय है परंतु अस्त तथा क्षार में विलेय है। चूहे इत्यादि मारने के लिये इससे औषध निर्माण किया जाता है।

2. सोडियम आर्सेनेट एवं पोटैशियम आर्सेनेट (Na_3AsO_4), (K_3AsO_4) :
यह औणिक हत्या एवं पशु हत्या में प्रयोग किया जाता है।

3. आर्सेनिक सल्फाइड : इसमें हरताल (As_2S_3) एवं मनःथिला (As_2S_5) सम्मिलित हैं। इनका उपयोग रक्त धातु विकृति एवं त्वक् रोगों में अधिक किया जाता है।

4. आर्सेनिक डाई क्लोराइड (AsCl_3) -यह गंगीन तथा अत्यन्त विषाक्त द्रव्य है।

5. आर्सेनियम आयोडाइड (AsI_3) -यह नारंगी रंग का स्फटिक के समान होता है तथा अधिकांशतः त्वक् रोगों में प्रयुक्त होता है।

संखिया विषाक्तता के प्रमुख लक्षण

संखिया अत्यन्त तीव्र विष होता है तथा इसका सेबन करने के लाभा एक घंटे में शरीर में लक्षण प्रारंभ हो जाते हैं। संखिया विषाक्तता के प्रमुख लक्षण निम्न हैं—

 1. सिर चकराना (Vertigo)
 2. थकावट (Fatigue)
 3. हल्कास अथवा बमन (Nausea/Vomiting)
 4. दाह (Burning)
 5. अतिरुद्धा (Excessive thirst)
 6. गले एवं आमाशय में तीव्र दाह एवं पीड़ा (Intense Burning and pain in throat and abdomen)
 7. प्रथम बमन में आमाशयिक पदार्थ और बाद में रसयुक्त श्लेष्मा निकलता है। बमन दब्य का रंग हरा, नीला, गहरा काला या पीला भी हो सकता है। यह रंग संखिया के यौगिक पर निर्भर करता है।
 8. रक्त युक्त अतिसार (Bloody Diarrhoea)
 9. प्रथम बमन भूरे या काले रंग का तथा अत्यन्त दुर्भित होता है (Brown or black colour of stool with foul smell)
 10. पैरों में ऐंठन (Cramps in legs) 12. शास कूच्छलता (Breathlessness)
 13. क्रमशः मूत्र त्याग में कमी (Oliguria) एवं दाह के साथ मूत्र त्याग (Burning micturition)

14. शीत युक्त स्वेद (Cold sweating)

15 श्री विजय महान् ते एवं त्वं ते ॥८॥

15. मुख नाला, पाला हा जाती है (Cyanosed face)

16. नाई तोब्र, दुर्बल तथा अनियमित होती है (Fast, weak and irregular pulse)

- | | |
|--|---|
| 17. तन्त्रा (Drowsiness) | 18. मूर्च्छा (Fainting) |
| 19. आक्षेप (Convulsions) | 20. मृत्यु (Death) |
| अत्यधिक विष प्रक्षण की स्थिति में प्रारम्भ में अवसाद की अवस्था उत्पन्न होकर नित तत्काल मृत्यु हो जाती है। कर्मी-कर्मी बमन, विरेचन न होकर अकस्मात तन्त्रा, मूर्च्छा, प्रक्षात्र अथवा शासावरोध होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है। | |
| यात्रातक भारा (Fatal Dose);
125-200 मि.ग्रा. | यात्रक काल (Fatal Period)
12-24 घंटे |

ପ୍ରକାଶକ

सांखिया विषाक्तता के कुछ लक्षण आमाशयान्तर्कला शोथ (Gastritis) एवं क्षुद्रान्त कला शोथ (Enteritis) से मिलते हैं। परंतु विमूचिका (Cholera) के लक्षणों के साथ इसके लक्षणों में अस्थीधक समानता है। अतः सांखिया विषाक्तता का विमूचिका से सापेक्ष निदान करना आवश्यक है जो निम्न सारणी में स्पष्ट किया गया है

क्र.सं.	सांखिया विषाक्तता	विमूचिका
---------	-------------------	----------

विष्णुचक्र

1. केवल विष खाने वाला व्यक्ति ही प्रभावित होता है।

2. रोगी को पहले बमन, बाद में अतिसार होता है।

3. रक्त मिश्रित बमन होता है।

4. पहले रोगी के गले में पीड़ा होती है तब बमन होता है।

5. पानी की तरह पतला मलत्याग होता है जो रक्त या पित्त मिश्रित होता है एवं तीव्र उदर शूल भी होता है।

6. रोगी के कण्ठ एवं स्तर अप्रभावित रहते हैं।

7. बमन पदार्थ एवं मल के रासायनिक प्रक्षण में संरिख्या मिलता है।

1. प्रायः महामारी (Epidemic) के रूप में होती है।

2. रोगी को प्रथम अतिसार तत्पश्चात बमन होता है।

3. पानी की तरह पतला बमन होता है।

4. प्रायः गले में पीड़ा नहीं होती है।

5. चावल के माण्ड के समान मल त्याग, कभी-कभी रक्त भी मल त्याग के साथ आता है।

6. रोगी के कण्ठ एवं स्तर भारी हो जाते हैं।

7. मल के कल्प्वर में विसूचिका के जीवाणु मिलते हैं।

खदान विषाक्तता एवं भारी धारुजन्य विषाक्तता

संखिया

संखिया विषाक्तता में निम्न प्रकार से चिकित्सा करनी चाहिए—

1. वमन नहीं होने पर सर्वप्रथम वमन कराएँ। इसके लिए राई चूर्ण, मदनकल चूर्ण या जिंक सल्फेट का प्रयोग उपयोगी है।
2. संखिया विषाक्तता के निदान के पश्चात शोधातिशोब्र शार एवं जल मिलाकर आमाशय प्रक्षालन करना चाहिए। आमाशय प्रक्षालन (Stomach wash) के पश्चात हाइड्रेट फेरिक आक्साइड का घोल आमाशय में डालें। यह एक महत्वपूर्ण प्रतिविष है।
3. कैल्सियम, मैग्नीशियम तथा कोयले का चूर्ण मिलाकर प्रतिविष के रूप में प्रयुक्त करना लाभकारी रहता है।
4. खाने के सोडा (NaHCO_3) से भी आमाशयिक प्रक्षालन किया जा सकता है।
5. विरेचन नहीं होने पर एण्ड टैल मिलाना चाहिए।
6. अण्डे की सफेदी, दुध, घृत आदि स्त्रियां और मध्यियां देना लाभकारी है।
7. शरीर तापक्रम को सामान्य बनाये रखना आवश्यक है।
8. अत्यधिक शूल में वेदनाशामक औषधि जैसे माफौन का इन्जेक्शन किया जा सकता है।
9. शरीर को उत्तेजित करने का प्रयास करना चाहिए।
10. शरीर में जलाल्पता की स्थिति में अंतः सूचिका जल भरण (Intravenous fluid therapy) करना चाहिए।
11. संखिया विषाक्तता निदान के पश्चात (BAL) का प्रयोग करना चाहिए। इसका आविक्षकर इंगेलैंड में हुआ इसलिए इसको ब्रिटिश एप्टी लर्निंग्साइड (British Anti Lewisite- BAL) कहते हैं। (BAL) को डीमर्के प्राल (Demercapral) भी कहते हैं। यह संखिया का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतिविष है। (BAL) का प्रयोग करना चाहिए।

औषधि मात्रा

BAL की औषधिय मात्रा 3 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शारीरिक भार के हिसाब से देनी चाहिए।

- प्रथम, छितीय एवं तुतीय दिन प्रति चार घंटे पर एक इन्जेक्शन देना चाहिए।
- चौथे दिन से खस्थ होने तक 12 घंटे के अंतराल से सूचिका बेथ करना चाहिए।

BAL के विपरीत प्रभाव (Side Effects of BAL)

प्रायः सूचीबद्ध करते ही हल्कास, वमन, शिरःशूल, अंगमर्द, दाह आदि उपद्रव

उत्पन्न होते हैं जो आमे घंटे में ठीक हो जाते हैं। अन्यथा ठीक नहीं होने पर नित्राकर औषधि बार्बीच्यूरेट्स (Barbiturates) का प्रयोग करना चाहिए।

संखिया की जीर्ण विषाक्तता

(Chronic Toxicity of Arsenic)

दीर्घकाल तक अन्त्य मात्रा में संखिया का सेवन करने से अथवा जिन कारखानों में किसी भी रूप में संखिया का प्रयोग किया जाता हो, ऐसे कारखानों में काम करने से भी संखिया विषाक्तता के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

प्रमुख लक्षण

संखिया की जीर्ण विषाक्तता में उत्पन्न होने वाले लक्षणों को निम्नलिखित चार अवस्थाओं में विभक्त कर सकते हैं-

1. पाचन संस्थानगत लक्षण (प्रथम अवस्था)

इसके अंतर्गत अनिमांघ, अरुचि, मसूड़ों में शोथ, उत्तर शूल, विबंध, कभी-कभी वमन, अतिसार एवं च्वर भी उत्पन्न हो जाता है।

2. श्वसन संस्थानगत लक्षण (द्वितीय अवस्था)

इसमें स्वरग्रंथ, शास नलिका (Trachea) में शोथ, कास (Cough) एवं त्वचा में पिङ्काएं (Rashes) उत्पन्न होती हैं। नासा से बार-बार जलासाव तथा नेत्र रक्कवर्ण के हो जाते हैं। तस्वशत नख एवं रोम गिरने लगते हैं और नाड़ी संस्थान (Nervous System) के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

3. नाड़ी संस्थानगत लक्षण (तृतीय अवस्था)

नाड़ी संस्थान के लक्षणों के अंतर्गत शिरःशूल, त्वचा में सुन्दरा, मांसपेशियों में वेदना, तथा नमुन्सकता उत्पन्न होने लगती है। कभी-कभी अत्यधिक ख्वेदन भी होने लगता है।

4. चतुर्थ अवस्था

इस अवस्था में रोगी को पक्षाघात हो जाता है। मांस पेशियों में क्षय एवं शोष होने लगता है। रोगी चबलने में असमर्थ होने लगता है। अत्यन्त हृदय पेशी दुर्बलता होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा

1. निदान परिवर्जन
2. औषधि के रूप में पोटेशियम आयोडाइड का प्रयोग करना चाहिए।
3. निदान हो जाने पर BAL का प्रयोग करना विशेष लाभकारी होता है।
4. सोडियम या कौलंस्यम थायोसल्फेट के सूची बेथ का प्रयोग करना चाहिए।

4. नीलाञ्जन विषाकृता (Antimony Poisoning)

परिचय
आयुर्वेद में रसशास्त्र के अंतर्गत नीलाञ्जन का वर्णन अङ्गजनों के प्रकार में किया गया है। यह राहीन एवं स्फटिक अथवा चूर्ण के रूप में प्राप्त होता है।

पर्याय
शक्र भूमिज, वारिसभव, सुवर्णन, लौहमार्दवकर आदि।
प्रमुख औषधिक

- एण्टीमनी टार्टारेटम (Antimony Tartaratum)-इसमें लगभग 35% धातवीय अंजन पाया जाता है। स्वाद में अस्तीय एवं जल में घुलनशील होता है।
- एण्टीमनी ट्राई एस्टोरिड (Antimony Trichloride - Sb, Cl,)
- एण्टीमनी ट्राई सल्फाइड (Antimony Trisulphide - Sb, S,)-
- यह बाजार में काले सुरमें के रूप में मिलता है। औषधीय मात्रा के रूप में 2-4 मि.ग्रा. की पशुचिकित्सा में भी इसका प्रयोग करते हैं। औषधीय मात्रा के लिए इसे 30-60 मि.ग्रा. की मात्रा में इसका द्रव्यों किया जाता है एवं वर्म के लिए इसे 30-60 मि.ग्रा. की मात्रा में प्रयुक्त करते हैं।

- एण्टीमनी ट्राई आक्साइड (Antimony Trioxide-Sb₂O₃)

- एण्टीमनी ट्राई क्लोरोइड (Antimony Trichloride - Sb, Cl,)

- एण्टीमनी ट्राई सल्फाइड (Antimony Trisulphide - Sb, S,)-

यह बाजार में काले सुरमें के रूप में मिलता है। विष के रूप विष के रूप में मुख्यतः एण्टीमनी टार्टेटम का विशेष महत्व है जिसे विष के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

एण्टीमनी विषाकृता के प्रमुख लक्षण

एण्टीमनी विषाकृता के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं—

- मुख में धातु के समान स्वाद मिलना (Metallic Taste in mouth)
- हलास एवं वर्मन (Nausea and Vomiting)
- आमाशय में दाह युक्त पीड़ा (Burning Pain in Abdomen)
- अतिसार (Diarrhoea)
- नाड़ी गति कम हो जाती है (Decreased Pulse Rate)
- त्वचा शीतल हो जाती है (Cold skin)
- अति स्वेदन (Excessive Perspiration)
- श्वसकृक्षता (Breathlessness)
- मृद्धा (Fainting)
- हृदयवासद (Cardiac Depression)
- मृत्यु (Death)

घातक मात्रा	घातक काल
600 मि.ग्रा. से 1200 मि.ग्रा.	10-60 घंटा
चिकित्सा	

- निदान परिवर्जन।
- दुध, अंडे की सफेदी, जैतून तैल तथा अन्य स्निधि एवं शामक औषधियों का प्रयोग।
- वर्मन नहीं होने पर वर्मनकारक औषधियों का प्रयोग।
- प्रतिविष के रूप में तीक्ष्ण चाय या कर्कफी की अधिक मात्रा या ईनक अम्ल 2-4 ग्राम तक की मात्रा में देना चाहिए।
- अतिवेदना में वेदनाशामक उपाय एवं मार्फन के सूची वेधन का प्रयोग करना लाभकारी रहता है।
- उत्तेजक एवं बल्य औषधियों का प्रयोग करना हितकारी है।

••• लैंग लैंग •••

5. नाग विषाकृता (Lead Poisoning)

परिचय

नाग अथवा सीसा नील-कपिल वर्ण का, अपारदर्शक, गंध रहित, स्वाद रहित, मुड़ एवं ठोस पदार्थ है। यह जल में अविलेय एवं कागज पर कृष्ण निशान छोड़ता है। यह औषधि रूप में भी प्रयुक्त होता है।

पर्याय

सीसा, ब्रह्मन, योगेष, सांप, कुरंग, कुबञ्ज इत्यादि।

नाग के प्रमुख औषधिक

- स्लाक्षाई एसिटास (Plumbi Acetas)
- यह श्वेत वर्ण का सफ्टकोय द्रव्य है। स्वाद में मधुर एवं सिरके के गंध वाला होता है। यह जल में अल्प एवं मध्य में अधिक घुलनशील है। इससे Suppositorium Plumbi योग तैयार करते हैं।

- लिक्वर प्लाक्वाई सब एसिटेसिस फोर्टिस (Liquor Plumbi subacetatis Fortis)

यह स्वच्छ क्षारीय एवं रंगहीन द्रव स्वरूप में होता है। स्वाद में मधुर एवं क्षारीय होता है। इससे Liquor Plumbi Subacetasis dilutus योग तैयार किया जाता है।

- स्लाक्षाई मोनोक्साइडम (Plumbi Monoxidum)

इसे Litharge या मुदराशूंग या मुदीसंख भी कहते हैं। यह पीतवर्ण या ईट के वर्ण

का अथवा पीत और नारंगी की तरह लाल रंग का चूर्ण होता है। यह जल में अविलेय एवं सिरके में अमुलनशील होता है। इससे अनेक योग बनाये जाते हैं। आयुर्वेद में भी इस योग से अनेक औषधि द्रव्य तैयार किये जाते हैं।

नाग विषाक्तता के प्रमुख लक्षण

नाग विषाक्तता के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. मुख में धातवीय स्नाद (Metallic taste in mouth)
2. कण्ठ शोथ (Swelling in glottis)
3. तीव्र प्रदृष्टा (Excessive thirst)
4. रक्त या रसेल्य मिश्रित वमन (Blood or Mucous mixed vomiting)
5. रुक्के-रुक्क कर तीव्र उदर शूल (Intermittent intense colicky pain)
6. तीव्र विक्रघ (Severe constipation)
7. उदर में स्पर्शीसहीता (Tenderness in Abdomen)
8. कृष्ण वर्ण एवं अत्यन्त दुर्गम्युक्त मल प्रवृत्ति (Black coloured stool with soul smell)
9. क्रमशः पूत्र की मात्रा में कमी (Progressive oliguria)
10. जिहा शुष्क एवं पलावृत्त (Dry and coated tongue)
11. दुर्गम्य युक्त श्वास (Foul smelling breathing)
12. अत्यधिक दीर्घत्या (Severe weak breathing)
13. लचा पर शीतल स्वेद (Cold perspiration)
14. नाड़ी गति तीव्र एवं दुर्बल (Fast and weak pulse)
15. निद्रानाश (Insomnia)
16. शिर: शूल (Headache)
17. तन्दा (Drowsiness)
18. चक्कर (Vertigo)
19. ऐशियो में आकस्मिक संकोच (Contractions in muscles)
20. आक्षेप (Convulsions)
21. पक्षाघात (Paralysis)
22. नाड़ी संस्थान कों किक्ति (Disorders of Nervous system)
23. मृत्यु (Death)
24. घातक मात्रा
25. 20 ग्राम से 30 ग्राम
26. एक से तीन दिन तक

चिकित्सा

1. सर्वप्रथम रोगी को मैनिनिश्चय स्लिप स्लिपेट वा सोडियम स्लिपेट का घोल पिलाना चाहिए जो लेड सल्फेट नामक अमुलनशील चौगिक बनाता है।
2. साधरणतया आमाशय प्रशालन करना चाहिए अथवा पानी में मिश्रित गंधकास्ट (Dilute sulphuric acid) को बिनाकर आमाशय प्रशालन करने से भी लेड सल्फेट नामक अमुलनशील चौगिक बनता है।
3. रोगी को वमन कराए।
4. दुध, यक का पानी, अड़े की सफेदी आदि स्निग्ध एवं शामक औषधियों का प्रयोग कराए।
5. बेदना शमन के लिए मार्फीन का सूची वेध करना चाहिए।
6. अन्य लाक्षणिक चिकित्सा लगाभग सात दिन तक करनी चाहिए।

नाग की जीर्ण विषाक्तता

(Chronic Toxicity of Lead)

निदान

1. सीसे के कारबनें में कार्य करना।
2. चित्रकारी, यानी के नल बैठने वाले, पेटर्स एवं बिजली के कारबानें में यथोर्चित मुरक्खा कवच के बिना कार्य करना।
3. सीसे के बर्तन में रखा पानी पीना, बालों के रंगने के पदार्थ।
4. कलई किये बर्तनों में खट्टे पदार्थ रखने से या कलईदार बर्तन में भोजन पकाने एवं खाने से।
5. स्त्रियों द्वारा अधिक मात्रा में सिस्ट्रूर का प्रयोग करने से नाग की जीर्ण विषाक्तता उत्पन्न हो सकती है।

प्रमुख लक्षण

नाग की जीर्ण विषाक्तता के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. ममूड़ों पर कृष्ण वर्ण की रेखा होना (Black lining on gums)
2. क्रमशः पापड़ वर्णना एवं दीर्घत्या (Progressive pallor and weakness)
3. आध्यान (Tympanitis/Belching)
4. अग्निमांद्य (Poor Appetite)
5. अजीर्ण (Indigestion)
6. विक्रघ (Constipation)
7. गलताब में वृद्धि (High Blood Pressure)

8. धमनी काटिन्य (Arteriosclerosis)
9. बुक शोथ (Renal Oedema)
10. मूत्र में एल्ब्युमिन साव (Albuminuria)
11. स्त्रियों में मासिक धर्म में विकृति (Irregularities and disturbances in menstrual cycle in females)
12. स्त्रियों में बन्ध्यत्व (Sterility)
13. गर्भपत (Abortion)
14. गुरुणों में नारंसकता (Impotency)

ज्ञानकूल उपचार

1. उद्दर शूल
2. अग्निक्षयं
3. बड़े जोड़ों में तीव्र शूल एवं अस्थियों में वेदना
4. चिरःशूल
5. दृष्टिगमध्यता
6. प्रलाप, आक्षेप, उम्माद, मूँहां
7. स्त्रियों के वोनिमार्ण में आकर्त्तिमक संकोच
8. गर्भिणी में गर्भपात
9. पुरुषों में नपुंसकता
10. प्रथम हाथ में पक्षाधात तत्त्वशात पैरों में भी पक्षाधात हो जाता है
11. मांसपेशी क्षय

चिकित्सा

1. निदान परिवर्जन
2. प्रतिदिन 500 मि.ग्रा. सोडियम बाई कार्बनेट दिन में चार बार देना चाहिए। यह धातुगत सीसे का घुलनशील यौगिक बनाता है। तत्पश्चात सोडियम सल्फेट अथवा मैर्गनिशियम सल्फेट का संतुलित घोल पिलाकर विरेचन कराना चाहिए।
3. पोटेशियम ऑयोडाइड का उचित मात्रा में प्रयोग करावें।
4. पेशियों की उर्ध्वतामा में वातनशक तैलों से अथंग, स्वेदन, पत्रिपिण्ड स्वेदन एवं शालिषष्ठिक स्वेदन करना अत्यन्त लाभदायक होता है।
5. रोटी को शुद्ध, पौष्टिक एवं दुध से निर्मित आहार द्रव्यों का सेवन कराना हितकारी है।
6. कारखाने में कार्यरत व्यक्तियों की कोष्ठ शुद्ध करनी चाहिए एवं नियमित तिरेचक औषधियों जैसे त्रिफला चूर्ण, पंचसकार चूर्ण, तरुणी कुमुमाकर चूर्ण एवं नाराच रस इत्यादि का सेवन कराते रहना उपयोगी है।

•••••

6. ताप्र विषाक्तता

(Copper Poisoning)

परिचय

ताप्र प्राचीन काल से ही अत्यन्त प्रसिद्ध धातु है तथा इसकी विषाक्तता का जान भी अत्यन्त प्राचीन है। आचार्य चरक का एक कथन है कि ताप्र का व्याथ पीकर मर जाना अच्छा है परं मूर्ख वैद्य से चिकित्सा कराना ठीक नहीं है। ताप्र वर्ण में रक्ताभ एवं चमककोली धातु होती है।

परामर्श

शुल्क, रक्त, एलेक्ट्रो, वाल्व, नेपालीय, च्याप्क, सूर्य लोह, भानुलोह, उद्मर्ग, अरविन्द, इत्यादि।

ताप्र के प्रमुख यौगिक

1. कापर सल्फेट (CuSO_4)
यह ताप्र का सर्वाधिक उपयोगी यौगिक है। यह 15 मि.ग्रा. से 125 मि.ग्रा. तक की मात्रा में चिकित्सा में प्रयुक्त होता है। कापर सल्फेट से दहु नाशक मलहर भी बनाया जाता है। आयुर्वेदीय चिकित्सा में कापर के योग मुख्यतः त्वक् विकार, नेत्र विकार एवं दंत रोगों में बहुशः प्रयुक्त होते हैं।
2. क्षूप्रिक आक्साइड (CuO)
3. क्षूप्रस आक्साइड (Cu_2O)
4. क्षूप्रिक क्लोराइड (CuCl_2)

ताप्र विषाक्तता के प्रमुख लक्षण

1. मुख में धातवीय स्वाद (Metallic taste in mouth)
2. आमशय में दाहयुक शूल (Burning pain in abdomen)
3. अत्यधिक तृष्णा (Excessive thirst)
4. नीले हरे रंग का वमन (Blue green vomitings)
5. मूत्रालस्ता अथवा मूत्राधात (Oliguria or Anuria)
6. कभी-कभी रक्तमिश्र मूत्र त्वाग (Haematuria)
7. भूरे रंग का मल त्वाग (Brown coloured stools)
8. त्वचा का पीत वर्ण होना (Yellow colouration of skin)
9. शीतल स्वेदन (Cold Perspiration)
10. हृदयावसाद (Cardiac Arrest)
11. पक्षाधात (Paralysis)

1. विषं क्वचित् ताप्रमेव वा। (च.सृ. 1/132)

कायचिकित्सा**खदान विषाक्तता एवं भारी धातुजन्य विषाक्तता**

12. पूर्खर्ण (Fainting)
13. मृत्यु (Death)
- ताम्र की जीण विषाक्तता के लक्षण
ताम्र के सम्पर्क में रहने एवं ताम्र के कारखाने में कार्य करने से निरंतर ताम्र के सूक्ष्म कण धातु माना से शरीर में पहुँचते रहते हैं तथा निम्न लक्षण उत्पन्न करते हैं—

 1. मुख का धातवीय स्वाद (Metalic taste in mouth)
 2. मस्झों पर हरे गं की रेखा उत्पन्न हो सकती है (Green lining on the gums)
 3. अरोचि (Anorexia)
 4. शिरःशूल (Headache)
 5. चक्षर (Vertigo)
 6. दीर्घत्य (Weakness)
 7. कभी-कभी उदर शूल एवं विरेचन (Some times pain in abdomen and purgation)
 8. पाइड्रटा (Pallor)
 9. पक्षाधात (Paralysis)
 10. लचा कमला रोगों के समान पीत वर्ण (Yellow coloured skin)
 11. हरिताभ मूत्र त्याग (Greenish coloured Urination)

धातक मात्रा

तुल्य की धातक मात्रा 25 ग्राम तक होती है।

धातक काल

चार घंटे से तीन दिन तक

चिकित्सा

ताम्र की विषाक्तता में निम्न प्रकार से चिकित्सा करनी चाहिए—

1. पांच प्रतिशत पोटेशियम फेरो सायनाइड के घोल से आमाशय प्रक्षालन (Stomach wash) करें। यह क्यूप्रिक फेरो सायनाइड नामक अथुलनरोल औंगिक बनाता है।

2. नामक औषधि प्रयोग नहीं करनी चाहिए क्योंकि तुल्य स्वतः वामक होता है।

3. तुल्य एवं अडे की सफेदी को प्रतिवध के रूप में प्रयोग करें।

4. विरेचनार्थ एरण्ड-तैल, त्रिफला चूर्ण, पंचसकार चूर्ण अथवा हरीतकी चूर्ण का प्रयोग करें।

5. मुक्रल औषधियों जैसे श्वेतपर्णटी, गोधुर, पुर्ननवा, खीरा, पुनर्नवारिष्ठ, गोधुरादि क्वाथ एवं चन्द्रप्रभा वटी इत्यादि का प्रयोग किया जा सकता है।

6. रोगी को शुद्ध हवा एवं खुले वातावरण में रखना आवश्यक है।

7. पौष्टिक एवं संतुलित आहार सेवन।
8. पथ्यापथ्य पालन
9. लाक्षणिक चिकित्सा
10. जीण विषाक्तता में निदन परिवर्जन अत्यंत आवश्यक है।
11. ताम्र के कलईदार बर्तनों का ही प्रयोग करना चाहिए।
•••लैंग लैंग•••

7. यशद विषाक्तता

(Zinc Poisoning)

परिचय

यशद को खर्पर भी कहा जाता है। यह दो प्रकार का होता है—

1. पत्रयुक्त-इसे दर्दर कहते हैं।

2. कारबोलक-इसमें पत्र नहीं होता है।

यशद श्वेत वर्ण की स्फटकीय धातु होती है। खान में यह कैलेमाइन, जिंक कार्बोनेट, जिंक आक्साइड अथवा जिंक सल्फाइड के रूप में पाया जाता है। यह 42°C ताप पर पिघल जाता है।

यशद के प्रमुख चौणिक

1. जिंक आक्साइड (Zinc Oxide-ZnO)

यह श्वेत चूर्ण स्वरूप में पाया जाता है तथा गंधहीन होता है एवं गार्म करने पर पीत वर्ण का हो जाता है। औषधीय रूप में यह 250 से 500 मि.ग्रा. की मात्रा में प्रयोग किया जाता है। इसकी वाष्प अत्यधिक विषाक्त होती है। इससे मलहर एवं पेस्ट भी बनाये जाते हैं।

2. जिंक सल्फेट (White Vitriol-ZnSO₄)

यह वर्ण रहित एवं पारदर्शक होता है तथा गंधहीन एवं जल में विलेय है। औषधि के रूप में 65 मि.ग्रा. से 125 मि.ग्रा. तक की मात्रा में प्रयुक्त होता है।

3. जिंक क्लोरोआइड (Zinc Chloride-ZnCl₂)

यह एक ग्रेस पदार्थ होता है। अन्य योगों में जिंक कार्बोनेट एवं जिंक नाइट्रोट इत्यादि भी यशद के चौणिक हैं।

यशद विषाक्तता के प्रमुख लक्षण

यशद विषाक्तता के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. मुख में धातवीय स्वाद (Metalic taste in mouth)

2. अत्यधिक लालाला (Excessive salivation)

3. वमन (Vomiting)
 4. उदर में तीव्र शूल (Severe pain in abdomen)
 5. विरेचन (Purgation)
 6. हृदयावसाद (Cardiac Failure)
 7. मृत्यु (Death)
- घातक सात्रा**
- 15 ग्राम
- दो घंटे से लेकर पांच दिन तक
- चिकित्सा**
- यशद विषाकरता में निम्नलिखित चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए—
1. खाने वाले सोडे (Sodium Bicarbonate) को जल में घोलकर उससे आगमशय प्रशालन (Stomach wash) करना चाहिए। पांच जिंक कलोइड की विषाकरता में आगमशय प्रशालन का निषेध है।
 2. वमन हो रहा हो तो उसे न रोके। वमन नहीं होने पर मदनफल, जीमूतक, मधुरथि, वचा के फाण्ट से वमन करना लाभदायक होता है।
 3. दुरध, अंडे की सफेदी, उष्ण चाय या काफी, ईनिक अस्त को प्रतिविष के रूप में प्रयोग करें।
 4. अत्यधिक चेदना में वेदनाशामक औषधियों जैसे माफीन का सूबी वेध प्रयोग करें।
 5. अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करें।

चिकित्सा

दंश जन्य विकार अनेक प्रकार के होते हैं। दंश शब्द से प्रायः सर्प अथवा बिञ्चू से हुआ दंश ही समझा जाता है। परंतु अनेक प्रकार के अन्य दंश भी होते हैं जैसे-मच्छर द्वारा दंश से विषम ज्वर या मलेरिया उत्पन्न होता है। सैंड फ्लाई अथवा बालूका मर्किका द्वारा दंश करने से कालाजार नामक घातक बीमारी उत्पन्न होती है जो कि बालूका डोनोवान बाडी (Leishman donovan Body) नामक जन्तु है जो कि बालूका मर्किका द्वारा फैलाया जाता है। श्लीपद अथवा Filaria का रोगण भी एक विशेष प्रकार की मर्किका क्यूलोलेक्स फिटिग्रस (Culex Fatigans) नामक मच्छर के दंश से ही उत्पन्न होता है। अलंक विष पालत कुते के दंश से उत्पन्न होता है तो ग्रीष्मक ज्वर अथवा प्लेग (Plague) महायारो के रूप में, पिस्तू जौ स्क्वर्चं Bacillus Pastis नामक जीवाणु से ग्रस्त रहते हैं, उनके द्वारा चूहों के माध्यम से मनुष्यों में फैलता है। इस प्रकार से अनेक विकार होते हैं जो विभिन्न प्रकार के जीवों के दंश से फैलते हैं। परंतु प्रस्तुत अस्थाय में कुछ अतिविशेष दंश विकारों का ही वर्णन किया जायेगा।

प्रमुख दंश विकार

कुछ अत्यंत प्रमुख दंश विकार निम्नलिखित हैं-

1. सर्पदंश जन्य विकार
2. वृषिचक दंश जन्य विकार
3. अलंक विष अथवा रैबीज
4. लूटा दंश
5. कीट दंश
6. मूषक दंश
7. कुकलास (मिरगिट) दंश
8. गृहगोधिका (छिपकली) दंश
9. शतमदी दंश
10. मर्किका दंश
11. विषाक्त जन्तु दंश
12. शंका विष

यहाँ उपरोक्त प्रत्येक दंश जन्य विकारों का स्वतंत्र रूप से विस्तृत वर्णन किया जा रहा है।

दंशजनित विकार एवं उनकी चिकित्सा

आचार्य सुशुत ने भी सर्प दंश के उपरोक्त कारणों का ही उल्लेख किया है—

सर्प के भेद

आयुर्वेद सहित ग्रंथों में सर्पों के दो प्रधान भेद बताए गये हैं—

परिचय

आयुर्वेदीय संहिता ग्रंथों में सर्पदंश का सविस्तार वर्णन किया गया है। विष को दो वर्गों में विभक्त किया गया है—

1. स्थावर विष
2. जाह्नव विष

जीवधारियों के दंश से उपरोक्त विष को जांगम विष में सर्प विष सवार्थिक घातक तथा प्राण नाशक होता है। सर्प के दांतों में विष की उपस्थिति के कारण इसे 'दंशा विष' भी कहते हैं। वस्तुतः सर्प के दांतों में विष नहीं रहता है। विष दांतों के पीछे बीं एक विषेष प्रकार की धेत्री में संग्रहीत रहता है तथा सर्प के मुख के ऊपरी भाग में दिश्त दो दांतों से यह थैलियाँ जुड़ी रहती हैं। सर्प जब दंश करने के पश्चात दांतों को बाहर निकालता है उसी समय उन विषमुक्त थैलियों के संकुचन से विष दांतों से होते हुए दंश स्थान में पहुंच जाता है। सर्प के विषधारी दंत लेके, वक्र एवं तीक्ष्ण होते हैं तथा सामान्य अवस्था में एक कोर द्वारा लोहे होकर पुड़े रहते हैं। जब दंश हेतु सर्प मुख खोलता है तो विष दंत सीधे होकर बाहर निकलते होते हैं तथा दांत पुनः निकालते समय दंश स्थान विष से भर जाता है।

प्रमुख सर्वधंगं

1. चरक संहिता चिकित्सा स्थान - अध्याय 23

2. सुशुत संहिता कल्प स्थान - अध्याय 4,5

3. अष्टांग हृदय उत्तर स्थान - अध्याय 36

4. भाव प्रकाश मध्यम खण्ड - अध्याय 66, 67

5. माधव निदान - अध्याय 69

सर्पदंश के कारण

1. भेजन को पकड़ने के लिए

2. भय के कारण

3. मौरों से स्पर्श होने पर

4. अति विष के प्रकोप से

5. क्रोध उत्पन्न होने पर

6. पाप वृत्त होने से

7. बैर से अर्थात् शत्रुता के कारण

8. देवता, ऋषि अथवा यमराज की प्रेरणा से

1. आहारादे भयात् पादस्थर्तिविषत् कुण्डः।

2. ग्रावृत्तितया वैराद् देवविषयमेवोन्तरः।
दरान्ति सर्पस्तेषुकं विषाधिकम् यथोत्तरम्। (अ.इ.उ. 36/8-9)

1. सर्प दंश

(Snake Bite)

1. सर्प दंश

(Snake Bite)

आयुर्वेदीय संहिता ग्रंथों में सर्पदंश का सविस्तार वर्णन किया गया है। विष को दो

वर्गों में विभक्त किया गया है—

1. स्थावर विष
2. जाह्नव विष

जीवधारियों के दंश से उपरोक्त विष को जांगम विष में सर्प विष

सवार्थिक घातक तथा प्राण नाशक होता है। सर्प के दांतों में विष की उपस्थिति के कारण

इसे 'दंशा विष' भी कहते हैं। वस्तुतः सर्प के दांतों में विष नहीं रहता है। विष दांतों के

पीछे बीं एक विषेष प्रकार की धेत्री में संग्रहीत रहता है तथा सर्प के ऊपरी भाग

में दिश्त दो दांतों से यह थैलियाँ जुड़ी रहती हैं। सर्प जब दंश करने के पश्चात दांतों को

बाहर निकालता है उसी समय उन विषमुक्त थैलियों के संकुचन से विष दांतों से होते हुए

दंश स्थान में पहुंच जाता है। सर्प के विषधारी दंत लेके, वक्र एवं तीक्ष्ण होते हैं तथा

सामान्य अवस्था में एक कोर द्वारा लोहे होकर पुड़े रहते हैं। जब दंश हेतु सर्प मुख

खोलता है तो विष दंत सीधे होकर बाहर निकलते होते हैं तथा दांत पुनः निकालते समय

दंश स्थान विष से भर जाता है।

प्रमुख सर्वधंगं

1. चरक संहिता चिकित्सा स्थान - अध्याय 23

2. सुशुत संहिता कल्प स्थान - अध्याय 4,5

3. अष्टांग हृदय उत्तर स्थान - अध्याय 36

4. भाव प्रकाश मध्यम खण्ड - अध्याय 66, 67

5. माधव निदान - अध्याय 69

सर्पदंश के कारण

1. भेजन को पकड़ने के लिए

2. भय के कारण

3. मौरों से स्पर्श होने पर

4. अति विष के प्रकोप से

5. क्रोध उत्पन्न होने पर

6. पाप वृत्त होने से

7. बैर से अर्थात् शत्रुता के कारण

8. देवता, ऋषि अथवा यमराज की प्रेरणा से

1. निर्विष सर्पः ये विष रहित होते हैं।

2. निर्विष सर्पः ये विष रहित होते हैं।

3. निर्विष सर्पः यह चिकित्सा नहीं होती है।

4. निर्विष सर्पः ये विष रहित होते हैं।

5. माधवैतिविष्ठेष्ठित्वा: पृथक् मन्दाग्निः।

6. निर्विष विषवर्णमितिवृष्ट्व च गरजिमः।

7. विक्रिता इय ये भान्ति गरजमनस्तु ते स्मृताः। (सु.क. 4/24)

पुनः भौम सर्पों के पांच प्रमुख भेद वर्णित किये गये हैं, जो निम्नलिखित हैं—

1. त्वर्वीकर
2. मण्डली
3. गरजिमान
4. निर्विष
5. वैकरज्जन

प्रमोरोक्त पांच प्रकार के पांचे के पुनः भेद बताये गये हैं। इनमें से द्वर्वीकर के 26,

मण्डली के 22, गरजिमान के 10, निर्विष के 12 एवं वैकरज्जन के 3 प्रकार होते हैं।

सर्पों की पहचान अथवा लक्षण (Physical Appearance of Snakes)

1. द्वर्वीकर सर्पः द्वर्वीकर सर्पं चक्रं, हत्तं, छत्रं, स्क्वास्तिक और अंकुश का चिन्ह

धारण करने वाले फण युक्त एवं शोधागामी होते हैं।

2. मण्डली सर्पः यह अनेक प्रकार के मण्डलों से चिह्नित, चपटे, मंद गति

वाले तथा अनिं एवं सूर्य के समान कान्ति वाले होते हैं।

3. गरजिमान सर्पः यह चिकित्से, नाना वर्णों वाले तिक्षी एवं उर्ध्वागामी रेखाओं

से युक्त और चिह्नित होते हैं।

4. निर्विष सर्पः ये विष रहित होते हैं।

5. वैकरज्जन सर्पः ये विष रहित होते हैं।

6. निर्विष विषवर्णमितिवृष्ट्व च गरजिमः।

7. विक्रिता इय ये भान्ति गरजमनस्तु ते स्मृताः। (सु.क. 4/22)

8. निर्विष विषवर्णमितिवृष्ट्व च गरजिमः।

9. विक्रिता इय ये भान्ति गरजमनस्तु ते स्मृताः। (सु.क. 4/23)

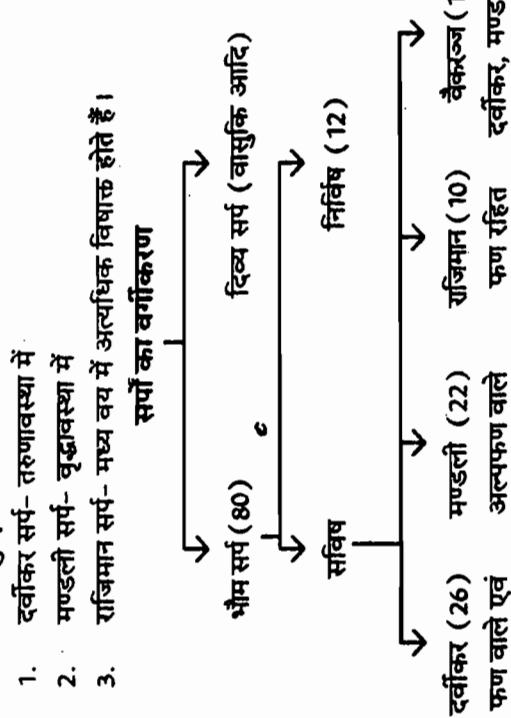
10. विक्रिता इय ये भान्ति गरजमनस्तु ते स्मृताः। (सु.क. 4/24)

५. बैकरन्ज सर्पः बैकरन्ज सर्प दंश की चिकित्सा मिश्रित रूप से को जाती है। उपरोक्त वर्णन में दर्वाकर, मण्डली एवं राजिमान सर्प ही विशेष महत्व के हैं क्योंकि इनका ही विष प्रकोप सर्वाधिक होता है।

सर्पों का विचरण काला¹

१. दर्वाकर सर्पः दिन के समय विचरण करते हैं।
 २. मण्डली सर्पः रात्रि के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय प्रहर में विचरण करते हैं।
 ३. राजिमान सर्पः रात्रि के अंतिम प्रहर में विचरण करते हैं।
- सर्प विष की विशेषता²
१. दर्वाकर सर्प का विष रुक्ष गुण एवं कटु रस युक्त तथा वात प्रकोपक होता है।
 २. मण्डली सर्प विष रुक्ष गुण एवं अस्त रस युक्त तथा पित्र प्रकोपक होता है।
 ३. राजिमान सर्प का विष शीत गुण एवं मधुर रस युक्त होता है तथा कफ का प्रकोपक होता है।
- सर्पों की आयु एवं विष का संबंध³
१. दर्वाकर सर्प- तरुणावस्था में-
 २. मण्डली सर्प- वृद्धावस्था में-
 ३. राजिमान सर्प- मध्य वय में अत्यधिक विषाक्त होते हैं।

सर्पों का वर्गीकरण



१. रज्या: पर्जिने यामे सर्पाङ्गाङ्गाङ्गरक्ति हि। शेषेष्टुा मंडलिनो रित्वा दर्वाकरः स्मृतः॥ (सु.क. 4/31)
२. विसेषाद् रुक्षकटुकट्टोष्णं स्वादु शोत्रात्। विष यथाक्रमं तेषां तस्माद्यातिकोपन्म्॥ (च.चि. 23/126)
३. दर्वाकरन्तु तरुण वृद्धा मण्डलिनस्तथा। राजिमानो वयोपच्छा जायने मृत्युहेतवः॥ (सु.क. 4/32)

६. बैकरन्ज सर्पः बैकरन्ज सर्प दंश की चिकित्सा मिश्रित रूप से को जाती है। उपरोक्त वर्णन में दर्वाकर, मण्डली एवं राजिमान सर्प ही विशेष महत्व के हैं क्योंकि इनका ही विष प्रकोप सर्वाधिक होता है।

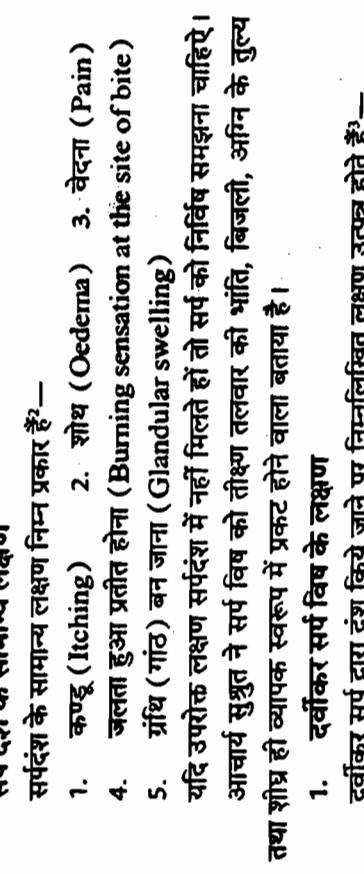
सर्पों का विचरण काला¹

१. दर्वाकर सर्प : दिन के समय विचरण करते हैं।
 २. मण्डली सर्प : रात्रि के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय प्रहर में विचरण करते हैं।
 ३. राजिमान सर्प : रात्रि के अंतिम प्रहर में विचरण करते हैं।
- सर्प विष की विशेषता²
१. दर्वाकर सर्प का विष रुक्ष गुण एवं कटु रस युक्त तथा वात प्रकोपक होता है।
 २. मण्डली सर्प विष रुक्ष गुण एवं अस्त रस युक्त तथा पित्र प्रकोपक होता है।
 ३. राजिमान सर्प का विष शीत गुण एवं मधुर रस युक्त होता है तथा कफ का प्रकोपक होता है।

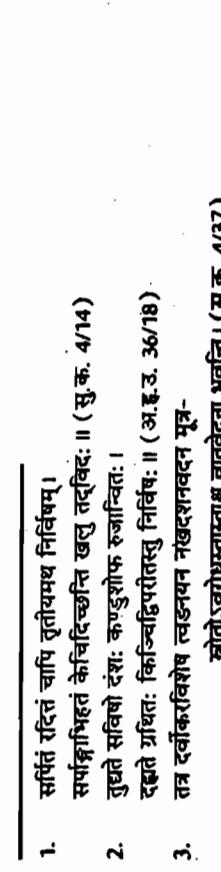
सर्पों की आयु एवं विष का संबंध³

१. दर्वाकर सर्प- तरुणावस्था में-
२. मण्डली सर्प- वृद्धावस्था में-
३. राजिमान सर्प- मध्य वय में अत्यधिक विषाक्त होते हैं।

सर्पों का वर्गीकरण



१. रज्या: पर्जिने यामे सर्पाङ्गाङ्गाङ्गरक्ति हि। शेषेष्टुा मंडलिनो रित्वा दर्वाकरः स्मृतः॥ (सु.क. 4/31)
२. विसेषाद् रुक्षकटुकट्टोष्णं स्वादु शोत्रात्। विष यथाक्रमं तेषां तस्माद्यातिकोपन्म्॥ (च.चि. 23/126)
३. दर्वाकरन्तु तरुण वृद्धा मण्डलिनस्तथा। राजिमानो वयोपच्छा जायने मृत्युहेतवः॥ (सु.क. 4/32)



७. शेष गामी

१. वात प्रकोपक

२. पित्र प्रकोपक

३. निर्विष

४. रात्रि के प्रथम, द्वितीय रात्रि के अंतिम तृतीय प्रहर में विचरण प्रभाव द्विदोष प्रकोपक

५. दिवाचारी

६. राजिमान सर्प

७. वृद्धावस्था में घातक

८. यात्रक

९. मध्यम आयु में घातक

१०. तरुणावस्था में घातक

११. घातक

१२. घातक

१३. निर्विष

१४. रात्रि

१५. सर्पिंत

१६. कण्ठू

१७. जलता हुआ प्रतीत होना

१८. ग्रंथि (गांठ) बन जाना

१९. यदि उपरोक्त लक्षण सर्पदंश में नहीं मिलते हों तो सर्प को निर्विष समझना चाहिए।

आयुर्वेद सुश्रुत ने सर्प विष को तीक्ष्ण तत्त्वावर की भाँति, बिजली, अग्नि के तुल्य होता है।

२०. सर्प विष के सामान्य लक्षण

२१. सर्पिंत रात्रि विष तीक्ष्ण लक्षण निर्विषम्।

२२. सर्पाङ्गाङ्गरक्ति के चिह्नित्वात् खुबु तदविदः॥ (सु.क. 4/14)

२३. तुष्टते सवितो दंशः कण्ठुरुक्षो रुक्षान्वितः।

२४. दद्यते ग्रीष्मतः विज्ञिच्छिरोत्सु निर्विषः॥ (अ.इ.उ. 36/18)

२५. तत्र दर्वाकरन्तु तरुण वृद्धा मण्डलिनस्तथा।

२६. शोतुऽवारोधतात्त्वां चात्रवेदना भवति। (सु.क. 4/37)

- (i) त्वचा, नख, नेत्र, दंत, मुख, मल, मूत्र एवं देश स्थान में कृष्ण वर्णिता
(Black colouration of skin, nails, eyes, teeth, mouth, stool, urine and place of bite)
- (ii) रुक्षता (Roughness)
- (iii) शिर में भारीपन (Heaviness in head)
- (iv) संधियों में वेदना (Joints pain)
- (v) कटि, पृष्ठ ग्रीवा में दुर्बलता (Weakness in waist, back and neck)
- (vi) तन्द्रा (Drowsiness)
- (vii) कम्पन (Tremors)
- (viii) स्वर भ्रंश (Hoarseness of voice)
- (ix) शुष्क उद्यार (Dry eructations)
- (x) कास, श्वास, हिक्का (Cough, Dyspnoea, Hiccough)
- (xi) वायु का उदर प्रदेश में उपर की ओर उठना (Belching)
- (xii) तीव्र उदर शूल (Acute abdomen)
- (xiii) ऐंठन (Cramps)
- (xiv) तुष्णा (Excessive Thirst)
- (xv) अति लालाकाव (Excessive salivation)
- (xvi) मुख से फेन आना (Froath from mouth)
- (xvii) वात जन्य अनेक प्रकार की वेदनाएँ (Various types of Neurological pains)
- (xviii) स्रोतस का बंद हो जाना (Obstructions of microcirculatory channels)

- 2. मण्डली सर्प विष के लक्षण**
मंडली प्रकार के सर्प देश से शरीर में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं—
- (i) त्वचा, नख, मल, मूत्र आदि का वर्ण पीत हो जाना (Yellow colouration of skin, nails, stool and urine)
- (ii) शीत पदार्थों की इच्छा करना (Desire for cold things)
- (iii) सर्वांग में संताप (Increased body temperature)
- (iv) दाह (Burning all over body)

1. मण्डलिविशेष त्वागादीनों पौत्रत्वं शीतामिलाः

..... पीतरुपदर्शनमयुक्तोपस्तास्ताष्पितवेदना भवति,

(सु.क. 4/37)

- (v) तुष्णा (Excessive Thirst)
- (vi) मद (Confusion)
- (vii) पूच्छर्ण (Fainting)
- (viii) ज्वर (Fever)
- (ix) रक्त की उर्ध्व एवं अधी मार्ग से प्रवृत्ति (Bleeding from mouth, nose, eyes, anus and urethra etc.)
- (x) मांस का विदीर्ण होना (Ulceration of muscles)
- (xi) शोथ (Oedema)
- (xii) देश स्थान का सङ्घना (Putrefaction at the place of bite)
- (xiii) पीते रूपों को देखना (To see all the subjects yellowish)
- (xiv) विष का शीघ्र कुपित होना (Early spread of poison)
- (xv) पित जन्य अनेक प्रकार की वेदनाएँ (Disorders of Pitta Dosha)
- 3. गरजिमान सर्प विष के लक्षण**
गरजिमान सर्प के देश से रोगी में निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं—
- (i) त्वचा, नख आदि श्वेत वर्ण के हो जाते हैं (Whitish colour of skin, nails etc.)
- (ii) शीत के साथ ज्वर (Fever with rigors)
- (iii) रोमहर्ष (Horripilation)
- (iv) अंगों में स्तन्यता (Stiffness in body parts)
- (v) देश स्थान के चारों ओर शोथ (Oedema around the site of bite)
- (vi) गाढ़े कफ का मुख से काव (Secretion of mucoid sputum from mouth)
- (vii) बार-बार वर्मन होना (Frequent vomiting)
- (viii) नेत्र कण्ठ (Itching in eyes)
- (ix) गले में शोथ (Swelling in throat)
- (x) गले में घरघराहट होना (Gargling sound in throat)
- (xi) श्वासवरोध (Breathlessness)
- (xii) नेत्रों के सामने अधोरा छा जाना (Black out)
- (xiii) विविध प्रकार की कफ जन्य वेदनाएँ (Different types of Kaphaja pains)

1. गरजिमिहेण गुरुत्वात् त्वागादीनों शीतामिलाः

..... प्रेवेशत्वामाश कफवेदना भवति॥ (सु.क. 4/37)

सर्पदंश के लिङ्ग भेद एवं अन्य अवस्थाओं के लक्षण विभिन्न प्रकार के स्थी. पुरुष, गर्भिणी, बालक इत्यादि प्रकार के सर्पदंश से उत्पन्न लक्षण निम्न प्रकार प्रकट होते हैं—

- पुरुष सर्प से दंश में अक्ति कपर की ओर देखता है।
- स्त्री सर्प दशित व्यक्ति नीचे की ओर देखता है एवं उसके माथे पर शिरों पर उभर आती है।
- नयुंसक सर्प से दंश में रोगी तिरक्षा देखता है।
- गर्भवती सर्पिणी के दंश में मनुष्य के मुख का वर्ण फाँड़वर्ण एवं शोथ युक्त होता है।
- प्रसूता सर्पिणी से दंश में तीव्र उदर शूल एवं रक्तमिश्रित मूत्र प्रवृत्ति तथा उपजचिह्निका रोग होता है।
- भूखे सर्प दंश में मनुष्य को अन्न की इच्छा होती है।
- बुद्ध सर्प दंश में विष धीरे-धीरे तथा मंद वेग वाला होता है।
- बालक सर्प से दंश में विष तेजी से चढ़ता है परंतु मंद वेग वाला होता है।
- निर्विंश सर्प दंश से कोई विकार नहीं होता है।
- अंधे सर्प के दंश से मनुष्य अंधा हो जाता है।

सर्प विष के विविध वेगानुसार लक्षण—

वेग	दर्विकार सर्प (वात प्रकोपक)	मण्डली सर्प (पित्त प्रकोपक)	राजिमान सर्प (कफ प्रकोपक)
प्रथम	1. रक्त विकार वेग	शोणित विकृति शरीर पर चींटी रेगने	रक्त विकार पाण्डुवर्णता रोम हर्ष
द्वितीय	1. विष का मांस में प्रवेश वेग	विष का मांस में प्रवेश अतिशय पीलापन	मांस शैश्वल्य शिर में शोथ
	2. अति कृष्णता 3. शोथ एवं गाठे का निकलना	एवं शीत ज्वर दाह एवं दंश स्थान में जड़ता होना	जड़ता होना शोथ
तृतीय	उच्च प्रेतते, अधितात् रिक्ता, अंधाहिकेनाच्छत्वमिवेके। (सु.क. 4/38)	दंश स्थान में लाव त्वेदागमन	दंश स्थान से लाव तत्त्वा नैत्र से लाव स्वेदागमन
	2. तत्र सर्वेषां प्रपाणी विषस्य स्तम वेगा भवति। तत्र दर्वा—	विष का मेद में प्रवेश कोह में विष का प्रवेश ज्वर की अति तीव्रता शिर में भारीपन मन्त्रस्तम्भ	दंश स्थान से लाव तत्त्वा नैत्र से लाव विष का कोह में प्रवेश ज्वर की अति तीव्रता शिर में भारीपन मन्त्रस्तम्भ

वेग	दर्विकार सर्प (वात प्रकोपक)	मण्डली सर्प (पित्त प्रकोपक)	राजिमान सर्प (कफ प्रकोपक)
सप्तम	1. विष का शुक्रधातु में वेग प्रवेश	दर्विकार के समान लक्षण	दर्विकार के समान लक्षण
षष्ठम	2. व्यान वायु का प्रकोप सूक्ष्म शिराओं से कफ का साव	2. व्यान वायु का प्रकोप सूक्ष्म शिराओं से काटि एवं पृष्ठ भंग आति लाला साव	दर्विकार के समान लक्षण
प्रथम	3. द्वेष का शुक्रधातु में प्रवेश	3. द्वेष का शुक्रधातु में प्रवेश	दर्विकार के समान लक्षण
द्वितीय	4. काटि एवं पृष्ठ भंग 5. आति लाला साव	4. काटि एवं पृष्ठ भंग 5. आति लाला साव	दर्विकार के समान लक्षण
	6. स्वेद की अति प्रवृत्ति 7. श्वासावरोध होना	6. स्वेद की अति प्रवृत्ति 7. श्वासावरोध होना	दर्विकार के समान लक्षण

- पुरुषभित्व उच्च प्रेतते, अधितात् रिक्ता,
अंधाहिकेनाच्छत्वमिवेके। (सु.क. 4/38)
- तत्र सर्वेषां प्रपाणी विषस्य स्तम वेगा भवति।
तत्र दर्वा—

सर्पदंश की साध्यासाध्यता

आचार्य भाष्यकार ने निम्नलिखित अवस्थाओं में सर्पदंश को असाध्य कहा है—

1. अजीर्ण, मित एवं धूप से गीड़त व्यक्तियों में।
2. बालक, बुद्ध एवं भूखे व्यक्तियों में।
3. शतक्षीण, प्रमह एवं कुछ गीड़त व्यक्तियों में।
4. रक्ष शरीर वाले एवं निर्बल व्यक्तियों में।
5. गर्भवती लिंगों में सर्पदंश असाध्य होता है।
6. शस्त्र से क्षत होने पर भी यदि रक्त नहीं निकलता हो।
7. लता या रस्सी से बांधने पर भी शरीर पर रेखाएँ नहीं उभरती हों।
8. ठंडे जल से सिंचन करने पर भी गेम हर्व नहीं होना।
9. जिसका मुख टेढ़ा हो गया हो।
10. जिसके केश गिरने लो हों।
11. नासा भंग एवं स्वरभंग हो गया हो।
12. दंश स्थान पर रक्मायुक्त कृष्ण वर्ण का शोथ हो।
13. हुन्स्तम्प हो गया हो।
14. मुख से मोटी बत्ती के समान लालास्वाव होता हो।
15. उर्ध्व एवं अधो मार्ग से रक्त शब्द।
16. दंश स्थान पर चारों देशों के निशान हों।
17. रोगी अत्यन्त उन्मत हो।
18. अत्यधिक उपद्रव उत्पन्न हो जाने पर।
19. स्वर हीनता एवं वाणी में विकृति उत्पन्न हो गयी हो।
20. सभी अस्त्र लक्षण व्यक्त हो जाने पर।
21. मलमूत्र प्रवृत्ति अथवा अच्युक्ति किसी प्रकार के गमन में रोगी असमर्थ हो गया हो, वह सर्पदंश युक्त व्यक्ति असाध्य होता है अर्थात् उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए।

सर्पदंश चिकित्सा सिद्धांत

आचार्य चरक ने सर्पदंश हेतु 24 प्रकार से आवश्यकता अनुसार चिकित्सा करने का निर्देश किया है जो निम्न प्रकार से है—

1. अजीणितप्राणितेरु.....

..... च जाता नां कर्म न तज कुर्यात्॥ (मा.नि. 69/20-24)

2. मन्त्राणिलोक्तर्तनिष्ठीडनचृष्णानिपरिवेका।

अवगाहरकमोक्षणवन्दिकोपथगानि॥

हृदयावरणाङ्गनस्तपूमलेहैष्वधरमगानि।

1. मन्त्र : देवता, बह्यरिंगों द्वारा कहे गये सत्य एवं तपोमय मन्त्र सर्प चिकित्सा में लाभदायक हो सकते हैं परंतु यह कार्य स्तिष्ठ पुरुषों द्वारा ही होना चाहिए।

2. अरिष्टा बंधन : हस्त, पैर प्रभृति शाखाओं में दंश स्थान से चार अंगुल ऊपर रस्सी से कसकर बांध देना चाहिए जिससे विष का संचार ऊपर नहीं हो पाता है।

3. उत्कर्तन : दंश स्थान को तेज चाकू अथवा ब्लौड से काट देना चाहिए जिससे विषयुक्त कुछ रक्त बाहर निकल जाये।

4. निष्पीड़न : दंश स्थान काटने के पश्चात दबाकर रक्त निकालने कि प्रक्रिया निष्पीड़न है।

5. चूषण : दंश स्थान पर शंग लगाकर वहां के सविष रक्त को चूसकर निकालना चाहिए। परंतु विष उक्त रक्त में नहीं जाना चाहिए।

6. अग्नि से दहन : दंश स्थल को काटने के पश्चात अग्नि से दहन करना चाहिये। वर्तमान में पोटेंशियल परमैगेनेट या सिल्वर नाइट्रोट से दहन करते हैं। मण्डलि सर्प दंश में दहन का निषेध है क्योंकि यह पित्रप्रधान होता है। दाह लच्छा एवं मासगत विष की अवस्था में करना चाहिए।

7. परिसेचन : दंश स्थान पर विषज्ञ तैलों को धारा के रूप में सिंचन करना परिसेचन है।

8. अवगाहन : रोगी के शरीर से विष को नष्ट करने हेतु विषज्ञ औषधि द्रव्यों से निर्मित क्वाथ, तैल, उज्ज्वाल इत्यादि को टब में भरकर उसमें रोगी को लियाना चाहिए।

9. रक्त मोक्षण : सर्प के दोषानुसार, शंग, जलौका, अलालू इत्यादि से रक्तमोक्षण करके रक्त से विष निकालना चाहिए।

10. वमन : सर्पदंश के कोष गत लक्षण उत्पन्न होने पर रोगी को वामक द्रव्यों का पान कराकर वमन कराना चाहिए।

11. विरेचन : यदि विष अधो आमाशय अथवा वृहदान्त तक पहुंच गये हों तो ऐसे रोगी को तत्काल विरेचन कराना चाहिए।

12. उपधान : उपधान का तात्पर्य है सिर के ऊपर त्वचा को काटकर औषधि का प्रयोग करना। यह विधि आधुनिक सूची वेध चिकित्सा से साम्यता रखती है। इस चिकित्सा का तात्पर्य है शीघ्रातिशीघ्र रोगी के रक्त में विषज्ञ औषधि का प्रवेश कराना जिससे सर्प विष को नष्ट किया जा सके।

13. हृदयावरण (हृद्य औषधि प्रयोग) : हृद्य को प्रथान मर्म स्थान माना गया

प्रतिसारण प्रतिविषं संज्ञासंस्थापनं लोपः॥

मृतसंज्ञिवनमेव च विंशतिते चर्तुभिरधिकाः।

प्रयुरुपक्रम्य यथा यत्र च माज्या: शृणु तथा तान्। (च.चि. 23/35-37)

२३ का.नि.-३

है अतः सर्पदंश की अवस्था में हृदय औषधियों का प्रयोग, हृदय की रक्षा के निमित्त अवश्य करना चाहिए।

14. अंजन : यदि केवल विष के प्रभाव से नेत्र से दिखाई न नहुता हो तो देवदार, चिकित्सा इत्यादि को अजा मूत्र से पीसकर अंजन लगाना चाहिए।

15. नस्य : यदि विष के प्रभाव से नासा, नेत्र, कर्ण, जिहा एवं कण्ठ का अवरोध हो रहा हो तो बहुती, जिजोरा नीबू, ज्योतिष्मती तैल इत्यादि का नस्य देना चाहिए।

16. धूम : मोर की पंख, बगुले की अस्थियाँ, पीली सर्प, चंदन के चूर्ण में घृत मिलाकर धूप करने से गृह, शयन, आसन, वस्त्र आदि का विष नष्ट हो जाता है।

17. अवलोह : विभिन्न प्रकार की विषाशक औषधि द्रव्यों को अवलोह के रूप में निमित्त कर रोगी को सेवन करना चाहिए।

18. औषधि प्रयोग : अनेक प्रकार की विषहर औषधि द्रव्यों का वाह्य एवं आम्लान्तर स्वरूप में प्रयोग करना।

19. प्रशमन : प्रशमन का तात्पर्य विष के उपशमन से है अर्थात् विभिन्न प्रकार के शामक उपायों द्वारा शारीरिक विष को नष्ट करना।

20. प्रतिसारण : प्रतिसारण का अर्थ है छिड़काव करना। विष के स्थानीय प्रभाव को नष्ट करने के लिए देवदार, हरिदा, शिरीष इत्यादि अथवा विशेष प्रकार के आद का स्थानीय प्रतिसारण करना चाहिए।

21. प्रतिविष का प्रयोग : प्रतिविष का तात्पर्य है शरीर में पहुंचे हुए विष को तत्काल नष्ट करने वाली औषधि। वर्तमान काल में अधिकांश विषों के प्रतिविष तैयार किये जा चुके हैं जिनका विष चिकित्सा में मरलता से प्रयोग किया जाता है।

22. संज्ञास्थापन : विष घ्रस्त हेणी यदि मूर्च्छित हो गया हो तो उसे पुनः होश में लाने हेतु संज्ञास्थापक औषधियों जैसे जटामासी इत्यादि का प्रयोग नस्य, धूम आदि के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

23. लेप : लेप का स्थानीय प्रयोग किया जाता है।

24. मृत संजीवन का प्रयोग : चरक संहिता में वर्णित यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आद है। यह सभी प्रकार के विष विकारों पर विजय प्राप्त करने वाला होता है। मृत संजीवन आद को अमृत के सान लाभकारी बताया गया है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन । 24 प्रकार की चिकित्सा सर्पदंश ही नहीं अपितु सभी प्रकार के विषों की चिकित्सा में अतीव लाभकारी है और इसका युक्ति पूर्वक प्रयोग करना चाहिए।

सर्पदंश चिकित्सा

सर्पदंश चिकित्सा को निम्न दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं-

I. आत्माविक चिकित्सा¹

1. सर्प के दंश करते ही सम्बव हो तो उसी सर्प को काट लेना चाहिए अथवा पिंटी के ढेले या पृथ्वी को दांतों से काटकर कान की मैल या धूक से दंश स्थान पर लेप करें।
दंश स्थान से चार अंगुल ऊपर रस्सी इत्यादि से अस्थिबंधन करना चाहिए।
2. मर्म एवं सन्धि स्थान छोड़कर अन्य स्थान पर चौरे लगाकर दबा-दबा कर रक्त को निकाल दें।
3. मण्डली सर्पदंश के अन्तिरिक अन्य प्रकार के सर्प दंश में दंश स्थान का अग्निकर्म करें। मण्डली में पित्त की प्रधानता होती है अतः अग्नि कर्म का निषेध है।
4. मण्डली सर्पदंश के अन्तिरिक अन्य प्रकार के सर्प दंश में दंश स्थान का व्रण होने पर आचूषण नहीं करें।
5. विष को आचूषण करके निकालना चाहिए उसके लिए रबर ट्यूब, शून्य आदि या मुख में घृत लगाकर रुई रखकर आचूषण करना चाहिए। मुख में घृत या व्रण होने पर आचूषण नहीं करें।
6. विष के सर्वशरीर में फैल जाने पर रक्तमोक्षण करना चाहिए।
7. रक्तमोक्षण के बाद शरीर में चौरे विष की शांति के लिए बार-बार शीतल लेप और सेक करें।
8. हृदय की रक्षा करने के लिए घृतपान अथवा घृत एवं मधु या घृत से द्रवी भूत अगद का पान कराएं।
9. हृदय में भारीपन, उत्क्लेश एवं हळस होने पर रोगी को कांजी, कुलथ, तैल, मद्य के अतिरिक्त अन्य द्रव्यों से बमन कराएं।
उपरोक्त वर्णित सभी चिकित्सा सर्पदंश की तात्कालिक या आकस्मिक चिकित्सा (Emergency treatment) है। सर्पदंश सद्यः मृत्युकारक होता है अतः आकस्मिक चिकित्सा अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

II. सर्पदंश की विशेष चिकित्सा

आयुर्वेदिय संहितां ग्रंथों में आचार्यों ने दर्वीकार आदि सर्पदंश की अलग-अलग चिकित्सा का भी वर्णन किया है जो निम्न प्रकार है—

1. दर्वीकार सर्पविष की चिकित्सा
 - (i) सिन्दुवार की मूल, बच्चा एवं अपराजिता को जल में पीसकर पिलावें।
 - (ii) कुष का मधु के साथ नस्य देवें।

1. लोष मर्दि का दर्वीसिल्लता चाटु.....¹

2. सम्यालोच्य विशेष चारोंक्रियाम्॥ (अ.ह.उ. 36/41-56)
- सिन्दुवारितमूलनि शेता च गिरिकिंचिका।
पान दर्वीकारेत्वं नस्य मधु सपाकलम्॥ (अ.ह.उ. 36/57)

दंश स्थान पर चारों एवं नाकुली (सर्पांथ) का लेप करें।

१०.) वत्सनाम को पीसकर दंश स्थान पर लेप करें।

(v) रोगी को मधु मंजिष्ठा एवं गुहधूम में घृत मिलाकर पान करावें।

2. मण्डली सर्पिक्ष की चिकित्सा

(i) सुंगांधा, मृदुका, गजकणिका समझा को तुलसीपत्र, कैथ, बिल्ल एवं अनारदाना आधा भाग लेकर चूर्ण कर मधु से चटाएं। इसे नाकुल्यादि अगद कहते हैं।

(ii) हिमवन अगद (पञ्चवल्कल, क्रिफला, मधुरष्टि, नागकेशर) के चूर्ण को मधु के साथ दें।

3. गरजिमान सर्पिक्ष की चिकित्सा

(i) बांस की छाल एवं बीज, कुटकी, पाटली बीज, शुण्ठी, शिरोष के बीज, अतिविष, गवेशुक का मूल गोमूत्र में फैसलकर पिलाएं।

(ii) कुटकी, अतिविष, कुष्ठ, गुहधूम, हरेणु प्रिकड़, तार, को मधु के साथ पिलाएं।

(iii) मेषनाद आद (चौलाई, गरजिमी, अपामार्ण, अपराजिता, बिजौरा नीबू शर्करा, श्लेष्मातक) का पान, नस्य एवं अंजन अत्यन्त हितकारी हैं।

१. कृष्णसर्पेण दृष्टस्य लिप्येद दर्शं होतेऽप्युचिति।

चारटीनाकुलीभ्याम चा तीक्ष्णमृतविषेण चा।।

पानं च शौद्रमञ्जिष्ठगृह्यमृतं घृतम्। (अ.ह.उ. 36/58-59)

2. समाः सुगच्छमृद्दीकाश्चतारख्यागजदत्तिकः।।

आपाश शोरसं पदं कमित्य बिल्लदाहिमम्॥

3. पञ्चवल्कलवरायणीनापुष्टेभत्वातुकम्।।

जीवकर्षभक्तो शोत सिता पद्मकुमुलम्॥

सक्षेष्टो द्विप्लवान्नम हन्त मण्डलिनां विषम्॥ (अ.ह.उ. 36/63-64)

4. कारमध्यं वर्तयुक्तानि जीवकर्षभक्तो सिता।

मीज्ञामा मधुकं चेति दर्शे मण्डलिना पिवत्॥ (अ.ह.उ. 36/65)

वर्षत्वान्वोजकद्वापतलीबीजनारम्।

गिरीषबीजातिविषे मृतं गवेशुकं चवा॥

पिण्डो गोवातिरात्प्याङ्गो हेत्ति गोनसनं विषम्॥ (अ.ह.उ. 36/66)

6. कुटुम्बितिविषाकुशाश्रृहभूमेषुकाः।।

सक्षेद्रव्योषतार्था ग्रन्ति राजीवना विषम्॥ (अ.ह.उ. 36/67)

7. तप्तुलोयककारमध्यकिणीतिकरितिः।।

मातृतुली सिता शेतुः पानस्याज्ञनैर्हितः॥

ओमः फणिना चोरं तिव्रे राजीवनामपि। (अ.ह.उ. 36/60)

समर्देश की वेगानुसार चिकित्सा

वेगां संख्या	दर्वीकर सर्पे	मण्डली सर्पे	गरजिमान सर्पे
प्रथम 1. रक्तमोक्षण कराएं	रक्त मोक्षण	—	तुम्बी (आलाबू) से रक्तमोक्षण
वेगा 2. —	—	मधु एवं घृत मिश्रित अगद पान कराएं	वेगन कराने के बाद विषनाशक अगद पान

द्वितीय 1. मधु एवं घृत से अगद का पान कराएं	मधु एवं घृत से अगद पान	वेगा 2. —	विषनाशक समान चिकित्सा
वेगा 1. विषनाशक नस्य विषष्ण यवाग् पान	तीक्ष्ण विरेचन विषष्ण यवाग् पान	वेगा 2. अज्जन का प्रयोग	दर्वीकर समान चिकित्सा
चतुर्थ 1. वमन कराकर विष-वेगा नारक यवाग् पान	दर्वीकर समान चिकित्सा	चतुर्थ 1. वमन कराकर विष-वेगा नारक यवाग् पान	दर्वीकर समान चिकित्सा
पंचम 1. शीतल उपचार वेगा 2. तीक्ष्ण विरेचन तत्पश्चात विषष्ण यवाग् पान	दर्वीकर समान चिकित्सा दर्वीकर समान चिकित्सा	पंचम 1. पंचम वेग के समान वेगा 2. तीक्ष्ण विरेचन तत्पश्चात विषष्ण यवाग् पान	दर्वीकर समान चिकित्सा दर्वीकर समान चिकित्सा

षष्ठम 1. पंचम वेग के समान वेगा चिकित्सा	काकोल्यादि गण की अवैधियों का पान या अगद पान	सप्तम 1. तीक्ष्ण अवपीड नस्य वेगा	विषनाशक अगद का अवपीड नस्य का प्रयोग
2. तीक्ष्ण अंजन वेग से सिर पर काकपद (+)	अवपीड नस्य देना चाहिए करें।	2. तीक्ष्ण अंजन वेग से सिर पर काकपद (+)	अवपीड नस्य देना चाहिए करें।
3. तीक्ष्ण शस्त्र से सिर पर काकपद (+)	अवपीड नस्य देना चाहिए करें।	3. तीक्ष्ण शस्त्र से सिर पर काकपद (+)	अवपीड नस्य देना चाहिए करें।
रक्तमिश्रित मासं या ताजा चम रखना चाहिए	निशान बनाकर उस पर काकपद (+)	रक्तमिश्रित मासं या ताजा चम रखना चाहिए	निशान बनाकर उस पर काकपद (+)

1. फणिना विषवेते तु प्रयमे.....	काकपद चर्म सासूचा विषितं क्षिषेत्॥ (सु.क. 5/20-23)
2. पूर्वे मण्डलिना वेगे दर्वीकरवदन्ते।	त्वांतः सम्मेव विषनाशनः॥ (सु.क. 5/24-27)
3. पूर्वे राजिमाना वेगे त्वांतः शोणित हेत्।	तीक्ष्णतमवप्योदश सम्मेव॥ (सु.क. 5/28-29)

सर्पविष में प्रयुक्त प्रमुख शामन योग

- सस/भस्म**

मात्रा : 125-250 मि.ग्र.
अनुपान : शीतल जल, दुध या घृत
(i) भीम रुद रस : पारद, गंधक, अध्रक, कांत लौह भस्म
(ii) विषवध्रपात रस : हरिद्र, टंकण, जावित्रि, तुथ
- मात्रा**

अनुपान : 1 ग्राम
(iii) भीम रुद रस छितीय : मनःशिला, हरताल, संखिया, हिंगुल
(iv) सूचिका भरण रस : वर्तनाभ, पारद
(v) तुथ भस्म : तुथ
- बटी**

मात्रा : 250-500 मि.ग्र.
अनुपान : शहद, दुध
(i) कूलकादि बटी : कालिया कड़ा की मूल, सप्तपर्ण, संखिया
- मात्रा**

अनुपान : 125 मि.ग्र.
(ii) मूत संजीवनी बटी : विंडग, शुणी, पिप्पली, भलातक, विष
- मात्रा**

अनुपान : 400 मि.ग्र.
अर्द्धक स्वरस : आर्द्धक स्वरस
- कूर्ण**

मात्रा : 2-4 ग्राम
अनुपान : शहद, दुध, जल
(i) अजितागद कूर्ण : वार्यविंडग, पाता, त्रिफला
(ii) दशाङ्कागद कूर्ण : वचा, हिंगु, विंडग, सेन्धव, पाठा
- आसव/अरिष्ट**

मात्रा : 20 मि.लि.
अनुपान : जल
(i) शिरीषारिष्ट : शिरीष छाल, पिप्पली, प्रियंगु शुणी, एला
- घृत/तेल**

मात्रा : 10-20 मि.लि.
अनुपान : दुध
(i) तण्डुलीयक घृत : गोघृत, अजा घृत, चौलाई मूल, गृहधृम

- | | |
|---------------------------|------------------------------|
| (ii) प्रत्युपशाच्छेदी घृत | : गोघृत, हरीतकी, कुच्छ, अर्क |
| (iii) शिखरी घृत | : गोघृत, अपामर्णा, अनार, एला |
| 6. अञ्जन | |
| मात्रा | : आवश्यकतानुसार |
| (i) गरुणाञ्जन | : पाताल गरुणी |
| 7. एकल औषधियाँ | |
| (i) द्रोण पुष्पी | (ii) पाताल गरुणी |
| (iii) श्वेत करवीर मूल | (iv) धूयर पिच्छ |
| (v) टंकण | (vi) जयपाल |
| (vii) रीठा | (viii) उशीर |
| (ix) गोघृत | (x) अर्कमूल |
| (xi) चौलाई | (xii) निम्ब |
| (xiii) मोरनी का अंडा | (xiv) तुथ |
| (xv) जहरमोहरा | (xvi) अपामर्णा |
| (xvii) पिप्पली. | (xviii) श्वेत पुरुनबा |
| (xix) बाकुची | (xx) निर्णदी |
| (xxi) वर्ण इत्यादि। | |

- आदर्श चिकित्सा पत्र
- तत्काल अरिषांबधन, रक्तमोक्षण, अग्निकर्म, परिषेक, अवगाह इत्यादि।
 - पाताल गरुणी मूल : 6 ग्राम
काली मिर्च : 3 दाना
पीसकर 20 मि.ली. जल से : 1 × 8 मात्रा
 - संजीवनी बटी : 500 मि.ग्र.
शुद्ध टंकण : 250 मि. ग्र.
तुथ भस्म : 60 मि.ग्र.
घृत से : 1 × 4 मात्रा
 - शिरीषारिष्ट : 20 मि.लि.
समभाग जल से : 1 × 3 मात्रा
 - तण्डुलीयक घृत : 10 मि.लि.
दुध से : 1 × 3 मात्रा
 - हर्षण, आश्वासन एवं सत्त्वावज्य चिकित्सा
7. पथ्यापथ्य पालन

सर्व विष से मुक्त के लक्षण
किसी भी प्रकार के विष से मुक्त के लक्षण शास्त्रों में निम्नलिखित बतलाए गये हैं—

1. प्रकुपित दोष की शांति।
2. धातुऐं प्रकृतिस्थ हो गयी हों।
3. रोगी अन्न सेवन की इच्छा रखता हो।
4. रोगी में मल मूत्र की प्रवृत्ति उचित रूप से हो रही हो।
5. वर्ण, इरिय, मन एवं शरीर चेष्टाएं सामान्य हो गयी हों।

सर्व दंश से बचाव के उपाय
दिन में भाता एवं रात्रि में ज़फरी की आवाज सुनकर सर्व भाग जाते हैं। दिन में भाता की आवाज एवं रात्रि में ज़फरी की आवाज सुनकर सर्व भाग जाते हैं।

Latest Developments

Snake Bite

(Common Poisonous Snakes)

1. Elapids : Indian cobra, Cobra, Common Karrait.
2. Vipers : Russell's Viper and Saw Scaled Vipers

Venoms

Most venoms are complex mixture of many different toxins.
1. Proteinases act as cytotoxins causing local swelling and damage at the site of bite.

2. Neurotoxins : Interferes with neuromuscular transmissions. Some phospholipase A₂ toxins also damage myocytes directly.

3. Some venoms contain haemorrhagins which cause bleeding.
4. Coagulopathies may be caused by action of venom components.

Sings and Symptoms

It depends on the type of snake venom.

1. Elapids

(i) Local effects

Bites of Karaits produce little pain and negligible local changes. But Cobras cause immediate pain and rapid swelling with enlargement

1. प्रशांतदेवं प्रकृतिस्थथातुमायामिकामं सम्प्रविदकम्।
2. छन्नी झङ्गरपाणिष चोद्रात्री विशेषम्।

तच्चयापब्लिक्रताः प्रणश्यन्ति भुजद्वमः ॥ (अ.ह.३. 36/93)

of regional lymph nodes. Local blistering occur within a few hours and necrosis develops within a few days.

(ii) Vomiting

Vomiting may begin within 30 minutes and it is an early evidence of systemic poisoning.

(iii) Neurotoxicity

- | | | |
|------------------------------|---|-----------------------------------|
| Preparalytic Symptoms | * | Blurred vision |
| Sings | * | Paresthesia around mouth and gums |
| * | * | Hypersalivation |
| * | * | Congestion of conjunctiva |
| * | * | Drowsiness |

Ptosis, Paralysis of upward gaze, total external ophthalmoplegia, inability to open mouth, speak and swallow.

- * Respiratory paralysis.

(ii) Vipers

(i) Local effects

- a) Pain, local swelling and bruising within 1-2 hours.
- b) Tender enlargement of regional lymph nodes.
- c) It may spread to whole limbs and adjacent trunk over next 2 to 3 days.

(ii) Haemostatic Abnormality

- a) Spontaneous bleeding from gums, nose, GIT, skin etc.
- b) Intracranial, retroperitoneal and G.I. Haemorrhage may prove to be fatal.

- c) Defibrination causing incoagulable blood, may be found within one hour of the bite.

(iii) Shock

- a) Shock and Hypotension due to hypovolaemia.
- b) Conjunctival, facial, pulmonary oedema.
- c) Angio oedema, abdominal colic, diarrhoea.
- d) Cardiac arrhythmias.

(iv) Acute renal failure

- Very common after bite of Russell Vipers.

- (v) **Destruction of skeletal muscles**
It leads to painful myopathy and paralysis.

(vi) **Neurological Effects**

Some vipers produce neurotoxic symptoms with myoglobinuria

Management : Principles

1. **Local Management**

- (i) Measures to prevent absorption of poison-
- (a) Application of pre-sure bandage two inch proximal to site of bite.

- (b) Incisions and suctions of blood. It can remove 50% of the poison.

- (ii) If patient comes to late, the swelling and inflammation should be treated and give antibiotics.

- (iii) Surgical debridement and skin grafting at a later stage in case of extensive necrosis

2. **Antivenom**

- (i) Sensitivity should be tested by giving in intradermal test dose.
- (ii) 20ml of serum is given intravenous as first dose slowly over 20 minutes.

- (iii) Second dose can be repeated after 2 hours if symptoms persists.

Indications for Antivenom

Hypotension, shock, CVS toxicity, ptosis, systemic bleeding, dark urine, tender stiff muscles, acidosis, elevated serum enzymes.

3. **General treatment**

- (i) Tetanus toxoid 1ml. intramuscular.
- (ii) Antihistaminics
- (iii) Analgesics for pain
- (iv) Corticosteroids- I.V. Hydrocortisone 100mg 6 hourly in case of severe shock

4. **Management of complications**

- (i) Manage respiratory paralysis- Oxygen therapy
- (ii) Acute renal failure- I.V. fluids, Mannitol.
- (iii) Shock : Plasma volume expanders, Blood Transfusion.
- (iv) Symptomatic management.

••• शुभ कृष्ण •••

2. वृश्चिक दंश

(Scorpion Sting)

परिचय

वृश्चिक एक अत्यन्त विषेता कीट होता है। यह ईंट, पत्थर, कुड़े के डेर, उपलों के डेर, चूहों इत्यादि के बिलों में पाया जाता है। सामान्य भाषा में इसे बिच्छू भी कहते हैं। वृश्चिक प्रायः रात्रि में ही अपने स्थान से शिकार की तलाश में निकलते हैं तथा पैरों से दबने, या स्पर्श होने पर डंक मारते हैं। वृश्चिक प्रायः काले भूंसे रंग के, दो तीन इच्छ तक लंबे होते हैं। इसके शरीर में लागभा पांच खंड होते हैं तथा एक पुच्छ होती है। पुच्छ के अंतिम भाग में तुण्ड होता है। इसी से वृश्चिक डंक मारते हैं।

मंदर्भग्रंथ

- | | | | |
|----|---------------------------|---|-----------|
| 1. | चरक संहिता चिकित्सा स्थान | - | अध्याय 23 |
| 2. | सुश्रुत संहिता कल्प स्थान | - | अध्याय 8 |
| 3. | अष्टांग हृदय उत्तर तंत्र | - | अध्याय 37 |
| 4. | माधव निदान | - | अध्याय 69 |
- वृश्चिक की उत्पत्ति, भेद एवं संभावा.^{1, 2}

आचार्य सुश्रुत ने लक्षणों के आधार पर वृश्चिक के तीन भेद माने हैं एवं कुल 30

प्रकार के वृश्चिक बताये हैं—

1. मंद विष वाले वृश्चिक - 12 प्रकार
 2. मध्य विष वाले वृश्चिक - 03 प्रकार
 3. तीव्र, उग्र या महाविष वाले वृश्चिक - 15 प्रकार
- वृश्चिक की उत्पत्ति³
1. गाय, भैंस के गोबर के सड़ने से मंद विष वाले वृश्चिक की उत्पत्ति होती है।
 2. काल्ड के सड़ने एवं इटों से मध्यम विष वाले वृश्चिक की उत्पत्ति होती है।
 3. मृत सर्प, उसके सड़े अण्डों एवं विष से मृत प्राणियों के सड़ने से तीव्र विष वाले वृश्चिक की उत्पत्ति होती है।

वर्स्तु: संहिताओं में वर्णित वृश्चिक उत्पत्ति के वर्णन से श्रम उत्पन्न होता है एवं अधुनिक मत से यह पूर्णतः असत्य प्रतीत होता है। अतः वृश्चिक उत्पत्ति से हमें यह

-
1. चिकित्सा वृश्चिका: प्रोका मन्दप्रथमहविषा: || (सु.क. 8/56)
 2. मन्दा द्रादस मध्यास्तु त्रयः पञ्चदशोत्तमा: ||
 3. दंश विशारितिर्वेते सरख्या परिकीर्तिः: || (सु.क. 8/58)
 3. गोपकृत्कीर्तजा मन्दा मध्या: काष्ठिकोद्भवाः: || (सु.क. 8/57)

दंशजनित विकार एवं उनकी चिकित्सा

समझना चाहिए कि संहिताओं में वर्णित वृश्चिक उत्पत्ति के स्थलों पर तत्-तत् विष की तीव्रता वाले वृश्चिक बहुतायत से पाये जाते हैं।

वृश्चिक दंश के प्रमुख लक्षण

सामान्यतः वृश्चिक दंश में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं—

1. वृश्चिक विष अत्यन्त तीक्ष्ण होता है (Scorpion poison is very fast acting)
2. प्रारम्भ में अग्नि की तरह दाह करता है (Burning like fire)
3. विष प्रारम्भ में ऊपर की ओर जाता है तथा मुनः देशस्थान पर आ जाता है (Recurrent upward movement of poison of scorpion)
4. दंश स्थान में अत्यन्त बेदना होती है (Intense pain at the site of scorpion sting)
5. दंश स्थान रुद्ध वर्ण का हो जाता है (Bluish / Blackish colouration of sting region)
6. दंश स्थान पर फटने के समान बेदना होती है (Tearing type of pain at the site of sting)

वृश्चिक दंश की साम्यासाध्यता²

1. वृश्चिक दंश मनुष्य के हृदय, नासिका एवं जिहा में होने पर असाध्य हो जाता है।
2. दंश स्थान से मांस कटकर गिरने लगने पर असाध्य होता है।
3. अत्यन्त तीव्र बेदना होने पर भी असाध्य होता है।

वृश्चिक विष की घातक मात्रा एवं घातक काल

1. वृश्चिक विष की घातक मात्रा एवं घातक काल दोनों ही अनिश्चित होते हैं।
2. वृश्चिक दंश से वयस्क व्यक्तियों की मृत्यु प्रायः नहीं होती है।
3. शिशु में वृश्चिक-दंश से कई बार मुमुक्षुशीघ्र शोथ के कारण मृत्यु हो जाती है। अतः शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिए।

वृश्चिक दंश चिकित्सा³

1. डंक के स्थान से 3-4 इंच ऊपर रबर या रस्सी या कपड़ा कास्कर बांध दें और निछ्ड स्थान पर चीरा लगाकर रक्त विष दबा कर बाहर निकालें।
2. विछ्ड स्थान पर ब्राण शोधक (Antiseptic solution) द्रव लागें।
3. दंश स्थान पर स्वेदन करना चाहिए।
4. स्वेदन के बाद सैधब लवण एवं धूत से अध्यंग करें।
5. उष्ण औषधि एवं जल से परिषेक, अवगाहन एवं स्नान करना चाहिए।
6. रोगी को पाचन शाळ के अनुसार उसे धूत पान कराएं।

आचार्य-मुश्त ने उप विष वाले एवं मंद विष वाले वृश्चिक दंश की अलग-अलग चिकित्सा बतायी है जो निम्न प्रकार है—

उप एवं मध्य विष वाले वृश्चिक दंश की चिकित्सा²

1. सर्पदंश के समान चिकित्सा करनी चाहिए।
 2. दंश के चारों तरफ स्वेदन करके, स्वच्छ कर हरिद्रा, सैधब, त्रिकटु, शिरीष पुष्प एवं फल चूपा का प्रतिसारण।
 3. तुलसी पत्र को बिजौरा नीबू के रस तथा गोमूत्र में पीस कर लेप करें।
 4. स्वेदन हेतु शुष्क गोबर से सेक करें।
 5. धूत में मधु एवं शर्करा मिश्रित कर पान कराएं।
- मन्द विष वृश्चिक दंश की चिकित्सा³**
1. कोल्हू के ताजे तैल से परिषेक करें।
 2. विदरीगन्धादि गाण से सिद्ध तैल से सेक।
 3. शिरीषादि विषहर द्रव्य की उत्कारिका से स्वेदन।
 4. विषज्ञ द्रव्यों से नमनाह।
 5. एला, तेजपत्र, नागकेशर से सिद्ध गुड़ का शर्वत पिलाएं।
 6. पोर, मुर्मों का पांछ, सैधब, तैल एवं धूत से धूपन।
- आदर्श चिकित्सा पञ्च**
1. दंश स्थान पर नौसाटर एवं चूना समझा में लेप करें।

1. वृश्चिकस्य विषं तीक्ष्णादौ दहति वहिवत्।
उर्वर्मारोहिति खिंसं दंशे पश्चात् तिष्ठति॥
दंशः सद्योऽतिलङ्घे स्थावस्थृदते मुकुटीव च ॥ (आ.ह.उ. 37/6)
2. दद्वेजसाम्यक्ष इद्धप्राणरसोनपहतो नरः।
मासे: पताद्वित्यर्थं वेदनातो जहात्पून (मा.नि. 69/48)

अथवा

2. हत्ताल एवं नैसादर को जल में पीसकर लेप करें।
3. श्वेत अपराजिता मूल का चूर्ण अथवा
4. दन्ती (जयपाल) बीज को पीसकर लेप करें
5. प्रातः : सायं
संजीवनी वटी : 500मि.ग्रा
शिलादि वटी : 500मि.ग्रा
चूषणारु : 1 × 2 मात्रा
5. सम्पन्क पथ्यापच्य का पालन

Latest Developments**Scorpion Sting**

The Indian red scorpion is small in size and it is very poisonous.
The black scorpion is less poisonous.

Signs and Symptoms

1. Intense pain and mild swelling.
2. Vomiting.
3. Diarrhoea.
4. Hypersalivation.
5. Due to release of catecholamines develop hypertension, toxic myocarditis, and pulmonary oedema.
6. Fasciculations, muscle spasms.
7. Respiratory paralysis, acute pancreatitis and haemostatic abnormalities.

Management : Principles

1. Local infiltration with 1% Lignocaine for pain.
2. Antivenom 5-10ml over 10-30 minutes.
3. In hypertension, 5mg sublingual Nefedipine.
4. In Pulmonary oedema, I.V frusemide, oxygen, aminophylline and oral parazosin.
5. Other symptomatic management.

••• अंडे की •••

3. अलर्क विष (Rabies or Hydrophobia)

- परिचय**
अयुर्वेद के ग्रन्थीन चिकित्सा ग्रन्थों में अलर्क विष को विस्तृत विवेचना प्राप्त होती है। वस्तुतः अलर्क विष रोग कुत्ता, बंदर, गोदड़, शूगल आदि के दंश से फैलता है। मनुष्यों में प्रायः पागल कुत्ते या शूगल के काटने से ही अलर्क विष उत्पत्ति अधिकतर पायी जाती है। सामान्यतः सभी कुत्तों का दंश विषाक्त नहीं होता है। जो कुत्ते इस विष से ग्रस्त रहते हैं उन्हीं के काटने से अलर्क विष की उत्पत्ति होती है।

प्रमुख सदर्भ ग्रन्थ

- | | | |
|-----------------------------|---|-----------|
| 1. चरक सहिता चिकित्सा स्थान | - | अध्याय 23 |
| 2. सुश्रुत सहिता कल्प स्थान | - | अध्याय 7 |
| 3. अष्टांग हृदय उत्तर स्थान | - | अध्याय 38 |
| 4. माधव निदान | - | अध्याय 69 |
| 5. भाव प्रकाश मध्यम खण्ड | - | अध्याय 68 |
| 6. भैषज्य रत्नावली | - | अध्याय 72 |

परिभाषा

कुत्ता, शूगल इत्यादि के स्वतः विष ग्रस्त होने के उपरान्त उनके द्वारा मनुष्य को दंश करने से उत्पन्न विष जन्य रोग को अलर्क विष कहते हैं।

- पर्याच**
अलर्क विष, जल संत्रास, श्वान विष, रेबीज, हाइड्रोफोनेक्सिया इत्यादि।

निदान

विष से पागल हुआ कुत्ता, शूगल, रीछ, व्याघ्र इत्यादि द्वारा मनुष्य को दंश करने से अलर्क विष होती है।

सम्पादित

कुत्ता इत्यादि के दंश के पश्चात क्षत स्थान से विषाणु संज्ञावाही स्रोतस के द्वारा मरिस्तक में पहुंच कर शोथ उत्पन्न करते हैं। तत्पश्चात सुषुम्ना काण्ड, तालांग्रथि और सम्पूर्ण अशु ग्रन्थियों में यह विषाणु अवस्थित होकर अलर्क विष नामक रोग की उत्पत्ति करते हैं।

पागल कुत्ते के लक्षण

पागल कुत्ते के लक्षण निम्न प्रकार हैं—

- कुते के मुख से निरंतर लालसाव होता रहता है।
 - वह अंधा और बहरा बनकर बिना प्रयोजन दीड़ता रहता है।
 - कुते की पूँछ, हड्डे और कंधे इनके रहते हैं, मुख नीचे की ओर रहता है एवं शिर में बेदना होती है।
 - कुते के अतिरिक्त शृंगाल, बिल्ली आदि हिंसक प्राणियों के काटने से ज्वर, शरीर में जकड़ाहट, पिपासा, मूच्छ आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।
- आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार सर्वप्रथम पागल कुते के व्यवहार में परिवर्तन होता है। उसमें अत्यधिक शोभ एवं झोंगोनाद की सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। झोंध के आवंग में वह इधर-उधर भागता है तथा जो भी वस्तु प्राणी, मनुष्य गाते में आता है उसे काट लेता है। बाद में कुते को निगलने में कठिनाई होने लगती है, लालसाव होता है, पौँछने का स्वर बदल जाता है, नीचे का जबड़ा लटक जाता है और वह सामान्य पक्षाघात से ग्रस्त हो जाता है। पागल कुते की औसतन 2-10 दिन में मृत्यु हो जाती है।
- अलर्क विष के प्रमुख लक्षण**
- अलर्क विष से ग्रस्त मनुष्य में निम्न लक्षण व्यक्त होते हैं—
- दंश स्थान अनेतर होता है। (Loss of sensation at the site of bite)
 - दंश स्थान से कृज्जा वर्ण का ज्वाव (Oozing of black coloured blood from site of bite)
 - हृस्कूल (Angina / Cardiac Pain) 4. शिर-शूल (Headache)
 - ज्वर (Fever) 6. स्तान्ष (Stiffness)
 - तृणा (Excessive thirst) 8. मूच्छ (Fainting)
 - कण्ठ (Itching)

-
- लालावान्यवधिरः सर्वतः सोऽपिधारति।
स्तरतुऽच्छहेतुस्कन्धः शिरोदुःखो नानानः॥ (अ.ह.उ. 38/9)
 - अन्युर्योवेन्विष्या व्यालाः कफस्त्रप्तकोपाणः॥
हृद्योत्पात्तरस्त्रात्पृष्ठाच्छृंखलाः पता:॥ (च.च. 23/176)
 - दंशस्तेन विदृष्ट्या सुतः कुण्डा भात्यसुकृ!
हृच्छरोसान्वरस्त्रात्पृष्ठाच्छृंखलाः पतुः च॥
अनेनान्येऽपि चोढ़न्या व्याला दंशप्रहारिणः॥
भृगताक्षत्राश्वर्द्धित्विष्याप्त्वकादयः॥
कण्ठृन्तसोदत्वैवर्यपुसिक्तनेदन्वरभ्रमाः॥
विताहारालसाक्षोक्षण्यथिकुञ्ज्वनम्॥
दंशावत्तरं स्फोटः कार्यका पाण्डलानि च॥
सर्वत्र सतिष्ये लिङ्गं निपरितं तु निविषेः॥
- निस्तोद (Pricking type of pain)
 - विवर्णता (Discolouration)
 - विदाह (Burning at the site of bite)
 - रग (लालिमा) (Inflammation)
 - शूल (Pain)
 - पाक (Sepsis)
 - ग्रंथि (Glandular swelling)
 - मांसांकुर (Glandular swelling at the site of bite)
 - भण्डल (Reddish patches)
 - भ्रम (Vertigo/Confusion)
 - स्फोट (Blisters)
 - सोफ (Inflammation)
 - सापेक्ष निदान
 - अलर्क विष में प्रायः सापेक्ष निदान की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि कुते के काटने का इतिहास मिलता है। फिर भी कभी-कभी धनुर्वाति (Tetanus) एवं माष्ट्रक ज्वर आदि के लक्षणों के साथ भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। निम्न तालिका के आधार पर अलर्क विष और धनुर्वाति में अंतर किया जा सकता है।

क.सं. अलर्क विष (Rabies)

1. कुते के काटने का इतिहास मिलता है।

2. गोणी जल से दूर भागता है।

3. गोणी अत्यधिक भय ग्रस्त एवं संक्रस्त दिखाई देता है।

4. Blood culture में Rabies Virus मिलता है

असाध्य लक्षण

अलर्क विष के असाध्य लक्षण निम्नलिखित हैं—

- पुरुष को जिस पशु ने काटा है उसी के समान जब वह चेष्टा एवं शब्द करता है तब असाध्य होता है।
- च्युक्ति यदि उसी पशु को दर्पण, जल इत्यादि में अचानक देखता है तो वह असाध्य है।

जल सन्त्रास के लक्षण²

यह एक विशिष्ट स्थिति है। आचार्य वाराहट ने स्पष्ट किया है कि जो पुरुष कुते

1. दंशे येन तु तज्ज्वलात् कुर्वन् तित्वश्यति।
पर्याप्तमेव चाक्षमादतर्सर्वलिलादित्युः॥ (अ.ह.उ. 38/14)

2. योऽङ्गस्त्रस्तेदद्यांति शब्दसंग्राहंसर्वं।
जलसन्त्रासगमनं दृशं नमापि वर्जनम्॥ (अ.ह.उ. 38/15)

इत्यादि के न काटने पर भी जल के शब्द, संस्पर्श या दर्शन से डर जाता है और उसे रोमाञ्च एवं सन्त्रास होता है उसे जल सन्त्रास कहते हैं और यह एक घातक लक्षण है। उस जल से डरते हुए मनुष्य को असाध्य समझना चाहिए।

चिकित्सा

अलर्क विष में निम्न प्रकार से चिकित्सा करनी चाहिए—

1. निदान परिवर्णन

(i) विषाक जनुओं से बचाव करना चाहिए।

(ii) यदि पाल कुते का पहले से ही पता चल जाये तो उसे कैद करके रखें अथवा मार देना चाहिए।

2. शोधन चिकित्सा

(i) तीक्ष्ण वर्मन

(ii) तीक्ष्ण विरचन

3. शमन चिकित्सा

अलर्क विष में निम्नलिखित शमन चिकित्सा करनी चाहिए—

(i) स्थानीय चिकित्सा

1. दंश स्थान को दबाकर उसका दूषित रक्त निकाल देना चाहिए।

2. रक्त निकालने के पश्चात दंश स्थान का गर्भ घृत से दहन करना चाहिए।

3. दहन के बाद दंश स्थान पर विभिन्न प्रकार के अगद का लेप करना चाहिए।

4. काटे हुए स्थान को कार्बोलिक साबुन से अच्छी तरह धो दें, फिर हाइड्रोजन पराक्साइड डालकर ब्रेन को प्रक्षालित करें या पोटेशियम परमैग्नेट के घोल से साफ करें और पश्चात विसंक्रामक द्रव (Antiseptic solution) से ब्रान को साफ करें।

(ii) प्रमुख लेप

1. शिरोष के बीज को स्तुही क्षीर के साथ पीसकर लेप करें।

2. अपामार्ग स्वरस का लेप।

3. अर्क क्षीर का लेप।

4. च्याज के रस को मधु में मिलाकर लेप करें।

इत्यादि के न काटने पर भी जल के शब्द, संस्पर्श या दर्शन से डर जाता है और उसे रोमाञ्च एवं सन्त्रास होता है उसे जल सन्त्रास कहते हैं और यह एक घातक लक्षण है।

द्यात् संशोधनं तीक्ष्णमेवं स्नातस्य देहिनः ।

अशुद्धस्य सुर्देहपि ब्रणे कुप्यति तदिष्म् ॥ (सु.क. 7/62)

दंश विकार्यं तेऽस्य सापं परिदानितम् ।

प्रदिव्यादगादैः सर्पः पुराणं पाययेत च ॥ (सु.क. 7/50)

शिरोषस्तु बीजं वै स्तुहीक्षीरणघृषितः ।

तत्त्वंपन महादेवं तत्त्वं कुम्कुरं विषम् ॥ (भौ.क. 7/235)

(iii) प्रमुख आळ्यान्तर योग

1. धूते के साथ धूत अपामार्गिता एवं पुनर्नवा का सेवन।

2. तिल कल्क, तिल तैल, अर्कक्षीर तथा गुड़ का सेवन।

3. अपामार्ग मूल के चूर्ण को शहद के साथ दें।

4. धूते को पती एवं गूलर 6-6 ग्राम को तण्डुलोदक में पीसकर पिलाएँ।

5. धूते को पती का स्वरस, गोधृत, पुराण घृत एवं गोदुध समझा में लेकर एक साथ घोटकर 40 मिलिलीटर की मात्रा में दो बार दें।

6. चावल को पीसकर उसके पिण्ड के बीच मेष (मेढ़ा) के लोम रखकर निगल लें। इससे अलर्क विष शांत होता है।

7. अंकोठ मूल के कवाय में घृत मिलाकर पान कराएँ।

अलर्क विष में विशेष प्रयोग-

आचार्य सुश्रुत ने अलर्क विष में प्रयोग के लिए इसे अत्यन्त लाभकारी बताया है। शरापुंडा पाता 10 ग्राम, धूतरा 5 ग्राम तथा चावल 5 ग्राम लेकर, पीसकर, पिटठी की तरह धूतर पत्र में भरकर, कचौरी की तरह पका लें तथा अलर्क विष पीड़ित रोगी को खिलावें।

औषध के पञ्चने पर व्यक्ति पागल के समान चेष्टा करता है तब उसे जल रहित शीतल गृह में रखें। विकार शार्ति के बाद शार्ती चावल दुध के साथ देना चाहिए। तीसरे एवं पांचवें दिन पुनः यही प्रयोग औषध की आधी मात्रा में करना चाहिए। यहां पर आचार्य सुश्रुत का कथन है कि अलर्क विष स्वयं प्रकृष्टिपत होने पर ठीक नहीं होता है। अतः उसे चिकित्सक को स्वयं प्रकृष्टिपत करके शरीर से बाहर निकाल देना चाहिए।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन

2. तीक्ष्ण वर्मन एवं विरेचन

3. विषष्ठ अगद का स्थानीय लेप

4. विषनाशक अगद का घृत पान

5. शरापुंडा 10 ग्राम, धूतरा 5 ग्राम, चावल 5 ग्राम की कचौरी का प्रयोग

- पिवेत्सधूतूफलां शेतां चाडपि पुर्नवाम् ॥ (अ.ह.उ. 38/37)
- ऐक्ष्यं पलातं तैलं रैपिकाया: पर्यागः ।
- धिनति विषमालर्कं धनवृद्धपिवानितः ॥ (अ.ह.उ. 38/38)
- कनकेतुप्रव फलमिव ताङ्गुलजलपिण्ठं पीतमपहरिति ।
- कनकदल द्रवसृष्टाङ्गुडुधपतेकं शुनो गरलम् ॥ (भौ.र. 72/37)
- पिष्टपाङ्गुलमयस्थं भक्षितम् मेषतोमप्म् ॥ (भौ.र. 72/36)
- अङ्गोत्सोत्र मूलाङ्गु त्रिपलं सह विषलम् ॥ (अ.ह.उ. 38/36)
- निहान्ति विषमालर्कं मेषवृद्धपिवानितः ।

..... प्रकापेदाशु स्वयं यावत् प्रकृष्टाति ॥ (सु.क. 7/53-58)

6.	संजीवनी वर्ती	: 500 मि.ग्र.
	भोमरुद् रस	: <u>250 मि.ग्र.</u>
जल से		1 × 4 मात्रा
7.	सम्यक् पथ्यापथ्य का पातन	

Latest Developments

Rabies

Introduction
Rabies is a viral encephalomyelitis transmitted in the saliva of infected animals. Rabies is most prevalent in dogs, foxes, wolves and jackals.

Transmission

- When the virus is introduced into bite wounds or open cuts in the skin on to membranes.
- Individuals exposed to aerosolized rabies virus in laboratory.
- Recipients of infected cornea.

Sings and Symptoms

Incubation Period
Incubation period varies from 9 to 90 days in majority of cases.

Prodromal Symptoms

- Pain, irritation or discomfort at the site of bite.
- Fever, anxiety, depression, intolerance of loud sounds.
- Hoarseness of voice and sense of constriction in throat with difficulty of swallowing.
- Slight rise of temperature.

Main Symptoms

- Hydrophobia**
 - A combination of inspiratory muscle spasm with or without painful laryngopharyngeal spasm.
 - Terror in response to attempts to drink water.
 - Hydrophobic spasm ends in opisthotonus and generalised convulsions and lastly in death.
- Period of excitement**
It is common during which the patient becomes wild and hallucinated alternating with lucid intervals.
- Other features**
 - Meningism.
 - Cranial lesions of IIIrd, VIIth and VIIIth nerves, spasticity.

दृश्यजनित विकार एवं उनकी चिकित्सा

- (iii) Fluctuating body temperature and blood pressure.
- (iv) Salivation.
- (v) Sweating and tachycardia.
- (vi) Death may occur during hydrophobic spasm.

Diagnosis

- Immuno fluorescent testing.
- Viral detection.
- Antibody detection.
- Postmortem diagnosis by observation of negri bodies in the brain.

Management : Principles

1. Active Immunization

- (i) Human diploid cell strain vaccine (HDCSV) induces excellent levels and no risk of neuroparalytic complications.
- (ii) I.M. injection 1.0 ml on days 0, 3, 7, 14, 30 and 90 should be given.

- (iii) Injection must be given into deltoid or anterolateral thigh in infant, not into buttocks (because antibody induction is unreliable)

Side effects

- Irritation at site of injection.
- Headache, fever and flu like illness.

2. Passive Immunization

- (i) Administration of RIG (Rabies immunoglobulin) 20 IU/Kg human rabies immunoglobulin or 40 IU/Kg heterologous RIG given once, at the beginning of antirabies prophylaxis to provide immediate antibodies until patient responds to vaccination by actively producing antibody.
- (ii) RIG can be given upto 7 days after administration of patent tissue culture vaccine.
- (iii) After 7 days RIG is not indicated because an antibody response to vaccination should have occurred.

- (iv) RIG should be infiltrated around and into the wound even when the lesion has begun to heal.

Cause of Death despite post exposure vaccination

- Inadequate wound cleaning.
- Delay in starting vaccine.
- Injection of vaccines into buttock.
- Lack of passive immunization.
- Use of corticosteroids.

4. लूता दंश (Spider Bite)

४८

लूता अर्थात् प्रकटी का विष अत्यन्त भयंकर होता है तथा चिकित्सा अत्यन्त कठिन होती है। भारत में अनेक प्रकार की लूताएँ पायी जाती हैं। सामान्यतः घरों में पायी जाने वाली लूताएँ अत्यं विष बाली होती है। जो लूताएँ जंगलों, उजड़े खुबहरों, शाढ़ी इवादि में पायी जाती हैं वे बड़े आकार की होती हैं एवं अत्यन्त विषाक्त होती हैं। आयुर्वेद संहिता ग्रंथों में जिस प्रकार की लूताओं एवं उनके विष जन्य भयंकरता का वर्णन मिलता है वह किसी दूसरी प्रकार की लूता विष का वर्णन प्रतीत होता है। आचर्य मुश्तुत ने कहा है कि जिस प्रकार अंकुर को देखकर यह नहीं कहा जा सकता है कि वृक्ष किस जाति का है उसी प्रकार लूता विष शरीर में थोड़ी मात्रा में फैला हुआ भी बड़ी कठिनायी से ही जाना

(Spider Bite)

- 四

- | | | |
|----|---------------------------|----------------|
| 1. | चरक साहिती चिकित्सा स्थान | -
अध्याय 23 |
| 2. | सुश्रृत सहिता कल्प स्थान | -
अध्याय 08 |
| 3. | अष्टग हृदय उत्तर स्थान | -
अध्याय 37 |
| 4. | माधव निदान | -
अध्याय 69 |

४

(i) कृच्छ्रसाध्य लूता - 8 प्रकार
(ii) असाध्य लूता - 8 प्रकार

अथात कुल 16 प्रकार की दूताएँ होती हैं।
उपरोक्त भेद में आचार्य सुश्रुत ने जिन्हें साध्य दूता कहा है उन्हें ही आचार्य चरक ने 'दूषी विष दूता' तथा आचार्य सुश्रुत की असाध्य दूता को आचार्य चरक ने 'प्राणहर दूता', नाम दिया है।

- प्रोदधिमानन्तु यथाहुणे न व्यक्त जाति: प्रविभाति वृक्षः ।
तदवद्गुलावतम् हि तासा विषं शरीरे प्रविकीर्णप्रयत्नम् ॥ (सुक. 8/79)
 - कृच्छ्रायस्तथाऽसाम्या दूतास्तु द्विविधा: स्मृता: ।
तासामहे कृच्छ्रायसाम्या वज्रार्थात्वत् एव तु ॥ (सुक. 8/94)

आचार्य वाराभट ने विषयात्का को दृष्टि से लूटा के 3 भेद माने हैं एवं उनकी मारक अवधि का भी वर्णन किया है।

अवधि का भी वर्णन किया है।

1. तीक्ष्ण विषवाली लूता - 7 दिन में मृत्यु कारक
 2. मध्यविष वाली लूता - 10 दिन में मृत्यु कारक
 3. हीन विष वाली लूता - 15 दिन में मृत्यु कारक
 आचार्य वाराहन ने दोषानुसार पुनः लूताओं के चार भेद किये हैं—

 1. वातज लूता
 2. पितज लूता
 3. कफज लूता
 4. सत्रिप्रतज लूता

लूताओं द्वारा विष का प्रसारण
 लूता विष का प्रसार निम्न 7 प्रकार से होता है—

 1. लाला
 2. नख
 3. मूत्र
 4. दंष्ट्र
 5. रज (आर्तव)
 6. पुरीष

ପ୍ରକାଶକ

- लूटा दंश के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं³—

 - सभी प्रकार के लूटा दंश दड़ मण्डल के समान होते हैं।
 - दड़मण्डल श्वेत, रक्त, कृष्ण, पीत, श्यावर्ण तथा किनारों पर जालक युक्त पकड़े वाला एवं शोफ युक्त होता है।

४

3. अत्यधिक वरदनी 4. जरूर
 5. शीघ्र पाक 6. अत्यधिक बलेद युक्त
 7. सड़ने एवं फटने वाला ब्रण युक्त होता है

भेदानुसार लक्षण

1. दूधा विष लूटा दश के लक्षण।
 (i) दंस स्थान कृष्ण श्याम वर्ण का हो जाता है (Black bluish colouration of bite)

१. तीक्ष्णमध्यावरत्तेन सा त्रिया हन्त्यमेक्षिता ।
 २. सामहेन दशगहेन पक्षेण च परं क्रमात् ॥ (अ.ह.उ. 37/54)
 ३. विष्णु तु लालानपूर्वदश्टारः पुरीषेष्व चन्द्रियाः ।
 ४. सप्त प्रकारं विष्णुजन्ति दृष्टस्तद्ग्रम्यावरवीर्युक्तम् ॥ (सु.क. 8/85)
 - तदूपदशक्ष सर्वोऽपि ददुमण्डलः ।
 - यत्स्पृश्यत्पह्नं तत्रापि कुरुते ब्रणम् ॥ (अ.ह.उ. 37/55-57)
 ५. दंभाहृतिभूषं पाकि क्षेत्रशोष च्चराक्षितम् ।
 ६. दूषीविषाणाभिलूप्ताभ्यन्तं दश्यमिति निर्दिशेत् ॥ (च.चि. 23/144)

आचार्य वाराभट ने विषाक्तता को दृष्टि से लूटा के 3 भेद माने हैं एवं उनकी मारक
धृष्ट का भी वर्णन किया है।

1. तीक्ष्णा विषवाली लूता - 7 दिन में मृत्यु कारक
 2. मध्यविष वाली लूता - 10 दिन में मृत्यु कारक
 3. हीन विष वाली लूता - 15 दिन में मृत्यु कारक
 आचार्य चार्चार ने दोषानुसार पुनः लूताओं के चार भेद किये हैं—

 1. वातज लूता
 2. पितज लूता
 3. कफज लूता
 4. सत्रिपतज लूता

लूताओं द्वारा विष का प्रसारण

लूता विष का प्रसार निम्न 7 प्रकार से होता है—

 1. लाला
 2. नख
 3. मूत्र
 4. दंष्ट्र
 5. रज (आतंव)
 6. पुरीष

ପ୍ରକାଶନ କମିଶନ

- लूटा दंश के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

 - सभी प्रकार के लूटा दंश दहु मण्डल के समान होते हैं।
 - दहु मण्डल क्षेत्र, रक्ष, कृष्ण, पीत, श्यावर्ण तथा किनारों पर जालक युक्त पकड़ने वाला एवं शोफ युक्त होता है।

४८

3. अत्यधिक वरदनी 4. जरूर
 5. शीघ्र पाक 6. अत्यधिक बलेद युक्त
 7. सड़ने एवं फटने वाला ब्रण युक्त होता है

भेदानुसार लक्षण

1. दूधा विष लूटा दश के लक्षण।
 (i) दंस स्थान कृष्ण श्याम वर्ण का हो जाता है (Black bluish colouration of bite)

१. तीक्ष्णमध्यावरत्तेन सा त्रिया हन्त्यमेक्षिता ।
 २. सामहेन दशगहेन पक्षेण च परं क्रमात् ॥ (अ.ह.उ. 37/54)
 ३. विष्णु तु लालानपूर्वदश्टारः पुरीषेष्व चन्द्रियाः ।
 ४. सप्त प्रकारं विष्णुजन्ति दृष्टस्तद्ग्रम्यावरवीर्युक्तम् ॥ (सु.क. 8/85)
 - तदूपदशक्ष सर्वोऽपि ददुमण्डलः ।
 - यत्स्पृश्यत्पह्नं तत्रापि कुरुते ब्रणम् ॥ (अ.ह.उ. 37/55-57)
 ५. दंभाहृतिभूषं पाकि क्षेत्रशोष च्चराक्षितम् ।
 ६. दूषीविषाणाभिलूप्ताभ्यन्तं दश्यमिति निर्दिशेत् ॥ (च.चि. 23/144)

- (ii) सिराजाल (Congestion, Engorgement of veins)
- (iii) अग्निदाध समान आकृति (Appearance resembling burn of that part)
- (iv) शोष पाक (Early inflammatory changes)
- (v) क्लेन्ट (Secretions from boils)
- (vi) शोथ (Oedema/Swelling)
- (vii) ज्वर (Fever)
- 2. प्राणहर लूता दंश के लक्षण¹**
- (i) दंश स्थान पर शोथ (Oedema at the site of bite)
- (ii) ज्वर (Fever)
- (iii) श्वेत, कृष्ण, रक्त या पीत रंग की पिङ्किकाओं की उत्पत्ति (White, black, red or yellow coloured rashes)
- (iv) अस्थन तीव्र श्वास (Intense Dyspnoea)
- (v) दाह (Burning)
- (vi) हिक्का (Hiccough)
- (vii) शिरोग्रह (Stiffness in head)
- लूता के विभिन्न अंगों द्वारा प्रसारित विष के लक्षण²**
1. लालासाव के कारण उत्पन्न विष में कण्डू, कोठ, स्थिरता एवं अल्प आभास होता है।
2. नख से उत्पन्न विष में शोफ, कण्डू, रोमाज्ज, धूमोदगार की उत्पत्ति होती है।
3. मूत्र से उत्पन्न विष में दंश स्थान बीच में काला, किनारों पर रंकवर्ण एवं फटा हुआ होता है।
4. दन्त से उत्पन्न विष कठिन, विवर्ण, स्थिर, मण्डल वाला एवं उपरीय वाला होता है।
5. रक्त, प्रत एवं शुक्र से उत्पन्न विष में स्फोट, दंश स्थान पक्के हुए आंखें के समान या पीलू के समान पाण्डुवर्ण का होता है।
-
1. सर्वसामेव नासा च दंशे लक्षणमुच्छते।
शोफः श्वेतासा रक्तः पीता वा पिङ्का ज्वरः॥
प्राणान्तिको भवत्य्वासो दाहहिकाशिरोग्रहः॥ (च.च. 23/145-146)
2. सकपड़कोठं स्थिरमध्यमूलं लालाकृतं मद्दर्शनं वदन्ति।
संस्कृतं कण्डूशु पुलालिका च धूमायनं चैत नखागदयो॥
दंशं तु मूत्रेण सकृष्टामध्यं सारात्मर्यत्मवेदि दीर्णम्।
देशाभ्यर्थं कठिनं विवर्णं जानीहि दंशं स्थिरमांडलं च।
- रजः पुरोर्जेन्द्रियं हि विद्धि स्मोट विषकामलीतुपाण्डुम्॥ (सु.क. 8/86-87)

लूताविषों द्वारा सात दिनों में उत्पन्न लक्षण¹
प्रथम दिन : लूता विष प्रथम दिन अल्प कण्डू वाला, फैलने वाला, कोठ युक्त एवं अव्यक्त वर्ण का होता है।

द्वितीय दिन : किनारों पर शोथ युक्त एवं बीच में दबा हुआ एवं सभी लक्षण स्वरूप होते हैं।

तृतीय दिन : सभी लक्षण और स्पष्ट हो जाते हैं।

चतुर्थ दिन : विष प्रकृपित होकर सर्वशरीर में फैलने लगता है।

पंचम दिन : विष और फैलते हुए कुपित हो जाता है।

षष्ठम दिन : सर्व शरीर में फैलकर सभी मर्म प्रदेशों को विशेष रूप से कुपित करता

रोगी को शोष ही भार देता है।

असाध्य लूता विष के लक्षण : लूता विष असाध्य हो जाने पर रोगी में निम्ननिमित्त लक्षण उत्पन्न होते हैं²—

1. हृदय में मोह (Confusion)
2. श्वास (Breathlessness)
3. हिक्का (Hiccough)
4. शिरोग्रह (Stiffness in head)
5. शोथ युक्त श्वेत, पीत, कृष्ण, रक्त पिङ्किकाओं की उत्पत्ति (Origin of oedematous papules of white, yellow, black and red colouration)
6. कम्पन (Tremors)
7. वमन (Vomiting)
8. दाह (Burning)
9. यास (Thirst)
10. अस्थन (Blindness or Blurred vision)
11. ऐष, मुख एवं दंत का कृष्ण वर्ण हो जाना (Cyanosis of lips, mouth and black colouration of teeth)
12. पृष्ठ एवं ग्रीवा का भजन (Breaking type of pain in back and neck)
13. नासा का टेढ़ा हो जाना (Deviation of nose)
14. दंश स्थान से पक्के हुये जामुन के समान रक्त स्राव (Haemorrhage of black coloured blood from the site of bite)

1. ईषत्पकण्ड प्रचलं सकोढः.....
.....व्यापदयेन्तर्यमित्रिवृद्धम्॥ (सु.क. 8/80-82).

2. असाध्याया तु ह्याहोश्वास.....
.....सर्वजा प्रतो अपदेशस्तु भूमसा॥ (आह.उ. 37/51-53)

चिकित्सा सिद्धांत

आचार्य सुश्रुत ने लूटा विष की चिकित्सा के लिए निम्न 10 प्रकार के उपक्रमों का वर्णन किया है—

1. नस्य
 2. अञ्जन
 3. अथगा
 4. पान
 5. धूम
 6. अचपीड़
 7. कवल ग्रह
 8. तीक्ष्ण विरेचन
 9. तीक्ष्ण विरेचन
 10. सिरा मोक्षण
- चिकित्सा**
1. निदान परिवर्जन
 2. शोधन चिकित्सा^{2.}
 - (i) तीक्ष्ण विरेचन कर्म
 - (ii) तीक्ष्ण विरेचन कर्म
 - (iii) नस्य कर्म
 - (iv) रक्त मोक्षण
- 3. शमन चिकित्सा**
- दंश स्थान को पोटेशियम परमैग्नेट के घोल से धोना चाहिए। अन्य उपचार निम्न प्रकार हैं—
- (i) दंश को निकालकर जान्बूष्ठ आदि से अग्नि कर्म। पितज विष में अग्निकर्म का निषेध है।
 - (ii) अग्नि कर्म के बाद मधु एवं सेंधव मिश्रित अग्नद का लेप।
 - (iii) पञ्चक्षीरी वृक्षों के कषय से परिषेक^{3.}
 - (iv) सभी लूटा विष में श्लेष्मातक एवं अक्षीव पिप्पली का प्रयोग पान, लेप आदि के रूप में करना चाहिए।

(v) प्रियंगु, हरिद्रा, कुच्छ, मंजीठ एवं मधुयष्ठि का लेप।

(vi) सारिवा, मधुयष्ठि, दाक्षा, विदरी एवं क्षीरमोट का व्याथ पान कराए।

(vii) विदरी, गोक्षु, मधु एवं मधुयष्ठि का व्याथ पिलाए।

(viii) वात प्रधान लूटा विष में बिल्ब, चब्दन, तार, कमल, शुण्ठी, पिप्पली, जलवेतस, अस्त्वेतस, कुच्छ, शुक्कि, जयन्ती शाक, पाटला, भागी, निर्णपूटी, मदनफल एवं दालचीनी का आवश्यकतानुसार पान, लेप, नस्य, अञ्जन एवं सेक में प्रयोग करें।

(ix) पित प्रधान लूटा विष में हबेर, विकंकत, सारिवा, मुस्तक, शमी, चब्दन, श्येनाक, शेवाल, नीलकमल, तार, मधुयष्ठि, दालचीनी, रासना, पायक एवं मदनफल का भी पान, नस्य, अञ्जन लेप तथा सेक में प्रयोग करें।

(x) कफ प्रधान लूटा विष में हल्दी, मुस्तक, सर्पिकी, पिप्पली, शुण्ठी, पिप्पली मूल, चित्रक, वरण, अमार, बिल्ब, पाटला, नीम, कुच्छ एवं केशर का प्रयोग पान, अञ्जन, नस्य, लेप तथा सेक के लिए करना चाहिए।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदान परिवर्जन
2. वमन, विरेचन, नस्य, अञ्जन एवं लेप का युक्तिपूर्वक प्रयोग
3. श्लेष्मातक की छाल का क्वाथ : $\frac{20 \text{ मि.लि.}}{1 \times 2 \text{ मात्रा}}$
4. संजीवनी वटी चब्दनार्दि चूर्ण : $\frac{500 \text{ मि.ग्रा.}}{1 \times 2 \text{ मात्रा}}$
5. जल से : शूत का अधिक प्रयोग
6. पथ्यपथ्य : शूत का अधिक प्रयोग
7. रक्त प्रयोग कर्जित है।

Latest Developments

Spider Bite

In spider bites venom is injected through fangs.

Signs and Symptoms

1. Necrotic Araneism
- (i) Local burning

1. नस्यात्त्वनाभ्युत्पन्नपात्रम् तथा अवपीडकवर्त्तन्ग्रहं च।
संशोधनं चोभयतः प्राणाद्वं कुर्यात्सरामेव कात्र॥ (सु.क. 8/134)
2. विषच्छ बहुदोषेषु प्रुञ्जली विशेषनम्। (अ.ह.उ. 37/75)
3. सर्वतोऽपहोइरकं शूर्णादैः सिरयात्पि वा। (अ.ह.उ. 37/69)
4. अथशु लूटादस्य शस्त्रणादशमुद्देत्।
5. दहे च जाबवैष्टाद्येन तु फिलोतं दहेत्॥ (अ.ह.उ. 37/66)
6. लेपयेदथमाद्युसैः वृक्षवस्तुैः।
सुरोतैः सेचयेचातु कथायः क्षीरवृक्षजैः॥ (अ.ह.उ. 37/68)
7. सर्वासामेव युज्ञति विषे श्लेष्मातकवचचम्।
पिष्ठ क सर्वप्रकारेण तथा चार्षीविपिप्लम्॥ (सु.क. 8/120)

1. प्रियंगुरजनीकुष्ठसमझापात्रकृत्सन्था।
सर्पिका॑ मधुकं द्राक्षां प्रयस्या क्षीरमोटम्॥
विदरीगोक्षैरक्षैरमधुकं पाययेत वा। (सु.क. 8/131-132)
2. हीबेवेकङ्गलापकन्यामुस्ता.....
..... वृतस्या कुरातीरिक वारयन्त्येते॥ (अ.ह.उ. 37/82-85)

- (ii) Transient fever and erythematous rash.
- (iii) Intravascular haemolysis and development of ischaemic local lesions which form a necrotic black eschar.

Management : Principles

- (i) Antivenom
Dapsone may reduce extent of necrosis.
- (ii) Skin grafting after eschar has sloughed
- (i) Bite is very painful.
- (ii) Headache.
- (iii) Vomiting.
- (iv) Muscle spasm
- (v) Pulmonary oedema
- (vi) Coma

Management : Principles

- (i) Arterial tourniquet to prevent absorption of neurotoxins.
 - (ii) Specific Antivenom.
 - (iii) Calcium gluconate for muscle spasms.
 - (iv) Symptomatic Management.
- ॥ ५॥ •••

5. कीट दंश**(Bee and Wasp Stings)****कीट की उत्पत्ति**

चरक संहिता के अनुसार कीटों की उत्पत्ति सर्प के मल-पूत्र से होती है।

भेद

आचार्य चरक ने कीट के दो भेद बताये हैं—

1. दृष्टि विष कीट
2. प्राण हर कीट

आचार्य सुश्रुत ने दोबों की उल्लेखन इत्यादि के आधार पर कुल 67 कीटों का निर्देश किया है जो चार बगों में विभक्त किये गये हैं—

1. वातोल्लेखण
 2. पितोल्लेखण
 3. काफोल्लेखण
 4. सामिपातिक
1. दृष्टि विष कीट दंश के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं—

दृष्टि विष कीट दंश के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं—

1. सर्पणमेत्र विषमूत्रत कीटा: सु: कोट्टसम्पत्ति: ।
दृष्टिविषा: प्राणहरा इति सर्पेषते मतः ॥ (च.चि. 23/140)
2. गात्र रसें सिंत कृष्ण रसात् वा रिङ्काकार्चतम् ।

सकण्डूदाह वीसपापाकि स्थात कुर्यितं तथा ॥ (च.चि. 23/141)

- (i) दंश स्थान रक्त, श्वेत, कृष्ण, रसात् वर्ण का हो जाता है (Redish, white, black, bluish colouration of place of bite)
- (ii) दंश स्थान पर अनेक पिंडिकोत्पत्ति (Appearance of numerous rashes at the place of bite)

- (iii) कष्ठ (Itching)
- (iv) दाह (Burning)
- (v) विसर्प (Erysepelas)
- (vi) पाक (Inflammatory changes)
- (vii) कोथ (Gangrene)

2. प्राणहर कीट दंश के लक्षण

प्राणहर कीट दंश के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं—

 - (i) सर्पहर्दस्य के समान शोथ (Oedema like snake bite)
 - (ii) दंश स्थान पर रक्त में तीव्र गंध (Foul smelling blood at the place of bite)
 - (iii) नेत्रों में भारीपन (Heaviness in eyes)
 - (iv) मूर्छा (Fainting)
 - (v) शरीर में बेदना (Bodyache)
 - (vi) श्वास कुच्छृता (Breathlessness)
 - (vii) दृष्टि विष कीट के समान लक्षणों की उत्पत्ति
 - (viii) तुषा (Excessive Thirst)
 - (ix) अस्थि (Anorexia)

- कीट विष की चिकित्सा²
 1. अन्य जंतुओं सं दंश की चिकित्सा के समान ही दंश स्थान का स्थानीय उपचार।
 2. वर्मन, निरेचन, संसर्जन ज्ञाम।
 3. पञ्चक्षीरी वृक्ष (वट, पीपल, पाकड़, गूलर, पारस पौत्रल) की छाल का नेप।
 4. मोती को पीसकर लेघ लाने से शोथ, दाह, तेल एवं ज्वर की शांति हो जाती है।

**Latest Developments
Bee and Wasp sting****Signs and Symptoms**

1. There is excessive local swelling.

1. सर्पदण्डे यथा शोथो वर्धते सोयगन्यसृक् ।
दंशोऽक्षिप्तात्मं पूर्वच्च च रागातः भवित्वम् ॥
2. तृष्णालचिपरीतस्त्र भवेद् दृष्टि विपर्ितिः ॥ (च.चि. 23/142-143)
3. क्षीरिवृक्षत्वात्मतः शुद्धे कीटीविषापहः ।
4. मुकालेपोः वरः शोथात्तोदज्जरापहः ॥ (च.चि. 23/199)

2. In severe cases generalised urticaria or bronchospasm with or without laryngeal oedema.
 3. Anaphylactic reactions may occur.
- Management : Principles**
1. The sting with its attached venom gland must be removed by scrapping off with knife or blade.
 2. Anti histaminics for mild reactions.
 3. Adrenaline for severe reactions.
 4. Steroids - Single dose of 20-30mg Prednisolone may suffice.
 5. Symptomatic management.

••• कृष्ण कृष्ण •••

6. मूषक दंश

(Rat Bite)

परिचय

प्राचीन संहिताकारों ने मूषक को शुक्र विष वाला माना है। चूहे को मूषक कहते हैं। चूहे के संदर्भ में सबसे अद्भुत वर्णन मिलता है कि उसके शुक्र में विष होता है। मनुष्य के शरीर के जिस भाग पर शुक्र गिर जाता है अथवा चूहे के शुक्र लगे स्थान पर नख, दंत लगाने से शुक्र कोटों का रक्त से सम्पर्क हो जाता है फलस्वरूप उस व्यक्ति में विष का प्रभाव होने लगता है। अर्थात् मूषक शुक्र का रक्त से सम्पर्क होने पर विष लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। आचार्य डलहण ने अपनी टीका में आचार्य आलाक्षायन का वचन उद्धृत करते हुए लिखा है कि चूहे पांच प्रकार से अपने विषों को मनुष्य शरीर में प्रविष्ट करते हैं— शुक्र, मूत्र, पुरीष, नख एवं दंत के द्वारा। इस टीका के आधार पर चूहे को दंश विष वाला या नख विषवाला माने या आचार्य के अनुसार शुक्र विष वाला कोई भी माना जा सकता है। परंतु यदि यह कहा जाये कि मूषक के शुक्र में विष होता है तथा दंत या नख लगाने पर जब शुक्र का संपर्क रक्त से हो जाता है तब विष का प्रभाव शरीर में दिखायी देने लगता है, यह वर्णन अधिक उचित प्रतीत होता है।

- पर्याय
मूषक, चूहा, इदुर, आखु इत्यादि।

मूषक के भेद

आचार्य चरक ने विषाक्तता के आधार पर मूषक को दो प्रकार का माना है—
 1. दूषी विष मूषक दंश 2. ग्राण हर या असाध्य मूषक दंश
 परंतु आचार्य मुश्तुत एवं बाघट ने 18 प्रकार के मूषकों का नामतः उल्लेख किया है
 एवं सभी को विषयक मानकर विस्तृत वर्णन किया है।

मूषक दंश के प्रमुख लक्षण

मूषक दंश के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—
 1. शुक्रातिस स्थान पर रक्त के दूषित होने से वहां पर पाण्डुता, ग्रंथि, शोथ,
 कोठ, मण्डल इत्यादि की उत्तरति हो जाती है (Appearance of glandular
 oedema, urticaria and pallor at the affected site.)

2. भ्रम (Confusion/Vertigo) 3. अरुचि (Anorexia)
 4. शीतज्वर (Fever with rigors) 5. अतिवेदना (Severe pain)
 6. शैश्वल्य (Lethargy) 7. कम्पन (Tremors)
 8. पर्वभेद (Pain in small joints) 9. रोमहर्ष (Horrification)
 10. रक्तसाव (Bleeding) 11. मूर्छा (Fainting)
 12. दीर्घकाल तक रोग बने रहना (Chronicity of Disorder)
- आचार्य मुश्तुत ने उपरोक्त लक्षणों के अतिरिक्त स्थानीय लक्षणों में कर्णिका, मण्डल, पिङ्का एवं ऊरु पर्ण में विसर्प, दौर्बल्य, श्वास एवं वमन का भी वर्णन किया है।

मेदानुसार लक्षण

1. दूषीविष आखुदूश के लक्षण

दूषीविष वाले मूषक दंश के लक्षण निम्न प्रकार बताए गये हैं—
 (i) दंश स्थान से पाण्डुरण का रक्त खाव (Whitish / Yellowish blood
 discharge from the place of bite)
 (ii) मण्डल (चकते Redish spot/Rashes)

1. दशाईं चौति मूषिका। (अ.ह.उ. 38/2)
 2. शुर्क पतति यवैषा शुक्रदिव्यैः.....।
 विष के चूड़े भूया भूया कुप्यति॥ (अ.ह.उ. 38/3-5)
 मिडकोपचयश्वाग्री विसप्तः किटिपाति च।
 3. शुक्रेणाच्यु पुरीषेण मूष्रेणापि नवैतस्तथा।
 आदंशाच्छेणित पाण्डु मण्डलानि ज्वरोऽरुचि।
 4. लोमहर्षश्च दहशाख्याद्युद्योगिषादिते॥ (च.चि. 23/147)
1. मूषिका: शुक्रविषः । (सु.क. 3/5)
 2. शुर्क पतति यवैषा शुक्रस्पैः: स्मृशन्ति च।
 नवैतादिभिस्तिस्मै ग्रान्ते रक्त प्रदुष्यति॥ (सु.क. 7/7)
3. शुक्रेणाच्यु पुरीषेण मूष्रेणापि नवैतस्तथा।
 दद्यापिचो शिपन्तीह मूषिका: पंचावा विषम्॥
 (इत्युपर्ण टीका सु कल्प 7 पर)

with profuse sweats. Such type of fever may continue for weeks or month if not treated.

6. Arthritis, delirium and coma.

Management : Principles

1. Benzathine Penicillin 1.2 million unit per day IM. or Erythromycin 2gm/ day orally for 7 days.
2. Tetracycline 2 gm/day orally for 7 days.
3. Symptomatic management.

••• नोट ज्ञान •••

7. कृकलास (गिरगिट) दंश

प्रमुख लक्षण'

1. कृकलास (गिरगिट) दंश में शरीर का वर्ण श्याव हो जाता है।
2. शरीर पर अनेक वर्ण उत्पन्न होते हैं।
3. मोह
4. पुरीष भेद (अतिसार) की उत्पत्ति।

गिरगिट के प्रकारों में प्रायः एक विषाखोपर नामक गिरगिट भी मिलता है। इसका विष अत्यन्त तीव्र होता है तथा इसके दंश से तत्काल मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा

कृकलास दंश में निम्न चिकित्सा करनी चाहिए—

1. स्थानीय वर्ण का शोधन एवं रोपण करें।
2. शोधन के लिए त्रिफला क्वाश का प्रयोग करें।
3. रोपण हेतु जात्यादि धूत का प्रयोग।
4. पञ्चशिरोष आद (शिरोष के फल, मूल, छाल, पुष्प, पत्र) को पीसकर गो घून मिलाकर पान करना तथा स्थानीय लेप करना चाहिए।

••• नोट ज्ञान •••

8. गृहगोधिका (छिपकली) दंश

1. गृहगोधिका दंश से निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न होते हैं—
 1. दंश स्थान में दाह, तोद, स्वेद एवं शोथ हो जाता है (Burning sensation, pricking type of pain, sweating and oedema at the site of bite)
 2. अत्यधिक स्वेदन (Excessive sweating) विषाक्त छिपकली के काटने से अनेक यातक लक्षण उत्पन्न होते हैं। इनमें श्वास कष, आक्षेप, पक्षाधात, एवं हृदय विस्फारित होकर मृत्यु भी हो सकती है।

चिकित्सा

गृहगोधिका दंश की चिकित्सा निम्न प्रकार करनी चाहिए—

1. विषज्ञ लेप एवं विषज्ञ औषधि का पान करना चाहिए।
2. कपित्य अक्षिपीड़, अर्कबीज, शुण्ठी, मरिच, पिपली, करञ्ज, हरिद्वा, दारहल्दी को पीसकर लेप करना चाहिए।

••• नोट ज्ञान •••

9. शतपदी (गोजर) दंश

प्रमुख लक्षण

शतपदी लगभग तीन से छः इंच लंबे शरीर वाले होते हैं। शरीर अनेक खांडों में विभक्त होता है तथा इसके सैकड़ों जोड़े पेर होते हैं। यह लगभग भूसे लाल रंग का होता है। शतपदी दंश में निम्नलक्षण मिलते हैं—

1. दंश स्थान पर शोथ एवं बेदना (Oedema and Pain at the site of bite)
2. हृदय में दाह (Burning in cardiac region)
3. भ्रम (Confusion)

1. नहतोदस्वेद शोधकरी तु गृहगोधिका। (च.चि. 23/156) कपित्यमधिष्ठोच्चर्कविज्ञ त्रिकटुकं तथा।
2. करञ्जों द्वे हसरि च गृहगोधिका जयेत्। (च.चि. 23/216)
3. तापंदृष्टि शोको वेदना दाह श्वहदये, श्वेतानिप्रो-भ्यानन्तं तेव दाहो मृच्छा चातिमात्रं श्वेत पिङ्कोत्पत्तिश्व॥ (सु.क. 8/30)

1. श्यावत्तमश्व काष्ठर्यं वा नानावर्णत्वेव वा।

मोहः पुरीषभेदश्च दृष्टे स्थात् कृकलासकैः ॥ (च.चि. 23/149)

शिरोषफलमूलत्वमुष्पत्रैः सम्बृहते ।

अमृषः उत्तरांशिरोषेऽयं विषाणा प्रवरो वदेः ॥ (च.चि. 23/218)

दंशजनित विकार एवं उनकी चिकित्सा

4. नूच्छर्ण (Syncope)

5. श्वेत पिङ्कोत्पत्ति (Origin of white papules)

6. स्वेद आना (Sweating)

7. हिंड़: शूल (Headache)

8. वमन (Vomiting)

चिकित्तसा

- सञ्जोशार एवं बकरी की मौगी को जलाकर बनायी क्षार का लेप।
 - तुलसी पत्र, अक्षिपीड़क को समझा में लेकर मध्य में पीसकर पान, नस्य, लेप, अंजन के रूप में प्रयोग करना चाहिए।
 - दंश स्थान को त्रिफला काषथ से स्वच्छ करना।
- और •••

10. माध्यिका दंश

प्रमुख लक्षण
विषाक्त माध्यिका दंश से निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न होते हैं—

- दंश स्थान से साव (Secretion from the place of bite)
- स्थाव वर्ण पिङ्कोओं की उत्पत्ति (Appearance of blackish coloured papules)
- दाह (Burning) 4. मूच्छर्ण (Fainting) 5. ज्वर (Fever) माध्यिकाओं में एक स्थिकाका नामक माध्यिका होती है जिसके दंश से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्तसा

- स्थानीय ब्रण को स्वच्छ करें।
- हरिद्रा एवं ध्याज को पीस कर लेप करें।
- कृष्ण वल्मीकी मुत्तिका को गोमूत्र में पीसकर लावें।
- सुएटी, मरिच, सुगन्धबाला, नाकेशर को गोमूत्र में पीसकर दंश स्थान पर लेप करें।

- स्वार्जिकाऽजशकृक्षाः सुत्साऽथाक्षिपीडकः।
महित्पद्मसंतुलो हितः शतपदीतिष्ठे॥ (च.चि. 23/215.)
- सद्य प्रत्याविष्णुश्यावा दहृपूर्वचर्चान्विता।
पितृज्ञा भविकाटदो तस्मा तु स्थानान्वितमुहृत्॥ (च.चि. 23/158.)

11. विषाक्त जंतु दंश

(Poisonous Insect Bite)

प्रमुख लक्षण
विषाक्त जंतुओं के दंश से मनुष्य में निम्नलिखित प्रमुख लक्षण प्रकट होते हैं—

- दंश स्थान में कण्डू (Itching)
- सुई चुभने समान वेदना (Pricking type of pain)
- विवरणता (Discolouration)
- सूखता (Loss of sensation)
- क्लेट (Watery secretions)
- व्रण का सूखना (Dryness of boils)
- दाह (Burning)
- रागा (लालिता) (Redness in boils)
- बेदना (Pain)
- पार्क (Inflammatory lesions)
- काटे हुए स्थान का फट जाना (Tearing at the place of bite)
- शोथ (Oedema)
- ग्रंथ (Glandular Swelling)
- आंगसंकोच (Contraction at the site of bite)
- बिस्फोट (Blisters)
- कर्णिका (Polyps formations)
- मण्डल (Red Patches)
- ज्वर (Fever)

चिकित्सा

विषाक्त कीट दंश में निम्नलिखित चिकित्सा करनी चाहिए—

- सर्पविष में वार्षित 24 प्रकार की चिकित्सा में से जो आवश्यक एवं उपयोगी प्रतीत हो वही चिकित्सा किसी भी प्रकार के जनु से दंश में करनी चाहिए।
- आवश्यकतानुसार तीक्ष्ण वमन एवं तीक्ष्ण विरेचन का प्रयोग करना चाहिए। तत्पश्चात रोगी को संसर्जन क्रम करावें।
- विष यदि शिरो भाग में व्याप्त हो तो नस्य का प्रयोग करावें।
- नेत्र में विष व्याप्ति होने पर पिपलत्यादि अंजन का प्रयोग करें।
- अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करें।

••० रु ५० ••०

12. शंका विष

शंका विष को सर्पाङ्गाभित भी कहा जाता है। अंधकार में किसी कांटा इत्यादि तुम्हारे से मनुष्य को किसी विषाक्त जनु से दंश की आशंका हो जाती है। मात्र शंका से ही शरीर में विष के समान लक्षण उत्पन्न होते हैं, जबकि विष का कोई संबंध नहीं होता है।

प्रमुख लक्षण

शंका विष के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं²—

- ज्वर (Fever)
- मूर्छा (Fainting)
- दाह (Burning)
- गलानि (Depression)
- मोह (Confusion)
- अतिसार (Diarrhoea)

- तत्र सर्वे यथावस्थं प्रयोग्याः स्तुर्वप्तकमः। पूर्वका विधिमन्त्रं च यथावद् तुवतः शृणु॥ हहिदाहे प्रसेके वा विरेकवस्त्रं भ्रशाम्। यथावस्थं प्रयोक्तव्यं शुद्धं संसर्जकमः॥ (च.चि. 23/179-180)
- दुर्घटकारे विद्यस्य केनचिद्दिशशङ्क्या। विशेष्टाङ्गाज्ञवश्छादिमूँछ्यां दाहोऽपि वा भवेत्॥ लालनिम्बोऽतिसारशायेतच्छङ्गाविषं मतम्॥ (च.चि. 23/221)
- तत्र लक्षणं लक्ष्यते ताम्बूलमायसमपि प्रवातम्। अस्त्रं च सर्वं लक्षणं च सर्वं स्वेदं च नानाविध्यासुलानि॥ निनां भायं धूमविधिं क्षुधां च विषातुरो नैव भजेत् कदाचित्॥ (भौ. 72/84-85)

चिकित्सा

शंका विष उपस्थित होने पर निम्नलिखित चिकित्सा करनी चाहिए—

- रोगी को आश्रासन एवं सत्त्वावज्य चिकित्सा दे।
- चीनी, शुद्ध गंधक, मुनका, क्षीरकाकोली, मधुयष्ठि इनके सम्भाग तूष्ण को मधु में मिलाकर चटाना चाहिए।
- अभिमन्त्रित जल का प्रयोग।
- रोगी को सान्त्वना देनी चाहिए। सर्व प्रकार के विष में पश्यापश्य

पश्य?

आहार जन्म्य

शालि चावल, शाठी चावल, कोदो चावल, प्रियंगु सैंधव नमक, चौलाई, जीवन्ती, बैंगन, चौपतिया शाक, मण्डुकपर्णी, परबल, ओवलला, अनार, अमल, दम्ब, मूंगा, मसूर, अरहर की दाल, काले हिण, मोर, साही, लावा पक्षी, तितिर, चिचित्र हिण का मांस रस, विषचन औषधियों से सिद्ध मांसरस एवं धूष का प्रयोग तथा अविदाही अत्र इत्यादि।

अपश्य?

आहार जन्म्य

विरुद्ध भोजन, अध्यशन, ताम्बूल, सर्वप्रकार के अम्ल, लवण पदार्थ, सर्व प्रकार के अचार, भूखा रहना एवं पर्युषित आहार सेवन इत्यादि।

- चिकित्सात्मदं तस्य कुर्यादाश्वासयन तुधुः। सिता वैतिक्को दाक्ष पवस्या मधुकं मधु॥ पानं समन्तपूताम्बू प्रोक्षणं सान्त्वहर्षणम्॥ (च.चि. 23/222-223) शालयः शहिकाश्वेत कोट्टूः.....।
- क्लेंधं विरुद्धावश्यं ताम्बूलमायसमपि प्रवातम्। अस्त्रं च सर्वं लक्षणं च सर्वं स्वेदं च नानाविध्यासुलानि॥ निनां भायं धूमविधिं क्षुधां च विषातुरो नैव भजेत् कदाचित्॥ (च.चि. 23/224-227)
- चालानि विषार्तानि विषगिरजम्॥ (च.चि. 23/224-227)

अध्याय-७

व्याधिक्षमित्व, प्रतिजन एवं प्रतियोगी, लसीका रोग प्रेरित विकार अनुजंता एवं चिकित्सक

1. व्याधिक्षमित्व (Immunity)

परिचय

आयुर्वेद के मुख्यतः दो प्रयोजन हैं—

- स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा
- आयुर्वेद में उत्पन्न विकार का प्रशमन करना।

यहां पर सर्वप्रथम स्वास्थ्य रक्षा पर अधिक ध्यान दिया गया है। स्वास्थ्य के उच्चतम स्तर को बनाए रखने के लिए संहिता ग्रंथों में अनेक प्रकार के सिद्धांतों की विस्तृत विवेचना की गयी है जैसे दिनचर्या, राशिचर्या, कठुनचर्या, सदवृत्त का पालन एवं आचार रसायन का पालन करना इत्यादि। इन सभी उपायों का मूलभूत उद्देश्य है शरीर की व्याधि के प्रति प्रतिरोधक क्षमता को इड़ करना, अर्थात् शरीर में व्याधिक्षमित्व (Immunity) को बनाये रखना। सम्भवतः आचार्यों को यह सोच ही हो कि स्वास्थ्य के समुचित उच्चयन (Health Promotion) पर विशेष ध्यान देने से रोगोपत्ति को रोका जा सकता है। शायद इसीलिए संक्रमण आदि के लिए प्रतिरोधक उपायों को कम महत्व दिया गया प्रतीत होता है। क्योंकि प्राचीन समय में संक्रामक रोगों की सम्भावना नागण्य थी। परंतु यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राचीन समय के आयुर्वेद के आचार्यों को संक्रमण का ज्ञान नहीं था, यह बन चरक सहित विमानस्थान में नार्पित जनपदोंवस्त्र प्रकरण से स्पष्ट है। आचार्य सुशृत ने भी संक्रामक रोगों का वर्णन किया है। अतः यह समझा जा सकता है कि आचार्यों ने संक्रमण एवं व्याधिक्षमित्व पर भी पर्याप्त चिन्तन किया था परंतु सम्भवतः उस समय देश काल, परिस्थितियों के अनुसार इनको विस्तृत विवेचना की आवश्यकता प्रतीत

नहीं हुई होगी। सम्भवतः इसीलिए संहिता ग्रंथों में व्याधिक्षमित्व का अत्यल्प वर्णन मिलता है।

आधुनिक युग में बदलते परिवेश, पर्यावरण परिवर्तनों, रहन-सहन के तौर-तरीकों इत्यादि के कारण संक्रामक व्याधियों की बढ़ सी आ गयी है जिसके फलस्वरूप आधुनिक विज्ञान द्वारा नित नवे अनुसंधानों के कारण व्याधिक्षमित्व विज्ञान (Immunology) एवं इससे संबंधित अनेक रहस्यों पर से पर्दा उठ रहा है एवं उनकी वैज्ञानिक व्याख्या की जा रही है। प्रस्तुत अध्याय में व्याधिक्षमित्व (Immunity), प्रतिजन (Antigen), प्रतियोगी (Antibody), लसीका रोग (Serum Disorders) एवं अनुजंता (Allergy) का आधुनिक एवं आयुर्वेदीय सिद्धांतों के आधार पर विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

परिभाषा

व्याधिक्षमित्व वह शारीरिक शक्ति है जो शरीर में उत्पन्न होने वाली व्याधि के बल को घटाती है तथा व्याधि की उत्पत्ति को रोकती है।

पर्यावरण में अनेकों प्रकार के जीवाणु विषाणु कवक इत्यादि हमेशा विद्यमान रहते हैं। मनुष्य द्वारा शास अंदर लेने की प्रक्रिया के दौरान यह हानिकारक जीवाणु शरीर में पहुंचते रहते हैं। इन जीवाणुओं के शरीर में पहुंचते ही शरीर का व्याधिक्षमित्व तंत्र सक्रिय हो जाता है एवं इन विषाणुओं को नष्ट कर देता है। फलस्वरूप हमारा शरीर विभिन्न हानिकारक जीवाणुओं के आक्रमण से बचा रहता है। शरीर की इसी क्षमित्व शक्ति या व्याधि प्रतिरोधक क्षमता को व्याधिक्षमित्व कहा जाता है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार मनुष्य के रक्त में एक विशेष प्रकार की श्वेत रक्त कणिकाएं (Lymphocytes) होती हैं जो बाहर से प्रवेश करने वाले रोगाणुओं को प्रतीत होती हैं। क्योंकि प्राचीन समय में संक्रामक रोगों की सम्भावना नागण्य थी। परंतु यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राचीन समय के आयुर्वेद के आचार्यों को संक्रमण का ज्ञान नहीं था, यह बन चरक सहित विमानस्थान में नार्पित जनपदोंवस्त्र प्रकरण से स्पष्ट है। आचार्य सुशृत ने भी संक्रामक रोगों का वर्णन किया है। अतः यह समझा जा सकता है कि आचार्यों ने संक्रमण एवं व्याधिक्षमित्व पर भी पर्याप्त चिन्तन किया था परंतु सम्भवतः उस समय देश काल, परिस्थितियों के अनुसार इनको विस्तृत विवेचना की आवश्यकता प्रतीत

- प्रस्ताव ग्रन्तसमशिलिंगासत्त्वभोजनात्।
सहशय्याऽसनाच्छापि वस्त्रमाल्यनुलेपनात्॥

कुष्ठ जरूर शोषश नेत्राभिष्पन्द एव च।
आपस्मारिकरोगाश संक्रामनि नरान्तरम्॥

(सु.नि. 5/32-33)

- प्रस्ताव ग्रन्तसमशिलिंगासत्त्वभोजनात्।
सहशय्याऽसनाच्छापि वस्त्रमाल्यनुलेपनात्॥

उसके प्रतिरोधी भी स्वभावतः शरीर रक्त में निर्मित हो जाते हैं जिन्हें प्रतियोगी (Antibody)

(च.मू. 28/16 पर चक्रपणि)

कहते हैं। यह प्रतियोगी (Antibody) उस जीवाणु (Antigen) के विरुद्ध क्रिया शक्ति हमेशा के लिए अथवा कुछ जीवाणुओं के संदर्भ में अधिक समय तक के लिए प्रतीरोधी (Antibodies) बना देते हैं जो शरीर को विभिन्न जीवाणुओं के आक्रमण से बचाता है। इसी आधार पर आधुनिक टीकाकरण (Immunization) का विकास हुआ है।

व्याधिशक्षमित्वा के भेद

व्याधिशक्षमित्वा दो प्रकार का होती है—

1. रोगजक्षमता या अर्जित व्याधिशक्षमित्वा (Acquired Immunity)

2. कृत्रिम या युक्तिकृत या मसूरीकृत व्याधिशक्षमित्वा (Artificial immunity)

1. रोगजक्षमता या अर्जित व्याधिशक्षमित्वा (Acquired Immunity)

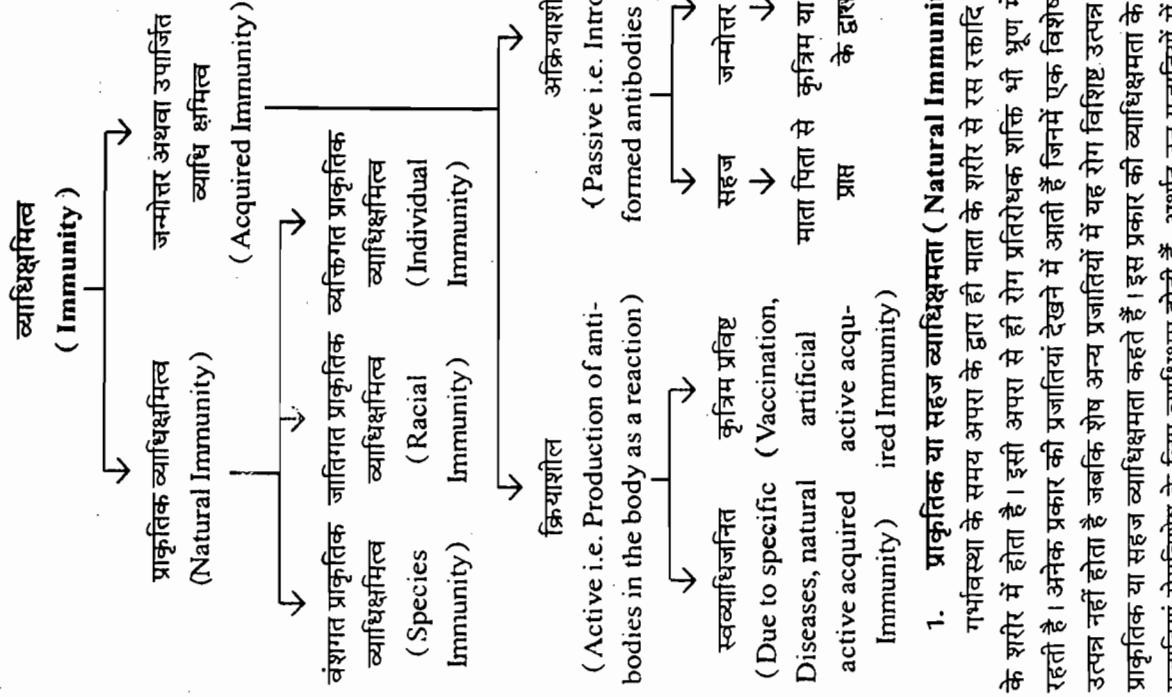
व्यक्ति जब किसी व्याधि से ग्रस्त होता है एवं कुछ समय पश्चात उस रोग से जब मुक्त हो जाता है तब उस रोग से बचाव की जो शक्ति उस मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होती है उसे ही रोगज अथवा अर्जित व्याधिशक्षमित्वा कहा जाता है। उस रोग विशिष्ट से बचाव की यह क्षमता शरीर में दीर्घ काल बर्दी रहती है। कुछ व्याधियों के मनुष्य शरीर में एक बार व्याधि उत्पन्न हो जाने के पश्चात उस व्याधि के खिलाफ आजीवन व्याधिशक्षमित्वा शक्ति विकसित हो जाती है। जैसे मरम्पूरिका (Chicken Pox), चेचक (Small Pox) इत्यादि का मनुष्य शरीर में एक बार आक्रमण हो जाने पर प्रायः पुनः दोबारा यह रोग उस व्यक्ति विशेष के शरीर में उत्पन्न नहीं होता है। यह रोगज क्षमता या अर्जित व्याधिशक्षमित्वा मनुष्य शरीर में रोग उत्पन्न होने के परिणाम स्वरूप ही सम्भव हो पाती है।

2. कृत्रिम या युक्तिकृत या मसूरीकृत व्याधिशक्षमित्वा (Artificial immunity)

यदि स्वतः ही मनुष्य शरीर में व्याधिशक्षमित्वा की कमी हो अथवा स्वाभाविक रूप से मनुष्य शरीर में व्याधिशक्षमित्वा नहीं हो तब उस स्थिति में कृत्रिम विधियों के द्वारा भी जीवाणु अथवा विषाणु को निक्षिय रूप में अथवा आशिक सक्रिय रूप में अथवा उसके विष को अल्प मात्रा में सूची वेध (Injection) के द्वारा अथवा मुख्यार्था द्वारा भी मनुष्य शरीर में उचित मात्रा में प्रवेश कराकर उस व्यक्ति को उस व्याधि के प्रति व्याधिशक्षम (Immune) बना दिया जाता है। इसे लसीका चिकित्सा (Serum Therapy) कहा जाता है एवं इस पद्धति का नाम टीकाकरण अथवा Vaccination Therapy है। इस प्रकार व्यक्ति में कृत्रिम या युक्तिकृत व्याधिशक्षमित्वा का विकास किया जाता है। व्याधिशक्षमित्वा के बारे में नीचे दिये गये रेखाचित्र के माध्यम से विस्तार से समझा जा सकता है।

भेद

प्राकृतिक या सहज व्याधिशक्षमता तीन प्रकार की होती है—



व्याधिशमित्व, प्रतिजन एवं प्रतियोगी

- (i) वेशगत सहज व्याधिशमित्व
- (ii) जातिगत सहज व्याधिशमित्व
- (iii) व्याकुलात सहज व्याधिशमित्व

(i) वेशगत सहज व्याधिशमित्व
मानव की अनेक ऐसी उपजातियां मिलती हैं जो समान रूप से एक ही व्याधि से पीड़ित नहीं होती हैं जैसे अश्वे अग्नोकी लोगों में पीत जर (Yellow fever) बहुत कम मिलता है एवं राजयक्षमा (Tuberculosis) रोग अधिक मात्रा में मिलता है। यहूदी लोगों में राजयक्षमा बहुत कम मिलता है तथा नेपालियों में बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसे वेशगत सहज व्याधिशमित्व कहते हैं। इसके अंतर्गत जन्म से ही अनेक वंशों में रोग विशेष के प्रति व्याधिशमित्व निदृष्ट मान रहती है।

(ii) जातिगत सहज व्याधिशमित्व

कुछ संक्रामक व्याधियां केवल मानव जाति में ही पायी जाती हैं जैसे फिरांग, कुछ विसूचिका, रोहिणी आदि रोग केवल मनुष्य जाति में ही पाए जाते हैं। अजा (बकरी) को राजयक्षमा नहीं होता है, पश्चियों में धुनवति (Tetanus) नहीं होता है। इसी प्रकार कुछ व्याधियों मनुष्य एवं पशु पक्षियों दोनों में ही समान रूप से पायी जाती हैं जैसे ल्पा, जलसन्नास, रिकेट्स इत्यादि। यह जातिगत व्याधिशमित्व जीवन भर स्थायी स्वरूप में रहती है। इसके अंतर्गत विशेष जातियों में रोग विशेष के प्रति स्वाभाविक रूप से व्याधिशमित्व रहती है।

(iii) व्यक्तिगत सहज व्याधिशमित्व

कुछ एवं नियमित रूप से संतुलित आहार विहार का पालन करता है, स्वास्थ्य का समुचित ध्यान रखता है वह व्यक्ति किसी भी व्याधि के प्रति अधिक रोग प्रतिरोधक शक्तिवाला होता है। लंबे एवं चपटे (Flat chest) वक्ष वाले व्यक्तियों में राजयक्षमा शीघ्र उत्पन्न होता है। निरंतर अध्यास जैसे योगासन, ध्यान, प्राणायाम, घटकमं एवं पंचकर्म इत्यादि का यथावस्थक सेवन करते हुने से अल्प रोग प्रतिरोधक शक्ति वाला व्यक्ति भी अपनी रोग प्रतिरोधक क्षमता को विकसित कर सकता है। शरीर पर त्वचा का वाहा आवरण भी औपसर्विक व्याधियों से व्यक्ति की सुरक्षा करता है। मुख, नासा, आमाशय, श्वास पथ (Trachea) की रलेटेन कला भी व्याधि उत्पत्ति रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कई प्रकार के व्यवसाय ऐसे भी होते हैं जो रोग प्रतिरोधक शक्ति को क्षीण या वृद्ध कर सकते हैं।

प्राकृतिक या सहज व्याधिशमित्व में चूनता के कारण
मनुष्यों में प्राकृतिक व्याधिशमित्व में हास के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

व्याधिशमित्व, प्रतिजन एवं प्रतियोगी

1. अत्यंत शीत अथवा अत्यंत उष्ण जलवायु में बार-बार परिवर्तन होना। इससे बार-बार शीतों एवं उष्णता में परिवर्तन होकर उपसर्ज (Infection) की संभावना बढ़ जाती है।
2. निरंतर विषम आहार-विहार का सेवन करना।
3. अष्ट आहार विधि विशेषायतन एवं द्वात्रशासन का समुचित रूप से पालन नहीं करना।
4. अति उपवास करना।
5. दूषित एवं निकृष्ट खाद्य पदार्थों का निरंतर स्वावन।
6. पर्यावरण प्रदूषण जैसे जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनिप्रदूषण इत्यादि।

7. अत्यधिक मद्यपान करना।
8. विभिन्न प्रकार की व्याधियां जैसे रक्तक्षय, मधुमेह, इडस आदि व्याधियों में भी प्राकृतिक व्याधि शमित्व अत्यल्प या नष्ट हो जाती है।

जन्मोत्तर अथवा उपार्जित व्याधिशमित्व (Acquired Immunity)

अनेक प्रकार के संक्रामक रोगों के आक्रियम व्याधिशमित्व उत्पादक द्रव्यों के निरंतर प्रयोग से शरीर में व्याधिप्रतिरोधक शक्ति का उद्भव एवं विकास होता है। मृदु स्वरूप में उपसर्ज (Mild infection) से आक्रांत होने पर अथवा धीरे-धीरे अल्प मृदु स्वरूप से औपसर्जिक जीवाणु या उनके विष का शरीर में सूची वेध अथवा मुख भार्ग से प्रवेश कराया जाता है, जिसके फलस्वरूप उस रोग के प्रति शरीर में प्रतियोगी (Antibody) का निर्माण हो जाता है परिणामतः बाद में उस रोग का संक्रमण होने पर भी वह व्यक्ति उस व्याधि से प्रभावित नहीं होता है। इसे जन्मोत्तर अथवा उपार्जित व्याधिशमित्व कहा जाता है।

जन्मोत्तर अथवा उपार्जित व्याधिशमित्व के दो विभाग होते हैं—

- (i) क्रियाशील व्याधिशमित्व एवं
- (ii) अक्रियाशील व्याधिशमित्व

(i) क्रियाशील व्याधिशमित्व

विभिन्न प्रकार के इम्यूनोग्लोब्युलिन्स (Immunoglobulins) के द्वारा जब शरीर में स्वयं सक्रिय रूप से व्याधिशमित्व की उत्पत्ति होती है तो उसे सक्रिय अथवा क्रियाशील व्याधिशमित्व कहते हैं। यह व्याधिशमित्व स्थानी अथवा अस्थायी दो प्रकार की हो सकती हैं।

कार्यधारिकता

अत्यंत अल्पस्वरूप बाली होती है किन्तु बालक के शरीर में उस उपसर्गजन्य व्याधि के प्रति रोगप्रतिरोधक क्षमता निकम्भित हो जाती है। संक्रमण के मुड़ होने से एवं सहज व्याधिशमित्व के कारण कुछ बच्चे रोग से आक्रमित हो जाते हैं जबकि अन्य नहीं होते हैं। अतः भविष्य के लिए वे बच्चे उस व्याधिशमित्व के प्रति व्याधिशमित्व के लिए वे बच्चे उस व्याधिशमित्व के प्रति व्याधिशमित्व के प्रति व्याधिशमित्व हो जाते हैं। सम्भवतः इसी कारण बाल्यावस्था में रोहिणी (Diphtheria), तुण्डिकेरी शोथ (Tonsillitis), कुक्कुर कास (Whooping cough), रोमातिका (Measles) आदि रोगों का अधिक प्रकोप होता है। परंतु युवावस्था में इनका प्रकोप प्रायः नहीं होता है।

(ब) प्रत्यक्ष रोग आकृष्माणजन्य व्याधिशमित्व
बाल्यावस्था में कुछ व्याधियों से पीड़ित होने के पश्चात पुनः उसी व्याधि से पीड़ित होने की सम्भावना अत्यंत कम हो जाती है। कई व्याधियों से ग्रास एक बार पीड़ित होने के पश्चात दोर्घ काल तक के लिए शरीर में व्याधिशमित्व विकसित हो जाता है। जबकि अनेक व्याधियों में अल्प समय के लिए ही व्याधिशमित्व विकसित होता है। मसूरिका, रोमातिका एवं कर्णपूल शोथ आदि व्याधियों से ग्रास होने के उपरान्त ठीक होने पर प्रायः जीवन भर के लिए या दोषक काल तक के लिए वह व्यक्ति व्याधिशमित्व हो जाता है। अतिक्र ज्वर (Typhoid) एवं द्लेग (Plague) इत्यादि रोगों से ग्रास होने के उपरान्त व्यक्ति में एक-दो वर्ष तक के लिए ही व्याधिशमित्व शक्ति विकसित होती है तथा भविष्य में वह व्यक्ति पुनः इन रोगों से ग्रास हो सकता है।

(स) क्रियाशील क्रित्रिम व्याधिशमित्व
संक्रामक जीवाणु या विषाणुओं को निष्क्रिय करके या संस्कृति स्वरूप में निर्मित कर व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कराने पर बिना व्याधि उत्पत्ति के ही उस व्यक्ति का शरीर उस विषेष व्याधि के प्रति व्याधिशमित्व हो जाता है। इस प्रकार से रोग प्रतिरोधक शक्ति विकसित करने के तीन उपाय हैं-

१. संस्कृतिरित जीवित जीवाणु जन्य (Live attenuated Bacteria)
इस विष में जीवाणुओं की संक्रमण करने की शक्ति को नियंत्रित करने के उपरान्त उनका संवर्धन (Culture) करके उनकी रोग उत्पादक शक्ति नष्ट कर दी जाती है जिससे मनुष्य शरीर में उनको प्रविष्ट कराने के उपरान्त व्याधि उत्पत्ति नहीं होती परंतु उस व्याधिशमित्व के प्रति रोग प्रतिरोधक शक्ति विकसित हो जाती है। अल्लक्र विष (Rabies), मसूरिका (Chicken Pox) आदि की मसूरी (Vaccine) का प्रयोग इसी सिद्धांत के आधार पर किया जाता है।
२. मृत जीवाणुजन्य कृत्रिम व्याधिशमित्व
इस विष के अंतर्गत जीवाणुओं को 55-60°C तापक्रम पर 30 मिनट तक गर्म करते हैं। तत्पश्चात उन्हें फार्मलीन आदि में सुरक्षित कर लिया जाता है एवं बाद में उनका उपयोग किया जाता है। द्लेग (Plague), विस्त्रिका (Cholera), आतिक्र ज्वर

(Typhoid), कुक्कुर कास (Whooping cough or pertusis) के मसूरी (Vaccine) इसी विष से लैयार किये जाते हैं। इस विष के द्वारा उन्हीं जीवाणुओं की मसूरी (Vaccine) तैयार की जाती है जिनका विष उनके शरीर में ही अवस्थित रहता है।

३. जीवाणु विष जन्य लसीका (Toxoids) का निर्माण

इस प्रकार की लसीका (Toxoids) का निर्माण अत्यन्त शातक श्रेणी के विषणुओं हेतु करते हैं जैसे रोहिणी (Diphtheria), धनुर्वात (Tetanus) इत्यादि। इन रोगों के प्रतिकार के लिए जीवाणु विषों (Toxins) या उनके विषाक्त द्रव्यों (Toxoids) का प्रयोग किया जाता है। इनके प्रयोग करने से शरीर में प्रतिविष का निर्माण हो जाता है जिससे प्रयोग किया जाता है। इन व्याधियों की चिकित्सा के लिए प्रयोग किया जाता है। इस विष में धोड़े के शरीर में जीवाणु विषों का धीरे-धीरे प्रयोग कराकर विष उत्पन्न किया जाता है और प्रतिविष युक्त अश्व की लसीका का प्रयोग विकित्ता कार्य में किया जाता है।

(ii) अक्रियाशील अथवा निष्क्रिय व्याधिशमित्व
किसी संक्रामक व्याधि से ग्रास हो जाने के पश्चात सक्रिय क्षमता वाला दव्य प्रयुक्त नहीं किया जाता है क्योंकि इससे उस रोग के बढ़ने की संभावना हो जाती है। अतएव ऐसी स्थिति में व्याधिशमन के लिए पहले से निर्मित दव्य का प्रयोग किया जाता है क्योंकि इस दव्य के निर्माण में शारीरिक कोशिकाएँ भाग नहीं लेती हैं, इसीलिए इसे निष्क्रिय व्याधि क्षमता कहते हैं इसके दो भेद होते हैं-

- (अ) सहज व्याधिशमित्व
- (ब) जन्मोत्तर कालज व्याधिशमित्व
- (अ) सहज निष्क्रिय व्याधिशमित्व
माता के शरीर में विद्यमान विभिन्न प्रकार की व्याधिशमता जैसे रोमांतिका, रोहिणी, आदि रोगों के लिए जो रोग प्रतिरोधक शक्ति होती है वह शिशु में भी ज्वर्तन हो जाती है। परंतु इस प्रकार की व्याधिशमता लगभग 6 महीने तक ही शिशु के शरीर में रहती है उसके बाद में शिशु में पुनः व्याधिशमित्व उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है।
- (ब) जन्मोत्तर कालज निष्क्रिय व्याधिशमित्व
इस प्रकार की व्याधिशमित्व उत्पन्न करने की विधि में व्यक्ति के शरीर में प्रविष जीवाणुओं के विष को नष्ट करने के लिए सक्षम लसीका (Serum) प्रविष कारकर तत्काल व्यक्ति के शरीर में व्याधि क्षमता उत्पन्न की जाती है अर्थात् व्यक्ति की व्याधि से रक्षा की जाती है। इस प्रक्रिया में निम्नलिखित तीन विधियों को प्रयुक्त किया जाता है-

१. प्रतिविष लसीका (Serum Toxoid)
इस प्रकार की लसीका में उन जीवाणुओं के विष नशक प्रतिविष पहले से ही उपचित्त रहते हैं। अतः यदि रोग का संक्रमण हुआ है तो तत्काल उपचार के लिए इस प्रकार की लसीका का प्रयोग किया जाता है जैसे धनुर्वात (Tetanus) एवं रोहिणी (Diphtheria) जैसे शातक रोगों के शमनार्थ इसी प्रतिविष लसीका (Serum Toxoid) का प्रयोग कराते हैं।
२. प्रतीष्ठित जीवाणु व्याधिशमित्व
इस विष के अंतर्गत जीवाणुओं को 55-60°C तापक्रम पर 30 मिनट तक गर्म करते हैं। तत्पश्चात उन्हें फार्मलीन आदि में सुरक्षित कर लिया जाता है एवं बाद में उनका उपयोग किया जाता है। द्लेग (Plague), विस्त्रिका (Cholera), आतिक्र ज्वर

2. जीवाणुरोधी लसीका (Anti Bacterial Serum)

इस प्रकार की लसीका संबंधित जीवाणु को ही नष्ट करती है न कि उनके विष को।

जैसे मस्तिष्क सुमुना ज्वर (Meningitis), रत्तेज्ज्वलन संक्रियत ज्वर (Influenza), आंत्रिक ज्वर (Typhoid) एवं प्लग (Plague) इत्यादि रोगों की चिकित्सा में जीवाणुरोधी लसीका (Antibacterial Serum) का प्रयोग किया जाता है।

3. मन्त्रिवृत्त लसीका (Self Oriented Serum) जन्य व्याधिशमित्त

व्याधि प्रस्त व्यक्ति के शरीर में उस व्याधि को बिनष्ट करने में सक्षम लसीका उत्पन्न होने के कारण ही वह व्यक्ति उन रोगों से मुक्त होता है। मुख्यतः विषाणु (Virus) जनित व्याधियों से मुक्त रोगों की लसीका में यह गुण अधिक रहता है। रोमान्तिका (Measles) एवं रोशीबीय आंधात (Poliomylitis) से मुक्त रोगियों की लसीका इन्हीं रोगों से प्रस्त विषु में लाभदायक होती है।

चिकित्सा की दृष्टि से सक्रिय एवं निष्क्रिय व्याधिशमित्त में अंतर

क. सं. सक्रिय व्याधिशमित्त

1. सक्रिय व्याधिशमित्त में प्रतियोगी (Antibody) उत्पन्न होने की

प्रक्रिया उसी व्यक्ति के शरीर में सप्तन होती है।

2. यह दीर्घकालिक एवं स्थायी स्वरूप की होती है।

3. सक्रिय कृत्रिम व्याधिशमित्त में समूहों (Vaccination) प्रयोग के बाद शरीर में प्रत्यक्ष रोग के समान सौभाग्य स्वरूप के स्थानीय एवं सार्वदेहिक लक्षण प्रकट होते हैं।

4. सक्रिय व्याधिशमित्त को उत्पन्न

मसूरीकरण (Vaccination) के मूल शरीर में प्रवेश करने होती है।

5. सक्रिय व्याधिशमित्त का प्रयोग दीर्घ

कालानुबंधी एवं प्रायः मृदु स्वरूप की व्याधियों की चिकित्सा में किया जाता है।

2. प्रतिजन एवं प्रतियोगी (Antigens and Antibodies)

1. प्रतिजन (Antigen)

प्रतिजन (Antigen) एक विशेष प्रकार के द्रव्य होते हैं जो कोशिकाओं की सतह (Surface) पर होते हैं। यह विशेष प्रकार की कोशिकाओं की पहचान करते हैं तथा शरीर में प्रतियोगी (Antibody) पदार्थ की उत्पत्ति को प्रेरित करते हैं।

विजातीय द्रव्यों अथवा विजातीय द्रव्यों आदि के प्रयोग करने से शरीर में व्यापक प्रतिक्रिया (Immune Reaction) उत्पन्न होती है एवं प्रचुर मात्रा में प्रतिरोधी पदार्थों (Antibodies) का निर्माण होने लगता है जो उस विशेष विजातीय द्रव्य की शमाता को समाप्त करने में सक्षम होते हैं। यदि यह प्रतिजन (Antigen) सामान्य हो तो सतत रूप से शरीर में प्रतिरोधी (Antibody) द्रव्य का निर्माण होता रहता है तथा शरीर की प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती रहती है। परंतु विशेष प्रकार के प्रतिजन (Specific types of antigens) होने पर विशेष प्रकार के प्रतियोगी द्रव्यों (Antibodies) का ही निर्माण होता है एवं उस व्याधि विशेष के प्रति ही प्रतिरोधक शक्ति विकसित होती है।

2. प्रतिरोधी या प्रतियोगी (Antibody)

प्रतिरोधी एक विशेष प्रकार के लाइकोप्रोटीन होते हैं जो प्रतिजन द्रव्यों से प्रेरित होकर एक विशेष प्रकार की कोशिका B-Lymphocytes के द्वारा उत्पन्न अथवा निर्मित होते हैं। यह द्रव्य उस प्रतिजन के साथ जुड़कर उसे नष्ट करके शरीर की रक्षा करते हैं। प्रतियोगी द्रव्य (Antibodies) कई प्रकार से प्रतिजन (Antigens) को नष्ट करते हैं जैसे प्रतिजन को युत्तरशील बनकर नष्ट करना, उनके द्वारा उत्पन्न विष को नष्ट करना अथवा विशेष प्रकार की कोशिकाओं को खण्डण (Phagocytosis) के लिए प्रेरित करके नष्ट करना अथवा उस प्रतिजन को विशेष कोशिकाओं से जुड़ने नहीं देना (Prevent the antigen from adhering to the host cells) इत्यादि विधियों के द्वारा प्रतिरोधी द्रव्य प्रतिजन द्रव्यों को नष्ट करके शरीर की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

व्याधि क्षमता उत्पादक प्रमुख द्रव्य

अनेक प्रकार के द्रव्य ऐसे होते हैं जिनका प्रयोग शरीर की व्याधिशमित्त शक्ति को बढ़ाने में किया जाता है। कुछ प्रमुख द्रव्य जो शरीर की व्याधिशमित्त उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं को यहां वर्णित किया जा रहा है-

1. प्रोभूजिन वर्ग (Proteins Group)

इस वर्ग के अंतर्गत दुध प्रोटीन (Milk Protein), लसीका प्रोटीन (Serum

Protein), पेटोन्स (Peptones), मसूरी (Vaccines) एवं रक्त (Blood) इत्यादि का ग्रहण किया गया है।

2. धातु एवं उपधातु वर्ग (Heavy Metals)

इस वर्ग के अंतर्गत, स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह, मैंगनीज, आयोडीन एवं कैलिसियम इत्यादि का समावेश किया जाता है।

3. तेलीय द्रव्य (Oils)

विभिन्न प्रकार के क्षोभक तेल एवं बाकुची तेल इत्यादि को इस वर्ग में रखा जाता है।

आयुर्वेद एवं व्याधिक्षमित्व

आयुर्वेदीय मिळालों की सामान्य अवधारण है कि दोष वैषम्य होने पर ही रोग की उत्पत्ति होती है। अतः शरीर में दोष, धातु एवं मलों की साम्यावस्था बनाये रखना ही रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास करना है। आचार्य काशयप ने शिशुओं में रोग प्रतिरोधक शक्ति विकसित करने के लिए लेहन कर्म का विधान किया है। आचार्य काशयप ने लेहन कर्म अर्थात् शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने के लिए अनेक द्रव्यों एवं घृत प्रयोगों का वर्णन किया है जिन्हें यहां संक्षेप में वर्णित किया जा रहा है।

आचार्य काशयप ने लेहन कर्म अर्थात् शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने के लिए अनेक द्रव्यों एवं घृत प्रयोगों का वर्णन किया है जिन्हें यहां संक्षेप में वर्णित किया जा रहा है।

प्रमुख लेहन द्रव्य एवं उनकी प्रयोग विधि

- प्रस्तर पा.स्वर्ण को घिसकर उसमें मधु एवं सर्पि मिलाकर चटाने से शिशु को मेधा शक्ति, अग्नि एवं बल वर्धन होता है। यह आपृथ, मंगल कारक, पुण्यकारक, वृद्ध, वार्ष, एवं ग्रहबाधा नाशक होता है।
- बाली, मण्डुकपर्ण, त्रिफला, चित्रक, वचा, शतपुष्णा, शतावरी, दन्ती, नागबला एवं त्रिवृत इत्यादि इनको पृथक-पृथक मधु एवं घृत के साथ प्रयोग करता चाहिए।

3. कल्याणी घृत (विशाला, चिपला, देवदार, एलुआ)

- पंचाम्ब घृत (गोदुग्ध, गोधूत, गोमूत्र, गोदधि एवं गोबर का रस)
- सुबं दुःख हि बालानों दृश्यते लेहनश्रमम्!!
(का.मृ. पृष्ठ 1)

अमर्थ मधु सर्पिभ्या लेहेत् कनक शिशुम्।

सुखप्रशनं होतमेधान्मन्त्रवर्धनम्॥

अमर्थ मङ्गलं पुण्य वृद्धं वर्णं ग्रहपहम्॥ (का.मृ. पृष्ठ 4-5)

- बाली घृत (बाली, सर्षप, वचा, सारिवा, मैंधव, घृत)
- सम्बर्धन घृत (खदित, पृश्नपर्णी, बंला, क्षीर, घृत, मधु)
- अष्टग घृत (वचा, बाकुची, मण्डुकपर्णी, अमृता, ब्राह्मी, घृत)
- सारस्वत घृत (अभया, त्रिकटु, पाता, अजाक्षरी, गोमूत्र)
- वचादि घृत (वचा, अमृता, शटी, पथ्या)
- मात्रा : 5-10 ग्राम
- अनुपान : कोण्ठ जल, कोण्ठ दुध

व्याधिक्षमित्व घृताजनित विकार

जिन व्यक्तियों का शरीर अतिश्वल अथवा अतिकृश होता है, जिन व्यक्तियों कि रस, रक्त, मांस इत्यादि धातुऐं सुखविक्रियत एवं संगठित नहीं हहती हैं, जो लोग दुर्बल होते हैं, जिन्हें समुचित पोषण नहीं मिलता है एवं हीन मनोबल तथा स्वल्पाहारी व्यक्तियों के शरीर में पर्याप्त व्याधि क्षमता नहीं होती है एवं वे शीघ्र ही बिकार ग्रस्त हो जाते हैं।

आचार्य चरक ने कृश व्यक्ति की गणना अष्टनित्व व्यक्तियों में की है। कृश व्यक्तियों में व्याधिक्षमता स्वभाव से कम हहती है एवं उनमें निम्न व्याधियां उत्पन्न हो सकती हैं जिन्हें व्याधि क्षमित्व जनित विकार भी कहा जा सकता है—

- प्लीहा रोग (Diseases of Spleen)
- कास (Cough)
- श्वास (Breathlessness)
- अर्श (Piles)
- उदर रोग (Disorders of Abdomen)
- ग्रहणी रोग (Sprue Syndrome)

मनुष के शरीर में व्याधिक्षमित्व की कमी होने के कारण अनेक प्रकार की उपसर्जन व्याधियां भी उत्पन्न हो जाती हैं जैसे—

- हड्डी तोड़ ज्वर (Scarlet fever)
- कुक्कर कास (Whooping cough)
- रोहिणी (Diphtheria)
- विसर्प (Erysipelas)

-
- परिगणि चातिश्वलान्तिकृशाच्यनिविष्टमास्त्रिगतास्थीनि दुर्बलतान्मसात्म्याहरोपिचितान्मत्प्राहारायत्वमूल्यानि च भवन्त्याधिसहनि, विपरीतानि पुनर्व्याधिसहनि। (च.सृ. 28/6)
 - प्लीह कासः क्षयः श्वासो गुल्मोऽश्वस्तुदामि च।
 - कृश प्रायोऽधिक्षमित्व रोगाश्च ग्रहणगतः॥ (च.सृ. 21/4)

7. अमोबिक प्रवाहिका (Amoebic Dysentery)
 8. उज्ज्वलता (Gonorrhoea) 9. उपदंश (Syphilis)
 10. चेचेक (Small Pox) 11. रोमान्तिका (Measles)
 12. मसूरिका (Chicken Pox) 13. एड्स (AIDS), इत्यादि।

3. लसोका चिकित्सा (Serum Therapy)

लसीका या सीरम अल्पतः शुद्ध एवं सान्त्रित द्रव्य होते हैं जो शरीर को किसी व्याधि से आक्रमण होने के उपरात उस रोग से बचाव के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। लसीका चिकित्सा उत्तम व्याधियों का भी शमन करती है एवं सम्पादित व्याधियों से भी बचाव में सहायक होती है।

लसीका चिकित्सा साथ्य प्रमुख रोग निम्नलिखित व्याधियों के शामन एवं बचाव के लिए लसीका चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है—

2. धनुषीति (Diphtheria)
 3. वात कर्दम (Tetanus)
 4. मस्तिष्क मुमुक्षा ज्वर (Meningospinal fever)
 5. श्लेष्मोल्हण सनिपात ज्वर (Influenza)
 6. रोमांतिका (Measles)
 7. शैशवीय अंगाथत (Poliomyelitis)
 8. सर्पदंश (Snake Bite)
 9. उपसार्ज अतिसार (Infective Diarrhoea / Cholera)
 10. रक्तस्रावी रोग (Haemorrhagic Disorders)
 11. जलसन्त्रास (Rabies)

प्रायः लसीका का प्रयोग पेशी मार्ग (Intramuscular injection) से किया जाता है। आवश्यकता होने पर शिरमार्ग (Intravenous Route) से भी लसीका का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रराप्त में अत्यत्य मात्रा में अधस्त्वक सूची वेद के द्वारा अनुर्जित परीक्षण करते हैं। तत्पश्चात् पूर्ण मात्रा में औषधि का प्रयोग किया जाता है।

ਪੰਜਾਬ

लसीका अथवा सीरम को रोगी के शरीर में प्रवाह कराने से तत्काल व्याधिशमित्त उत्पन्न हो जाता है जिससे शरीर में संचित दोषों का धूनाश होकर रोगी का तत्काल श्वमन हो जाता है । अतः जैसे ही शरीर में लसीका साथ्य व्याधि उत्पन्न हो, तत्काल सीरम चिकित्सा प्रारम्भ कर देनी चाहिए । यदि व्याधि अत्यन्त तीव्र स्वरूप की हो तो उसमें सीरम चिकित्सा करने पर व्याधिशमन तो हो जाता है परंतु शरीर में अनेक उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं जिन्हें तीक होने में समय लगता है । जैसे धनुर्वात् (Teltanus) में स्तनध्यता जन्य ब्रण, रोहिणी में अंगोधात इत्यादि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं ।

- सीरम चिकित्सा में सावधानियां रखनी आवश्यक हैं-

 1. कुछ अनुजंता जनित व्याधियों (Allergic Disorders) जैसे शीतलिति नासापरिज्ञात एवं शास इत्यादि में रोगी से सम्बद्धित इतिवृत्त (Relavenn history) पूछकर ही विभिन्न निष्ठा करने चाहिए। कुछ औषधियों के प्रति भी व्याकुल विशेष में अनुजंता होती है अतः इसका भी ज्ञान रखना आवश्यक है।
 2. जिन रोगियों में किसी व्याधि विशेष की शांति के लिए पूर्व में भी लसीकन प्रयोग किया गया हो, उनमें पुनः लसीकन प्रयोग करने पर सूक्ष्म वेदनता के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। अतः इनमें लसीकन प्रयोग अत्यन्त सावधानी से करना चाहिए।
 3. जिन रोगों में बार-बार लसीका प्रयोग करने की आवश्यकता हो जैसे रोहिणी (Diphtheria) एवं धनुर्वात (Tetanus) इत्यादि रोगों में अधर्त्वव सूचीबंध (Intradermal Injection) के द्वारा उनकी सूक्ष्म वेदनता का परीक्षण अवश्य कर लेना चाहिए।
 4. सीरम चिकित्सा में यदि औषधि प्रयोग शीघ्रता पूर्वक शिरा मार्ग से किया जाये तो तीव्र प्रतिक्रिया होने की सम्भावना अधिक रहती है। अतः सावधानं पूर्वक निर्धारित समय में धीरे-धीरे औषधि को शिरा मार्ग से प्रयुक्त करना चाहिए। पेशीगात सूचीबंध से सीरम प्रयुक्त करना अधिक सुरक्षित रहता है।

अधर्त्वक औषधि परीक्षण

सूक्ष्म संवेदना परीक्षण (Sensitivity Test) के लिए एक बूद (One Drop) लसीका को सूची वेध द्वारा त्वचा के नीचे प्रविष्ट करना चाहिए। यदि शीतलिति के समान रक्ताभ चकता उत्पन्न होता हो तो औषधि प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि कोई प्रतिक्रियाएँ

नहीं होती हो तब सौरभ को आवश्यकता के अनुसार पेशीगत या सिरणात मार्ग से दिया जा सकता है।

अनूनता से बचाव के लिए कामपटुधा रस या हरिद्रा खण्ड, शिरोषादि चूर्ण अथवा शरीरोषादि कथाय इत्यादि का प्रयोग आवश्यकता के अनुसार किया जा सकता है।

••० नॉ लॉ लॉ •••

4. लसीका रोग

(Serum Sickness)

परिभाषा

लसीका का प्रयोग करते समय उत्पन्न असहनशीलता (Hypersensitivity) के लक्षणों को लसीका रोग (Serum Sickness) कहते हैं। अत्यंत सबेदनशील व्यक्तियों में बिना समुचित सावधानी के लसीका प्रयोग करने पर अनेक दुष्प्राणीम उत्पन्न हो सकते हैं।

भेद

लसीका का प्रयोग करने पर कई प्रकार के सबेदनशील लक्षणों की उत्पत्ति होती है। इन्हें निम्न तीन बार्गों में विभक्त किया जा सकता है—

1. स्टदः प्रतिक्रिया (Immediate Reaction)

वह व्यक्ति जिनमें पूर्व में लसीका का प्रयोग हो चुका है अथवा जो अनुर्जता जन्य रोगों (Allergic Disorders) से पीड़ित रहते हैं उनमें उस सीरम के प्रति पहले से ही असहनशीलता रहती है। ऐसे आतुर में औषधि प्रयोग के दो से तीस मिनट के भीतर ही निम्न स्वरूप के भयंकर लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं—

(i) शास कृक्ष्युति (Breathlessness)

(ii) प्राणावरोध (Hanging of Breath)

(iii) श्यावांगता (Cyanosis)

(iv) श्लेष्म कला शोथ (Inflammations of mucus membranes)

(v) शीतलिपत (Urticaria) (vi) विस्फोट (Blisters)

(vii) आक्षेप (Convulsions) (viii) निपात (Collapse)

(ix) मृद्धा (Fainting) (x) सन्धास (Coma)

2. त्वचित् प्रतिक्रिया (Accelerated Reactions)

सीरम चिकित्सा के बाद यदि प्रतिक्रिया तत्काल उत्पन्न नहीं होकर 24 से 72 घंटे के बीच असहनशीलतां के लक्षण उत्पन्न हों एवं पूर्व में वर्णित लक्षण मिलें तो उसे भी लसीका जनित विकार माना जाता है। अतः इस प्रकार के उपद्रवों से बचाव के लिए

नहीं होती हो तब सौरभ को आवश्यकता के अनुसार पेशीगत या सिरणात मार्ग से दिया जा सकता है।

अनूनता से बचाव के लिए कामपटुधा रस या हरिद्रा खण्ड, शिरोषादि चूर्ण अथवा

शरीरोषादि कथाय इत्यादि का प्रयोग आवश्यकता के अनुसार किया जा सकता है।

••० नॉ लॉ लॉ •••

3. विलम्बित अथवा सामान्य लसीका रोग (General Serum Sickness)

यह स्थिति प्रायः सिरामा द्वारा लसीका प्रयोग के 6-14 दिन के भीतर उत्पन्न होती है। पहले से लसीका प्रयुक्त व्यक्तियों में फिर से पुनः लसीका प्रयुक्त करने पर जिस प्रकार की प्रतिक्रिया एवं लक्षण व्यक्त होते हैं उसी प्रकार सहज रूप से सूक्ष्म संवेदी व्यक्तियों (Naturaly allergic persons) में भी एक सासाह बाद स्वतः तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न हो सकती है। इसमें प्रायः निम्नलिखित लक्षण व्यक्त होते हैं—

- (i) हृलास (Nausea)
- (ii) वमन (Vomiting)
- (iii) संधिशोथ (Inflammation of joints)
- (iv) शीतलिपत (Urticaria)
- (v) ज्वर (Fever)
- (vi) लसीका गर्भ शोथ (Lymphadenitis)
- (vii) मूत्राल्पता (Oliguria)
- (viii) शिरःशूल (Headache)
- (ix) संधिशूल (Joint pains)
- (x) मस्तिष्क क्षोभ (Meningeal Irritation)
- (xi) हृदय गति में अनियन्तिता (Cardiac Arrhythmias)
- (xii) रक्त स्राव (Haemorrhage)
- (xiii) प्रारंभ में श्वेत रक्त कणिकाओं की वृद्धि एवं कुछ समय पश्चात उनमें क्षय (Primarily Leucocytosis and latter Leucopenia)

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
 2. लसीका चिकित्सा से पूर्व उसकी सम्बेदनशीलता की जाँच
 3. लाक्षणिक चिकित्सा
 4. पथ्यपथ्य का पालन
- आदर्श चिकित्सा पन्न
1. निदान परिवर्जन
 2. अनूर्जता नाशक औषधियों जैसे हरिद्राखण्ड, शिरोष अवलेह,
 - Chloropheneramine Maleate, अथवा Cetirizine का प्रयोग
 3. Use of corticosteroids

4. Calcium gluconate with vitamin C 10%, 10cc को Intravenous प्रयोग

5. Inj. Adrenaline 0.5 ml IM.

आयुर्वेदीय चिकित्सा

	प्रति :	साथं
हरिद्रा खण्ड	: 2 ग्राम	
शिरोषादि चूर्ण	: <u>2</u> ग्राम	
दुग्ध से		1 × 4 मात्रा
भोजनोत्तर		
रस सिन्दूर	: 125 मि.ग्रा.	
रसमाणिक्य रस	: 125 मि.ग्रा.	
शुद्ध स्वर्ण गोरीक	: <u>250</u> मि.ग्रा.	
आरोग्यवर्धनी वटी	: 1 × 4 मात्रा	
शहद से	: <u>20</u> मि.लि.	
शिरोषादि क्वाथ		1 × 2 मात्रा
समधाग जल से		
गात्र में		
हरीतकी चूर्ण	: <u>3</u> ग्राम	
जल से		1 मात्रा
पथ्यापथ्य का पालन		

•••लैंड्रिङ•••

5. अनुज्ञाता

(Allergy)

किसी पदार्थ के द्वारा विशेषतः उसका प्रयोग लचा, लैंड्रिङ कला और कभी-कभी युख डारा करने से भी सामान्य व्यक्ति में कोई निपरित प्रतिक्रिया नहीं हो, परंतु व्यक्ति विशेष में प्रबल, तोत्र अथवा भयंकर प्रतिक्रिया हो तो उस अवस्था अथवा रोग को अनुज्ञाता (Allergy) कहते हैं।

प्रमुख निदान

अनुज्ञाता (Allergy) का कोई विशेष निदान नहीं होता अपेक्षु यह व्यक्ति विशेष पर निर्भर करती है। किसी द्रव्य विशेष के प्रति कभी साम्यता तो कभी अनुज्ञाता भी उत्पन्न

व्याधिश्वमित्र, प्रतिजन एवं प्रतियोगी

हो सकती है। वातावरण जन्य परिवर्तन, पर्यावरण, क्रस्तुपरिवर्तन एवं विशेष खाद्य पदार्थ इत्यादि अनुज्ञाता उत्पन्न करते हैं। निम्नलिखित स्थितियां अनुज्ञाता कारक अथवा अनुज्ञाता में वृद्धि कारक हो सकती हैं-

1. कुछ जातव द्रव्य जैसे पक्षियों के पर एवं रोम, ऊन इत्यादि, गिलहरी को रोदेत लचा।
2. बिल्ली, कुत्ता, घोड़े एवं अन्य जानवरों का सम्पर्क।
3. बेसन, मेंदा, अत्यधिक तला, भुना खाद्य पदार्थ।
4. मानसिक तनाव, मनोद्वेष, विश्रम, कार्य का अधिक दबाव, कार्यालय में कार्य संस्कृति का अभाव इत्यादि।
5. पारिवारिक कठिनाईयां, दैनिक जीवन में असुलन, सहन शक्ति का अभाव इत्यादि।
6. शीत, उष्ण वातावरण जन्य परिवर्तन, क्रस्तुजन्य परिवर्तन इत्यादि।
7. धूल, धुआं, कारबाना, कोयले की खान, पर्यावरण कटाई की खान, इत्यादि के द्वारा भी अनुज्ञाता फैलती है।
8. असात्य खाद्य द्रव्यों का प्रयोग जैसे दूषित आहार में विटामिन की कमी, पोषक द्रव्यों का अभाव इत्यादि।
9. मास, प्रदूषित मर्स्य, केकड़े, आंडा, इत्यादि पदार्थ।
10. लिभिन प्रकार की औषधियां मुख्यतः ऐनिसिलीन एवं सल्फर वर्ग की औषधियां अत्यधिक अनुज्ञाता कारक होती हैं।
11. अष्टाहार विधि विशेषायतन एवं द्वादशासन के अनुसार आहार ग्रहण नहीं करना भी अनुज्ञाता कारक हो सकता है।
12. परिवार में किसी व्यक्ति में अनुज्ञाता का इतिहास उसके सतति में भी अनुज्ञाता उत्पन्न कर सकती है।
13. वस्तुतः अनुज्ञाता के कारणों की कोई निश्चित संख्या नहीं है। न ही कोई द्रव्य संदेव अनुज्ञाता कारक होता है। अतः कोई भी पदार्थ या विषय एक समय अनुज्ञाता कारक हो सकता है तथा बाद में परिस्थितियां बदल जाने पर वहीं पदार्थ सात्य भी हो सकता है।

सम्पादि

बाहर से प्रयुक्त कोई द्रव्य अथवा परिवेश उस व्यक्ति विशेष के लिए प्रतिजन (Antigen) का कार्य करता है। यह प्रतिजन (Antigen) शरीर के लिए सात्य नहीं होता है। फलस्वरूप शरीर की स्वाभाविक प्रतिक्रिया से उस द्रव्य विशेष के प्रतिरोधी (Antibody) बनने लगते हैं लेकिन प्रतिरोधी की मात्रा कम होने एवं प्रतिजन की मात्रा अधिक होने के कारण ऊतकों में उत्थित मास्ट कोशिकाएं (Mast cells) अधिक दृष्टे

लगती हैं। इन Mast cells के टूटने से Histamine, Acetylcholine एवं Heparin आदि द्रव्य अधिक मात्रा में बनकर रक्त में संचरित होने लगते हैं एवं इनके रक्त में पहुँचते ही शरीर में अनुर्जता (Allergy) के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। साधारणतः 2-10 प्रतिशत व्यक्तियों में अनुर्जता का इतिहास मिलता है।

प्रमुख लक्षण

अनुर्जता जनित लक्षणों में बहुत अधिक विभिन्नता मिलती है एवं यह उस द्रव्य विशेष पर निर्भर करती है जिससे शरीर में अनुर्जता उत्पन्न होती है। अनुर्जता जनित कुछ प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं-

- धमनी (Arteries) एवं सूक्ष्म सिराओं (Capillaries) की दीवारों में शिथिलता।
 - त्वचा में लालिमा की उत्पत्ति (Redness in skin)
 - धमनी एवं सिराओं की शिथिलता से शोथ की उत्पत्ति (Oedema)
 - धमनी एवं शिरा शैथिल्य होने से हाथ एवं पैरों का ठंडा हो जाना।
 - ठंडा पसीना आना (Cold Sweating)
 - हृदय गति में तोब्रता (Tachycardia)
 - शास्क-च्छुता (Breathlessness)
 - शिर: शूल. (Headache)
 - इम्मन्दता (Blurred vision)
 - आमाशय में अन्तर्लास की वृद्धि (Hyperacidity)
 - स्वत्वता (Shock)
 - मृत्यु (Death)
- अनुर्जता जनित प्रमुख व्याधियां
- शास्तर से निम्नलिखित प्रमुख व्याधियां उत्पन्न होती हैं-
 - शोर रोग (Allergic Asthma)
 - शोत पित्त (Urticaria)
 - नासा शोथ (Rhinitis)
 - नासा परिस्ताव (Running Nose)
 - क्षत्रश (Sneezing)
 - नासापाक (Rhinitis Sicca)
 - त्वक् शोथ (Inflammation of skin)
 - फुफ्फुसीय श्वास रोग (Pulmonary Asthma)
 - मस्तूदों में शोथ (Inflammations of gums)
 - जर (Allergic fever)

चिकित्सा सिद्धान्त

- निदान परिवर्जन
 - समुचित दिनचर्या, गतिचर्या एवं अधुरचर्या का पालन
 - संतुलित एवं पौष्टिक खाद्य पदार्थों का सेवन
 - प्रथापथ्य का पालन
 - रोगानुसार लालक्षणिक चिकित्सा
 - अनुर्जता कारक द्रव्यों को सात्य बनाने का प्रयास
 - आटर्श चिकित्सा घन्त
 - आमलकी चूर्ण : 2 ग्राम
हरिद्रा खण्ड : 2 ग्राम
कोणा जल से : 1 × 2 मात्रा
 - शुद्ध गंधक : 250 मि.ग्रा.
उसमाणिक्य रस : 125 मि.ग्रा.
 - स्वर्ण गैरिक : 125 मि.ग्रा.
शहद से : 1 × 2 मात्रा
 - आरोग्यवर्धनी वटी : 500 मि.ग्रा.
कोणा जल से : 1 × 2 मात्रा
 - भेजनोत्तर : 20 मि.लि.
शिरोषादि क्राघ : 20 मि.लि.
समभाग जल से : 1 × 2 मात्रा
 - प्रथापथ्य का पालन
 - अनुर्जता कारक द्रव्यों का अत्यंत अल्प मात्रा में सेवन करते हुए धूरे-धूरे मात्रा बढ़ाकर सात्य बनाने का प्रयास
- लैंग लैंग •••

6. चिकित्सक प्रेरित विकार

(Iatrogenic Disorders)

परिचय

चिकित्सा कार्य एक अत्यन्त महत्वपूर्ण, जिम्मेदारी युक्त एवं रोगी के जीवन से जुड़ हुआ कार्य होता है। चिकित्सक की थोड़ी सी असावधानी अथवा भूल रोगी को मृत्यु के मुख में पहुँचा सकती है। इसलिए चिकित्सक का यह दायित्व होता है कि वह अच्छी

प्रकार से रोग एवं रोगी परीक्षण करने के उपरान्त ही औषधि का प्रयोग करे। यदि चिकित्सक उस व्याधि विशेष को समझने में असमर्थ हो अथवा चिकित्सा में असहय महसूस कर रहा हो तो उसे बिना संकोच के रोगी को विशेषज्ञ चिकित्सक के पास भेज देना चाहिए।

चिकित्सक के प्रमुख गुण

आचार्य चरक ने आरोग्य प्रदान करने वाले चिकित्सक को चिकित्सा में कारण कहा है एवं उसके अनेक गुण बताए हैं। जैसे वैद्य को आयुर्वेद के मूँजों का अर्थ जाने एवं प्रयोग करने में कुशल होना चाहिए एवं उसे समूर्ण शास्त्र का विधिवत ज्ञान होना चाहिये। मुख्योय वैद्य में निम्नलिखित गुण अवश्य होने चाहिए—

1. पर्यावरणाशुद्धता (शास्त्रों का परिकृत ज्ञान)
2. प्रत्यक्ष चिकित्सा कर्माभ्यास में निपुणता
3. कुशलता (संकट को तत्काल दूर करने की क्षमता)
4. पवित्रता
5. जितहस्तता (हाथों का यशस्वी होना)
6. सर्व साधन सामग्री से युक्त होना
7. सर्वेन्द्रिय सम्पन्नता
8. रोग एवं रोगी की प्रकृति को जानने वाला
9. युक्तज्ञ (आत्मायिक चिकित्सा में कुशल)

इन गुणों से युक्त चिकित्सक ही अपने कर्तव्य का पालन करने में समर्थ एवं सफल होते हैं—

आचार्य चरक ने रोगाभिषर एवं प्राणाभिषर वैद्यों के लक्षणों का भी वर्णन किया है एवं रोगाभिषर वैद्यों को त्यागने का निर्देश किया है।

चिकित्सक प्रेरित विकार परिभाषा

(मूल विकार वैद्यों के त्यागन से स्वतंत्र रूप से उत्पन्न विकार वैद्यों के द्वारा प्रभुत्व निदान अथवा चिकित्सा से स्वतंत्र रूप से उत्पन्न विकार वैद्यों के द्वारा प्रभुत्व निदान नहीं होने पर अनावश्यक औषधि प्रयोग के द्वारा उत्पन्न हो सकते हैं एवं रोगी को मृत्यु तक हो सकती है। इस ब्रेणी के कुछ प्रमुख विकार निम्नलिखित हैं—

1. व्याधि का समुचित निदान नहीं होने पर अनावश्यक औषधि प्रयोग।
2. त्रुटि पूर्ण सूची वेश करना या अवांछित शल्य किया सम्मानित करना।
3. गर्भ को गुल्म समझकर भ्रूण की हत्याकर देना।
4. प्राणबायु (Oxygen) एवं संज्ञाहरण (Anaesthesia) का अनुचित प्रयोग।
5. अवेष्य सिरा का सिरोवेधन करना।
6. मर्म एवं संस्थि स्थानों पर अग्निकर्म एवं वेधन करना।
7. पंचकर्म के अतियोगा, मिथ्यायोग अथवा हीन योग से अनेक व्यापरितयों की उत्पत्ति हो सकती है।
8. आचार्य सुश्रुत ने बस्ति प्रकरण में 44 प्रकार के चिकित्सक प्रेरित विकारों का विवेदित होती है कि वह बुद्धिमता पूर्ण ढंग से औषधि की क्रिया, उसके हानिकारक प्रभाव, एवं औषधि का मूल्य इत्यादि भावों का विचार करने के बाद ही औषधि का प्रयोग करें।

चिकित्सा कार्य में व्यावहारिक रूख अपनाने की अत्यंत आवश्यकता होती है, चाँचोंकि कोई भी औषधि अथवा यंत्र शस्त्र ऐसा नहीं है जिसके असम्यक प्रयोग से हानि की सम्भावना नहीं हो। चिकित्सक को यह विचार करना चाहिए कि उसके द्वारा प्रयुक्त प्रयोग करने में कुशल होना चाहिए एवं उसे समूर्ण शास्त्र का विधिवत ज्ञान होना चाहिये।

जैसे Systemic lupus erythematosus में Steroids का प्रयोग करने से कुशिंग सिन्ड्रोम (Cushing Syndrome) होने की सम्भावना रहती है। परंतु यहां पर Steroids प्रयोग करने से होने वाली हानि, औषधि की लाभ की तुलना में कुछ भी नहीं है। परंतु यदि सामान्य आमवात के रोगों में Steroids का अधिक प्रयोग किया जाये तो आमाशयिक रक्तस्राव एवं छिद्रोदर होने की प्रबल सम्भावना रहती है। यहां पर लाभ कम और नुकसान अधिक होने की सम्भावना रहती है। अतः इस अवस्था में Corticosteroids के निरंतर प्रयोग से उत्पन्न छिद्रोदर एवं आमाशयिक रक्तस्राव चिकित्सक प्रेरित विकार की ब्रेणी में आते हैं।

चिकित्सक प्रेरित कुछ प्रमुख विकार

चिकित्सक की चूक एवं असावधानी पूर्ण गलतियों से अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न हो सकते हैं एवं रोगी को मृत्यु तक हो सकती है। इस ब्रेणी के कुछ प्रमुख विकार निम्नलिखित हैं—

1. व्याधि का समुचित निदान नहीं होने पर अनावश्यक औषधि प्रयोग।
2. त्रुटि पूर्ण सूची वेश करना या अवांछित शल्य किया सम्मानित करना।
3. गर्भ को गुल्म समझकर भ्रूण की हत्याकर देना।
4. प्राणबायु (Oxygen) एवं संज्ञाहरण (Anaesthesia) का अनुचित प्रयोग।
5. अवेष्य सिरा का सिरोवेधन करना।
6. मर्म एवं संस्थि स्थानों पर अग्निकर्म एवं वेधन करना।
7. पंचकर्म के अतियोगा, मिथ्यायोग अथवा हीन योग से अनेक व्यापरितयों की उत्पत्ति हो सकती है।
8. आचार्य सुश्रुत ने बस्ति प्रकरण में 44 प्रकार के चिकित्सक प्रेरित विकारों का विवेदित होती है कि वह बुद्धिमता पूर्ण ढंग से औषधि की क्रिया, उसके हानिकारक प्रभाव, एवं औषधि का मूल्य इत्यादि भावों का विचार करने के बाद ही औषधि प्रयोग करने से उत्पन्न विकार।
9. वर्मन का उचित लक्षण उत्पन्न हुए बिना ही वर्मन कराना।
10. स्फेह, स्वेदन, संसर्जनक्रम में विभिन्न प्रकार के व्यतिक्रम होना।
11. शल्यक्रिया के पश्चात कुछ शर्श्व, रुई, पिन, धागा इत्यादि व्रण में छूट जाना।
12. औषधि की अनूर्जता के समुचित परीक्षा किये बिना औषधि प्रयोग करने से उत्पन्न विकार।

1. तदध्या—पर्यावरणवृत्ता, पर्यावरणकर्ता, नाश्यं, शौचं, जितहस्ता, उत्पकरणवृत्ता, सर्वेन्द्रियोपक्रता, प्रकृतिज्ञता, प्रतिपत्तिज्ञता, चेति। (च.वि. ४४६)।

1. एवं तदध्या वृत्ता वैद्य निमित्ता। (सु.चि. ३५/३२)

13. चिकित्सा करते समय चिकित्सा सिद्धांतों की उपेक्षा से भी विकार उत्पन्न होते हैं।

14. फुफ्फुसावरण से सूचीवेध द्वारा द्रव निकालते समय उपद्रव उत्पन्न होता।

15. सिर मार्ग से आधान करते समय बीच में वायु का रह जाना, जो अस्तंत घातक होता है एवं रोगी की मृत्यु भी हो सकती है।

16. विष चिकित्सा में आमाशय प्रक्षालन के लिए नली डालते समय नली का श्वास मार्ग (Trachea) में चलते जाना एवं बिना परीक्षण किये ही कि नलिका आमाशय में पहुंची है कि नहीं, द्रव पदार्थ डालने से वह द्रव फुफ्फुस में पहुंचकर अत्यधिक हानि पहुंचा सकता है।

17. रक्ताधान से पूर्व संक्रामक रोग, विषाक्तता इत्यादि का बिना परीक्षण किये ही रक्ताधान (Blood Transfusion) करना।

18. विना रक्त सप्तह (Blood group) की जांच किये ही रक्ताधान करना। इस प्रकार से अनेकों प्रकार के अन्य चिकित्सक प्रेरित विकार भी हो सकते हैं जिनसे चिकित्सक द्वारा सावधानी रखने पर बचा जा सकता है।

चिकित्सा सिद्धांत

- निदान परिवर्जन।
- समुचित परीक्षण के बाद ही औषधि प्रयोग।
- रोगी एवं रोग परीक्षा का गहन आंकलन करने के पश्चात ही औषधि निर्धारण।
- चिकित्सा के प्रत्येक कदम पर सावधानी पूर्वक एवं सोच समझ कर निर्णय करना।
- रोगों के हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता देना।
- चिकित्सा कार्य को सेवा भाव के रूप में महत्व देना।
- चिकित्सक एवं रोगी के संबंधों में तात्पत्यता एवं आपसी समझ का विकास करना।
- प्रयोगशालीय परीक्षणों जैसे सुपुन्नाकाण्ड से सुपुन्ना द्रव (C.S.F.) निकालना, फुफ्फुसावरण शोथ में द्रव का आहारण, जलांदर में उदरावरण कला से द्रव निकालना इत्यादि कार्य अस्तंत सावधानी पूर्वक करना।
- रक्ताधान से पूर्व रक्त की निर्धारित जांच जैसे भारत सरकार ने रक्ताधान में पूर्व चार प्रकार की जांच को अनिवार्य बनाया है जो निम्न प्रकार हैं—
Hepatitis B, Hepatitis C, Syphilis and AIDS इनके लिए परीक्षित रक्त का ही प्रयोग करना चाहिए।
- मैनिसिलन वर्ग या सल्फर वर्ग एवं अन्य औषधियों की अनूरूपता परीक्षण के बाद ही उनका प्रयोग करना।

अध्याय-8

क्षुद्ररोग एवं उनकी चिकित्सा

1. परिचय

आयुर्वेद में क्षुद्र रोगों में अनेक छोटे-छोटे रोगों का संग्रह किया गया है। क्षुद्र व्याधियों के अंतर्गत संग्रहीत रोगों की विशेष दोष, दूष, निदान, सम्प्राप्ति इत्यादि स्पष्ट नहीं होने के कारण ही संहिता ग्रंथों में सम्बन्धित, पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया है। आचार्य चरक ने क्षुद्र रोगों का अलगा से किसी अध्याय में वर्णन नहीं किया है और न ही क्षुद्र संज्ञा दी हैं परंतु विकीर्ण रूप से बिंधन क्षुद्र रोगों का वर्णन किया है। आचार्य सुश्रुत ने 44, आचार्य वाराधर्म ने 36 एवं आचार्य माधवकर ने 43 क्षुद्र रोगों का अलग अध्याय के रूप में वर्णन किया है। आचार्य वाराधर्म ने सुश्रुत द्वारा वर्णित कई व्याधियों को नामान्तर से वर्णित किया है जैसे इन्द्रविद्वा को विद्वा, अंधालजी को अलजी, मशक को माष एवं न्यच्छ को लाळ्जन नाम दिया है। आचार्य वाराधर्म ने इन्द्रतुम, दारुणक, पलित, एवं अरुविका का वर्णन शिरोरोग अध्याय में किया है। परिवर्तिका, अवपाटिका एवं निरुद्ध प्रकश का वर्णन आचार्य वाराधर्म ने गुह्य रोगाधिकार में किया है एवं अनुशासी, रक्सा, पातदारिका, वृषणकच्छु एवं गुदभंश का उल्लेख न करते हुए, गर्दभी, गंधनामा, इरिवेल्हिका, उत्कोट एवं कोठ का अतिरिक्त वर्णन किया है। आचार्य सुश्रुत ने पामा एवं विचर्चिका का उल्लेख क्षुद्ररोग एवं कुष रोग दोनों में किया है परंतु आचार्य वाराधर्म एवं आचार्य माधवकर ने इनका वर्णन केवल कुष रोग में ही किया है। आचार्य माधवकर ने आचार्य सुश्रुत एवं वाराधर्म संक्षिका में वर्णित मसूरिका एवं विस्फोट का युग्मनुकूप संदर्भ में पृथक अध्याय में विस्फूल वर्णन किया है तथा नीलिका एवं वराहदंश का अतिरिक्त उल्लेख किया है। सूक्ष्म विवेचन करने से क्षुद्र रोगों के अनेक भेद एवं विस्फोट का युग्मनुकूप संदर्भ में पृथक अध्याय में विस्फूल वर्णन किया है परंतु सामान्य जन में प्रकीर्ण रूप से पाये जाने वाले रोगों का ही वर्णन क्षुद्र रोगों में किया गया है जो किसी वां विशेष में वर्णित नहीं है।

प्रमुख संदर्भ ग्रंथ

- चरक संहिता - यत्र तत्र विकीर्ण रूप में
- सुश्रुत संहिता निदान स्थान - अध्याय 13
- सुश्रुत संहिता चिकित्सा स्थान - अध्याय 20
- अष्टांग हृदय उत्तर स्थान - अध्याय 31 एवं 32
- माधव निदान - अध्याय 55
- भाव प्रकाश मध्यम खण्ड - अध्याय 61

निरुक्ति/व्युत्पत्ति

- ‘भृतिर सम्मेषणे’ धातु से उष्णादि सूत्र से ‘रक्’ प्रत्यय करने पर ‘भृद्’ शब्द बनता है। जिसका अर्थ है पीसने वाला।
- ‘भृदिर सञ्चृणने’ भृद्वते वा। से भी ‘भृद्’ शब्द बनता है।

परिभाषा

भृद् रोगों को कई प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है। कुछ प्रमुख परिभाषाएं एवं उनको व्याख्या निम्न प्रकार हैं-

- भृद् रोग का अर्थ छोटा या लघु है। अर्थात् जिन रोगों का वर्णन अति संक्षेप में किया गया हो, उन्हें भृद् रोग कहते हैं।
- परिशिष्ट, बचे हुए रोग अर्थात् जिन रोगों का अन्य प्रकरण में किसी विशेष वार्ताकरण के अनुसार समावेश नहीं हो सकता है उन्हें भृदरोग कहा जा सकता है।
- भृद् रोग कुछ रोगों की पारिभाषिक संज्ञा है।
- भृद् का अर्थ भयंकर एवं नीच भी है जैसे अनिनोहिणी अत्यन्त भयंकर रोग है वहीं दूसरी ओर पलित जैसे नीच रोग भी है। अतः इनकी संज्ञा भृद् रोग है।
- जिन रोगों के हेतु लक्षण एवं चिकित्सा अतिसंक्षिप्त एवं साधारण हों उन्हें भी भृद् रोग कहते हैं।
- कुछ आचार्यों के अनुसार ‘भृदानां बालानां रोगः’ अर्थात् भृद् रोग बालकों का रोग है। परंतु यह व्याख्या उचित प्रतीत नहीं होती है क्योंकि अधिकांश व्याधियां बच्चों एवं वयस्कों दोनों में ही समान रूप से होती हैं।
- जिन रोगों में दोष दूष्य विवेचन संक्षिप्त रूप में वर्णित हो, उन्हें भी भृद् रोग कहते हैं।

विशेष महत्वपूर्ण तथ्य प्रतीत नहीं होता है।

पर्याय

भृद् रोगों के अनेक पर्याय प्रचलित हैं जिनमें से निम्नलिखित मुख्य हैं:-

दरिद्र, कृपण, निकृष्ट, अल्प, तुशंस, कर्दम, भृद्, अधम, कूर इत्यादि। यह सभी एक समान अर्थ को व्यक्त करते हैं।

इस अध्याय में प्रमुख भृद् रोगों का क्रमशः वर्णन किया जा रहा है।

- कर्दये कृपणकृष्टिक्षमचाननितमग्ना । (अपमकोष 3/1/48 पर रामाश्रमी टीका)
- भृद्गो दरिद्रे कृपणे निकृष्टेऽत्मवृशंसम्योः । (हेमवंद रामाश्रमी टीका आ.3/2/48)
- कृदेऽचेऽत्येष्ठि भृद् । (अपम कोष 3/3/17)
- भृद्: स्याद् धनकूर कृपणाऽत्येष्ठाच्चत् । (विश्वकोष अपम 3/3/177 रामाश्रमी)

2. अजगलिका

सामान्य लक्षण

अजगलिका के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं—

- यह कफ और चात दोष प्रधान, बालकों में उत्पन्न होने वाली, मूँग के दाने के समान पिङ्का होती है जो स्थिर एवं त्वचा के समान वर्ण वाली होती है (It is a rash which is smooth, small and like the colour of the skin)
- यह पिङ्का गंडुक एवं बेदा रहित होती है (It is painless, glandular swelling)

चिकित्सा सिद्धांत²

- आपक अजगलिका में जलौका द्वारा रक्तोद्धरण कराते।
- रक्तोद्धरण के पश्चात शुक्ल, सज्जीक्षार एवं चवक्षार को जल में पीसकर लेप करें।
- स्थाना, कलिकारी एवं पाठा कर्त्त्व का भी लेप कर सकते हैं।
- पक अवस्था में ब्रान चिकित्सा के समान शोधन एवं रोपण करना चाहिए।

आदर्श चिकित्सा पत्र

	प्रातः : सांदं
रसमाणिक्य सस	: 125 मि.ग्रा.
सुद्ध स्वर्ण गैरीक	: 125 मि.ग्रा.
भृद् गंधक	: <u>250 मि.ग्रा.</u>
मधु से	1 × 2 मात्रा
इंडुकला वटी	: <u>250 मि.ग्रा.</u>
शाहद या दुध से	1 × 2 मात्रा
स्थानोदय प्रयोगा	: जात्यादि घृत से लेप
पथ्यापथ्य का पालन	

¹ तिनांशा सर्वाणि गृहिता नीरुजा गैरिथसिनिभा।

कफवतोर्त्यता रेया बालानमजगलिका ॥ (सुनि 13/4)

² तत्राजगलिकामामा जलौकोप्रस्तावत्त्वाचरेत्। शुक्लशुभ्रीवक्षारकल्कैश्वालेपयेद्विष्टक्॥ रसामालाङ्गलकोपाताकल्कैवाऽपि तिचक्षणः। पवत्वा ब्रणविधाने यथोक्तेन प्रसाधयेत्॥ (सु.च. 20/3--4)

3. यवप्रखा

सामान्य लक्षण

- यह एक प्रकार की पिड़का है जो निम्न लक्षणों से युक्त होती है—
- आकार जौ (यव) के समान (It is like barley)
 - स्पर्श में अधिक कठिन एवं गांठदार (Very hard and glandular)
 - पिड़का मांस में स्थित होती है
 - कफ एवं वात दोष से उत्पन्न होती है

चिकित्सा सिद्धांत²

- निदान परिवर्जन
- स्थानीय स्वेदन का प्रयोग
- स्वेदन के पश्चात विम्बलापन करें। इसके लिए मनःशिला, हरताल, कुष, देवदार के कल्क का लेप करें।
- पक्वावस्था होने पर ब्रण के समान शोधन-रोपण चिकित्सा करें।

आदर्श चिकित्सा पत्र

प्रातः :	सायं	प्रातः :	सायं	
काञ्चनर गुण्डु	: <u>500मि.ग्रा.</u>	रसमणिक्य रस	: 125 मि.ग्रा.	
शहद से	: <u>1 × 2 मात्रा</u>	शुद्ध गंधक	: 250 मि.ग्रा.	
2.	रसमणिक्य रस	: 125 मि.ग्रा.	कांचनर गुण्डु	: 500मि.ग्रा.
	शुद्ध गंधक	: 250 मि.ग्रा.	गुड्ढ्यादि चूर्ण	: <u>2 ग्राम</u>
	मंजिष्ठादि चूर्ण	: <u>2 ग्राम</u>	शहद से	: <u>1 × 2 मात्रा</u>
मधु से	: <u>1 × 2 मात्रा</u>	2.	अमृतादि क्राथ	: <u>20मि.लि.</u>
3.	महामंजिष्ठादि क्राथ	: <u>20 मि.लि.</u>	समधाग जल से	: <u>1 × 2 मात्रा</u>
	सम धाग जल से	: <u>1 × 2 मात्रा</u>	3.	स्थानीय स्वेदन
4.	लेपनार्थ	: कुषादि लेप	4.	स्थानीय लेप
5.	पथ्यपद्य का पालन		5.	पथ्यपद्य का पालन

-
- यवाकारा सुखिना ग्राहिता भास्तव्यक्ता।
पिड़का श्वेषवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥ (सु.नि. 13/5)
 - मनःशिलालकुष्ठदरुकल्पैः प्रतीयमन् ।
परिषाकरणात् भित्ता ब्रणवत् ममुपचरेत् ॥ (सु.चि. 20/16)

••• न्द्रे छु ६०••

4. अन्धालजी

सामान्य लक्षण

यह निम्न लक्षणों से युक्त होती है—

- यह काठिन, ऊंची, उठी हुई एवं मुख रहित होती है
- आकार में मण्डलाकार या गोल
- पिड़का में अल्प पूय (Pus)
- कफ एवं वात दोष प्रधान
- आचार्य माधव ने इसे अन्धालजी एवं आचार्य चार्मट ने अलजी नाम दिया है।
- अन्धालजी में दोष-दूष सभी यवप्रख्या के समान ही हैं। अतः यवप्रख्या के समान विकितसा सिद्धांत ही सभी चिकित्सा सिद्धांत अपनाना चाहिए।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1.	रसमणिक्य रस	: 125 मि.ग्रा.
	शुद्ध गंधक	: 250 मि.ग्रा.
	कांचनर गुण्डु	: 500मि.ग्रा.
	गुड्ढ्यादि चूर्ण	: <u>2 ग्राम</u>
	शहद से	: <u>1 × 2 मात्रा</u>
2.	अमृतादि क्राथ	: <u>20 मि.लि.</u>
	समधाग जल से	: <u>1 × 2 मात्रा</u>
3.	स्थानीय स्वेदन	
4.	स्थानीय लेप	: दशांग लेप
5.	पथ्यपद्य का पालन	

-
- प्रातःकारों पिड़कामुखते परिमाणलम् ।
 - प्रातःकारों पिड़कामुखते परिमाणलम् ।
अन्धालजीमप्यपूयं तो विद्यात् कफवताजाम् ॥ (सु.नि. 13/6)

••• न्द्रे छु ६०••

शुद्धरोग एवं उनकी चिकित्सा

5. विवृत्ता

(Boils)

सामान्य लक्षण

यह निम्न लक्षणों से युक्त पिङ्का होती है—

1. पिङ्का का मुख विवृत अर्थात् खुला हुआ होता है।
2. अत्यधिक जलन युक्त
3. वर्ण में पक गूलर फल के समान
4. पिंत दोष के प्रकोप से उत्पन्न

आचार्य वाघट ने विवृता में ज्वर लक्षण भी बताया है।

चिकित्सा सिद्धांत^२

1. निर्दान परिवर्जन करे
2. पितज विसर्व के समान चिकित्सा करें
3. मधुर औषधियों के क्रांथ से सिद्ध घृत द्वारा ब्रण रोपण।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1.	आरोग्यवर्धी वटी	प्रातः : साथं
		: 250 मि.ग्र.
नवक गुण्डुल		: 500 मि.ग्र.
पचनिष्ठादि चूर्ण		: 500 मि.ग्र.
महामांज्रित चूर्ण		: 2 ग्राम
शहद से		1 × 2 मात्रा
2.	भोजनोत्तर	: 20 मि.लि.

सामान्यासत्र

समभाग जल से	1 × 2 मात्रा
स्थानिक प्रयोग	: जात्यादि घृत से लेप

पश्चापथ का पालन

1. विवृतास्थान महादाहां पञ्जोड़ व्यास त्रिपापाम्।
2. विवृतामिन्द्रवृद्धां च गृद्धेन जात्यादर्पम्। इरिकेलौ गंधनानीं कक्षों विस्फोटकांस्तथा॥

विवृतामिन्द्रवृद्धां च गृद्धेन जात्यादर्पम्। इरिकेलौ गंधनानीं कक्षों विस्फोटकांस्तथा॥
पितजन्य विसर्वस्य क्रिया साधयोद्देश्य।
सोपयेत् मर्मिणं पक्षान् सिद्धेन मधुरोद्देश्य॥ (सु.चि. 20/7-8)

Latest Developments

Boils

Definition

Boils are an acute Staphylococcal infection of hair follicles with perifolliculitis.

Signs and Symptoms

1. It is very painful and gradually extending.
2. Associated with hardness and surrounding oedema.
3. After two days there is softening at the centre and develops like pustules.
4. It bursts spontaneously discharging small amount of slough. After this a deep cavity develops lined by granulation tissue which heel by itself.

Management : Principles

1. Incision not necessary. Touch of Iodine on the skin, pustule will hasten, necrosis of overlying skin and help to drain out pus.
 2. After escape of pus, it should be cleaned with a suitable disinfectant regularly.
 3. Symptomatic management.
- और •••••

6. कच्छपिका

सामान्य लक्षण

यह निम्न लक्षणों से युक्त पिङ्का होती है—

1. कफ एवं वात दोष प्रधान
2. यह कच्छप (कछुआ) के पृष्ठ समान मध्य में ऊँची ऊर्ती हुई होती है
3. यह संख्या में 5-6, भयंकर बेदना युक्त एवं गंभियों वाली होती है

चिकित्सा सिद्धांत^२

1. सर्वप्रथम स्वेदन करें

1. ग्रन्थयः पञ्च वा षष्ठ वा दारुणः कच्छपोद्दितः।
कफानिताभ्यमुद्भूता विद्युतां कच्छपोद्दितः॥ (सु.चि. 13/8)
2. कच्छपी स्वेदयन्त्रवृत ततः पिण्डः प्रतेपयेत्।
कल्पकीकृतीर्णराजुक्षाशिलातालकदरसाम्य॥
तो पक्षों साधयेच्छीचं भिक्षाव्रणचिकित्सया॥ (यो.र. शुद्धरोग चिकित्सा /1)

2. अपकवावस्था में हरिद्रा, कुष्ठ, मनःशिला, हरताल एवं देवदार को सम्भग में लेकर जल में पीसकर कल्पक बनाकर लेप करें।
3. पक्षावस्था में भेदन करके ब्रण के समान शोधन एवं रोपण करें।

आदर्श चिकित्सा प्रब्र

1. प्रात : सायं
कान्द्वनार गुग्गुजु : 500मि.ग्र.
रसमाणिक्य रस : 125 मि.ग्र.
शुद्ध गंधक : 250 मि.ग्र.
2. राहद से
महामंजिष्ठादि क्षाथ सम्भग जल से
विफला चूर्ण : 3 ग्राम
गर्म जल से : 1 मात्रा
3. रात्रि में
गर्म जल से
4. स्थानीय लेप : दशांग लेप
5. पश्चापच्य का पालन
...••लौही लौही•••

7. वल्मीकि (Actinomycosis)

सामान्य लक्षण

यह निम्न लक्षणों से युक्त एक प्रकार की गाठ होती है—

1. यह प्रायः त्रिदोष से उत्पन्न होती है।
2. यह प्रायः हस्त, पादतल, साधियों, ग्रीवा एवं जन्तु के ऊपर उत्पन्न होती है।
3. वल्मीकि (मृतिका का ढेर) के समान धीरे-धीरे बढ़ती है।
4. सुई दुधों के समान बेदना युक्त वल्तेद, दाह एवं कण्ठयुक्त तथा ब्रण से व्यास गंभीर सदृश होती है।
5. आचार्य माधवकर ने वल्मीकि की उत्पत्ति कक्षा एवं अंश प्रदेश में भी बतायी है।

चिकित्सा नहीं करने पर यह विसर्प के समान कैलती है।

1. पाणिपादले सभी गीवायामधूमधूमजुँझु। ग्रथिवल्मीकवधूतु शानैः समुपचीयते॥
तोदक्षेदपरीदाहकण्डमृद्भूर्विदृतः। व्याधिवल्मीक इत्येष कफपर्णतानितोद्भवः॥
(सुनि. 13/8-9)

शुद्धोग एवं उनकी चिकित्सा

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार इसे Actinomycosis मान सकते हैं। असाध्य लक्षण।

1. हाथ ऐरों के ऊपर उत्पन्न वल्मीक असाध्य होती है।
2. अनेक छिंदों से युक्त एवं

3. शोथ युक्त वल्मीक की चिकित्सा नहीं करनी चाहिए।

चिकित्सा सिद्धांत

1. शास्त्र कर्मः : वल्मीक को शत्रु से काटकर क्षार एवं अग्नि से दहन कर्म कर अर्बुद के समान चिकित्सा करें।
2. शोधन चिकित्सा^३ : यदि वल्मीक छोटी तथा मर्मस्थान में अवस्थित नहीं हो तो वमन, विरेचन के प्रश्नात रक्तमोक्षण करावें।
3. शोधन कर्म के पश्नात कुलथ मूल, गुड्ची, लवण, अमलतास मूल, दन्ती मूल, कृष्ण निशोथ मूल, तिलपिण्डी (पतला), धान के लावा को समधान लेकर जल में पीसकर लेप लगावें।
4. पक्षावस्था में : पूय की गति का अनुमान कर शस्त्र से भेदन करें एवं ब्रण को शुद्ध कर अग्नि कर्म करें।
5. वल्मीक के दूषित मांस को शुद्ध कर क्षार से प्रतिसारण करें।
6. अनेक छिद्र एवं ब्रण वाले वल्मीक में मनः शिलादि तैल से सिङ्चन करावें।

1. पाणिपादेपिण्डातु छिद्रेभुग्निप्रवृत्तम्। वल्मीक यत् सशोथ स्याद्भूत ततु विजानता॥

- (सु.चि. 20/56)
2. शस्त्रोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत।
विधानेनार्देतेन शोधित्वा च रोपेद्॥ (सु.चि. 20/48)
3. वल्मीकं तु खवेद्यस्य नातिवृद्धमधमज्जप्।
तत्र संशोधनं कृत्वा शोर्णित मोक्षयेद्विषक्॥ (सु.चि. 20/49)
4. कुलिंधिकाया मूलेष्व गुड्च्या लवणेन च।
आवेतस्य मूलेष्व दन्तीमूलैश्चर्षेव च।
स्थामपहनेः सपलैः शब्दुमिष्टैः प्रतेपेदेत्।
सुस्नायैषेष्व शुरुवातेष्व शुरुवातेष्व॥ (सु.चि. 20/50-51)
5. पर्हि का तटिजानीयाद् गतीः सर्व यथाक्रमम्।
अपितत्य ततिशिल्ता प्रदहे न्मतिमान भिषक्॥ (सु.चि. 20/52)
6. संशोध्य दृष्टमासनि क्षरेण प्रतिसारयेत।
ब्रण विशुद्ध विजाय रोपेन्मतिमान भिषक्॥ (सु.चि. 20/53)
7. सुमना ग्रन्थयश्च भलातक मनः शिले।
कालानुसारी सूक्ष्मेता चद्वाणगृह्णी तथा।
एतैः सिद्ध निष्कर्ते वल्मीके रोपणं हितम्। (सु.चि. 21/54-55)

8.

आदर्श चाकत्सा पत्र

- | | |
|------------------------------------|--|
| प्रातः सायं | |
| : 500मि.ग्र. | |
| शुद्ध गंधक : 250 मि.ग्र. | |
| रसमाणिक्य रस : 125 मि.ग्र. | |
| बालसुधा : <u>250 मि.ग्र.</u> | |
| शहद से : 1 x 2 मात्रा | |
| त्रिफला गुण्डु : <u>500मि.ग्र.</u> | |
| जल से : 1 x 2 मात्रा | |

चिकित्सा सिद्धांत

- मामान्य लक्षण**
इन्द्रवृद्धा पिङ्का के लक्षण निम्न प्रकार हैं—
1. यह बात एवं पित के प्रकोप से उत्पन्न होती है
2. पिङ्का का आकर कमल की कर्णिंका के समान होता है एवं यह छोटी छोटी अनेक पिङ्काओं से व्याप्त होती है
आचार्य वाख्ट ने इसे चुद्धा नाम दिया है।

Latest Developments Actinomycosis

Definition

Actinomycosis is a bacterial disease which is caused by the organism *Actinomyces israeli*, which is a saprophyte of human gut and mouth.

Sings and Symptoms

1. A reddish purple brown firm to hard mass with sinus discharging purulent material is seen.
 2. Cervico facial involvement follows after injury.
 3. Sinus discharge yellowish (Sulphur) granules at the angle of jaw.
 4. It is a slowly involving disease of the foot in farmer and those walking bare foot.

Management : Principles

1. Prolonged administration of Penicillin is usually effective.
 2. Penicillin allergic patients have to be treated with Erythromycin or Tetracycline.
 3. Oral Amoxycillin for several months is advised.
 4. Surgical incisions and drainage of accessible lesions.

9. पनसिका

सामान्य लक्षण

पनसिका पिड़का के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार वर्णित हैं—

1. यह दोनों कानों पर अथवा उनके चारों ओर अथवा पृष्ठ पर उत्पन्न होने होते हैं।
 2. पिड़का का आकार शारूक (कमलकंद) के समान होता है।
 3. पिड़का में तीव्र रुजा (वेदना) होती है।
 4. यह कफ एवं चात के प्रकोप से उत्पन्न होती है।
- आचार्य माधवकर ने कण के भीतर उत्पन्न होने वाली इर्ही लक्षणों से युक्त पिड़का को पनसिका माना है।

चिकित्सा सिद्धांत²

1. निदान परिवर्जन
 2. सर्वप्रथम स्वेदन करे। तत्पश्चात मनःशिला, हराताल, देवदार, कुष एवं हरिद्रा को समझा में लेकर बारीक पीसकर प्रतेप करें।
 3. पक्षात्स्था में ब्राण के समान भेदन करके शोधन एवं रोपण करावें तथा कण में कुम्भी तैल डालें।
- आदर्श चिकित्सा पत्र
- | | |
|---|-----------------------|
| प्रातः : सायं | |
| 1. त्रिफला गुग्गुल | : <u>500मि.ग्र.</u> |
| शहद से | : <u>1 × 2 मात्रा</u> |
| 2. रसमणिक्य रस | : <u>125 मि.ग्र.</u> |
| शुद्ध गधक | : <u>250 मि.ग्र.</u> |
| शुद्ध टंकण | : <u>250 मि.ग्र.</u> |
| शूत से | : <u>1 × 2 मात्रा</u> |
| 3. लेपनार्थ | : कुषादि लेप |
| 4. पक्वावस्था में कुम्भी तैल कण में डालना चाहिए | |
| 5. पथ्यावस्था का पालन | |

10. जालगार्दभ

(Cellulitis)

सामान्य लक्षण

यह निम्न लक्षणों से युक्त अल्प पाक युक्त शोथ की अवस्था है—

1. यह पित के प्रकोप से उत्पन्न होता है।
2. यह विसर्प के समान फैलता है।
3. यह दाह, ज्वर, शोथ एवं पाक युक्त होता है।
4. आचार्य चरक ने भी जालगार्दभ का वर्णन किया है एवं इसके सुश्रुत के समान ही लक्षण बताये हैं—

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार जालगार्दभ की साम्यता Cellulitis से कोई जा सकती है।

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
2. प्रितज विसर्प के समान चिकित्सा करें
3. शोधन चिकित्सा³
 - (i) लड्हन पाचन (ii) वर्मन, विरेचन (iii) रक्त मोक्षण
 4. आमलकी रसायन का प्रयोग
 5. शीतल प्रदेहों का लेप
 6. स्थानिक लेप : नील एवं परवल मूल समझा लेकर पीसकर घृत मिलाकर लेप करना चाहिए।
 7. पृणालादि लेप : कमलनाल, खस, लोथ्र, रक्तचत्वन, कमलपुष्प, नीलोफर, अनन्तमूल, आंवला, हरीतकी समझा लेकर पीसकर लेप करें।

1. विसर्पवत् सर्पति यो दाहञ्चरकरत्तनुः ।
अपाकः श्यथुः पितात् स जेये जालगार्दभः ॥ (सु.नि. 13/14)
2. मन्त्रन् पित्रवत्ताः प्रदृष्टा दोषः सुतीर्बं ततुर्कषाम् ।
कुर्वन्ति शोथं ज्वरतर्षयुर्तं विसर्पणं जालगार्दभाञ्जम् ॥ (च.चि. 12/99)
3. विलह्नं रक्तविमोक्षणं च विलक्षणं कायविशोधनं च ।
थात्रीप्रयोगात् शिशिरात् प्रदेहन् कुर्यात् सदा जालगार्दभस्य ॥ (च.चि. 12/100)

आदर्श चिकित्सा पत्र

	प्रत : साथ
आरोग्यवर्धनी वटी	: 250 मि.ग्र.
मौज़िष्टि चूर्ण	: 2 ग्राम
प्रवाल पिण्डी	: 250 मि.ग्र.
शुद्ध स्वर्ण गैरीक	: $\frac{250}{250}$ मि.ग्र.
उष्ण जल से	1 x 2 मात्रा
2. द्राक्षावलेह	: $\frac{20\text{ग्र}}{20\text{ग्र}}$
दुध से	1 x 2 मात्रा
3. भूजनोत्तर	: $\frac{20\text{मि.ति.}}{20\text{मि.ति.}}$
सारिलालासत	1 x 2 मात्रा
समधान जल से	
4. पश्यापथ्य का पालन	

Latest Developments
Cellulitis

Definition

It is a non-suppurative inflammation spreading along the subcutaneous tissue and connective tissue places.

Causative Organism

Mostly Streptococcus pyogenes.

Signs and Symptoms

- There is varying degree of fever and toxæmia.
- Affected part is much swollen, warm and tender.
- There is pitting oedema and brownish induration.
- Surrounding lymphnodes enlarged and tender.

Management : Principles

- Rest and elevation of affected part to reduce oedema.
- Broad spectrum antibiotics.
- Failure to subside the swelling within 48 to 72 hours leads to abscess formation. In this case incision and drainage is advised.

11. पाषाणगद्देभ
(Parotitis)

परिभाषा

स्थिर एवं कठिन पाषाण जैसी पिङ्का को पाषाण गद्देभ कहते हैं। पाषाण जैसी कठिनता के कारण पाषाण गद्देभ नाम दिया गया है¹।

सामान्य लक्षण

पाषाणगद्देभ के मुख्य लक्षण निम्न प्रकार हैं² -

- वह कफ एवं चात के प्रकोप से उत्पन्न होती है
- वह अल्प पोड़ा युक्त एवं पाषाण जैसा स्थिर (कठिन) शोथ है
- पाषाणगद्देभ प्रायः हुन्साधि प्रदेश में उत्पन्न होता है

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार पाषाणगद्देभ की तुलना Parotitis (Inflammation of the Parotid gland) से कोई जा सकती है।

चिकित्सा सिद्धांत

- निदान परिवर्जन
- समस्त चिकित्सा अभ्यासात्मकी अथवा यत्प्रव्याक्ता के समन करनी चाहिए।
- आचार्य भावमित्र के अनुसार पाषाणगद्देभ में जलौका से रक्त मोक्षण करने से यह बिना औषधि प्रयोग के ही ठीक हो जाता है³।
- स्थानीय चिकित्सा
 - लवणगोट्टली से स्थानीय स्वेदन
 - दशांग लेप का प्रयोग
 - लवण को जल में पीसकर लगाएं।
 - मनःशिला, देवदारु और कुछ पीसकर लेप करें।
 - पाक होने पर चौंड़ा लगाकर ब्रांशेट उपचार करें।

Management : Principles

- Rest and elevation of affected part to reduce oedema.
- Broad spectrum antibiotics.
- Failure to subside the swelling within 48 to 72 hours leads to abscess formation. In this case incision and drainage is advised.

1. स्थिर: कठिन: पाषाणवत् काठिन्यात् पाषाणगद्देभः । (मधुकोश)
2. हुन्साधि समुद्रते शोफलपत्रज्ञ स्थिरम्। पाषाणगद्देभं विद्युत्तासपवात्सकम्
(मु.नि. 13/13)

3. जलौकोभिन्ने रक्त संशायति तिर्तोष्पथम्। एतत्थलेषु बहुप्रेरक्तं लिखितं ततः ॥
(भा.प्र. नम्यम् छण्ड 6/130)

आदर्श चिकित्सा चन्त्र

1. व्याधिहण रसायन प्रातः : साथ
2. शुद्ध टंकण : 250 मि.ग्रा.
3. गोदन्ती भस्म : 250 मि.ग्रा.
4. मंजिष्ठादि चूर्ण : 2 ग्राम
5. शहद से : 1×2 मात्रा
6. मंजिष्ठादि काथ : 20 मि.लि.
7. समभाग जल से : 1×2 मात्रा
8. काञ्चनार गुण्डु : 500 मि.ग्रा.
9. जल से : 1×2 मात्रा
10. स्थानीय लेप : दर्शांग लेप
11. गण्डुष धारण : निपत्ता क्षाय अथवा बालसुधा निर्नित जल से
12. फ्यापथ्य का पालन

12. कक्षा

(Herpes Zoster)

सामान्य लक्षण

शास्त्रों में कक्षा का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है—

1. कक्षा की उत्पत्ति पित्त दोष के कारण होती है।
2. यह बाढ़, पार्श्व, अंश (स्कंथ) एवं कक्षा में उत्पन्न होता है।
3. इसमें कृष्ण वर्ण के वेदना युक्त स्फोट (Blisters) उत्पन्न होते हैं।
4. आचार्य चरक ने इसे वात पित्त प्रकोप से उत्पन्न एवं यजोपवीत सदृश पिङ्काओं को कक्षा कहा है²
5. आचार्य वारभट ने वात पित्त जन्य एवं लाजा समान सूक्ष्म पिङ्का को कक्षा माना है³

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार कक्षा की साम्यता Herpes Zoster नामक व्याधि से की जा सकती है।

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
2. अपकावस्था में दर्शांग लेप लगावें, अथवा अधः पुष्टी एवं शहदत की पत्ती का गर्म उपचाह लगावें।
3. पक्षावस्था में पित्तज विसर्प के समान चिकित्सा करें।
4. मधुर औषधियों के क्षाय से सिद्ध धूत द्वारा ब्रण का रोपण करें।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. गंधक रसायन प्रातः : साथ
 2. रसमणिक्य रस : 250 मि.ग्रा.
 3. अष्टमृति रसायन : 125 मि.ग्रा.
 4. शहद से : 1×2 मात्रा
 5. कर्पुरधारा योग : 10 बंदू
 6. बतासा एवं जल से : 1×6 मात्रा
-
1. बाहुषाशस्क्रान्तसु कृष्णसफेदी संबेदगम्।
 2. पित्तप्रकोपसंभूतं कक्षानिति विनिर्देशत् ॥ (मु.नि. 13/15)
 3. यजोपवीतप्रतिमा: प्रभूतः पित्तानिताभ्यां जननितास्तु कक्षा: ॥ (च.चि. 12/91)

पित्ताद् भवन्ति पिटिका: सूक्ष्मा लाजोपमा घना: ॥ (अ.ह.उ. 31/11)

3. स्थानीय प्रयोग : दशांग लेप
 4. भौजनोत्तर : 20 मि.ली.
 अमृतार्थ : $\frac{1}{20}$ मि.ली.

द्राक्षारिच्छा समाधान जल से 1 × 2 मात्रा

5. पथ्यापथ्य का सेवन : दशांग लेप
 1 × 2 मात्रा

Latest Developments Herpes Zoster (Shingles)

Definition

It is a unilateral inflammatory vesicular eruption caused by a latent herpes varicella virus.

Signs and Symptoms

- Incubation period is 7-21 days.
- In preeruptive stage pain with hyperesthesia along the course of the nerve.
- Fever.
- Several oedematous patches along the course of the nerve which are very tender and painful.
- The regional lymph nodes are enlarged and tender.
- An attack lasts for 2-3 weeks.
- Mostly the thoracic and lumbar dermatomes are affected.
- If the ophthalmic division of trigeminal nerve is affected, there may be keratitis or uveitis with vesicles in the nose.

Complications

- Post Herpetic neuralgia.
- Keratitis and corneal ulcerations.
- Encephalitis, Meningitis, Myelitis.

Management : Principles

- Calamine lotion applied locally several times a day.
- Analgesics/Anti inflammatory drugs.
- Antibiotics
- Steroids for reducing pain and avoiding complications.
- Prednisolone 40mg/day for 6 days.
- Vitamin B₁, B₆, B₁₂
- Other symptomatic management.

13. अग्नि-रोहिणी (Plague)

सामान्य लक्षण

अग्नि रोहिणी अत्यन्त चातक व्याधि है इसके प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं—

- कक्षा प्रदेश में स्फोट (Blisters) की उत्पत्ति
- यह स्फोट मांस का दारण करके उत्पन्न होते हैं
- स्फोट में जलती हुई अग्नि के समान दाह एवं ज्वर
- यह रोगी को 7 दिन, 10 दिन अथवा 15 दिन में मार देता है
- यह सन्त्रिप्त जन्य तथा असाध्य होता है

आचार्य वाग्भट ने अग्नि रोहिणी की उत्पत्ति में पित को प्रथान दोष माना है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार अग्नि रोहिणी की साम्यता Plague से की आहुती है।

चिकित्सा सिद्धांत²

- | | |
|-----------------------|---------------------------------------|
| 1. निदान परिवर्जन | 2. पितज विसर्प के समान चिकित्सा करें। |
| 3. लंबन, रक्षण क्रिया | 4. रक्त मोक्षण |

आदर्श चिकित्सा पत्र

- | | |
|-------------------------|---------------------------|
| 1. रत्नगिरि रस | प्रातः : साथ |
| चण्डेश्वर रस | : 250 मि.ग्र. |
| शहद से | 1 × 4 मात्रा |
| 2. चतुर्भुज रस | : 125 मि.ग्र. |
| योगेन्द्र रस | : 125 मि.ग्र. |
| शुद्ध टंकण | : 250 मि.ग्र. |
| सौभाग्य वटी | : $\frac{1}{250}$ मि.ग्र. |
| आदर्श स्वरास एवं शहद से | 1 × 2 मात्रा |

- कक्षापांगु ये स्फोटों जावते मांसदारणा। अन्तर्दीह्यरकारा दीप्तपावकत्त्वजिभा॥
समाहद्वा दशाहद्वा पक्षाद्वा अन्ति मानवम्। तमानिरोहिणो विद्यादसाधां सन्त्रिप्ततः॥
- पिनाकर्ष विधिना साधयेद्विन रोहिणीम्। रोहिण्यां लहूनं कुर्याद् रक्तमोक्षपरस्पराम्॥
शरीरस्त च मसुद्वि तं तु वृद्धा परित्यजेत्॥ (यो र. शुद्धरोगा चिकित्सा/1-2)

4. ग्रंथि पर आप्रांधी, हरिदा, कुष्ठ, देवदारु, सहिजन बीज पीसकर लेप करें।

Latest Developments Plague

Definition

This is an acute febrile disease caused by infection with Yersinia pestis. It is acquired from rats by human beings (Bubonic Plague) or by droplet infection (Pneumonic Plague)

Incubation period

Two to four days.

Signs and Symptoms

1. Bodyache, mental confusion.
2. Bubo appears on second or third day, usually in groin which is very tender and associated with cellulitis of surrounding tissue.
3. Onset with high grade fever for 2-5 days and then fall after 3-4 days, synchronous with the full development of the buboes.
4. Congested eyes, speech dull resembling alcohol intoxication.
5. Marked prostration, delirium, vomiting and oliguria, retention of urine, coma and convulsion may occur.
6. Thready pulse, dilation of heart and perhaps haemorrhage in later stages.
7. Spleen and liver enlarged.
8. Death may occur on third or fifth day.
9. Stage of Recovery- constitutional symptoms abate on 10th day with fall of temperature. Bubo continue to enlarge and may burst or suppuration may not occur.

Management : Principles

1. Streptomycin 30mg/kg/day I.M. B.D. for 10 days.
2. Tetracycline if allergy to Streptomycin 2-4 gm/day in 4 divided dose for 10 days.
3. Chloramphenicol for patients with Meningitis.
4. Buboes painted with Iodine or Glycerine and Belladonna. Open only when they point, allowed to drain and dressed with Antibiotics.
5. Good nursing.
6. Sedative for pain and restlessness.

••• शुभ कुम्ह •••

(Bullous Eruption or Pemphigus)

सामान्य लक्षण

जिस व्याधि में शरीर में अग्नि के जलने जैसे फकोले उत्पन्न हो जाएं और ज्वर भी हो उसे विस्फोटक कहते हैं।

1. विस्फोटक रक्त एवं पित के प्रकोप से उत्पन्न होता है।
 2. स्फोट ज्वर युक्त तथा अग्नि से जलते हुए के समान होते हैं।
 3. विस्फोटक की उत्पत्ति शरीर के एक भाग पर अथवा सर्व शरीर पर हो सकती है।
- आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार विस्फोटक की साम्यता Bullous eruption या Pemphigus से कर सकते हैं।

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान घरिकर्जन
2. पितज विसर्प के समान चिकित्सा करें
3. सिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण तत्पश्चात विरेचन औषधि देवें
4. शोधन के बाद तिक षट्प्लट घृत का पान कराएं
5. मधुर औषधियों (काकोल्यादि गण) से सिद्ध घृत द्वारा ब्रण का रोपण करावें।

आदर्श चिकित्सा पत्र

	प्रातः : साथ्य	प्रातः : साथ्य
1. कैश्ट्रोप गुग्गु	: 500 मिग्र.	अमृता गुग्गु
शहद से	: 250 मिग्रा.	1 × 2 मात्रा
2. पञ्चतिक घृत	: 20 मिली.	गोदुध एवं मिश्री से
3. अमृतादि कवाथ	: 20 मिली.	1 × 2 मात्रा
4. भोजनोत्तर	1 × 2 मात्रा	10 मि.ति. शहद के साथ
	: 20 मि.ली.	एलायरिश
	1 × 2 मात्रा	समभाग जल से

1. अग्निदधनिधि: स्फोटा: सज्जरा रक्तपित्त:। कवचित् सर्वत्र वा देहे सृता विस्फोटका इति॥ (स.नि. 13/16)

5. पथ्यापथ्य का पालन

Latest Developments Bullous Eruption

Definition:
It is a circumscribed large elevated lesion containing clear fluid which is called a bulla.

Signs and Symptoms

- Typical appearance is of large tense blisters up to 3 cm diameters or an erythematous base.
- The blisters may be broken as a result of excoriation.
- Blisters usually start on the limbs and often spread to the trunk. Mucous membrane of oral cavity, anus, vagina, and oesophagus may be involved.

Management : Principles

- In mild cases, potent topical corticosteroids.
- Prednisolone 30-60mg/day in early stages.
- Cyclosporine is added for its corticosparring effects.
- Symptomatic management.

••• और •••

15. चिप्प

(Paronychia or Whitlow)

पर्याच

चिप्प के पर्याच क्षतरोग एवं उपचार हैं।

सामान्य लक्षण

चिप्प के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं:-

- यह पित एवं वात के कारण उत्पन्न होते हैं
- नख के मास में बेदना, दाह एवं पाक होता है

नखमासमधिक्षय पित वातश बेदनाम्।

करोति दाहपात्रौ च ते व्याधिं चिप्पमादिशेत्।

तदेव शतरोगाङ्गं तेषोपनखित्विष्टि॥ (सु.नि. 13/19-20)

तित्वमुष्णामुन्ता सिक्तमुक्तल्य सर्वज्वरेन चूर्णयेत्॥

चक्रतोत्तेन चाभ्यज्ज्वल सर्वज्वरेन चूर्णयेत्॥

बन्धोपचरे चन्तमशक्य चार्निना दहेत्।

मधुरोषधिसिद्धेन तत्सोत्तेन रोपयेत्॥ (सु.च. 2019-10)

आचार्य वारभट ने चिप्प को अक्षत भी कहा है। आर्थिक चिकित्सा विज्ञन के अनुसार चिप्प की साम्यता Paronychia or whitlow से करते हैं।

चिकित्सा सिद्धांत²

- निदान परिवर्जन
- शोधन चिकित्सा- विरेचन के द्वारा पित का शमन एवं उच्छ जल से सेक।
- शस्त्र कर्म- स्वेदन के बाद शस्त्र से दूषित मास को काटकर रक्तविकाशण करावें।
- शस्त्र कर्म के बाद ब्रण पर चक्र तैल एवं गल का चूर्ण लगाकर ब्रण बंधन करें।
- गम्भारी के 7 पत्रों की अंगुलि में लपेटकर रखने से चिप्प रोग शांत हो जाता है।
- लौह पत्र में हरिद्रा स्वरस डलकर उसमें हरितकी को चिसकर बार-बार लेप करना चाहिए।

आदर्श चिकित्सा पत्र

- त्रिफला गुग्गुल प्रति : सार्व
शहद से : 500मि.ग्र.
हरीतकी चूर्ण एवं हरिद्रा स्वरस से स्थानीय लेप
शाखोटक दुरुध से सिंचन
शस्त्र कर्म
- पथ्यापथ्य का सेवन

Latest Developments Paronychia

Definition

Paronychia means infection of the nail fold with or without extension deep to the nail. It is the most common infection of the hand.

Signs and Symptoms

- Redness and swelling of the nail fold.
- It is a very painful condition.
- In later stage in 50 percent of the cases it develops into pustule and formation of pus takes place beneath the nail.

Management : Principles

- Broad spectrum Antibiotics.
- Analgesics, antiinflammatory drugs.
- Surgical drainage when an abscess has developed.
- Symptomatic management.

••• और •••

16. कुनख (Onychogryphosis)

पर्यायः

कुलीन

सामाज्य लक्षणः

1. कुनख की उत्पत्ति अभिधात के कारण होती है
2. इस व्याधि में चोट लगाने के कारण नख रक्ष कृष्ण वर्ण का और खर (कठिन) हो जाता है
- आचार्य माधवकर के अनुसार चिप्प रोग जब अत्य शक्ति वाले दोषों से उत्पन्न होता है तो उसे कुनख कहते हैं।
- आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार कुनख की साम्यता Onychogryphosis से की जा सकती है।

चिकित्सा सिद्धांतः¹

1. निदान परिवर्जन
2. सम्पूर्ण चिकित्सा चिप्प रोग के समान करें।
3. नख के अंदर टंकण भर देवें अथवा शाखोटक के क्षीर का लेप करें।
4. दूषित नख को निकाल दें।

आदर्श चिकित्सा पत्र

- | | |
|--|--|
| प्रातः : साथं | |
| त्रिफला गुण्डा : 500मि.ग्र. | |
| शुद्ध टंकण : 250 मि.ग्र. | |
| शहद से : 1 × 2 मात्रा | |
| अमृतादि क्वाथ : 20 मि.ली. | |
| समधाग जल से : 1 × 2 मात्रा | |
| पंचगुण तेल में टंकण मिलाकर लेप | |
| ब्रण प्रक्षालनार्थः : फिटकरी के जल का प्रयोग | |
| गर्म जल में नख डुबोकर रखें | |
| पथ्यपथ्य का पालन | |

1. अधिधात प्रदृष्टो यो नखे रक्षोऽस्ति: खरः । भवेत् कुनखं विद्यत् कुलीनमिति समित्यत् ॥ (सु.ति. 13/21)
2. नखोऽप्तिविदेन टङ्गोने च शास्यति । कुनखक्षेत्रद शेत्याः सतितं खावतेषि च ॥ (भा.प्र. मध्यम खण्ड 6 17/8)

Latest Developments Onychogryphosis

Definition

In this condition there is over growth of the toe nail, which becomes crooked and hunched. The nail may be curled as to resemble horn. Usually the big toe is involved and mostly in elderly patients.

Onychogryphosis is caused by fungal infection or by trauma.

Management

1. The nail is cut from the bed. The remaining nail is dealt with filling regularly so that it does not recur.
2. If the condition recurs the radical excision of the nail bed is advised.
3. Antibiotics, Analgesics, Antiinflammatory drugs.
4. Symptomatic management.

••••• कृष्ण

17. अनुशायी

(Cold Abscess)

सामान्य लक्षण

अनुशायी रोग के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं¹—

1. यह कफ के प्रकोप से उत्पन्न होती है
2. यह व्याधि शरीर के उर्ध्वभाग एवं गहरी धातुओं में उत्पन्न होती है
3. पिंडका का बर्ण त्वचा के समान होता है
4. अत्य शोथ युक्त पिंडका होती है
5. पिंडका के अंदर की तरफ पाक होता है

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार अनुशायी की साम्यता Cold Abscess से की जाती है।

चिकित्सा सिद्धान्त

1. निदान परिवर्जन
2. कफज निदान के समान चिकित्सा करें²
3. पाक होने के पश्चात भेदन करके व्रण के समान शोधन एवं गेपण चिकित्सा करें

1. गम्भीरसंसरक्षण सबण्मुपरिस्थितम् ।
2. कफादत्तः प्राप्तां तां विद्यादनुशायी भिक्षु ॥ (सु.ति. 13/22)
3. पाक होने के पश्चात भेदन करके व्रण के समान शोधन एवं गेपण चिकित्सा करें

1. ग्राहीत्यसंसरक्षण सबण्मुपरिस्थितम् ।
2. हरेनुशाय वैद्यः द्विया श्लेष्मविदधेः ॥ (भा.प्र. मध्यम खण्ड 6 11/17)

4. स्वेदन इष्टिका अथवा सिकता से कोरें
आदर्श चिकित्सा पत्र

१.

प्रातः सायं
३. ग्राम

18. विद्यारिका

सामान्य लक्षण

- | | |
|------------------|---------------------|
| पंचकोल चूर्ण | : 2 ग्राम |
| जल से | 1×2 मात्रा |
| कैशोर गुगल | : <u>500मिल.</u> |
| शहद से | 1×2 मात्रा |
| पटोलमूलादि क्राथ | : <u>20मि.ली.</u> |
| समधार जल से | 1×2 मात्रा |
| गोजनोत्तम | |

विद्यारिका पिड़का निम्न लक्षणों से युक्त होती है-

1. यह त्रिवेष से उत्पन्न होती है
2. यह विद्यारीकट्ट के समान गोलाकार एवं रक्तचर्ण की पिड़का होती है
3. यह मुख्यतः कक्षा (Axilla) एवं वंक्षण संघी में उत्पन्न होती है

- | | | |
|----|-------------------|-------------------------------|
| 6. | पथ्यापन्थ को पालन | खदरारेट |
| 5. | लेपनार्थ | समझा जल से : <u>20 मि.ली.</u> |
| 4. | | 1 x 2 मात्रा : दशांग लेप |

Latest Developments Cold Abscess

Definition
The name suggests that abscess is cold and non reactive in nature.

Brown induration, oedema and tenderness are conspicuous by their absence.

Cold abscess is almost always a sequelae of Tuberculosis infections anywhere in the body commonly in the lymph nodes, bones and joints.

Cæsarean section of lymph nodes forms the cold abscess.
Commonest site

The commonest sites are neck and axilla

Fluid consists of fatty debris, floating in the serous fluid and necrotic

Management : Principles

- Once diagnosed, complete Anti Tubercular regimen should be given.
 - If cold abscess continues to be present, aspiration may be attempted obliquely through the normal surrounding skin.
 - If local abscess still persists, the affected group of lymph nodes should be excised as a whole.

425

Precautions

An incision should not be made on a cold abscess for drainage. It almost always invites secondary infection and forms a persistent sinus.

• ४८५ •

- सामान्य लक्षण**

 - विदारिका पिङ्का निम्न लक्षणों से युक्त होती हैं—
 - यह क्रिंदोष से उत्पन्न होती है
 - यह विदारीकन्द के समान गोलाकार एवं रक्खर्ण की पिङ्का होती है
 - यह मुख्यतः कक्षा (Axilla) एवं वंक्षण संधि में उत्पन्न होती है
 - चिकित्सा सिद्धांत^२**
 - निदान परिवर्जन
 - अपवल विदारिका में प्रच्छन्न या जलौका से रक्त मोक्षण कराकर अजकर्ण एवं पलास मूल कल्क का लेप करना चाहिए
 - शस्त्र कर्म-पक्व विदारिका का भेदन करके परवल एवं निम्ब पत्र कल्क में तिलकल्क एवं शृत मिलाकर लेप करें एवं ब्रांग बंधन करें
 - झीरी वृक्ष एवं खटिर क्वाथ से ब्रांग प्रशालन करें
 - आदर्श चिकित्सा पत्र**

प्रातः :	सायं
फ्रिफ्टा गुग्गुळु	: ५००मि.ग्र.
पंचनिष्ठादि चूर्चा	: <u>३ ग्राम</u>
गोडुरुध से	<u>१ × २ मात्रा</u>
पंचतिक भृत	: <u>२०मि.लि.</u>
दुरुध से	<u>१ × २ मात्रा</u>
भोजनोत्तर	: <u>२०मि.लि.</u>
समभाग जल से	<u>१ × २ मात्रा</u>
पथ्यापथ्या का पालन	

1. विदारीकन्दवद् वृक्षां कक्षाब्दिक्षणसिद्ध्यु। रक्तां विदारिकां विद्यात् सर्वजां सर्वलक्षणाम्॥
(सनि. १३/२३)

19. शर्कराबुद्द

(Sebaceous Horn)

सामान्य लक्षण

शर्कराबुद्द के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं:-

- कफ, मेट एवं वायु, मांस, सिरा एवं स्नायु में स्थित होकर ग्रंथि (गांठ) उत्पन्न करते हैं।
 - ग्रंथि कटने पर उससे शहद, शूत और वसा सदृश अत्यधिक स्राव होता है
 - फटी हुई ग्रंथि में वात की वृद्धि होने से मांस शुक्र होकर शक्ति के समान हो जाता है
 - ग्रंथि की सिराओं से दुर्गन्धि, किन्तु एवं अनेक वर्णों का स्राव निकलता रहता है इसे ही शर्कराबुद्द कहते हैं।
- अधिनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार शर्कराबुद्द की साम्यता Sebaceous Horn अथवा Coch's Peculiar Tumour से की जा सकती है।

चिकित्सा सिद्धांत

- निदान वरिकर्ता
- शर्कराबुद्द की चिकित्सा मेदज अबुद्द के समान करें।
- शस्त्र कर्म- सर्वप्रथम स्वेदन करके शस्त्र से भेदन करें तत्पश्चात ब्रण के समान शोधन करें। ब्रण से रक्तस्राव बढ़ होने पर सोबत करना चाहिए।
- ब्रण पर मनःशिला, हरताल, लोध्र, पतंग, गृहथूम, हरिद्रा चूर्ण में मधु मिलाकर लेप करें।
- स्थानीय चिकित्सा- शुद्ध ब्रण पर करज्ज तैल अथवा पिण्ड तैल का प्रयोग करें।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1.	कैशोर गुणलु त्रिफला गुणलु शहद से	प्रात : सायं 500 मि.ग्र. 500 मि.ग्र.
2.	भोजनेतर आरोग्यवर्धीनी इटी शुद्ध ठंकण	1 × 2 मात्रा 250 मि.ग्र. 250 मि.ग्र.
3.	शुद्ध गधक दुध से	1 × 2 मात्रा पचातिक शूत
4.	गोदुध से भोजनेतर अमृतारु	1 × 2 मात्रा 20 मि.लि.
5.	समझा जल से पश्चाप्य का सेवन	1 × 2 मात्रा

Latest Developments

Sebaceous Horn

Introduction

The sebaceous gland present in the skin secrete sebum which keeps the skin soft and oily. The mouth of the sebaceous glands mainly open into the hair follicles. If the mouth of sebaceous glands is blocked, the glands discharge its own secretions and form a sebaceous cyst.

Definition

When an infected sebaceous cyst ruptures by itself and discharges its contents, slow discharge of sebum from a wide punctum forms the sebaceous horn.

When the sebaceous cysts of scalp is ulcerated, excessive granulation tissue form resembling fungating epithelioma known as cock's peculiar tumour.

Management : Principles

- Total excision of the cyst.
- Broad spectrum Antibiotics.
- Symptomatic management.

• • • नोट लें • • •

- प्राप्य मांससिराकायूः लेश्या मेदस्त्रानितः। गंथि कुर्वन्ति भिन्नोऽसौ मधुसर्पिंसानिभ्यम्॥
स्वत्वासावमत्यर्थं तत्र वृद्धिं गतोऽनितः। मांसं लिशोष्य ग्रंथितां शर्करां जनयेत् पुनः॥
दुर्गन्धि वित्तनमत्यर्थं नानावर्णं ताः सिराः। लववित्त सहसा रक्तं तद्विद्याच्छक्तिराबुद्दम्॥
(सु.ति. 13/24 - 26)
- मेदोऽबुद्विधानेन साधयेच्छक्तिराबुद्दम्॥
(सु.ति. 20/17)

झटोग एवं उनकी चिकित्सा

20. पामा

(Scabies)

सामन्य लक्षण

1. पामा में शरीर में अल्पांत छोटी-छोटी पिङ्काएँ उत्पन्न होती हैं।
2. सभी पिङ्काएँ ग्राव, कण्ठ एवं दाह से युक्त होती हैं।
3. आचर्य सुश्रुत ने पामा को कुष्ठ ना भेद जाता है।
4. आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार पामा की तुलना Scabies से की जाती है।
5. चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन

2. कुष्ठ रोग के समान चिकित्सा करें
3. आभ्यांतर प्रयोग- हरिद्रा कल्क में 100 मि.ली. गोमूत्र मिलाकर पान करने से पामा नष्ट हो जाता है।

4. स्थानीय प्रयोग- मोम, सौफ, वचा, फौली सर्पष एवं हरिद्रा को समझा लेकर जल में पीसकर लेप करें।
5. स्थानीय अध्यज्ञ

- (i) करञ्ज तैल
 - (ii) सार तैल (आग, देवदार, सरल)
 - (iii) जीरक तैल (जीरक, सिद्ध, सर्प)
 - (iv) अके तैल (अके, हरिद्रा, सर्प तैल)
- उपरोक्त तैलों के अध्यज्ञ करने से पामा रोग नष्ट हो जाता है।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रात : सावं
गंधक रसायन : 500 मि.ग्र.
रस माणिक्य रस : 125 मि.ग्र.
शुद्ध टंकण : 250 मि.ग्र.
कोषा जल से 1 x 2 मात्रा

2. भोजनोत्तर	पंचनिष्ठादि चूर्ण	: 2 ग्राम
आरोग्यवर्धनी चट्टी		: <u>500 मि.ग्र.</u>
जल से		1 x 2 मात्रा
3. भीजनोत्तर	सारिवादासब	: 20 मि.लि.
समझा जल से		1 x 2 मात्रा
4. प्रत्येप		: पामहर लेप
स्थानीय प्रक्षालन		: निष्व जल से
6. पश्यापथ्य का पालन		

Latest Developments Scabies

Definition

It is contagious infestation of skin with the itch mite.

Causative Organism

Sarcopetes scabiei.

Common sites

Between fingers

On the buttocks

Between thighs

Latter all over the body

Signs and Symptoms

1. Initially itching between the fingers.
2. Secondary streptococcal infection is an important cause of glomerulonephritis.

3. Severe wide spread scabies occurs in debilitated or immuno compromised individuals.
4. Formation of burrow.

Diagnosis

Diagnosis confirmed by scraping the mite out of a burrow.

Management : Principles

1. सातावकाप्तपरिदाहकाधि: पामागुकाधि: पिङ्काभरहा॥ (सु.नि. 5/14)
2. कच्चे चिचडिकों पामा कुष्ठवत् समुपचरेत्। लेपश शस्त्रते सिवधशताब्दिगोसरप्ते:॥
चवादावोसरपैदों तैलं वा नक्तमालजम्। सातौलमध्याख्यं कुवीत कट्टकैः
भृतम्॥ (सु.चि. 2017-18)

21. विचर्चिका (Eczema)

सामान्य लक्षण

विचर्चिका के सामान्य लक्षण निम्न प्रकार वर्णित हैं—

1. शरीर के विभिन्न भाग में त्वचा पर फटने जैसी रेखाएँ उत्पन्न होना
2. उस स्थान पर अत्यधिक रक्षता, कण्ठ एवं बेदना होना

आचार्य सुश्रुत ने विचर्चिका को कुष का भेद भी माना है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार विचर्चिका रोग की साम्यता Eczema नामक रोग से हो सकती है।

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
2. कुष के समान चिकित्सा करें
3. कुष नाशक लेपों का स्थानिक प्रयोग
4. अध्यार्थ-वृहत् मिट्टूराघ तेल, बृह-मरिचाघ तेल, अर्क तेल
5. मोम, सिन्दूर, गुग्गुल, तुथ और रसोत से मिठ्ठ सर्षप तेल विचर्चिका नाशक हैं।

आदर्श चिकित्सा पत्र

	प्रातः : साथ्य	प्रातः : साथ्य
अशूर्ति रसायन	: 250 मिल.	: 250 मिल.
शुद्ध गंधक	: 250 मिल.	: 250 मिल.
अमृता सत्त्व	: 250 मिल.	: 250 मिल.
मुक्ता सत्त्व	: 250 मिल.	: 250 मिल.
शहद से	1×2 मात्रा	1×2 मात्रा
2. आरोग्यवर्धिनी वटी	: <u>500 मिल.</u>	: <u>1 × 2 मात्रा</u>
कोषा जल से	1×2 मात्रा	1×2 मात्रा
3. भोजनोत्तर	: <u>खदिरारिष्ट</u>	: <u>20 मिली.</u>
समभाग जल से	1×2 मात्रा	1×2 मात्रा
4. स्थानीय लेपनार्थ	: यामाहर लेप	: यामाहर लेप
5. पथ्यापथ्य का सेवन		

1. राज्योऽतिकण्ठवत्तिरुजः सर्तका भवति गात्रे विचर्चिकायाम्। (सु.नि. 5/13)
2. मिठ्ठ सिक्षकमस्तन्दूरूप तुथकतायर्जैः। कच्छु विचर्चिकां वासु कुरुतौलं निबहृति॥

(अ.इ.नि. 20/84)

Latest Developments Eczema

Definition

Eczema comprises a group of skin disorders exhibiting a common pattern of Histological and clinical findings.

Causes

Allergies, irritating chemicals, drugs, scratching or rubbing the skin on sun exposure.

Signs and Symptoms

Eczema clinically manifests as pruritus, erythema, oedema, papule, vesicle, scaling, crusting and lichenification.

Management : Principles

1. Avoiding the causes of rashes.
2. Antihistaminics locally and orally.
3. Corticosteroids locally and orally.
4. Symptomatic management.

••• लैट्रिक्स •••

22. रक्तसा

सामान्य लक्षण

सर्व शरीर में कण्ठयुक्त एवं सावरहित पिङ्काओं को रक्तसा या सूखी खुजली कहते हैं। इसके लक्षण निम्न प्रकार होते हैं—

1. सर्व शरीर में पिङ्काएँ उत्पन्न होती हैं
 2. पिङ्काएँ सावरहित होती हैं
 3. पिङ्काएँ कण्ठ युक्त होती हैं।
- आचार्य सुश्रुत ने इसे कुष का भेद भी माना है।

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन।
2. कुष के समान चिकित्सा करें।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. कैशोर गुण्डु	: 500 मिल.	प्रातः : साथ्य
आरोग्यवर्धिनी वटी	: 250 मिल.	

1. कण्ठवत्तिरुजः सिक्षकमस्तन्दूरूप तुथकतायर्जैः। कच्छु विचर्चिकां वासु कुरुतौलं निबहृति॥ (सु.नि. 5/15)

2. कदर को शर्क से काटकर अग्नि ताप तैल से जलाना चाहिए।

आदर्श चिकित्सा प्रन

1. प्रातः : साथ्य
कांचनार गुण्डु : ५००मिली
शहद से 1×2 मात्रा
2. भोजनोत्तर
बद्धिरिट : २०मिली
समझा जल से 1×2 मात्रा
3. अग्नि कर्म
4. पथ्यपथ्य का यातन

Latest Developments Corn

Definition

It is a localised hyperkeratosis of the skin.

Site

Commonly occurs at the site of pressure like soles and toes of the feet / hand. There is usually a horny induration of the cuticle with a hard centre.

Signs and Symptoms

A corn has a deep central core which reaches deeper layers of dermis. Corn has a tendency to recur after excision.

Management : Principles

1. Central local application like cornation cap is effective.
2. If these measures fail and if corn is painful, it should be excised with particular care to take off the deep root of the central core. It often prevents recurrence.
3. Symptomatic management.

Prevention
Using soft shoes/soft pads at the pressure points of the sole prevents corn formation.

25. अलस

(Dhobies Itch)

निदान

वर्षा ऋतु में अथवा जमा हुए गंदे पानी का पैरों से अत्यधिक सम्पर्क होने से अलस रोग उत्पन्न होता है।

सामान्य लक्षण

पांव की अंगुलियों के बीच में वृण उत्पन्न होता है जिसमें क्लेट (गोलापन), कण्डु (खुजली), जलन, एवं पीड़ा होती है। इसे अलस कहते हैं।

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
2. प्रलेप

(i) करञ्जादि लेप (करञ्जबीज, हरिदा, हीरकशीश)

(ii) रञ्जन्यादि लेप (मेंहदी पत्र एवं करथा का कल्क)

3. कटेरी स्वरस में सर्षप तैल मिलाकर उसका लेप करके उसके ऊपर काशीश, मनःशिला एवं तिल को चूर्ण कर प्रतिसारण करना चाहिए।

आदर्श चिकित्सा प्रन

1. प्रातः : साथ्य

शुद्ध गंधक

रसमणिक्य द्रस्त

मुका शुक्ति

शुद्ध टंकण

शहद से

कैशोर गुण्डु

आरोपयक्तिमी वटी

शहद से

अमृतारि

भोजनोत्तर

समझा जल से

प्रातः : साथ्य

शुद्ध गंधक

मेंहदी पत्र

करथा का कल्क

मिलाकर

तैल मिलाकर

प्रतिसारण करना

चाहिए।

इसे अलस कहते हैं।

••• नोट्स •••

उत्तराय दध्वा स्तेहन जयेत् करदसंजकम् ॥ (सु.वि. 20/23)

1. विस्ताराङ्गुल्यन्तरौ पालौ कण्डुहलान्वितौ!
दुष्कर्तन्मस्पर्शदिलसं तं विनिदिशेत् ॥ (सु.नि. 13/31)

शुद्धिरोग एवं उनकी विकित्सा

26. इंद्रलुप्त

(Alopecia)

पर्याचि

इंद्रलुप्त, खालित्य, रुज्या इत्यादि

निदान एवं सम्प्राप्ति

विभिन्न प्रकार के दोष प्रकोपक निदान सेवन से बात दोष के साथ पित दोष मिलकर बालों को गिरा देता है एवं रक्त के साथ मिला कफ दोष रोप छिंद्रों की बंद कर देता है जिससे बाल उत्पन्न नहीं होते हैं। इसे ही इंद्रलुप्त कहते हैं।

बाल गिरने के पश्चात पुनः नहीं उगते हैं। आचार्य वामपट ने बालों के अचानक गिरने को 'इन्द्रलुप्त', तथा बालों के धीरे-धीरे गिरने को 'खालित्य' कहा है। आचार्य कार्तिक ने दाढ़ी, मूँछ के बालों के गिरने को 'इंद्रलुप्त', शिर के बालों के गिरने को 'खालित्य' तथा स्वेशरीर के बालों के गिरने को 'रुज्या' कहा है।

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
2. शोधन चिकित्सा
3. स्नेहन, स्वेदन के पश्चात शिर की सिराओं का वेधन करके रक्तमोक्षण करावे?
4. प्रलेप
 - (i) धूत्र पत्र स्वरस का शिर पर लेप
 - (ii) गुज्ञा मूल एवं फल से अथवा कलिहारी पुष्प या करबीर स्वरस से या छोटी कर्तेरी स्वरस में मधु मिलाकर शिर पर लेप करें।
 - (iii) कासीस मैनफल, तुत्थ और मरिच का लेप
5. स्थानिक अध्यार्थार्थ
 - (i) इभरदादि तैल (हिस्टिंडंट, शिकाकाई, आमलकी, तिल तैल)
 - (ii) कुटनटादि तैल (चित्रक मूल, चमोली पत्र, करञ्ज फल)
 - (iii) इन्द्रलुप्त नाशन तैल (तिलतैल, नरसार)
 - (iv). वृहत धूंगराज तैल (धूंगराज स्वरस, ब्रह्मी स्वरस, आमलकी स्वरस, तिल तैल)

आदर्श चिकित्सा पद्धति

1.	आमलकी रसायन	प्राप्त : सारं
	भूंगराज चूर्ण	: 3 ग्राम
	शहद से	: $\frac{2}{1 \times 2}$ मात्रा
2.	सप्तमृत लौह	: 500 मिली
	प्रवात पिण्डी	: $\frac{250}{1 \times 2}$ मिली
	राहद से	1 मात्रा
3.	शिरोअध्यार्थ	
	भूंगराज तैल अथवा इंद्रलुप्त नाशन तैल	
4.	गारिमे	: 2 ग्राम
	त्रिकला चूर्ण	: 1 मात्रा
	कोणा जल से	

Latest Developments Alopecia

Introduction

Alopecia means loss of hairs in areas where ordinarily hair would be found. Generally it means loss of terminal hair on the scalp.

Aetiological Factors

1. Heridity
2. Emotional Stress
3. Endocrine upset
4. Auto immunity

Types

1. Alopecia areata- It is a patching loss of hair on scalp.
2. Alopecia totalis- It is loss of all the hair on the scalp.
3. Alopecia universalis- It is complete loss of body hair.

Signs and Symptoms

1. Patient presents with sudden loss of hair over a circumscribed area.
2. There may be only two or three patches or entire scalp may be involved.

Bad Prognostic Sign

1. Early age of onset.
2. Large number of patches.
3. Extensive and zigzag involvement.

Management : Principles

1. Steroids- Topical and systemic.
2. Phototherapy with ultraviolet radiation of 'A' type.
3. Hair grafting.

1. रोमकृपातुं पितं बतेन सह पृष्ठ्यर्थम् । प्रचाचयति रोमाणि ततः रलेष्या सर्वोणितः ॥
रुणाद्व रोमकृपातुं ततोऽन्यपामसम्भवः । तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुज्येति च विभाव्यते ॥

2. इन्द्रलुप्ते सिंतं मृष्टिं स्त्रियाभिक्षत्रस्य मोक्षयेत् ॥ (सु.त्र. 20/24)
(सु.नि. 13/32-33)

27. दारुणक (Seborrhoeic Eczema)

सामान्य लक्षण

दारुणक रोग के सामान्य लक्षण निम्न प्रकार हैं।^{1, 2}

- कफ एवं वात के प्रकोप से उत्पन्न
- केशों का स्थान कठिन, रुक्ष, कण्ठ युक्त और विदर युक्त हो जाता है। इसे दारुणक कहते हैं
- आचार्य वापट ने दारुणक व्याधि में बालों का गिरना एवं संज्ञानाश का भी उल्लेख करते हुए दारुणक का वर्णन शिरोरोगों के अंतर्गत किया है।
- आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार दारुणक की साम्यता Seborrhoeic Eczema से कर सकते हैं।

चिकित्सा सिद्धांत³

- निदान परिवर्जन
- शोधन चिकित्सा
 - स्नेहन, स्वेदन
 - शिरावेधन, रक्तमोक्षण
 - अवपीड़ नस्य
 - शिरोबस्ति एवं अङ्गया
- ब्रण प्रक्षालनार्थ- कोदों धान के क्षार जल का प्रयोग उत्तम है।
- लेपन के लिए निम्न योग प्रयोग करने चाहिए-
 - चिर्हनी, मधुयाष्ठि, कुष्ठ, उड्ड, सर्षप को मधु के साथ लेप करें।
 - आम की गुड़ी का गूदा एवं हरीतकी के छिलके को गो दुध में पीसकर सिर पर लेप करना चाहिए।
 - काशीषाध घृत का लेप।
- अभ्यार्थ
 - गुज्जा तैल (गुज्जा, भुंगराज, तिल तैल)
 - भुंगराज तैल

आदर्श चिकित्सा पत्र

1.	शुद्ध गंधक	प्रातः : साथ
	अमृता सत्त्व	: 250 मि.ग्र.
	पंचनिम्बादि चूर्ण	: 2 ग्राम
	शाहद से	1 × 2 मात्रा
2.	प्रक्षालनार्थ	: त्रिफला कथाथ
3.	अभ्यार्थ	: महाभुगराज तैल
4.	हरीतकी चूर्ण	: 3 ग्राम
	गर्म जल से	1 मात्रा

Latest Developments Seborrhoeic Eczema

Definition

Eczema originating from sebaceous glands of hair especially of the scalp.

Causes

Unknown, but fungus *Pityrosporum orbiculae* appears to be a precipitating factor.

Common presenting features of HIV infection and can be a very severe condition. This effects the scalp with marked scaling (Dandruff) on ears, nasolabial folds and eyebrows.

Management : Principles

- Local Antiseptics.
- Use of topical steroids.
- Antifungal treatment.
- Ketaconazole Shampoo is effective.

••• लौटी लौटी •••

- दारुण कण्ठुरा रुक्षा के राम्यामि: प्रपाटर्यते।
कफवातप्रकोपेण विद्यादृश्याकं तु तम्॥ (सु.नि. 13/34)
- कण्ठुरेक्षाच्छुतिस्वपरीक्ष्यकृत् स्फुटनं त्वचः।
सुसूखम् कफवाताभ्यां विद्यादृश्याकं तु तम्॥ (अ.ह.उ. 23/23)
- सिंत दारुणके विद्युता नियन्त्रिकरण स्थूलिनि ॥
अवपीड़ शिरोबस्तिमध्यस्थं च प्रजोयेत्।
क्षालने कोद्रवतणक्षातोर्य प्रशस्तते ॥ (सु.चि. 20/30)

झुड़रोग एवं उनकी चिकित्सा

28. अरुषिका

- सामान्य लक्षण-**
1. कफ, रक्त एवं कृमि के प्रकोप से अरुषिका उत्पन्न होती है।
 2. सिर में अनेक छोटे-छोटे मुख वाली पिङ्काएं उत्पन्न हो जाती हैं।
 3. पिङ्काओं से अत्यधिक साव निकलता है।
- चिकित्सा सिद्धांत²**
1. निदान परिवर्जन
 2. शोधन चिकित्सा
 3. स्नेहन एवं स्वेदन के पश्चात पिङ्काओं से रक्तमोक्षण कराना चाहिए।
 4. लेपन कर्म हेतु
- (i) रक्तमोक्षण के पश्चात निष्ठ व्यायाम से परिषेक करके घोड़े की लौट के रस में सैंधव लवण मिलाकर लेप करें
- (ii) हरताल, हरिदा, पटोल, निष्ठ के कल्क का लेप
- (iii) मधुयष्टी, एरण्ड, नीलोफर, भूंगराज कल्क का लेप
- (iv) नीलकमल का केशर, आमलकी, मधुयष्टी के कल्क का लेप
4. अध्यार्थ
- (i) त्रिफला, लौहचूर्ण, मधुयष्टी, कमल, सारिवा, सैंधव लवण के कल्क से सिद्ध तैत असुधिका नाशक है।
- (ii) हरिदादि तैल (हरिदा, दारहरिदा, चिरायता, त्रिफला, नीम)
- आदर्श चिकित्सा पत्र**
- | | |
|---------------|-----------------------|
| प्रातः : | सायं |
| गंधक रसायन | : 250 मि.ग्रा. |
| बालसुधा | : 250 मि.ग्रा. |
| अमृता सत्र | : <u>250 मि.ग्रा.</u> |
| शहद से | |
| 1 × 2 मात्रा | |
-
1. अलंसि बहुवक्त्राणि बहुक्तेदीनि पूर्खनि।
कमफसुर्फुमिक्तेन नुगां विद्युतसंविकाम्॥
(सु.नि. 13/35)
2. अरुषिका होते रुक्के सेचयेनिव्यवारिणा।
दिद्वात् सैन्धवयुक्तेन वाजिवस्त्रसेन तु ॥
हीतातिरिशानिमवक्तव्यै सपाटोलजैः।
यष्टीनालोप्तरणमार्कदेवं प्रतोपरेत्॥
इन्द्रतुलापहं तैलमध्यं द्वे च प्रशस्यते॥ (सु.नि. 20/27-29)

29. पलित

- निदान सम्पादि एवं लक्षण¹**
- कोथ, चिन्ता एवं श्रम से उत्पन्न उत्पन्न तथा पित दोष शिरः प्रदेश में स्थिर होकर बालों को पका देते हैं इससे बाल सफेद हो जाते हैं इस अवस्था को पलित कहते हैं।
- थेद**
- आचार्य वाभट ने दोष प्रकोप के आधार पर पलित रोग के चार भेदों का वर्णन किया है जो निम्न प्रकार हैं²-
1. चात प्रकोप से उत्पन्न पलित में बाल फटा हुआ, स्थावर्ण, ऊरु, रुक्ष एवं जत के समान कान्ति बाला होता है
 2. पितज पालित्य में बाल ताहयुक एवं पौली जाई बाला होता है
 3. कफज पालित्य में बाल स्निग्ध, बढ़ने वाला, स्थूल एवं अतिशुक्त होता है
 4. सर्वदोषों के प्रकोप से उत्पन्न पालित्य मिश्रित लक्षणों बाला होता है
 5. शिरोवेदना से उत्पन्न एक अन्य प्रकार का पालित्य विवरण और स्पर्श को न सहन करने वाला होता है
-
1. क्रोधसोकमकृतः शरीरेष्या शिरोगतः।
पित च केशात् पचति वर्तित तेन जापते॥ (सु.नि. 13/36)
2. तद्वात्मुक्तिं श्यावं खरं रुक्षं जलप्रभम्।
पितासदाहं पीताम् कफात् स्निग्धं विवृद्धम्॥
स्थूलं सुशुन्तं सर्वेत्यु विद्युत्यामित्र लक्षणम्।
शिरोरुजोद्वं चान्यद्विवर्णं स्पर्शनासहम्॥
(अ.ह.उ. 23/30-31)

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
 2. शोधन
 3. नस्थार्थ
 - (i) निष्क तैल
 - (ii) नीलन्यादि तैल
 4. शिरो अध्यगार्थ
 - (i) भूंगराज तैल
 - (ii) महाभूंगराज तैल
 - (iii) यहानील तैल
 5. प्रतेपनार्थ
 - (i) लौहभस्म, भूंगराज, त्रिफला, काली मिट्टी को एक माह तक गंते के रस में रखकर लगाने से मूल सहित पालत से गृह हो जाता है।
 - (ii) तिल, आंवला, कमल के शर, मधुयाष्ठि, मधु यह शिर पर लगाने से बालों में बुद्धि एवं कृष्णता उत्पन्न होती है।
 - (iii) त्रिफला, नील के पते, भूंगराज एवं लौह चूर्ण को भेड़ के मूत्र में पीसकर प्रतेप करने से बाल अत्यंत काले हो जाते हैं।
 - (iv) लौहमलादि लेप (मण्डूर, आंवला, जपा)
 - (v) धात्रीफलादि लेप (त्रिफला, मण्डूर चूर्ण, आम्र)
 6. रसायन प्रयोग
 - (i) गुडची चूर्ण
 - (ii) आमलकी रसायन
 - (iii) भूंगराज इत्यादि
- आदर्श चिकित्सा पत्र**
1. अमलकी रसायन : सार्व
भूंगराज चूर्ण : 2 ग्राम
सपायुत लौह : 500मिग्रा.
शहद से 1×2 मात्रा
 2. अध्यगार्थ
3. रात्रि में
 - त्रिफला चूर्ण : 3 ग्राम
गर्म जल से 1 मात्रा
 4. घट्यापथ्य

30. मसूरिका (Small Pox)

व्याधि परिचय

मसूरिका एक लीब संकामक रोग है। बहुत्री के गंथों में मसूरिका का नाम मात्र वर्णन ही मिलता है। आचार्य सुश्रुत ने मात्र एक श्लोक में ही इसका वर्णन कर दिया है। संहिता गंथों के अतिरिक्त आचार्य माधवकर तथा भावप्रकाश कार ने अपने-अपने गंथों में मसूरिका का ख्यातनाम वर्णन किया है। इसका कारण सम्भवतः यह ही सकता है कि प्राचीन काल में मसूरिका का प्रकोप कम होता रहा हो तथा बाद में इसका अधिक प्रकोप होने से मसूरिका का नये स्तर से वर्णन किया गया हो। मसूरिका में सर्वशारीर पर रक्त वर्ण की पिङ्कारे निकलती हैं जो अत्यंत स्क्रमक होती हैं।

मसूरिका रोग की तुलना आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Chicken Pox से अथवा कुछ विद्वानों के भत से Small Pox से करते हैं।

प्रमुख संदर्भ ग्रन्थ

1. माधव निदान - अध्याय 54
2. भाव प्रकाश मध्यम खण्ड - अध्याय 60

परिभ्रामा

शरीर में मसूर की आकृति के समान सर्व शरीर में उत्पन्न पिङ्काओं को मसूरिका कहते हैं।

प्रमुख निदान

मसूरिका रोग के प्रमुख निदान निम्नलिखित हैं²-

1. कट्ट, अस्त, लवण एवं क्षार का अतिसेवन।
2. विरुद्ध आहार
3. अस्यशन
4. दूषित अन्न, मटर, शक्क का अधिक सेवन।
5. प्रदूषित जल एवं वायु
6. कूर ग्रह प्रकोप

1. मसूराकृतिसंस्थान: पिंडकास्ता मसूरिका:। (भा.प्र. मध्यम खण्ड 60/2)

2. कट्टव्यमूलवर्णकाराव्यवस्थानाशन: [दुष्टनिष्ठावाकाशी: प्रदूषपवनोदेकी: 1
कूरग्रहेष्याक्षणाच्चापि देशो दोषाः समुद्दलाः । जनयन्ति शरीरउस्मिन् दुष्टरक्तेन सङ्कृताः ॥
मसूराकृतिसंस्थान: पिंडका: स्वर्मसरिका: । (मा.नि. 54/1-2)]

भूदरोग एवं उनकी चिकित्सा**सम्प्राप्ति**

उपर्युक्त कारणों एवं शनि आदि ग्रहों के प्रकोप से प्रकृष्टि हुए दोष दृष्टि रक्त के साथ मिलकर मसूरिका रोग उत्पन्न करते हैं।

सम्प्राप्ति चक्र

निदान सेवन (आहारजन्य, तिहार जन्य एवं ग्रह इत्यादि)

**सम्प्राप्ति घटक**

दोष	: त्रिदोष
दूष्य	: रक्त
अधिष्ठान	: रसरकादि धातुऐँ एवं त्वक्
लोतस	: रक्तवह
ब्लोतो दुष्टि प्रकार	: ग्रंथि
अग्नि स्थिति	: अग्निमांदं
व्याधिरक्ष भाव	: दारण
साध्यासाध्यता	: कृच्छ्रसाध्य

भेद

आचार्य माधवकर ने दोषों के आधार पर मसूरिका के ५ भेद किये हैं एवं धातुगत आधार पर आचार्य माधवकर ने मसूरिका के ७ भेद माने हैं जो निम्न प्रकार हैं-

दोषानुसार मसूरिका के भेद

1. वातज मसूरिका
2. पितज मसूरिका
3. कफज मसूरिका
4. रक्तज मसूरिका
5. सत्रिपातज मसूरिका

धातुओं के आधार पर मसूरिका के भेद

1. त्वक्गत (संज) मसूरिका
2. रक्तज मसूरिका
3. मांसज मसूरिका
4. मेदज मसूरिका
5. अस्थिज मसूरिका
6. मजागत मसूरिका

7. शुक्रात मसूरिका

आचार्य भाव मिश्र ने भी मसूरिका के भेद माधवकर के समान ही बताए हैं।

पूर्वरूप

मसूरिका में निम्नलिखित पूर्वरूप उत्पन्न होते हैं—

1. ज्वर (Fever)
2. कष्ठ (Itching)
3. अंगाद (Bodyache)
4. अस्ति (बेचैनी - Restlessness)
5. भ्रात (Vertigo)
6. त्वक्-शोथ (Inflammation of skin)
7. विवर्णता (Discolouration)
8. नेत्रों में रक्तवर्णता (Redness in eyes)

दोषानुसार मसूरिका के लक्षण

वातज मसूरिका के लक्षण निम्न प्रकार हैं—

- (i) स्थात या अरुण वर्ण के स्फोट (Bluish Black coloured papules)
- (ii) पिङ्का किंठन एवं देर से पक्ती है (Hard Papules)
- (iii) सीधि, अस्थि एवं पैर में बेदना (Pain in body joints and leg)
- (iv) कास (Cough)
- (v) कम्पन (Tremors)
- (vi) अस्ति (बेचैनी) (Restlessness)
- (vii) तीव्र वेदना (Intense Pain)
- (viii) क्ल्यम (बिना कार्य के थकावट - Fatigue without work)
- (ix) तातु, ओष्ठ एवं जिहा का सूखना (Dryness in palate, lips and tongue)
- (x) तुष्णा (Excessive thirst)
- (xi) अरोचि (Anorexia)

1. तासों पूर्व ज्याः कण्ठद्वारात्मकोऽपरित्प्रभम्।
त्वचि शोथः सर्वव्यादो नेत्रराश जायते॥ (मा.नि. 54/3)

2. स्फोटाः स्थातारणा रसायातीवेतनयाऽनिवातः॥
कटिनाश्विरपकाश भवत्यनित संभवः॥

सन्ध्यारथिपर्वणां भेदः कासः कण्ठोऽपरिति क्ल्यमः॥
शोषस्तल्लोष्टजिह्वां तुष्णा चालविसंयुता॥ (मा.नि. 54/4-5)

2. पिण्ज मसूरिका के लक्षण
पिण्ज मसूरिका में निम्नलिखित लक्षण व्यक्त होते हैं -
(i) विस्फोट रक्त या पीत चर्ण के होते हैं (Red or yellowish coloured papules)
(ii) विस्फोट तीव्र वेदना, दाह एवं शीघ्र पकड़ने वाले होते हैं (Papules have severe pain, burning and early formation of vesicles and pustules)

- (iii). अतिसार (Diarrhoea)
(iv) अंगमर्द (Bodyache)
(v) सर्वदैर्घ्यक जलन (Burning all over the body)
(vi) पिपासा (Thirst)
(vii) अरुचि (Anorexia)
(viii) मुखपाक (Stomatitis)
(ix) नेत्रों में रक्तमा (Redness in eyes)
(x) तीव्र ज्वर (High grade fever)
3. कफज मसूरिका के लक्षण
कफज मसूरिका में निम्न प्रकार के लक्षण प्रकट होते हैं -
(i) लालासाव (Excessive Salivation)
(ii) स्तैमित्य (त्वचा का गोले कपड़े से ढका हुआ प्रतीत होना - Feeling of moistness of skin)
(iii) शिरःशूल (Headache)
(iv) शरीर में भारीपन (Heaviness in the body)
(v) हृलास (Nausea)
(vi) अरुचि (Anorexia)
(vii) तर्रा (Drowsiness)

2. पिण्ज मसूरिका के लक्षण
पिण्ज मसूरिका में निम्नलिखित लक्षण व्यक्त होते हैं -
(i) विस्फोट चर्ण में श्वेत, चिकने, मोटे, कण्ठ युक्त एवं अल्प वेदना वाले होते हैं (Papules are whitish, smooth having mild pain and itching)
4. रक्तज मसूरिका के लक्षण
रक्तज मसूरिका के लक्षण भी पिण्ज मसूरिका के लक्षणों के समान होते हैं ।
5. सत्रिपातज मसूरिका के लक्षण
सत्रिपातज मसूरिका में निम्न लक्षण व्यक्त होते हैं -
(i) विस्फोट नीले, चपेट, फैले हुए एवं पथ्थ में दबे हुए होते हैं (Pustules are bluish flat, protruding and elevated with depressed central part)

- (ii) विस्फोट देर से पकड़े हैं (Delayed inflammation in pustules)
(iii) अत्यधिक तीव्र वेदना (Intense pain)
(iv) दुर्गमित्य साव (Foul smelling secretions)
(v) संख्या में अधिक होते हैं (Large number of papules)
(vi) कण्ठ में अवरोध (Obstruction in throat)
(vii) अरुचि (Anorexia)
(viii) सर्व शरीर में स्तान्ध (Stiffness all over body)
(ix) प्रलाप (Delirium)
(x) अराति (Restlessness)
- धारानुगत मसूरिका रोग के लक्षण³
1. त्वक्गत (रसज) मसूरिका
त्वक्गत मसूरिका की पिण्डिकाएँ पानी के बलबले के सदृश होती हैं । इनमें दोष प्रकोप कम होता है और विदीर्ण होने पर जलीय साव निकलता है ।
2. रक्तगत मसूरिका
इसमें पिण्डिका रक्तवर्ण की, शीघ्र पकड़ने वाली, प्रतली त्वचा वाली एवं साथ होती हैं । इसमें रक्त युक्त साव निकलता है ।

-
1. रक्तजायं भवन्त्येते विकाराः पिततलक्षणाः ॥ (मा.नि. 54/8)
2. नीलाशिंचित्तिविस्तीर्णं मध्ये निम्ना महारुजः ॥
निरपाकः पूतिसावाः प्रभूताः सर्वदोषजाः ॥
कण्ठोधारुचिस्त्रभ्यप्रलापारितसंयुताः ॥
दुश्चिकित्स्याः प्रसुद्विद्याः प्रिडकाश्चमैस्त्रिवित्ताः ॥ (मा.नि. 54/11-12)
3. तोप्रदुर्बुद्धसङ्काशस्तु..... ॥
केवल चिरं दृष्टपते न तु जीवितम् ॥ (मा.नि. 54/14-22)

-
1. रक्तः पीतसिता: स्पोटा: मदाहस्तीवेदना: ।
भवन्त्यचित्तिवाकाशः पितकोपसमुद्भवाः ।
विद्येदश्चामदश्च दाहसूक्ष्माऽरचित्सत्था ॥
मुखाकोऽस्त्रियाश्च ज्वरस्तीवृः सुदारुणः । (मा.नि. 54/6-7)
2. कफ प्रसेकः स्तैमित्य शिरोलाग्राहत्वम् ।
हृलसः सारचिनिदा तन्त्रालस्यसमित्वाः ॥
शृता: स्त्रिया भूंस्थूला: कण्ठद्वया मन्दवेदना: ।
मसूरिका: कफोत्थाश्च चिरपाकः प्रकारितिता: ॥ (मा.नि. 54/9-10)

3. मांसगत मसूरिका
पिङ्का कठिन चिकनी, देर से पक्ने वाली होती है। इस पर त्वचा का मोटा आवरण होता है। शरीर में शूल, कण्ठ, ज्वर एवं अराति होती है।

4. मेदज मसूरिका

मेद जन्य मसूरिका गोलाकार, कुछ उभरी हुई होती है। इसमें भयंकर ज्वर होता है। पिङ्का मोटी एवं चिकनी होती है। रोगी मूँछ, अराति, संताप से पीड़ित रहता है।

5. 6. अस्थि एवं मज्जागत मसूरिका

अस्थि एवं मज्जागत मसूरिकाएं छोटी, शरीर के समान वर्ण वाली, रुक्ष, चपटी एवं कुछ उभरी हुई होती हैं। रोगी मूँछ, बेदना, अराति से पीड़ित रहता है। पिङ्किएं मांस स्थानों का छेदन कर शीघ्र ही रोगी को मार डालती हैं एवं अस्थियाँ भ्रमर के द्वारा छिद्रित की हुई प्रतीत होती हैं।

7. शुक्रगत मसूरिका

शुक्रगत मसूरिका में पिङ्किएं पक, चिकनी, छोटी एवं अत्यंत वेदना युक्त होती हैं। इस अवस्था में स्तिमिता, अराति, मूँछ भी होती है। शुक्र गत मसूरिका असाध्य होती है।

साध्या साध्यावधा

त्वचागत (रसगत), रक्तगत, पित्तज, कफज एवं कफपित्तज मसूरिकाएं साध्य होती हैं।

कृच्छ्रसाध्य मसूरिका²

बातज, वातपित्तज एवं कफवातज मसूरिका रोग कृच्छ्र साध्य होते हैं।

असाध्य मसूरिका³

सन्निपातन मसूरिका असाध्य होती है।

मसूरिका के असाध्य लक्षण

निन्मलिखित लक्षणों से युक्त मसूरिका रोगी को असाध्य समझना चाहिए-

1. कास (Cough)

2. हिक्का (Hiccough)

3. प्रोहे (Diabetes Mellitus)

4. तीक्रज्वर (High Grade fever)

1. त्वचागत रक्तजारनेव वित्तजा: रक्तेष्यजास्था।

रक्तेष्यजितकृतारनेव सुख साध्या मसूरिका: ॥ (मा.नि. 54/23)

2. बातजा वातपित्तोद्धा: रक्तेष्यवत्तकृतारन या:।

कृच्छ्रसाध्यमात्समाध्यनदो उपाचोद्देत् ॥ (मा.नि. 54/24)

3. असाध्या: सन्निपातोथासासा क्षयामि लक्षणम्। (मा.नि. 54/25)

5. प्रलाप (Delirium)

6. अराति (बेवैरी) (Restlessness)

7. मूँछना (Fainting)

8. घास (Excessive Thirst)

9. दाह (Burning)

10. अत्यधिक ऐरेन (Spasm in muscles)

11. मुख, नासा एवं नेत्र से रक्तसाक्ष (Bleeding from mouth, nose and eyes)

12. गले में धुर-धुर शब्द (Wheezing in the throat)

13. अत्यधिक कठिनाई से खास लेना (Dyspnoea)

उपादव

मसूरिका के अन्त में कमी-कमी कुहनी (Elbow Joint), कलाई (Wrist Joint) तथा अंसरफल पर भयंकर शोथ उत्पन्न हो जाता है जो असाध्य है।

विकिक्तस्त सिद्धान्त³

1. निदान परिवर्जन

2. कुछ नाशक लेपन क्रियाओं का प्रयोग मसूरिका में भी करना चाहिए।

3. कफज एवं पित्तज विसर्प के समान विकित्सा करनी चाहिए।

4. रक्तज मसूरिका में रक्तमोक्षण करना चाहिए।

विकित्सा

मसूरिका रोग शमनार्थ निन्म प्रकार से विकित्सा करनी चाहिए-

1. रुक्ष तीन ग्राम एवं एक ग्राम काली मरिच को मिलाकर पानी में पीसकर

पिलाना चाहिए।

2. मसूरिका के प्रांत में हुरहुर के पत्रों का स्वरस अथवा स्वरस में खेत चन्दन मिलाकर पिलाना चाहिए।

1. कासो हिक्का प्रमहरन ज्वरतोत्रिः सुदर्शनः:
प्रस्तरप्रचातिर्मूँछं तुष्णा दाहोऽतिधृपत्ता ॥

मुखेन प्रस्तरेकं तथा श्रानेन चक्षुषाः।

कुर्दे चुर्वलं कृत्वा स्वस्त्रित्यभ्येदनम् ॥

स्वस्त्रिकाभ्यपूरत्य यस्यात्मनि निष्पत्तेः ।-

स्वस्त्रिपाति च दृश्यते न दृश्यते भेषजम् ॥ (मा.नि. 54/27-29)

2. मसूरिकाने गोध: स्नान कर्ते मणिवन्यके,
तथाऽस्त्रकलके चापि दुरिच्छिकत्यः सुदारणः ॥ (मा.नि. 54/31)

3. मसूरिकायां कुर्देषु लेपनादिक्याहिता।
पित्तस्त्रोमात्सम्यग्येन क्रिया चान्न प्रसास्यते ॥ (भा.प. मध्यम खण्ड 60/34)

3. पानाथृ- पटेलादि पानीय, निम्बादि क्वाथ अथवा चद्दनादि हिम लाभदायक होते हैं।
4. स्थानीय चिकित्सा- दमनक, मस्तबक एवं कगाजी नीबू से केशर को कांजी में पीसकर लेप करने से मसूरिका शांत हो जाती है।

आदर्श चिकित्सा पत्र

1.	प्रातः : सार्व	
इन्दुकला वनी	: 250 मि.ग्रा.	
आरोग्यवर्धिनी वनी	: <u>250 मि.ग्रा.</u>	
शहद से		
2. चद्दनादि हिम	: <u>1 × 2 मात्रा</u>	
जल से		
3. भोजनोत्तर	: <u>100 मि.ली.</u>	
एलाइरिट	: <u>20 मि.ली.</u>	
समभाग जल से		
4. पंचतिक घृत	: <u>1 × 2 मात्रा</u>	
गोदुध से		
5. पश्चापथ्य पातन		
पथ्य		
		विहार
		आहार
शालि चावल, मूँगा, मसूर, केवल		स्वच्छ, रम्प, शीतल निवास स्थान
मसूर रस एवं अल्प मात्रा में		में शयन एवं घर के चारों तरफ निख
सेव्स्व इत्यादि।		पत्र बिखेरना इत्यादि।
अपथ्य		
		आहार
गुण, विदली, बिष्टमी, रुक्ष अत्र		गन्दे बिस्तर, प्रदृष्टित घर में शयन,
का सेवन नहीं करें, भारी पदार्थ,		अस्वच्छ रहना, बार-बार उस घर में
चिकनाई, तेल इत्यादि एवं घृतपान		अनेक व्यक्तियों का आना-जाना इत्यादि।

Latest Developments
Small Pox

Causative Organism
Variola vira. Pox virus (DNA)
Incubation Period

- 4-19 days
- Mode of Transmission**
Droplet and occasionally by air born infection.

Signs and Symptoms

- High grade remittent fever.
 - Wide spread deep seated centrifugal rash through macule→ papule→vesicle→pustule→scab→scar stages.
 - Toxaemia
- Dreaded complications**
- Blindness
 - Joint affections
 - Limb deformities.
- Management : Principles**
- Prior vaccination and specific antiserum administered during early incubation period are known to reduce the severity of the disease.
 - Immunity after an attack is long lasting.
 - Use of antibiotics.
 - Symptomatic management.

Note

- Small pox causing disfigurement, disability and death was certified as eradicated, by WHO on December 9, 1979.
- न्यूज़ीलैंड •••

31. मुखदृष्टिका

(Acne Vulgaris)

विहार

पथ्य

गुण, विदली, बिष्टमी, रुक्ष अत्र का सेवन नहीं करें, भारी पदार्थ, चिकनाई, तेल इत्यादि एवं घृतपान

आहार

गन्दे बिस्तर, प्रदृष्टित घर में शयन, अस्वच्छ रहना, बार-बार उस घर में अनेक व्यक्तियों का आना-जाना इत्यादि।

मुख दृष्टिका के समान्य लक्षण निम्न प्रकार हैं:-

- कफ, वात एवं रक्त की दुष्टि से युवा व्यक्तियों में मुख पर पिङ्का उत्पन्न होती है।

1. शाल्मलीकण्टकप्राञ्चया: कफमास्तरोणिते: ।
जगन्नते पिङ्का युनां वक्ने या मुखदृष्टिका: ॥ (सु.नि. 13/38)

शुद्धीरण एवं उनकी विविकल्पा

2. मुख पर शाल्मली (सेमल) कण्टक के समान पिड़िकाएं उत्पन्न होती हैं।
- मुख्यषष्ठिका को यौवन पिड़िका अथवा युवान पिड़िका भी कहते हैं।
- आमुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार मुख दृष्टिका को सामग्रा Acne Vulgaris से की जा सकती है।

चिकित्सा तिसङ्गत्वा

1. निदान परिवर्जन
2. शोधन चिकित्सा

- (i) वमन कराना विशेष लाभदायक होता है।
- (ii) शिरबेथ से रक्तमोक्षण

3. शमन चिकित्सा-प्रत्येप एवं अध्यांग

- (i) लोधि, वचा, सैन्धव लवण, सर्षप का लेप करने से युवान पिड़िका नष्ट हो जाती है।

- (ii) धनिया, वचा, लोधि एवं कुक्कुट का लेप करें।

- (iii) गोरेचन के साथ काली मिर्च का लेप हितकर है।

- (iv) जायफल, रक्तचन्दन, काली मिर्च समझा में पोस्कर लेप करने से यौवनपिड़िका शीघ्र नष्ट हो जाती है।

- (v) शाल्मली कण्टक को दुध में पोस्कर लेप करने से यौवनपिड़िका शीघ्र नष्ट हो जाती है।

4. अस्थार्थ

- (i) कुंडुभाघ तैल (ii) मर्जिष्ठाघ तैल (iii) हिन्दिरिद्वित तैल

आदर्श चिकित्सा पत्र

प्रातः : सार्व

कैशेर गुण्डाल : 500मि.ग्रा.

पंचनिम्बादि चूर्ण : 2 ग्राम

शहद से 1 x 2 मात्रा

भोजनोत्तर

शुद्ध गन्धक : 250 मि.ग्रा.

रसमाणिकय रस : 125 मि.ग्रा.

आरोग्यवर्धीनी चट्टी : 250 मि.ग्रा.

मुक्ता शुष्क धूप : 250 मि.ग्रा.

शहद से : 1 x 2 मात्रा

3. अव्यांगार्थ : स्थानिक प्रयोग

कुंकुमाद्य तैल

4. गाँधि में हरीतकी चूर्ण : 3 ग्राम

गर्म जल से 1 x 2 मात्रा

5. पश्यापथ्य पालन

Latest Developments

Acne Vulgaris

Definition

It is an inflammatory disease of the sebaceous follicles of the skin marked by papules and pustules. Exceptionally common in adolescence and puberty. Acne usually affects the face, chest, back and shoulder.

Aetiology

1. Exact cause is unknown
2. Genetic (Hereditary) susceptibility.
3. Level of circulating sex hormones especially androgens and estrogens and their imbalance affects severity of disease.
4. Tropical climate and external application of oils may aggravate the disease by blocking the ducts.
5. Specific causative factors include food allergies, endocrine disorders, corticosteroid therapy, psychogenic factors, vitamin deficiency and contact with chemicals.

Signs and Symptoms

1. Age of onset - Adolescence and puberty.
2. Lesion mainly present on face and other seborrhoeic area.
3. Males are more commonly affected.
4. Subsequent inflammation leads to formation of papules, pustules, nodules and cysts.
5. Severe and untreated cases heal with scarring which may be deep, atrophic, hypertrophic or keloidal.

Management : Principles

Aims of Treatment

1. To remove the follicular obstruction.
2. Decrease the activity of sebaceous glands.
3. Reduce bacterial population.
4. Control of bacterial population.

¹ यौवन पिड़िकाल्पनिक विशेषज्ञान दित्यम् १ सेप्टेम्बर का कार्यालय मिशन: राज्यपालियोगी: ५ कृत्यपूर्वकतान्त्रिकाल्पनिक लेट्स दित्यम् ॥ (मुख्यमिशन: २०३७)

Use of Medicines

1. Antibiotics oral or topical.
2. Skin cleansing.
3. Topical agents ("A" derivatives)
4. Symptomatic management.

...••• नैरूल्लू ••••

32. पद्मनीकण्टक**सामान्य लक्षण**

1. पद्मनीकण्टक कफ एवं वात के प्रकोप से उत्पन्न होती है।
 2. इसमें कमलीनी के कोंटों के समान कण्टक से भरा हुआ मण्डल (चक्र) ते उत्पन्न होते हैं।
 3. मण्डल सर्व शरीर गत, याण्डु वर्ण वाले तथा कण्डु युक्त होते हैं।
- चिकित्सा सिद्धांत**
1. निदान परिवर्जन 2. शोधन चिकित्सा
 - पद्मनीकण्टक में नीम के क्वाथ से वर्मन कराना चाहिए एवं निम्ब पत्र के क्वाथ से सिद्ध घृत में मधु मिलाकर पान के लिए प्रयोग करावें।
 3. निम्ब एवं अमलतास फलमज्जा समझा लेकर उबटन करें।
 4. प्रते-प्रते-कमलनाल क्षार या भस्म को जल के साथ पीसकर लेप करने से पद्मनीकण्टक नष्ट हो जाता है।
- आदर्श चिकित्सा पत्र**

1.	पंचतिक घृत गुण्डु शहद से	प्रातः : सायं 1 × 2 मात्रा
आरोयवर्धीनी बटी	: 250 मि.ग्र.	
2.	हरिदा खण्ड अमृता सत्त्व मुक्ता शुक्ति शहद से	: 2 ग्राम : 500 मि.ग्र. : 250 मि.ग्र. : 1 × 2 मात्रा

1. कण्टकेताचित् वृत्ते कण्टकपत्र फण्डुनडलम्। पद्मनीकण्टकप्रख्यस्तदात्म्य कफवाततज्जम्॥ (सुनि. 13/39)
2. पद्मनीकण्टके तो छटेयन्नपत्रवर्किणा। तेनैव सिद्धं सक्षेदं सर्पिः पानं प्रदापयेत्॥ निम्बरात्रयोः कल्पो हित उत्पन्ने भवेत्॥ (सु.वि. 20/38-39)

Use of Medicines

3. भोजनोत्तर सारिवाद्यसत्त्व समझा जल से : 1 × 2 मात्रा
4. पथ्यापश्य पालन : 20 मि.ली.

...••• नैरूल्लू ••••

33. जरुमणि
(Congenital Mole)**सामान्य लक्षण**

1. जरुमणि कफ एवं रक्त दोष के कारण उत्पन्न होता है।
 2. जरुमणि वेदना रहित, मण्डलाकार, चारों ओर उभया हुआ कुछ रक्तवर्ण का एवं चिकित्सा होता है।
 3. यह सहज (जन्मजात) व्याधि है। जरुमणि की साम्यता आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Congenital Mole से कोई जा सकती है।
- चिकित्सा सिद्धांत**
1. शस्त्र कर्म : जरुमणि को शस्त्र से काटकर, क्षार अथवा अग्नि से धीरे-धीरे जलाना चाहिए।
 2. आदर्श चिकित्सा पत्र

1.	कांचनर गुण्डु शहद से	प्रातः : सायं 500 मि.ग्र. 1 × 2 मात्रा
2.	चन्द्रकला रस पंचनिक्षादि चूर्ण शहद से	: 250 मि.ग्र. : 2 ग्राम : 1 × 2 मात्रा
3.	शस्त्र कर्म	: अग्निकर्म अथवा क्षार कर्म

Latest Developments
Congenital Mole**Introduction**

It is a congenital discoloured spot elevated above the surface of the skin. Etiology is not clear. It is harmless unless irritated.

1. नौरुजं सम्पुत्तनं मण्डलं कफरकज्जम्। सहजं रक्तमीष्व रसश्यं जनुमणि विदुः॥ (सु.नि. 13/40)
2. जरुमणि स्फूर्त्यं स्पष्टं तिक्तलक्ष्यम्। शोणं प्रदेहेष्वलक्ष्यम्। शोणं विकृतलक्ष्यम्॥ (सु.नि. 20/32)

Management : Principles.

1. Protect against irritation.
2. To consult a physician about any mole that changes colour or shows signs of growth or changes in appearance as such changes may indicate neoplasm.

34. मषक

(Elevated Mole)

सामान्य लक्षणः

1. मषक की उत्पत्ति शरीर के विभिन्न अंगों पर चात दोष के प्रकोप से होती है।
 2. मषक का आकार नाष्ट (उड्ड) के समान, कृष्ण वर्ण वाला एवं उभयरा हुआ होता है।
 3. मषक पूर्णतः बेदना रहित एवं स्थिर होते हैं।
- मषक की साम्यता आधुनिक विज्ञान के अनुसार Elevated Mole से की जाती है।

विकित्सा सिद्धांतः

1. निदान परिवर्जन
2. शस्त्र कर्म : मषक को शस्त्र से काटकर अग्नि अथवा शार से दग्ध कर धीरे-धीरे निर्मल करना चाहिए।
3. एण्ड पत्र नाल (दृष्टल) के शार द्वारा घर्षण करने से मषक नष्ट हो जाता है।
4. सर्प की केंचुल के भ्रम द्वारा मषक का घर्षण करने से वह पूर्णतः ठोक हो जाता है।

**Latest Developments
Elevated Mole**

Introduction
It is a common variety of mole. It is flat and slightly raised above the level of the skin. It has a smooth or slightly warty epidermal covering.

Management : Principles
It is better to excise a benign mole.

1. अजेन्ट रिस्पैन्जेल मषक गोजे दूर होते।
माषवान्तःमुत्स्त-निनाना-मषकं बदेत्॥ (सु.नि. 13/41)
2. जतुमणि समुकृत्य मषकं तिलकालकम्।
शोण प्रदहेद्युक्त्या वर्हना वा शैः: शैः:॥ (सु.चि. 20/32)

35. तिलकालक

सामान्य लक्षणः

1. तिलकालक की उत्पत्ति चात, पित एवं कफ दोष के प्रकोप से होती है।
2. यह तिल के समान आकृति वाले कृष्ण वर्ण के चिह्न होते हैं
3. तिल कालक सर्व शरीर गत एवं बेदना रहित होते हैं

आधुनिक विज्ञान के अनुसार तिलकालक को Non Elevated Mole कहा जा सकता है।

विकित्सा सिद्धांतः

1. निदान परिवर्जन
2. शस्त्र कर्म : तिलकालक को शस्त्र से काटकर शार अथवा अग्नि से धीरे-धीरे जलाना चाहिए।
3. प्रलेप - शरमुखा, नीलकमल पत्र, कुष्ठ, रक्तचंदन और खस इन्हें खट्टी दही में पीसकर लेप करने से तिलकालक नष्ट हो जाता है।

**Latest Developments
Non Elevated Mole**

Signs and Symptoms

1. It is a very common variety of mole.
2. Surface is not elevated.
3. Epithelium is smooth.
4. No hair growing from its surface.

Management : Principles
Excision is better.

36. न्यूच्छ

सामान्य लक्षण'

1. न्यूच्छ एक जन्मजात क्षुद्र रोग है।
2. यह शरीर के किसी भी भाग पर जन्मजात चिह्न के रूप में उत्पन्न हो सकता है।
3. यह छोटा या बड़ा, श्याम या श्वेत वर्ण का होता है।
4. न्यूच्छ पौङ्ड रहित होते हैं।

- आचार्य वाघट ने 'न्यूच्छ' का वर्णन 'लाञ्छन' नाम से किया है।
- चिकित्सा सिद्धांत³
1. निदान परिवर्तन
 2. शोधन चिकित्सा : शिरोवेध से रक्तमोक्षण करावें तथा क्षात्र प्रतेरण एवं अभ्यंग करें।
 3. प्रतेरण

- (1) क्षीरी वृक्षों की छाल को दुध में पीसकर लेप करें।

- आदर्श चिकित्सा पत्र

1. प्रत : साथं
कैशोर गुण्डु : 500 मि.ग्र.
आरोग्यवर्धनी वटी : 250 मि.ग्र.
शहद से 1 × 2 मात्रा
2. भोजनोत्तर
शुद्ध गन्धक : 500 मि.ग्र.
स्वर्णमार्गिक भस्म : 250 मि.ग्र.
रसमाणिक्य रस : 125 मि.ग्र.
शहद से 1 × 2 मात्रा
3. भोजनोत्तर
अमृतारिक्ष : 20 मि.ली.
समझाग जल से : 1 × 2 मात्रा
4. पश्चापथ का पालन

37. चर्मकील्त

(Warts)

निदान-सम्प्राप्ति'

विविध निदान सेवन से प्रकृष्टित वायु कफ के साथ मिलकर वाह्य त्वचा पर कील उत्पन्न करता है जिसे चर्मकील कहते हैं।

सामान्य लक्षण

1. वाह्य त्वचा के ऊपर रिश्य एवं कील के समान अर्थ उत्पन्न हो जाता है इसे चर्म कील कहते हैं।
2. यह मध्यक से थोड़ा ऊपर उठा हुआ होता है, कृष्ण एवं श्वेत रंग के मस्तों को चर्मकील कहते हैं।

- आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में चर्मकील की साम्यता Warts से को जाती है।
- चिकित्सा सिद्धांत
1. निदान परिवर्तन
 2. शास्त्रकर्म : चर्म कील को शस्त्र से काटकर सूर्यकात्त, क्षार या अग्नि से जलाना चाहिए।

Latest Developments
Warts

Definition

Wart is a circumscribed cutaneous elevation resulting from hypertrophy of the papillae and epidermis.

Warts are the most common clinical manifestation of human papilloma virus (HPV) infection occurring on any cutaneous or mucosal surface, most frequently on the hands, feet, face, legs and external genital areas.

Management : Principles

Most warts are benign and asymptomatic.

1. Topical applications of chemicals (Salicylic Acid, Lactic Acid, Trichloroacetic Acid and daily application of Tretinoin)
2. Laser Therapy
3. Cryotherapy usually with liquid Nitrogen.
4. Surgery - Excision, curettage, electrocautery are of use if topical agents and cryotherapy fail.

1. वानस्पति प्रकृतिः श्वेष्याण परिगृह्य वाहिः स्थिराण कोलवदणासि निर्वत्यति, तात्र चम्भ-कीलाच्छासितावचक्षते॥ (सु.नि. 2/20)
2. प्रथमस्तूताराज्चर्मकीलान् स्तितास्तान्॥ (अ.ह.उ. 31/26)
3. तद्दुर्क्ष शस्त्रेण चर्मकोलज्युमणी॥ (अ.ह.उ. 32/14)

³ न्यूच्छ तिप्पत्यः पितृः कल्पैः क्षीरतरुदधेवै॥ (भा.प्र. मध्यम खण्ड 61/136)

1. मण्डले महदल्लं वा श्याम वा यदि वा सितम्।
सहजं नीरुञ्ज गते न्यूच्छमित्यधिवेषते॥ (सु.नि. 13/43)

2. कृष्ण सिंत वा सहजं मण्डलं लाञ्छनं सम्म्॥ (अ.ह.उ. 31/27)

3. शिरोवेधे प्रतेरेष्व तथाऽप्यहृः लाञ्छनेत्।

38. व्यङ्ग

(Melanoderma of Face)

निदान सम्प्राप्ति

क्रोध एवं परिश्रम से कुपित वायु पित्त के साथ संयुक्त होकर मुख प्रदेश में पौड़ा रहित मण्डल उत्पन्न करती है जिसे व्यङ्ग कहते हैं।

सामान्य लक्षण

- व्यङ्ग की उत्पत्ति मुख प्रदेश पर एवं अकस्मात होती है।
- व्यङ्ग वेदना रहित, अल्प एवं श्वाव वर्ण का होता है।

चिकित्सा सिद्धांत

- निदान परिवर्जन
- शोधन चिकित्सा : शिरावेधन से रक्त मोक्षण करके प्रलेप एवं अध्यङ्ग करना

चाहिए—

- प्रलेप

- बटांकुर एवं मूसूर दातल पीसकर लेप करने से व्यङ्ग ठीक होता है।
- रक्तचन्दनादि लेप (रक्तचन्दन, लोध, मंजिष्ठा)
- मूलक बीज लेप (मूली बीज को दूध में पीसकर लेप करें)
- जातीफलादि लेप (जातीफल)
- बटपत्रादि लेप (बट, चमोली, रक्तचन्दन)
- शोरकादिलेप (कलामी शोरा एवं हरताल)

4. अध्यङ्गार्थ

- कुंकुमादि तैल
- कुंकुमादि घृत
- वर्णक घृत
- किञ्चुकादि तैल (पलास)

आदर्श चिकित्सा पत्र

1.

कौशावास प्रकृष्टिपतो वायुः पितेन संयुतः।

सहसा मुख्यात्मा मण्डल तिसर्जयतः॥

नीलं तुके स्थानं मुखे व्यङ्गे तमादिरोत्॥ (सु.नि. 13/45-46)

- शिरावेषे: प्रतेरेष तथाऽप्यद्वैतावरेत्।
- व्यङ्गं च नीलिकां वाऽपि न्यञ्जन तिसर्जातकम्॥ (भा.प्र. मध्यम खण्ड 61/39)

2. भोजनोत्तर

शुद्ध गंधक

: 250 मि.ग्रा.

रसमाणिक्य रस

: 125 मि.ग्रा.

प्रवाल पंचमूर्त

: 250 मि.ग्रा.

शहद से

1×2 मात्रा

अयंगार्थ

: किञ्चुकादि तैल

पच्चापण्य का पालन करना

...••लौ कौ...••

3. प्रलेप

नीलिका रोग भी व्यङ्ग के लक्षणों के समान होता है परंतु वर्ण में कृष्णता होती है। नीलिका मुख के अतिरिक्त अन्य अंगों पर भी उत्पन्न हो सकता है।²

- आयुर्विज्ञनक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार नीलिका की तुलना Lentigones से कर सकते हैं।
- सामान्य लक्षण
- निदान परिवर्जन
 - शोधन चिकित्सा : नीलिका में शिरावेध के द्वारा रक्तमोक्षण करके प्रलेप एवं आयुर्वेदा विकित्सा करनी चाहिए।

39. नीलिका
(Lentigones)

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन

2. शोधन चिकित्सा :

नीलिका रोग भी व्यङ्ग के लक्षणों के समान होता है परंतु वर्ण में कृष्णता होती है। नीलिका मुख के अतिरिक्त अन्य अंगों पर भी उत्पन्न हो सकता है।²

आयुर्वेदा विकित्सा विज्ञान के अनुसार नीलिका की तुलना Lentigones से कर सकते हैं।

3. प्रलेप

- जातीफलादि लेप (जायफल को पानी में पीसकर लेप करें)

- हरिद्रादि लेप (हरिद्रा, जायफल, अर्कंसीर)

- शीरी वृक्षों की दूध सहित छात को पीसकर लेप करना चाहिए।

- बला, अतिबला, हरिद्रा, मधुराषि का लेप करना चाहिए।

4. अयंगार्थ

- कुण्डलं गुणं गाढे नीलिकां तं विनिहेततः। (सु.नि. 13/47)

- कुण्डलं गुणं गाढे वा नीलिकां विदुः॥ (भा.नि. 55/40)

- शिरावेषे: प्रतेरेष तथाऽप्यद्वैतावरेत्।

- व्यङ्गं च नीलिकां वाऽपि न्यञ्जन तिसर्जातकम्॥ (भा.प्र. मध्यम खण्ड 61/39)

- (i) कुंकुमाद्य तेल
(ii) मंजिलाद्य तेल
आदर्श चिकित्सा पत्र

1.	प्रातः : साथ्य हरिदा खण्ड ओगोयवर्धनी वटी दुध से	: 2 ग्राम <u>250 मि.ग्रा.</u> 1 × 2 शाखा
2.	भोजनोत्तर महामंजिष्ठादि चूर्ण पंचनिष्ठादि चूर्ण जल से	: 2 ग्राम <u>2 ग्राम</u> 1 × 2 शाखा
3.	भोजनोत्तर सारिवाद्यासव	: <u>20 मि.ली.</u>
4.	समभाग जल से	: 1 × 2 मात्रा
5.	अम्बुंगार्द पथ्याप्य फलन	: कुंकुमाद्य तेल

Latest Developments Lentigones

Definition

These are dark brown or black coloured rounded macules which vary in size from 2-10mm and are seen over any part of the body. The lesions are present since birth or may appear late in life.

Signs and Symptoms

- They do not change with weather.
- They are usually non familial
- Rarely multiple lentigones occur with internal problems like ocular hypertension, electrocardiographic defects, pulmonary stenosis abnormal genitalia etc.

Management : Principles

- Generally no need of treatment.
- If required, treat the causative factors.

••• नै छै छै •••

40. अवपाटिका

(Tear of Prepuce)

प्रमुख निदान

अवपाटिका रोग के निदान निम्न प्रकार हैं:-

- पुरुष द्वारा अत्यं योनि छिद्र स्त्री के साथ वेगपूर्वक मैथुन करना
- शिश एवं तिलां लागाना
- हस्त मैथुन करते समय आभिधात से
- शिश का मर्दन एवं पोड़न करना
- उपस्थित शुक्र रोग को धारण करना

सम्प्राप्ति

उपरोक्त कारणों से जब शिशन चर्म में विवर (फट जाना) हो जाता है तब उसे अवपाटिका कहते हैं।

सामान्य लक्षण

- अवपाटिका रोग में शिशन का चर्म फट जाता है (Tear of the prepuce) या ऊपर चढ़ जाता है। आचार्य वाभट ने अवपाटिका रोग को गुद्धा रोग मानते हुए अलग अध्याय में वर्णन किया है।

चिकित्सा सिद्धांत

- निदान परिवर्जन
- दोषानुसार विवेचन करते हुए अवपाटिका को चिकित्सा परिवर्तिका के समान करनी चाहिए।

••• नै छै छै •••

-
- अल्पीय: खं हर्षाद् बालं गच्छेत् स्त्रियं नः।
हस्ताभिधातदथवा चर्मण्युद्वितीते बलात्॥
मर्दनातीड्नाद्वापि शुक्रोवाचिवाचतः।
यरस्यावपाद्यते चर्मं तां विद्यावपाटिकाम्॥ (सु.नि. 13/52-53)
 - अवपाटिका जदेवं यथादोष चिकित्सकः॥ (सु.चि. 20/42)

भुजरों एवं उनकी चिकित्सा

41. परिवर्तिका

(Paraphimosis)

प्रमुख निदान

1. हस्तादि से शिशन का मर्दन करना।
2. शिशन को अत्यधिक दबाना।
3. मैथुन के समय लड्डू-झाड़ (विवाद) हो जाने पर शिशन पर आघात लगना।

सम्प्राप्ति

उपरोक्त कारणों से सर्व संचारी व्यान वायु लिङ्ग के अग्र चर्म भाग में प्रविष्ट होती है तब वायु से आक्रान्त हुआ वह चर्म ऊपर की ओर चढ़ जाता है तथा पर्णि (मुपारी) के नीचे गंगीथ रूप में होकर लटकता है।

सामान्य लक्षण

परिवर्तिका रोग के लक्षण निम्न प्रकार वर्णित हैं—

1. वायु से दृष्टि होने के कारण शिशन के अग्र भाग का चर्म उलटा होकर ऊपर चढ़ जाता है।
2. शिशन में बेदना (Pain in the Penis)
3. दाह (Burning)
4. पाक (Abscess)

भेद

लक्षणों के आधार पर परिवर्तिका रोग के दो भेद होते हैं—

1. वातज्ञ परिवर्तिका

उपरोक्त वर्णित सभी लक्षण वातज्ञ परिवर्तिका रोग के लक्षण हैं। इसमें बेदना अधिक होती है।

2. कफज परिवर्तिका

यदि परिवर्तिका में अधिक कफ्ज (Itching) तथा कठिनता (Hardness) हो तो उसे कफज परिवर्तिका कहते हैं।

1. मर्दनात पोडनाल्लापि तथैवात्प्रिप्रतातः।
2. मद्वचम् यदा वायुर्भजते सर्वतः॥ (सु.नि. 13/48)

3. मण्ठरथतात् कोशस गंगीथरेण लक्ष्यते॥ (सु.नि. 13/49)
4. सबदन सदाहर्य पाकं च वजति व्याचित्। मासालग्नात्मस्थूतं विद्यते परिवर्तिकाम्॥ (सु.नि. 13/50)

4. सकाङ्कः कठिना चापि सेव रसेष्वमस्मित्थाः॥ (सु.नि. 13/51)

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
2. पोइंडिट स्थान पर सहन करने योग्य उष्ण धूत लगाकर स्वेदन करें।
3. शिशन मुण्ड को हल्के-हल्के दबाते हुए चर्म को धीरे-धीरे उतारें।
4. जब पाणि (Glans Penis) चर्म से ढक जाय तो चर्म पर 4-5 दिन तक हल्का स्वेदन करें।
5. वात नाशक बस्ति का प्रयोग करावें।
6. स्निग्ध आहार देवें।

Latest Developments Paraphimosis

Definition

When a phimotic prepuce is forcibly retracted over the glans penis and it is stuck behind the glans penis a condition is created which is known as Paraphimosis.

Signs and Symptoms

1. This causes obstruction to venous out flow leading to oedema and congestion of the glans.
2. The glans swells leading to more difficulty in retracting back the prepuce.
3. The prepuclial constriction band also gets oedematous and swollen unless the constructing band is released gangrene may result.
4. It is an emergency condition as presents with severe pain and swelling of the glans penis.

Management : Principles

is injected into lateral side of swollen ring of prepuce. The swelling is gradually reduced.

1. One ml. of Isotonic solution and 150 units of Hyalurionidase
2. If above method is unsuccessful surgery, is advised..
3. Symptomatic Management.

•••••

1. परिवृत्ति इत्ता ख्यतां मुख्यनामुपनाहयेत्।

2. तदा वायुपस्थृते च चर्म प्रतिनिवत्ते।

3. मण्ठरथतात् कोशस गंगीथरेण लक्ष्यते॥ (सु.नि. 13/48)

4. तदा वायुपस्थृते च चर्म प्रतिनिवत्ते।

5. प्रविष्टे च मणी चर्म स्वेदयोद्युपाहने।

6. प्रियांते पञ्चरात्रं वा वातज्ञे सात्वणादिभ्यः।

7. दद्याक्त वरन वस्त्र लिङ्गात्मनानि भोजयेत्। (सु.नि. 20/40-42)

42. निरुद्धप्रकश (Phimosis)

निदान सम्प्राप्ति

परिवर्तिका रोग में वर्णित निदानों के सेवन से ही बाल दोष प्रकृतिपत होकर शिश चर्म को दूरित कर देती है। दूरित शिश चर्म मणि (Glans Penis) को पूरी तरह से ढक लेता है। चर्य से ढकी हुई वह मणि मूत्र मार्ग को अवरुद्ध कर देती है जिसके फलस्वरूप मूत्र की प्रवृत्ति मन्द धार के रूप में होती है तोकिन मणि (Glans Penis) खुलती नहीं है। इसे निरुद्धप्रकश कहते हैं।

सम्प्राप्ति घटक

दोष	: वात
दूष	: रस, रक्त
अधिष्ठान	: शिश चर्म, मणि (Glans Penis)
स्रोतस	: रक्तवह, मूत्रवह
स्रोतो दुष्टि प्रकार	: सङ्क, ग्रंथि
व्याधि स्वभाव	: मुड़
साध्यासाध्यता	: साध्य
सामान्य लक्षण	

निरुद्ध प्रकश के सामान्य लक्षण निम्न प्रकार हैं—

1. मूत्र प्रवृत्ति धीरे-धीरे एवं अल्प वेदना के साथ होती है
2. शिश चर्म से मणि (Glans Penis) पूरी तरह ढकी हुई रहती है
3. मणि (Glans Penis) खुलती नहीं है अर्थात् शिश चर्म ऊपर की तरफ नहीं आता है

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार निरुद्ध प्रकश की तुलना Phimosis से की जाती है।

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्तन 2. शल्य क्रिया
 - (i) सर्वप्रथम दोनों तरफ छिद्र बाली लौह, लकड़ी या लालू की शलाका पर छूत लिप्त कर शिश में प्रवेश करावें।
 - (ii) इस प्रकार प्रत्येक तीन-तीन दिन पर क्रमशः मोटी शलाका प्रवेश कराकर मूत्र मार्ग स्रोत को बढ़ाना चाहिये।
 - (iii) अथवा सेवनी लौह लचाते हुए शल्य क्रिया करके सद्यः क्षत विधि के अनुसार छण का शोधन एवं रोपण करें।
 - (iv) शिश मुण्ड के परिषेक के लिए मार एवं मूत्रार की वसा एवं मज्जा तथा बात नाशक द्रव्यों से युक्त चक्र तैल का प्रयोग करें।
 - (v) स्नान्य आहार का प्रयोग करें।

Latest Developments

Phimosis

Definition

When the orifice of the prepuce is too small to permit its normal retraction over the glans penis, the condition is called Phimosis.

Aetiology:

Phimosis is of two types-

1. Congenital- Since birth.
2. Acquired

- (i) Following long standing inflammation of the glans (Balanitis) or of the prepuce (Posthitis) or a combination of both (Balanoposthitis)
- (ii) Trauma to the prepuce.
- (iii) Underlying carcinoma may lead to narrowing of prepuce orifice.

Signs and Symptoms

1. Difficulty in micturition.
2. In case of congenital phimosis, the mother complains that

-
1. निरुद्ध प्रकशे नार्दी लौही मुख्योत्तरीप्। दार्दों का जटुकूतं युताभ्यक्तं प्रवेशनेत्॥ परिषेके वसामाज्जिशशुभावात्काहयोः । चक्रतैलं तथा योज्वं वातान्त्र द्रव्यस्युतम्॥ अहात् अहात् स्थूलतां सम्प्रसाडी प्रवेशनेत्। सूतो विवर्धयेदवें स्नान्यमन्त्रं च भोजयेत्॥ निरुद्धप्रकशं विद्यात् सर्वज्ञ बालसम्बन्धम्॥ (सु.नि. 13/55-56)
 2. वातोपसूष्टेवं तु चर्म संश्रवते मणिम्। मणिक्षमैपनद्दस्तु पृत्रस्रोतो रुणद्दि च ॥ (सु.नि. 13/54)

1. निरुद्धप्रकशे तु चर्म संश्रवते मणिम्। मणिक्षमैपनद्दस्तु पृत्रस्रोतो रुणद्दि च ॥ (सु.नि. 13/54)
2. मूत्र प्रवर्तने जलोमणिर्च विदीर्घते ॥ निरुद्धप्रकशं विद्यात् बालसम्बन्धम्॥ (सु.नि. 13/55-56)

निरुद्धप्रकशं विद्यात् बालसम्बन्धम्॥ (सु.नि. 20/43-45)

when the child micturates the prepuce balloons out and the urine comes out in thin stream.

3. In old patients, they may present with recurrent balanitis causing pain and purulent discharge coming out through preputial orifice.

4. Occasionally patient may present with paraphimosis if the tight prepuce gets retracted and stuck behind the glans penis.

Local Examination

The opening of the prepuce is so small that it can not be retracted over the glans penis, then it is case of Phimosis.

Management : Principles

The treatment is circumcision i.e. removal of the foreskin or prepuce by surgery.

•••००••

43. सीनिरुद्ध गुद

(Stricture of the Rectum)

प्रमुख निदान

1. अपन बायु का बोग धारण करना
2. मल, मूत्र इत्यादि का अवरोध

उपरोक्त निदान सेवन करने से प्रकृयित बायु गुद प्रदेश में जाकर महास्रोतस का अवरोध करके गुद मांग को संकुचित एवं छोटा कर देता है तथा सीनिरुद्ध गुद उत्पन्न करता है।

सम्प्राप्ति घटक

- | | |
|---------------------|---------------|
| दोष | : वात |
| दूष | : मल, मूत्र |
| अधिष्ठन | : अधोगुद |
| स्रोतस | : महास्रोतस |
| स्रोतो दुष्ट प्रकार | : संग, ग्रंथि |

व्याधि स्वभाव : दारुण
साम्यासाथता : असाध्य

सामान्य लक्षण

1. गुद मांग संकुचित होने से मल प्रवृत्ति कठिनता से होती है।
2. अपन बायु का अवरोध भी हो सकता है।
3. विवरण

चिकित्सा स्तिव्वर्द्धन

1. निदान परिवर्जन
2. सीनिरुद्ध गुद को असाध्य मानते हुए चिकित्सा करनी चाहिए।
3. सम्पूर्ण चिकित्सा निरुद्ध प्रकश के समान करें।
4. स्थानीय चिकित्सा- बातताशक तैल से गुदा का अभ्यंग करावें।

आदर्श चिकित्सा पत्र

प्रात : सायं
लवणभास्कर चूर्ण : 2 ग्राम

तरुणी कुसुमाकर चूर्ण : 2 ग्राम
कोषा जल से 1 × 2 मात्रा

रात्रि में
हरीतकी चूर्ण : 3 ग्राम

गर्म जल से 1 मात्रा

स्थानिक अध्यांगार्थ : प्रसारणी तैल एवं जात्यादि तैल

कर्म बस्ति प्रयोग

(i) निरुह बस्ति : एण्ड मूलादि क्वाथ से

(ii) अनुवासन बस्ति

अधिक धूत युक्त आहार का सेवन

6. शत्य क्रिया : दोनों तरफ मुख वाली शलाका से गुदा का

विस्तार (Dilation) करना चाहिए एवं
क्रमशः शलाका की मोटाई बढ़ाते हुए प्रयोग करना चाहिए।

7. पथ्यापच्य का पालन

1. वोत्सवारणाइयुर्विहतो गुदमांत्रितः । निरुग्दि महत्वोतः सूक्ष्मदारं करोति च ॥

मार्गस्व मौक्ष्यतः कृच्छ्रेण पुरोगं गच्छति । सीनिरुद्धगुदं व्याधिमेन विद्यात् मुडुस्तरम् ॥
(मु.नि. 13/57-58)

1. सीनिरुद्धगुदे योजा निरुद्धप्रकशक्रिया । (मु.चि. 20/47)

44. अहिपूतना

(Sore Buttock or Diaper Rash)

पर्याय

मातका देष, पृथ्वी, गुदकण्ठ।

निदान

1. शिशु के मल, मूत्र उत्सर्जन के पश्चात जल से गुदा का सायक प्रक्षालन नहीं करता।
2. पसीना होने पर भी मद्देष्य जल से स्नान नहीं करता
3. दृष्टि स्तन्य पान?

सम्पर्किति

उपरोक्त निदान सेवन करते के कारण रक्त एवं कफ दोष की दुष्टि होने से शिशु की गुदा प्रदेश में कण्ठ उत्पन्न हो जाती है तथा उसे खुजलाने पर स्फोट उत्तर होकर स्वाव निकलते लगता है। इस प्रकार ब्रण युक्त इस भयंकर व्याधि को अहिपूतना कहते हैं।

सामान्य लक्षण

अहिपूतना रोग के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं:-

1. गुदा प्रदेश में कण्ठ
2. गुदा प्रदेश पर स्फोट एवं तत्पश्चात ब्रण की उत्पत्ति

आचार्य वाग्भट ने अहिपूतना रोग का वर्णन बालायम अध्याय के अंतर्गत किया है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार अहिपूतना रोग की साम्यता Sore Buttock या Diaper Rash से की जाती है।

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
2. धात्री अथवा माता के दुध की शुद्धि।
3. वित एवं कफ नाशक औषधियों का क्राश प्रितावें।
4. शोधन चिकित्सा- रिक्तिमा अधिक होने पर जलोका से रक्तविस्तावण करावें।
5. त्रिफला, बेर और खदिर क्राश से ब्रण का प्रक्षालन।
6. काशीशाहि लेप का स्थानिक प्रयोग

-
1. शकुन्मूसमयुक्त धौतेऽपाने शिशोभवेत्। स्विक्रस्यारत्नायमानस्य कण्ठू रक्तकोद्भवा॥ कण्ठकूनारतः चिक्कं स्मेतः स्वावश्यकालने च॥ (भोज)
 2. दृष्टस्तन्यपानेन मलस्याकालने च॥ (भोज)
 3. धात्रा: स्तन्य शोधयित्वा बाले साध्याऽहिपूतना॥ (सु.चि. 20/57)
 4. त्रिफलाकोलब्दिक्राशं ब्रणरोपणम्॥ (सु.चि. 20/58)

7. पानार्थ- पटोलादि घृत का प्रयोग

आदर्श चिकित्सा पत्र

1.	पंचकोल चूर्ण मंजिष्ठादि चूर्ण कोणा जल से भोजनेतर	प्रात : सार्व : 2 ग्राम : 1 ग्राम 1 × 2 मात्रा
2.	आरोयवर्धिनी वटी रस माणिक्य रस शुद्ध टंकण शहद से	: 250 मि.ग्रा. : 125 मि.ग्रा. : 125 मि.ग्रा. 1 × 2 मात्रा
3.	भोजनेतर सारिवाद्यासव समभाग जल से ब्रण प्रक्षालनार्थ स्थानिक प्रयोग	: 20 मि.ली. 1 × 2 मात्रा : त्रिफला क्राश : काशीशाहि लेप
4.	पटोलादि घृत गोदुध से	: 5 मि.ली. 1 × 2 मात्रा
5.	पथ्यपथ्य का पालन	

Latest Developments Diaper Rash

Definition

Rash in the diaper region is common during early infancy occurring in half of all infants.

Aetiology

1. It is more common in artificially fed infants especially in those in whom diaper is made of towelling and is changed infrequently.
2. It may involve convex surface such as buttocks, scrotal sac, mons pubis or inner side of the thigh.
3. Only flexures may be affected.
4. Signs and Symptoms

1. The skin appears like a parchment, like scaled area, which soon becomes infected giving rise to pustular erosions.

2. Bullous impidigo is also common in diaper rash.
 3. Band like erythematous lesions are attributed to contact dermatitis with elastic band at the diaper edges.
 4. Involvement of fold of skin causes sweat retention and makes area moist and macerated.
 5. Constant rubbing of skin causes erosions and denudation of the skin.
 6. The lesions are generally sharply demarcated.
- Management : Principles**
1. Acute rash should be managed with cool wet compresses (Using one Tea spoon Full of salt in a pint of water) for 2-3 days.
 2. Antiseptic cream or lotion may be used for control of infection.
 3. For contact dermatitis use one percent Hydrocortisone.
 4. For candida infection use Cotrimazole.

Precautions

1. Diaper should be made of single layer of porous soft cloth.
2. Excess layer of clothing should be avoided.
3. Diaper should be washed with mild soap and rinsed thoroughly.

•••॥॥॥•••

45. वृषण कच्छु

(Eczema of the Scrotum)

समान्य सम्प्राप्ति

स्नान एवं उबटन नहीं करने वाले बच्चे के वृषण प्रदेश में जमा हुआ मल जब पसीने से गोला हो जाता है तब वह कपड़ उत्पन्न करता है। अधिक कपड़ के कारण स्नान वुक्क्सोट उत्पन्न होते हैं। इस अवस्था को वृषण कच्छु कहते हैं। यह कफ एवं रक्त के प्रकोप से उत्पन्न होता है।

समान्य लक्षण

1. वृषण कच्छु के सामान्य लक्षण निम्न प्रकार होते हैं—
2. वृषण प्रदेश में कपड़
3. वृषण के चारों तरफ स्फोट

3. स्फोट से लगातार साव आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार वृषण कच्छु की साम्यता Eczema of the Scrotaum से कर सकते हैं।

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
2. वृषण कच्छु की चिकित्सा पापा एवं आहूतना रोग के समान करने चाहिए।
3. स्थानीय चिकित्सा

- (i) कर्मादि लेप (कपूर, गंधक, शेत चंदन)
- (ii) काशीश, गोरोचन, तुथ, हरताल तथा रसायन को कांजी के साथ पीसकर लेप करना चाहिए।

आदर्श चिकित्सा पत्र

प्रातः :	साथ
गंधक रसायन	: 120 मि.ज.
रस माणिक्य रस	: 60 मि.ज.
शुद्ध टंकण	: 60 मि.ज.
शहद से	: 1 × 2 मात्रा
स्थानिक प्रशालनार्थ	: खट्टिर, बेर एवं चिफला क्वाथ
लेपनार्थ	: काशीशादि लेप या कर्मादि लेप या कर्मादि लेप करना चाहिए।

•••॥॥॥•••

46. गुदध्रंश

(Prolapse of the Rectum)

समान्य लक्षण

गुदध्रंश के लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. रक्त एवं दुर्बल व्यक्ति द्वारा अति प्रवाहण से एवं अतिसार के कारण गुदा बाहर निकल आती है। इसे गुदध्रंश रोग कहते हैं।

आचार्य वाघट ने गुदध्रंश का वर्णन गुदा रोगाधिकार में किया है।

- आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार गुदध्रंश को Prolapse of the Rectum माना जा सकता है।

1. स्नानोत्सवनहीनस्य मलो वृषणसंक्षिप्तः । प्रक्रियादृते यदा स्वेदात् स कण्ठं जनयेत्तदा ॥
तज्ज कण्ठ्यानात् भिंग्रं स्फोटः सावश जायते । प्राङ्मुख्यं कच्छुं तो रसेभ्यरक्त प्रदोषजाम् ॥
(सु.नि. 13/61-62)

चिकित्सा सिद्धांत

1. निदान परिवर्जन
 2. गुदा का यथास्थान स्थापन करना चाहिये।
 3. अधोवायु प्रवृत्ति के लिए मध्य में छिद्र वाली चमड़े की गोफणा बंध से बांधना चाहिये।
 4. धौरे- धौरे स्थानीय स्वेदन कराना चाहिये।
 5. स्थानीय अध्यगार्थ- मूषक तैल प्रयोग करें।
 6. अनुवासन बरिस्त प्रयोग
 7. आयुर्वाचन प्रयोगार्थ
 - (i) चब्बादि धूत
 - (ii) चांगरी धूत
 8. स्निध एवं वातनाशक आहार विहार का प्रयोग।
- आदर्श चिकित्सा पद्धति**
1. संहेन, स्वेदन करके मूषक तैल की सहायता से गुदा को स्वस्थान पर स्थापित करें।
 2. भोजनोत्तर : 500मिंगा
 3. आरोपयवर्धिनी वटी : 2 ग्राम
लत्वणभास्कर चूर्ण : 1 × 2 मात्रा
गर्भ जल से : 10मि.ली
 4. चांगरी धूत : 1 × 2 मात्रा
 5. कोणा दुग्ध के साथ : 2 ग्राम
 6. रात्रि में : 2 ग्राम
 7. योगायस : मूलबंध का प्रयोग
-
1. गुदब्रंशे गुद रिक्वन स्वेदन्त स्वेदन्त प्रवेशदेत्।
कायेद् गोफणाबंध मध्याच्छ्रेण चर्मण॥
 2. विनिर्नामर्थ वायोश्च स्वेदन्तेच्च मुहुर्पुर्द्धि॥ (सु.चि. 13/61)
 3. क्षीर महन्तज्ञवृत्तं मूषकां चान्तवर्जितम्।
पक्वता तरिस्मैन् पवेतेन वाताचीष्ठसंयुतम्।
 4. गुदब्रंशादि कुच्छं पानायस्त्रात् प्रसाधयेत्। (सु.चि. 20/62-63)

Latest Developments

Prolapse of the Rectum

There are two types of prolapse of rectum-

1. Partial Prolapse
2. Complete Prolapse

Partial Prolapse of Rectum

Prevalence of Rectal Prolapse

- (i) It occurs more commonly in children below three years of age.
- (ii) Elderly people are also affected.

Aetiopathogenesis

1. In children

- (i) Due to faulty bowel habits.
- (ii) Straining such as attack of diarrhoea and whooping cough.
- (iii) Loss of weight and malnourished child.

2. In Adults

- (i) Some loss of tone of anal sphincter.
- (ii) Third degree haemorrhoids associated with partial prolapse.
- (iii) In females torn perineum.
- (iv) Excessive straining due to urethral obstruction from enlarged prostate or excessive coughing from bronchitis.

Management : Principles

1. Conservative Treatments.
2. Digital reposision- means replacing of the protruded bowel through the anal sphincter.

Supportive treatment

1. Avoiding straining at stools.
2. Attention of bowel habits.
3. Control of diarrhoea.
4. Symptomatic management.

2. Complete Prolapse of Rectum

Complete prolapse is more common in elderly. Women are affected five times more than men.

Management : Principles

1. Surgery.
2. Symptomatic Management.

••• न्द्रे ज्ञान •••

अध्याय-९

मानस विज्ञान निरूपण

परिचय

आयुर्वेद के संहिता ग्रंथों में मानस विज्ञान नाम से स्वतंत्र रूप से अलग से कोई वर्णन प्राप्त नहीं होता है। परंतु आशंगा आयुर्वेद में अनेक मानस रोगों, ग्रहबाधा एवं भूतविद्या आदि का स्वतंत्र रूप में वर्णन उपलब्ध होता है। वस्तुतः सम्पूर्ण आयुर्वेद ही मानस संबंधी विषयों एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण है। आयुर्वेद में मानस रोगों के क्रम में प्रकृतियों के वर्णन के साथसम्मान से सभी मानसिक विकारों का सविस्तार वर्णन मिलता है।

आत्मा को चैतन्य स्वरूप में बनाये रखने में मन की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। जब अपने विषयों से जुड़ती है तभी पुरुष को संबंधित विषय का ज्ञान होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सुख, दुःख इत्यादि के ज्ञानार्थ साधनभूत इन्द्रिय को मन कहते हैं। आयुर्वेदीय अवधारणा के अनुसार मन जीव का अभिन्न अंश है। आचार्य चरक ने आयु को परिभाषित करते हुये स्पष्ट किया है कि शरीर, इन्द्रिय, मन एवं आत्मा के संयोग से ही जीव को उत्पत्ति होती है। मन, आत्मा एवं शरीर नामक त्रिस्तुता पर ही जीव की स्थिति आधारित होती है। इस प्रकार मन जीव का अभिन्न अंश होने से ही स्वास्थ्य एवं सभी शारीरिक तथा मानसिक व्याधियों में मनोभवों की प्रमुख भूमिका होती है।

आयुर्वेद मतानुसार आश्रय भेद से व्याधियों को निम्न दो वर्गों में विभाजित किया गया है-

1. शारीरिक व्याधियां
2. मानस व्याधियां

शारीरिक एवं मानस विकार प्रायः एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। शारीरिक विकार प्रायः निज करणों से उत्पन्न होते हैं तथा मानस विकारों का कारण अधिकतर आगन्तुक होता है। परंतु शारीरिक एवं मानस विकार एक दूसरे में परिवर्तित होते रहते हैं। इसी वस्तुस्थिति को ध्यान में रखते हुए आयुर्वेद में एक समग्र मनोदैहिक दृष्टिकोण

स्वीकार किया गया है। आचार्य चरक ने शरीर एवं मन को एक दूसरे के अनुरूप बताया है। आयु स्वयं में मन, आत्मा एवं शरीर का संयुक्त स्वरूप है। अतः प्रत्येक व्याधि में मन, आत्मा एवं शरीर का प्रभावित होना स्वाभाविक है। अतः वे रोग जिनमें प्रधान रूप से शारीरिक विकार उत्पन्न होते हैं उन्हें 'शारीरिक रोग' कहा जाता है तथा जिन रोगों में प्रधानतः मनोविकार उत्पन्न होता है और लक्षण भी शारीरिक न होकर मुख्यतः मानसिक ही होते हैं उन्हें 'मानस रोग' कहा जाता है। जैसे कास, श्वास, अतिसार इत्यादि को शारीरिक व्याधि एवं उन्माद, अपस्मार, अतत्वाभिनिवेश, ध्रम, शोक एवं हर्ष इत्यादि को मानस विकार स्वीकार किया जाता है। जबकि दोनों ही प्रकार के विकारों में न्यूनाधिक मात्रा में शरीर एवं मन दोनों ही समान रूप से प्रभावित होते हैं।

'मन' पद की निरूपिकि

वाचस्पत्यम् शास्त्र में मन की निम्नलिखित निरूपिकि दी गयी है—

1. 'मनस मन्यतेऽनेनति मनः करणेऽसुन'

(वाचस्पत्यम्)

अर्थात् मनस शब्द मन बोध धातु के साथ करण (साधन) अर्थ में 'असुन' प्रत्यय होने से बनता है जिसका अर्थ है जिसके द्वारा बोध हो।

2. मन्यतेऽनेन इति मनः (मन ज्ञाने)
3. मनुते इति मनः (मनु अवबोधने)

इन धातुओं से 'मन' शब्द बनता है तथा जिसका अर्थ है 'जिससे ज्ञान होता है उसे मन कहते हैं'।

मन का स्थान

मन के निम्न दो स्थान माने गये हैं-

1. हृदय
2. मासिष्ठ या सिर

1. हृदय
संहिताओं में इन्द्रिय, आत्मा एवं मन का स्थूल रूप में स्थान हृदय बताया गया है।

आचार्य चरक ने हृदय को वर्णन करते हुए स्पष्ट कहा है कि पठङ्गों से युक्त शरीर, विज्ञान (बुद्धि), इन्द्रियां, इन्द्रियों के सभी विषय, सुगुण आत्मा, मन एवं मन के विषय इन सभी का आधार स्थूल हृदय होता है।

चिकित्सा स्थान अध्याय 24 में भी आचार्य चरक ने मन का स्थान हृदय बताया है।

1. सुखाद्योपत्विष्य साधनमित्रियं मनः। (तर्क संग्रह)
2. शरीरेऽप्यसत्त्वसंयोगे धारि जीवितम्। (च.सू. 1/42)
3. सत्त्वात्मा शरीरं च त्रयमेतित्वण्डवत्। (च.सू. 1/46)
4. ते च विकाराः परस्परमुवर्तमानाः कटाचिद्दुवर्णान्ति कामादये ज्वरादयश्च। (च.वि. 6/8)

1. शरीर द्वायि सत्त्वमनुविधीयते, सत्त्वं च शरीरम्। (च.शा. 4/36)
2. पठङ्गमङ्ग विज्ञानमित्रियाण्यर्थपञ्चवक्त्रम्। आत्मा च सामुद्रेष्टिभूत्यन्तं च हृदि संप्रतम् ॥ (च.सू. 30/4)

यथा- रस, बालादि के मार्ग, सत्त्व (मन), बुद्धि, इरिय, आत्मा और पर ओज का स्थान है¹। मदात्म्य प्रकरण में भी आचार्य चरक ने कहा है कि मध्य के द्वारा जब हृदय बिकृति हो जाती है तो उसमें रहने वाली रसादि धातुओं, मन, बुद्धि, आत्मा तथा ओज का स्वाभाविक कार्य विकृत हो जाता है। आचार्य वाराधर ने भी मन का स्थान हृदय को ही माना है²। इसी प्रकार आचार्य सुश्रुत ने शारीर स्थान अध्याय 3 में बुद्धि एवं मन का स्थान हृदय ही बताया है³। महर्षि भेल ने सर्व प्रकार की बुद्धियों एवं मन को हृदय में अविश्वत होना बताया है⁴।

आयुर्वेद में स्पष्ट वर्णित है कि ओज मन को क्रियाशीलता एवं गतिशीलता को संतुलित करते हैं जिसके कारण स्वरूप जीवन व्यापार निर्बाध गति से चलता रहता है। ओज को शारीर का बल मानते हुए उसे शारीरिक एवं मानसिक क्रिया कलाओं का प्रणेता माना गया है। यहां पर यह भी स्पष्ट किया गया है कि ओज की हानि विशेष रूप से मानस विकारों के कारण होती है। ओज क्षय में सर्वप्रथम मन एवं मानसिक क्रिया कलाओं में विकृति उत्पन्न होती है। जैसा कि ओजक्षय के लक्षणों में स्पष्टतः वर्णित है⁵।

आयुर्वेद में पर ओज का स्थान हृदय बताया गया है। अतः ओज का स्थान हृदय होने से मन का स्थान भी हृदय सिद्ध होता है। इसके अनतर उच्च स्तरीय मानस क्रियाओं का प्रेरक साधक पित्र का स्थान भी हृदय होने से मन का स्थान हृदय होता है ऐसा माना जा सकता है।

2. मास्तक या शिर

भेल संहिता में मन का स्थान शिर बताते हुए स्पष्ट किया गया है कि सभी इन्द्रियों में उत्तम मन, शिर और तालु में रहता है⁶। शिर एवं तालु में रहते हुये ही मन सभी में रहने वाली इन्द्रियों के रस इत्यादि विषयों का ज्ञान प्राप्त करता है। आचार्य चरक ने भी सभी इन्द्रियों का प्रधान आश्रय शिर को ही बताया है⁷। चूंकि

1. सत्त्वातादिमार्गाणं सत्त्वबुद्धिरियामनाप्।
प्रधानस्थीजसहूव द्वयं स्थानमूच्यते॥ (च.चि. 24/35)
2. सत्त्वादिग्रह हृदयं स्तनोः कोषुः (अङ्ग.शा. 4/13)
3. हृदयमिति कृतवोयौ बुद्धेर्मनसश्च स्थानवात्। (सु.शा. 3/30)
4. काणां सर्वबुद्धिनां वित्ते हृदय संस्थितम्॥ (भे.स. 3)
5. विभेति दुर्बलोऽमौक्षण्यं व्यापति व्यापितिन्द्रियः।
6. दुश्छायो दुमना रक्षः क्षम्यैववैनसः क्षये॥ (च.सू. 17/73)
7. शिरस्ताल्वान्तरगतं सर्वेन्द्रियं परं ममः।
तत्र तटिष्ठानि इन्द्रियानि स्थानिकान्॥ (भे.स. उन्नाद)

सभी इन्द्रियों मन से संबद्ध हैं अतः मन का स्थान शिर है ऐसा स्पष्ट होता है। इस प्रकार उपरोक्त वर्णन के आधार पर हृदय एवं मास्तक अथवा शिर दोनों को ही मन का स्थान मानना उचित प्रतीत होता है।

मन के गुण

मन के गुण दो गुण होते हैं⁸-

1. अणुत्व
2. एकत्व

1. मन का अणुत्व गुण
अणुत्व का तात्पर्य है सूक्ष्म। अर्थात् जो विभु या सर्व शरीर व्यापक नहीं हो। विभु परिमाण वाली आत्मा है जिसमें गति नहीं है अतः अणु परिमाण वाला हृदय ही सम्पूर्ण गति सम्पन्न करता है एवं वह मन के अतिरिक्त और कोई दूसरा दृव्य नहीं है। अणुत्व का एक तात्पर्य यह भी हो सकता है कि मन की स्थिति शरीर में अणु या सूक्ष्म रूप में है। मन अपनी सूक्ष्मता, चंचलता तथा तीव्र गति के कारण सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त प्रतीत होता है। अणुत्व गुण के कारण ही मन एक विषय से दूसरे विषय में इतनी शीघ्रता से प्रवेश करता है कि इसका ज्ञान ही नहीं होता है। इसीलिए मन की गति को सबसे तीव्र बताया गया है।
2. मन का एकत्व गुण
मन का दूसरा गुण एकत्व है, अर्थात् मन एक समय में एक ही इन्द्रिय के साथ संयोग करता हुआ उसी इन्द्रिय के विषय को ग्रಹण करता है। बस्तुतः मन में अणुत्व गुण के कारण एक विषय से दूसरे विषय तक इतनी शीघ्रता से गति होती है कि काल का ज्ञान होने से मन की अनेकता की प्रतीती होती है। परन्तु यह भ्रम की स्थिति है जो मन के अणुत्व गुण के कारण होती है।

2. मन का एकत्व गुण
मन का दूसरा गुण एकत्व है, अर्थात् मन एक समय में एक ही इन्द्रिय के साथ संयोग करता हुआ उसी इन्द्रिय के विषय को ग्रहण करता है। बस्तुतः मन में अणुत्व गुण के कारण एक विषय से दूसरे विषय तक इतनी शीघ्रता से गति होती है कि काल का ज्ञान होने से मन की अनेकता की प्रतीती होती है। परन्तु यह भ्रम की स्थिति है जो मन के अणुत्व गुण के कारण होती है। उसके कारण मन को अनन्त माना जा सकता है परन्तु प्रत्येक शरीर में रहने वाला मन एक ही है। उस शरीर की सम्पूर्ण प्रक्रियाएं उसी पर आधारित हैं। भ्रू गुणों की न्यूनाधिकता से धर्म अधर्म आदि संस्कारों द्वारा एवं कर्म विषयक द्वारा भिन्न-भिन्न स्वरूपों में मन परिवर्तित हो जाता है फिर भी मूल रूप में एक ही रहता है। मन की अनेकता का ध्रम निम्न कारणों से होता है⁹-
- (i) स्वार्थ व्याप्तिकारा के कारण

मन अपने अर्थों के व्याख्याचरण से अनेक प्रतीत होता है जैसे एक ही व्यक्ति कभी

1. प्राणः प्राण भूतां यत्राश्रितः सर्वेन्द्रियाणि च।
यदुत्तमाहमङ्गुणं शिरस्तदपिधृतते॥ (च. सू. 17/12)
2. अणुत्वमथ चैकत्वं दी गुणोः। (च.शा. 1/19)
3. स्वार्थादिर्याथ सकल्य व्याप्तिचरणान्वयनेकमेकस्मिन्
पुरुषे सत्त्वं, रजस्तमः सत्त्वाण्योगाच्च॥ (च.सू. 8/5)

धर्म का तो कभी काम का चिन्तन करता है। इस प्रकार अर्थ व्यधिचार से मन की अनेकता का संदेह होता है।

(ii) इन्द्रियार्थ व्यधिचार के कारण

मन लिभिन इन्द्रियों के अथों में व्यधिचारण करता रहता है जैसे कभी चक्षु इन्द्रिय से रूप का ग्रहण करता है, कभी शाण इन्द्रिय से संयुक्त होकर गंध जान का ग्रहण करता है। इसलिए मन की अनेकता का ध्रम होता है।

(iii) संकल्प के व्यधिचार के कारण

संकल्प का अर्थ है युग एवं दोष पूर्वक चिन्तन करना। मन के द्वारा एक ही विषय चिन्तन को कभी अत्यन्त गुणवत्तन मान तो कभी उसे दोष पूर्ण देखना। इस प्रकार का ध्रम चिन्तन मन के एकत्र युग में संदेह उत्पन्न करता है।

(iv) अज्ञ, तम एवं सत्त्व युग के कारण

मन अत्यन्त चंचल होता है। मन में कभी रजोयुग की प्रधानता रहती है तो कभी तमो युग या सत्त्व युग प्रबल हो जाता है। इस प्रकार की भिन्नता मन की एकत्रता को खण्डित करती प्रतीत होती है।

(v) समुच्छात

पूर्ण में बर्णित सभी कारणों के सम्मिलित स्वरूप से भी मन की अनेकता प्रतीत होती है।

इस प्रकार की शंकाओं का निम्न प्रकार से समाधान किया जा सकता है-

मन की अनेकता की प्रतीति केवल मिथ्या है। यदि नूर्म दृष्टि से विचार किया जाय तो मन एक है एवं अपु है। मन की गति तीव्रतम होने के कारण ही वह एक साथ अनेक विषयों को ग्रहण नहीं करता है। मन की गति असात्म्य संयोग की अवस्था इन्द्रियों से सम्पर्क स्थापित कर लेता है। उदाहरणार्थ कमल के सौ पत्रों को एक पर रखकर सुई से वेधन करने पर ऐसा नहीं होता है, सभी पत्रों का वेधन अलग-अलग लेकिन शोषित होता है परंतु वास्तव में ऐसा नहीं होता है, किंतु वास्तव में हो गया है।

मन के कर्म

आचार्य चरक के अनुसार मन के कार्य निम्नलिखित हैं:-

1. इन्द्रियों में अधिष्ठित होकर उनका संचालन करना।
2. अहित विषयों से उड़ने रोकना।
3. स्वयं को अहितकर विषयों में जाने से रोकने का प्रयास करना।

4. विभिन्न कार्यों की सम्भावनाओं के प्रति तर्क वितर्क करना।

5. हित एवं अहित का विचार करना।

यहां पर आचार्य चरक ने स्मृत रूप से इन्द्रियाभिन्नग्रहः, स्वस्य निग्रह को मन के कर्म के रूप में स्वीकार किया है। परंतु दूसरी पाँच में “उहो विचाराश्च” कहा है। अनेक व्याख्याकार उद्धा, विचारादि को मन के कर्म के रूप में स्वीकार करते हैं। आचार्य चरक ने स्मृत किया है कि चिन्त्य, विचार, उद्धा, ध्येय, संकल्प इत्यादि मन के अपने विषय हैं। इनका ग्रहण मन के द्वारा बिना इन्द्रियों की सहायता से ही हो जाता है। मन का प्रमुख कार्य इन्द्रियों एवं उनके कार्यों का नियंत्रण तथा स्वयं का नियंत्रण करना है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मन के विषय वह सभी हैं जो मन के द्वारा बिना इन्द्रियों की सहायता से ग्राह्य हैं परंतु मन का प्रमुख कार्य इन्द्रियाभिन्नग्रह एवं स्वस्य निग्रह है।

(i) इन्द्रियाभिन्नग्रह

इन्द्रिय युक्त समस्त मनोव्यापार को इन्द्रियाभिन्नग्रह कहते हैं। यहां पर इन्द्रियाभिन्नग्रह का अर्थ इन्द्रिय निग्रह से किया गया है। जब इन्द्रियाथों के असात्म्य संयोग की अवस्था होती है तो उस संयोग का मन निग्रह करता है अर्थात् मन ही इनके असात्म्य संयोग को रोक सकता है। उसके अलांकृत ज्ञान एवं चेष्टा से संबंधित मनोव्यापार इन्द्रिय की संयुक्तावस्था में ही सम्पादित होती है तथा मन का प्रथम कार्य इन्द्रियाभिन्नग्रह अर्थात् इन इन्द्रियों पर नियंत्रण रखकर इनका सम्यक रूपण संचालन करता है।

(ii) स्वस्य निग्रह

मनोव्यापार का जो क्षेत्र इन्द्रिय निरपेक्ष है उसका निग्रह मन स्वयं करता है। चिन्त्य, विचार, ध्येय, संकल्प आदि मन के विषय हैं तथा यह इन्द्रिय निरपेक्ष मनोव्यापार है।

मन के विषय

आचार्य चरक ने निम्नलिखित मन के विषयों का वर्णन किया है:-

चिन्त्य, विचार्य, उद्धा, ध्येय, संकल्प तथा अन्य जो भाव मन के द्वारा जाने जाते हैं उन्हें मन का विषय कहते हैं। मन के द्वारा चिन्तन किये जाने वाले विषयों को चिन्त्य कहा जाता है जैसे क्षमा करने योग्य है अथवा क्षमा अयोग्य है। किसी विषय वस्तु के लाभ-हानि अथवा युग दोष की विवेचना करने को विचार्य कहा जाता है तथा युक्ति अथवा तर्क द्वारा परीक्षण किये जाने वाले विषय को उद्धा कहते हैं। एकाग्र मन से किसी विषय का ध्यान किया जाना ध्येय है। संकल्प करने योग्य विषय को संकल्प कहा जाता है। अर्थात् युग एवं दोष का ज्ञान करके कर्तव्य या अकर्तव्य से अभीष्ट की प्रति का निश्चय करना ही संकल्प है।

1. इन्द्रियाभिन्नग्रहः कर्म मनसः स्वस्य निग्रहः।

जहो विचारश्च ततः परं बुद्धिः प्रवर्तते॥ (च.शा. 1/21)

1. नित्यं विचार्यमूर्तं च ध्येयं संकल्पमेव च।

यतिकीर्त्यभ्यन्तसो ज्ञेयं तत् सर्वं द्वार्थसंज्ञकम्॥ (च.शा. 1/20)

मानस रोगों के सामान्य निदेशन

- I. आयुर्वेद सिद्धांत के अनुसार सभी प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों के तीन मुख्य कारण होते हैं। यह निम्नलिखित हैं—
 1. असामोन्निद्यार्थ संयोग
 2. प्रज्ञाप्राप्ति
 3. परिणाम

शारीरिक दोष वाल, पित एवं कफ होते हैं। इनमें वात दोष सबसे प्रधान तथा सभी क्रियाओं का नियन्ता होता है। इसी प्रकार मानस दोषों में रज की प्रधानता होती है। इन दोप के बिना तम दोष की प्रवृत्ति नहीं होती।

1. असामोन्निद्यार्थ संयोग

ज्ञानेन्द्रियां पांच होती हैं - श्रोत्, त्वक्, चक्षु, रसना एवं त्राण। इन पांचों ज्ञानेन्द्रियों का अपने-अपने विषय के साथ अतियोग (अधिक संयोग होना), अयोग (पूर्णतः संयोग नहीं होना), अथवा मिथ्यायोग (कभी संयोग होना और कभी संयोग न होना) होना ही असामोन्निद्यार्थ संयोग कहलाता है। इन्हीं पांच होती हैं तथा प्रत्येक में तीन विकार अतियोग, अयोग एवं मिथ्यायोग हो सकता है। अथवा कुल 15 प्रकार से असामोन्निद्यार्थ संयोग हो सकता है।

(i) कर्णोन्निद्य

1. अत्यधिक ऊचे शब्द जैसे मेघ गर्जन, नागड़े की आवाज, अत्यंत तीव्र आवाज में सगीत सुनना इत्यादि कर्णोन्निद्य का अपने विषय के साथ अतियोग है।
2. कर्णोन्निद्य से किसी प्रकार के शब्दों का सुननायी नहीं देना अतियोग कहलाता है।
3. अप्रिय, निन्दित, कठोर, डुँख कारक शब्दों को सुनना कर्णोन्निद्य का मिथ्या संयोग हो सकता है।

(ii) त्वक् इन्द्रिय

1. अत्यधिक शीतल अथवा अत्यंत उष्ण द्रव्यों का त्वचा के साथ संयोग होना त्वक् इन्द्रिय का अतियोग है।
2. शीत, उष्ण, अभ्यंग, परिषेक आदि का त्वचा से सर्वथा स्पर्श न होना त्वचा का अतियोग है।
3. अपवित्र वायु का स्पर्श, या आधात लगना अथवा विषाक्त द्रव्यों का त्वचा से संयोग होना त्वक् इन्द्रिय का मिथ्या संयोग है।

(iii) दृश्योन्निद्य

1. दृश्यानामपूर्ण दोणाणा ज्ञितिभूत प्रकोपण, तद्यथा—
असामोन्निद्यार्थसंयोगः, प्रज्ञाप्राप्ति: परिणामश्चाति। (च.वि. 6/6)
2. इति विविध विकल्पे त्रिविधेष्व कर्म प्रज्ञाप्राप्ति इति व्यवस्थेत्॥ (च.सू. 11/41)

- I. आयुर्वेद सिद्धांत के अनुसार सभी प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों के तीन मुख्य कारण होते हैं। यह निम्नलिखित हैं—

1. असामोन्निद्यार्थ संयोग
2. प्रज्ञाप्राप्ति
3. परिणाम

शारीरिक दोष वाल, पित एवं कफ होते हैं। इनमें वात दोष सबसे प्रधान तथा सभी क्रियाओं का नियन्ता होता है। इसी प्रकार मानस दोषों में रज की प्रधानता होती है। इन दोप के बिना तम दोष की प्रवृत्ति नहीं होती।

1. असामोन्निद्यार्थ संयोग

ज्ञानेन्द्रियां पांच होती हैं - श्रोत्, त्वक्, चक्षु, रसना एवं त्राण। इन पांचों ज्ञानेन्द्रियों का अपने-अपने विषय के साथ अतियोग (अधिक संयोग होना), अयोग (पूर्णतः संयोग नहीं होना), अथवा मिथ्यायोग (कभी संयोग होना और कभी संयोग न होना) होना ही असामोन्निद्यार्थ संयोग कहलाता है। इन्हीं पांच होती हैं तथा प्रत्येक में तीन विकार अतियोग, अयोग एवं मिथ्यायोग हो सकता है। अथवा कुल 15 प्रकार से असामोन्निद्यार्थ संयोग हो सकता है।

(i) कर्णोन्निद्य

1. अत्यधिक ऊचे शब्द जैसे मेघ गर्जन, नागड़े की आवाज, अत्यंत तीव्र आवाज में सगीत सुनना इत्यादि कर्णोन्निद्य का अपने विषय के साथ अतियोग है।
2. कर्णोन्निद्य से किसी प्रकार के शब्दों का सुननायी नहीं देना अतियोग कहलाता है।
3. अप्रिय, निन्दित, कठोर, डुँख कारक शब्दों को सुनना कर्णोन्निद्य का मिथ्या संयोग होता है।

(ii) त्वक् इन्द्रिय

1. अत्यधिक शीतल अथवा अत्यंत उष्ण द्रव्यों का त्वचा के साथ संयोग होना त्वक् इन्द्रिय का अतियोग है।
2. शीत, उष्ण, अभ्यंग, परिषेक आदि का त्वचा से सर्वथा स्पर्श न होना त्वचा का अतियोग है।
3. अपवित्र वायु का स्पर्श, या आधात लगना अथवा विषाक्त द्रव्यों का त्वचा से संयोग होना त्वक् इन्द्रिय का मिथ्या संयोग है।

(iii) दृश्योन्निद्य

1. दृश्यानामपूर्ण दोणाणा ज्ञितिभूत प्रकोपण, तद्यथा—
असामोन्निद्यार्थसंयोगः, प्रज्ञाप्राप्ति: परिणामश्चाति। (च.वि. 6/6)
2. इति विविध विकल्पे त्रिविधेष्व कर्म प्रज्ञाप्राप्ति इति व्यवस्थेत्॥ (च.सू. 11/41)

- I. अत्यंत चमक काली वस्तु जैसे सूर्य, विद्युत बल्ब, आकाशीय विद्युत, टेलीविजन पर तेज चमक में चलाचित्र देखना दर्शनेन्द्रिय का अतियोग है।

2. किसी वस्तु का सर्वथा न देखना दर्शनेन्द्रिय का अयोग है।
3. अतिसमीप, अतिदूरस्थ, भयंकर, उग्र, वीभत्स, विचित्र, विकृत शब्द इत्यादि का देखना दर्शनेन्द्रिय का मिथ्यायोग है।

(iv) रसनेन्द्रिय

1. मधुर, अम्ल, तवण आदि रसों का अत्यधिक सेवन रसमोन्निद्य का अतियोग है।
2. किसी भी रस का सेवन न करना अथवा रसहीन पदार्थ का सेवन रसनेन्द्रिय का अयोग है।

(v) ग्राणोन्निद्य

1. अपश्य, अव्याधि द्रव्यों का सेवन, अष्टाहाराविधि विशेषायतन एवं द्वादशासन विधियों का उल्लंघन करना रसमोन्निद्य का मिथ्यायोग है।
2. किसी भी प्रकार की गन्ध को नहीं सूँपना ग्राणोन्निद्य का अयोग है।
3. दुर्गन्ध युक्त, अपवित्र गन्ध, विषाक्त गन्ध को सूँपना ग्राणोन्निद्य का मिथ्या योग है।

(vi) प्रज्ञाप्राप्ति

1. अत्यंत तीव्र अथवा अत्यंत उष्ण गन्ध का सूँधना ग्राणोन्निद्य का अतियोग है।
2. किसी भी प्रकार की गन्ध को नहीं सूँपना ग्राणोन्निद्य का अयोग है।
3. द्वारा प्राप ज्ञान का धारण किया जाता है एवं “स्मृति” के द्वारा आवश्यकता होने पर संचित ज्ञान का स्मरण किया जाता है।
4. मन, वाणी एवं शरीर की प्रवृत्ति को कर्म कहा जाता है। इन तीनों की प्रवृत्ति का अतियोग, अयोग अथवा मिथ्यायोग प्रज्ञाप्राप्ति कहा जाता है।

(vii) कर्म का अतियोग

1. मन, वाणी एवं शरीर के कर्म कहा जाता है।
2. अतियोग कर्म करना कर्म कहा जाता है।
3. अतियोग कर्म के जो भी स्वाभाविक कर्म है उनमें प्रवृत्त नहीं होना कर्म का अतियोग है।

(viii) कर्म का अयोग

1. धोषितस्मृतिविभूषणः कर्म यत् कुरुतेऽशुभम्।
प्रज्ञाप्राप्ति ते विद्यात् सर्वदेषप्रकोपणम्॥ (च.सू. 1/102)
2. इति विविध विकल्पे त्रिविधेष्व कर्म प्रज्ञाप्राप्ति इति व्यवस्थेत्॥ (च.सू. 11/41)

का अयोग है।

(iii) कर्म का मिथ्यायोग
जैसे अथारणीय बेगों का धारण, प्रवृत्त हो रहे बेगों को रोकना, शरीर के लिए कष्टकर कार्य जैसे मद्यपान, व्रत, उपवास, अति धूप आदि का सेवन करना कर्म का मिथ्यायोग है।

3. परिणाम

काल को ही परिणाम कहा जाता है क्योंकि काल ही सभी प्रकार के अच्छे अथवा बुरे कर्मों को धर्म-अधर्म रूप में परिणत कर यथा समय उनका फल देने वाला होता है। काल के लक्षणों का अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग, सभी प्रकार के शरीर या मानस रोगों का निमित्त कारण होता है।

(i). काल का अतियोग

शीतकाल में शीत का अथवा उष्ण काल में गर्मी का और वर्षाकाल में वर्षा का अत्यधिक होना काल का अतियोग है।

(ii). काल का अयोग

शीत काल में शीत का पूर्णतः न होना या अत्यल्प मात्रा में शीत होना, ग्रीष्म काल में गर्मी का अभाव और वर्षा क्षत्र में बाहिस का न होना या अत्यल्प होना काल का अयोग है।

(iii). काल का मिथ्यायोग

शीतकाल में गर्मी होना अथवा वर्षा होना, ग्रीष्म क्षत्र में शीत अथवा वर्षा होना, और वर्षा क्षत्र में ग्रीष्म या शीत होना काल का मिथ्यायोग है। बदलते वातावरण एवं दूषित होते हुए पर्यावरण के फलस्वरूप आजकल काल का मिथ्यायोग अधिक हो रहा है जैसे खाड़ी देशों में इस वर्ष भारी वर्षा हुई जो कि अद्भुत था, क्योंकि पिछले सौकड़ों वर्षों के बाद ऐसीस्तान में वर्षा हुई है।

अतः यह कहा जा सकता है कि असार्तेद्विद्यार्थ संयोग, प्रज्ञापराध एवं परिणाम मानस रोगों की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण कारण होते हैं।

II. रज-एवं तम मानस दोष एवं मनोरोग

मानस दोष दो होते हैं रज एवं तम। रज दोष सर्वाधिक क्रियाशील होता है एवं मन के दूसरों अंशों को भी क्रियाशील करता है। मनुष्य शरीर में प्रत्येक इच्छा, आकांक्षा आदि उत्पत्ति का मूल कारण रज दोष ही है एवं यही विभिन्न प्रकार के मानस विकारों को उत्पन्न करता है।

तम दोष गुरु तथा स्थिर स्वभाव वाला होता है। यह इन्द्रिय ग्रहण एवं मानसिक प्रक्रियाओं में व्यवधान उत्पन्न करता है। तम के कारण ही मिथ्याज्ञान, आलस्य, तन्द्रा, निद्रा इत्यादि की उत्पत्ति होती है।

III. चित्तवृत्तियाँ एवं मनोरोग
पातञ्जल योग सूत्र में पांच प्रकार की चित्तभूमि बतायी गयी हैं। इनके नाम एवं मुख्य दोष निम्न प्रकार हैं—

1. मूढ़ : तम दोष
2. क्षित : रज एवं तम दोष
3. विक्षित : सत्त्व गुण
4. एकाग्र : सत्त्व एवं निरुद्ध में सत्त्व गुण के कारण यह मानस रज एवं तम दोष को साम्यावस्था है। एकाग्र एवं निरुद्ध में सत्त्व गुण के कारण यह मानस रोग उत्पादक नहीं है। अधिकतर मानस रोगों की उत्पत्ति मूढ़ एवं क्षित अवस्थाओं में होती है।

IV. मानस प्रकृतियाँ एवं मानस रोग

जिनमें सत्त्व गुण से सात प्रकृतियाँ, राजस दोष से छः प्रकृतियाँ तथा तामस दोष से तीन प्रकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। सत्त्व गुण कल्याणकारी होता है तथा तोष रहित होता है। राजस मन में रोष (क्रोध) अंश की प्रधानता होती है अतः वह दोषकारक होती है। तामस अंश में मोह अंश की प्रधानता होती है अतः वह भी दोष युक्त होती है।

अतः राजस एवं तामस प्रकृतियाँ मानस रोग का कारण होती हैं।

V. अत्यं सत्त्वता एवं मानस रोग

सत्त्व निम्न तीन प्रकार का होता है—

1. प्रवर सत्त्व : मानसिक रूप से सत्त्व
2. मध्यम सत्त्व : थोड़े उपायों से पूर्ण सत्त्व
3. अवर सत्त्व अथवा अत्यं सत्त्व होने मनोबल (निरुक्ष)

अत्यं सत्त्व वाले व्यक्ति अपने मानस भावों को नहीं रोक पाते हैं तथा मामूली सी समस्याओं से ही अत्यधिक परेशान एवं बेचैन हो जाते हैं। अत्यं सत्त्व वाला व्यक्ति शरीरिक रूप से शक्तिशाली तो हो सकता है परंतु मानसिक रूप से अत्यन्त दुर्बल होता है। उनके मन में भय, शोक, लोभ, मोह आदि विकार भरे रहते हैं। वे विकृत, रोद, धृणित विषय अथवा रक्त, मांस आदि को देखकर ही विषद, मूच्छ, उन्नाद, शिरोग्रम से घिर जाते हैं जिसके फलस्वरूप अनेक प्रकार के मानस विकारों के शिकार हो जाते हैं।

VI. सद्वृत की उपेक्षा एवं मानस रोग

1. विविध खलु सत्त्व-शुद्ध, राजसं, तामसमिति। तत्र शुद्धदोषभाज्ञातं कल्याणारात्मात् राजसं सदोषमध्यातं रोषांशत्रात्, तामसमिति सदोषमध्यातं मोहांशत्रात्। (च.शा. 4/36)

अयुर्वेद के संहिता ग्रंथों में सद्वृत का विस्तृत वर्णन मिलता है। सद्वृत का समुचित रूप से पालन करना मानस स्वास्थ्य को बढ़ाने वाला होता है। संहिता ग्रंथों में अनेक प्रकार के सद्वृत का सम्मिलित रूप में विस्तृत वर्णन है। इसके अंतर्गत, व्यक्तिगत, सामाजिक, धार्मिक, व्यावहारिक आदि घटकों को सम्मिलित किया गया है। समुचित रूप से सद्वृत पालन से मानस रोगों से बचाव किया जा सकता है परंतु सद्वृत एवं आचार रसायन का पालन नहीं करने से अनेक प्रकार के मानस रोग उत्पन्न होते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम को भी सद्वृत के अंतर्गत मानकर इनके नियमित पालन से मानस रोगों की उत्पत्ति को रोका जा सकता है।

VII. मानस भाव एवं मानस रोग उत्पादन में उनकी भूमिका

मानस दोष रज एवं तम के प्रकोप होने के फलस्वरूप अनेक मनोभाव उत्पन्न होते हैं जो मानस रोगों की उत्पत्ति में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। मनोविकारों के कारण मनुष्य अपने मूल माया एवं उद्देश्य से भटक जाता है एवं अनेक प्रकार की मानस व्याधियों अथवा मनोदेहिक विकारों से ग्रस्त हो जाता है। मानस रोगों की उत्पत्ति में भाग लेने वाले कुछ प्रमुख विकार निम्नलिखित हैं-

1. काम (Lust)
 2. क्रोध (Anger)
 3. लोभ (Greed)
 4. मोह (Delusion)
 5. ईर्ष्या (Jealousy)
 6. मान (Pride)
 7. मद (Neurosis)
 9. चिन्ता (Depression)
 11. भय (Fear)
 13. दैन्य (Misery)
 15. आवेग (Excitement)
 17. शंका (Uncertainty)
 19. जड़ता (Dullness)
 21. हठ (Obstinacy)
 23. श्रम (Fatigue)
 25. स्मृति (Recollection/Memory)
 18. बृणा (Hatred)
 20. उग्रता (Fierceness)
 22. विलाप (Groaning)
 24. उत्सुकता (Eagerness)
- उपरोक्त सभी मनोभाव शरीर एवं मनस में विभिन्न प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न करते हैं। इनमें से अनेक मनोभाव ऐसे हैं जो प्रतिक्रिया स्वरूप दूसरे मनोभावों को उत्पन्न करते हैं। कुछ प्रमुख मनोभावों का वर्णन नीचे किया जा रहा है-

1. लोभ (Greed)

किसी वस्तु विशेष के प्रति अत्यधिक प्रीति अथवा लालच उत्पन्न हो जाना ही लोभ की अवस्था है। इस अवस्था में व्यक्ति का मानस स्वास्थ्य प्रभावित होता है तथा याद वह व्यक्ति अपने स्वभाव को यथाशङ्ख संतुलित करने में असफल रहता है तो धीरे-धीरे वह मानसिक रोगी हो जाता है।

2. मोह (Delusion)

यदि लोभ ग्रस्त व्यक्ति की समुचित विकित्सा नहीं की जाये अथवा लोभ अत्यधिक यदि व्यक्ति का मानस स्वास्थ्य स्वतं प्रभावित होता है। मोह अत्यंत विकृत मानस स्थिति है। बढ़ गया हो, तो वह अवस्था ही मोह कहलाती है। यदि अत्यंत विकृत मानस स्थिति है। उसमें व्यक्ति अज्ञानता से घिर जाता है तथा उस व्यक्ति के लिए हानि-लाभ अथवा उचित-अनुचित का निर्णय करना अत्यंत कठिन हो जाता है।

3. क्रोध (Anger)

किसी के प्रति अधिदोह करना अथवा मन, वाणी एवं कर्म के द्वारा विरोध करना अथवा मन के मनोभावों एवं उमंगों (Emotions) द्वारा मन में अत्यंत भयंकर क्रोध की उत्पत्ति हो सकती है। यदि क्रोध पर तत्काल समुचित नियंत्रण नहीं हो पाता है तो यह अत्यंत घाटक हो सकता है। यदि क्रोध पर तत्काल समुचित नियंत्रण नहीं हो पाता है तो यह अत्यंत घाटक हो सकता है तथा अनेक प्रकार की सामाजिक कठिनाईयों एवं व्यक्तिगत परेशानियों के माध्यम से मानस स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

4. शोक (Grief)

‘मानव मस्तिष्क में दीनता के भाव उत्पत्ति को शोक कहा जाता है जो व्यक्ति के मुखमण्डल द्वारा स्पष्ट होता है। शोक के अनेकों कारण हो सकते हैं। वस्तुतः इच्छित वस्तु की समयावृक्ति अप्राप्ति ही शोक का मूल कारण है जो अनेक मनोविकारों को उत्पन्न करता है जैसे व्यग्रता, उदासी, रुदन, व्यक्ति का अपने सामाजिक परिवेश से कट जाना इत्यादि।

5. विलाप (Groaning)

विलाप का तात्पर्य रुदन से है। यह ग्रायः शोक की व्यक्तिवास्था होती है। जब व्यक्ति शोक की अवस्था को सहन करते में असमर्थ हो जाता है तो वही स्थिति अशु के रूप में विलाप द्वारा प्रकट होती है जिसके फलस्वरूप अनेक मनोदेहिक विकार उत्पन्न होते हैं। यह अत्यंत दीनता की स्थिति है।

6. प्रीति (Attachment)

जब मनुष्य किसी के आचरण, क्रिया कलाप एवं व्यवहार को प्रसंद करता है एवं उसके प्रति मन में संतोष की भावना उत्पन्न होती है इस अवस्था विशेष को प्रीति का

1. मोहमविज्ञानेन (च.वि. 4/8)

2. क्रोधमभिदोहण (च.वि. 4/8)

3. शोकं दैनेन (च.वि. 4/8)

1. हैनस्त्वस्तु नामना नामि पौः सत्वत्वं प्रति शक्यते उपस्थितिं.....

..... अमप्रपतनानामन्यतमपान्तवन्त्यथवा मरणिमति ॥ (च.वि. 8/119)

सूचक माना जाता है। प्रीति प्रारंभिक अनुराग, प्रेम अथवा लगाव की सूचक होती है। प्रीति के विशिष्ट स्वरूप अथवा अवस्था को हर्ष कहते हैं। अर्थात् केवल सतोष प्रकट करना प्रीति है तथा विशिष्ट अथवा आनंददायक कार्य को हर्ष कहा जाता है।

7. भय (Fear)²

किसी कार्य, व्यक्ति, परिस्थिति अथवा मानस दुर्बलता से किसी व्यक्ति को होने वाली हानि की सम्भावना से उस व्यक्ति में भय उत्पन्न होता है। पुरुष के भय ग्रस्त होने का पता उसके विषाद युक्त मुख मण्डल से हो जाता है। भय के कारण उसके नेत्रों में कातरता उत्पन्न हो जाती है। वह अपने को सुरक्षित छिपाना चाहता है परंतु किसी का साथ भी नहीं छोड़ना चाहता है। भयग्रस्त व्यक्ति को अत्यधिक परसीना आता है, वाणी स्तम्भित हो जाती है एवं अनेक प्रकार के मानस गोरों की उत्पत्ति हो जाती है।

8. इर्ष्या (Jealousy)

जब व्यक्ति में हीन भावना उत्पन्न हो जाती है तो वह इर्ष्याद्वारा प्रवृत्ति का हो जाता है। फलस्वरूप मन में धीरे-धीरे रोष एवं विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है उसे इर्ष्या कहते हैं। इर्ष्या में व्यक्ति अंदर ही अंदर कृपित होता रहता है तथा अपने क्रोध एवं व्यग्रता को समय-समय पर व्यक्त करता है एवं अन्ततः अनेक प्रकार की मानस व्याधियों से घिर जाता है।

9. श्रद्धा (Devotion)³

किसी वस्तु अथवा व्यक्ति को देखकर उसके प्रति हृदय में अनुराग की भावना उत्पन्न होना ही श्रद्धा है। यह अनुराग अथवा श्रद्धा किसी के भी प्रति हो सकती है। श्रद्धा के अंगति किसी वस्तु विशेष की प्रति की इच्छा नहीं होकर भक्ति भावना अथवा आदर एवं सम्मान देने की इच्छा होती है, यही श्रद्धा है। श्रद्धा से मानस स्वास्थ्य उत्पन्न होता है एवं सत्त्व गुण की वृद्धि होती है।

10. स्मृति (Recollection)⁴

पूर्व काल में दृष्ट शुत अथवा अनुराग की भावना उत्पन्न होना ही स्मृति कहलाती है। यह अनुराग अथवा श्रद्धा किसी के भी उत्पत्ति नहीं होती है जैसे यह शाश्वत सत्य है कि जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी होती है। इस यथार्थ का ज्ञान होने पर दुःख नहीं होता है।

स्मृति के कारण¹

(i) निमित्त से: जैसे कारण को देखकर कार्य का स्मरण होना

- (ii) रूप ग्रहण से
- (iii) सादृश्यता से
- (iv) विपरीत वस्तु को देखने से
- (v) मन को स्मरण करने योग्य विषयों में लाने से
- (vi) अध्यास से
- (vii) ज्ञान योग से
- (viii) मुने हुए विषयों को पुनः मुनने से स्मृति उत्पन्न होती है।

स्मृति में विकृति होने से मानव मस्तिष्क अत्यधिक प्रभावित होता है तथा अनेक रूप रखना ही धैर्य कहलाता है। मानस स्वास्थ्य को बनाये रखने में धैर्य की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। धैर्य धारण करने से व्यक्ति क्रोध, शोक, दीनता, विषाद आदि मनोविकारों से संघर्ष में विजयी होता है एवं जीवन को विषम परिस्थितियों से 'बाहर ले आने में सफल रहता है।

11. धैर्य (Tolerance)²

दुःख एवं विषाद युक्त विपरीत परिस्थितियों में अपने मानसिक संतुलन को बनाये रखना ही धैर्य कहलाता है। मानस स्वास्थ्य को बनाये रखने में धैर्य की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। धैर्य धारण करने से व्यक्ति क्रोध, शोक, दीनता, विषाद आदि मनोविकारों से संघर्ष में विजयी होता है एवं जीवन को विषम परिस्थितियों से 'बाहर ले आने में सफल रहता है।

12. हर्ष (Joy)³

मानस स्वास्थ्य को और औधिक समुन्नत करने के लिए हर्ष अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। हर्ष का ज्ञान व्यक्ति के आभासण्डल से ही हो जाता है। हर्षित व्यक्ति का मुखमण्डल प्रकृतिलिंग, उल्लासपूर्ण एवं सदैव प्रसन्नचित रहता है। हर्षित व्यक्ति गृह्णीत, गीत, संगीत, वाद्य इत्यादि क्रियाओं में संलग्न तथा अत्यंत उत्साह से अपने कार्यों में प्रवृत्त होता है। व्यक्ति में सत्त्व गुण की वृद्धि हो जाती है तथा उसके मानस विकारों में कमी आती है एवं मस्तिष्क में अच्छे भावों का संचार होता है।

13. भ्राति (Confusion)

मिथ्या ज्ञान को भ्राति कहते हैं। विचार शून्यता अथवा भाव शून्यता के कारण गोणी के मन में कोई गलत अत्यधिक स्थानित हो जाती है जिसके कलस्वरूप उसे सदैव हानि पहुंचने का भय बना रहता है। वह मित्र को भी सृज समझने लगता है। उसका अपने स्वजनों पर से भी विश्वास उठ जाता है। यह एक अत्यंत गम्भीर मानस विकार है जिसमें आचार्य चरक ने स्मृति के 8 कारण बताये हैं जो निम्न प्रकार हैं—

1. भ्राति तोषण (च.वि. 4/8)
2. भय विषादेन (च.वि. 4/8)
3. अश्वामधिप्रायोग (च.वि. 4/8)
4. स्मृति स्मरणेन (च.वि. 4/8)

रोगों को महत्वपूर्ण चिकित्सकीय सलाह की आवश्यकता होती है। भ्रांति में रोगी के मन की पिथ्या अवधारणा को समाप्त करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है।

14. शील (Temperament)

शील का तात्पर्य स्वभाव से होता है। स्वभाव भी एक मानस भाव है तथा यह उस व्यक्ति की प्रकृति एवं आस-गास के वातावरण तथा संस्कार पर निर्भर करता है। शील की व्यक्तता अनुरुगा के रूप में सहज स्वरूप में होती है। शील अथवा स्वभाव के कारण ही व्यक्ति स्वप्रेरित होकर अचरण करता है। व्यक्ति अपने स्वभाव के कारण ही किसी से प्रेम अथवा द्वेष करता है तथा स्वयं का नीति निर्धारण करता है।

15. शोच (Physical and Mental Purification of body)

शोच का तात्पर्य शुद्धि से होता है। यह शुद्धि शारीरिक एवं मानसिक होती है। अतः जीवन के शारीरिक एवं मानसिक क्रेत्र में शुद्धता का अभ्यास करना शोच कहलाता है। शरीर, वस्त्र, आवास आदि को शुद्ध करना बाह्य शुद्धि की श्रेणी में आता है। इसी प्रकार अन्न, धन, आदि पवित्र वस्तुओं को प्राप्त कर शुद्ध भोजन आदि करना तथा सबके साथ समृद्धि व्यवहार करना भी बाह्य शुद्धि की श्रेणी में आता है। जप, तप, वैराग्य आदि सुन्दर विचारों के द्वारा राग, द्वेष, ईर्ष्या, शोक, क्रोध आदि मानस भावों को नष्ट करना आचारंतर शोच कहलाता है। अयुर्वेद में बाह्य शुद्धि के लिए अंग प्रक्षालन, स्नान, दन्तधारन, कवल ग्रह, गण्डूष, आदि कर्म बताये गये हैं। आचारंतर शुद्धि हेतु धीर्घ, स्मृति, समाधि, प्राणयाम एवं योग इत्यादि का व्यवहार करना चाहिए। शोच के समृद्धि पालन करने से मानस विकार उत्तन नहीं होते हैं तथा अनेक प्रकार के मानस रोग शोरे-धोरे शांत हो जाते हैं।

VIII. पूर्वजन्म कृत कर्म एवं मानस रोग

अयुर्वेद में कर्म तथा पुनर्जन्म की अवधारणा को मान्यता प्राप्त है। पूर्व जन्म में किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्म इस जन्म में अनेक रोगों का कारण बनते हैं। पूर्वजन्म कृत रोगों में मानस रोगों का अधिक महत्व है एवं इनमें देवव्याप्राश्य चिकित्सा का निर्देश किया गया है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी कुछ मानस रोगों को आनुवंशिक मानता है जो प्रायः असाध्य होते हैं।

IX. मानस रोगों के अन्य प्रमुख कारण

मानस रोगों के अधिकांश महत्वपूर्ण कारणों का शास्त्रीय वर्णन ऊपर किया जा चुका है। परंतु निम्नलिखित कारण भी मानस रोगों की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं-

- वातावरण का मानस स्वास्थ्य पर प्रभाव

शिशु के जन्म से लेकर उसके वयस्क होने तक उसके आस-पास के वातावरण का उस पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वह जिस प्रकार के वातावरण, परिवेश तथा सहयोगियों के

बीच रहता है, धीरे-धीरे उनके विचारों से प्रभावित होता है।

- रुचि के अनुसार कार्य नहीं मिलना।
- व्यक्तिगत कठिनाईयां एवं असफलताएँ।
- व्यक्तिगत संवेदनशील मनःस्थिति वाला व्यक्तित्व होना।
- अत्यधिक संवेदनशील कार्य स्थल का मनोनुकूल नहीं होना।
- कार्य का अत्यधिक दबाव एवं कार्य स्थल का मनोनुकूल नहीं होना।
- विभिन्न प्रकार की अंतःस्थलीय व्यक्तियों की विकृतियां
- सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं आधिकारिक कारण।
- व्यक्तिगत कारण जैसे उच्च शिक्षा प्राप्ति के बाद भी उचित रोजगार का अभाव, श्रम की अधिकता, आधात इत्यादि कारणों से भी मानस विकार उत्पन्न होते हैं।
- मानस रोगों के सामान्य लक्षण
- मानस रोगों का सुव्यवस्थित लक्षण सहिता ग्रंथों में नहीं मिलता है। वस्तुतः आयुर्वेद में मानस रोगों के अंतर्गत उमाद, अपमाद एवं अतत्वाभिनिवेश का ही विस्तृत वर्णन मिलता है एवं अन्य मानस भावों का वर्णन सहिताओं में यत्र तत्र विकीर्ण रूप में ही मिलता है। मानस रोगों में सामान्य रूप से मिलते वाले लक्षण निम्न प्रकार हैं-
- भय, मानस रोगी प्रायः अत्यंत भय ग्रस्त रहता है।
- सन्त्रास अथवा चृटन
- असाहिष्यता
- मनःसोभ
- अव्यवस्थित चित्तता-अनियन्त्रित वाणी का प्रयोग
- अनेक प्रकार की भावभंगमाओं का प्रदर्शन करना। जैसे अनवरत हास-परिहास, नृत्य, वादन, गायन, रुदन, चिल्लना इत्यादि अनेक प्रकार के अव्यक्तित्व कार्य व्यवहार करना।
- अनेक प्रकार के मानस भावों की उत्पत्ति जैसे शोक, क्रोध, ईर्ष्या, मान, द्वेष, काम, लोभ, मोह, मद, चिन्ता, उड़ाग इत्यादि
- भाव विप्रश्ना जैसे मनोविप्रश्ना, बुद्धि विप्रश्ना, संज्ञाविप्रश्ना, ज्ञान विप्रश्ना, स्मृति विप्रश्ना, भक्ति विप्रश्ना, शोल विप्रश्ना, चेष्टा विप्रश्ना एवं आचार विप्रश्ना इत्यादि अनेक प्रकार के मनोविकार उत्पन्न होते हैं।
- जीवन से पलायन की भावना
- प्रभ्रम
- अनेक प्रकार की मानस विकृतियों की उत्पत्ति

1. शोलमनुशीलनेन। (च.वि. 4/8)

1. उमाद पुनर्मनेबुद्धिंसंज्ञानस्तिमिकाशोलचेष्टाचारविश्रम विद्यात्। (च.ति. 7/5)

मानसरोगों के सामान्य चिकित्सा सिद्धांत

आचार्य सुश्रृत ने दोष, धूति, मल, अग्नि, आत्मा तथा इन्द्रियों की प्रसन्नता को स्वास्थ्य एवं आरोग्य का मूल कहा है। आयुर्वेद में दोषों की साम्यावस्था को आरोग्य तथा दोष वैषम्यता को व्याधि माना गया है। तीन शारीरिक दोष, दो मानस दोष, सात धूतिओं एवं मलों की साम्यावस्था आरोग्य अथवा सुख है एवं इनकी विषमावस्था दुःख अथवा व्याधि है। इस प्रकार चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य धूतिओं में साम्यावस्था लाना है।

मानस एवं शारीरिक व्याधियों की चिकित्सा को तीन वर्गों के अंतर्गत वर्णित किया गया है जो निम्न प्रकार हैं—

1. दैव व्याप्रश्रय चिकित्सा
2. युक्त व्याप्रश्रय चिकित्सा
3. सत्त्वावलज्जय चिकित्सा

दैव व्याप्रश्रय चिकित्सा एक प्राचीन चिकित्सा पद्धति है। अथर्ववेद एवं कौशिक सूत्र दैव व्याप्रश्रय चिकित्सा के मुख्य स्रोत हैं। आचार्य चरक के अनुसार पूर्वजन्म कृत कर्मों से ही भाग्य अथवा दैव का निर्माण होता है। वर्तमान जन्म के कर्मों को 'पुरुषकर' कहते हैं। दैव एवं पुरुषकर कर्मों पर ही जीवन आधारित है। आचार्य चरक के अनुसार दैवकृत व्याधियों को पुरुषकर कर्मों से कम किया जा सकता है।

दैव व्याप्रश्रय चिकित्सा की विधियां निम्न प्रकार हैं—

- (i) इश्वर के मंत्र का पुनः पुनः जप करना
- (ii) मंगल एवं कल्याणकरी पूजा पाठ करना
- (iii) व्याधिनाशक औषधियों एवं मणियों को धारण करना
- (iv) देवताओं को उनके प्रिय पदार्थ का भोग लगाना एवं बैति चढ़ाना
- (v) घृत, तैल, यव, शर्करा एवं शुष्क फलों जैसे नारियल इत्यादि की आहुति देना जिससे वातावरण शुद्ध एवं पवित्र हो जाता है
- (vi) नियम अर्थात् पातञ्जल योग सूत्र में वर्णित शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान का समुचित रूप में पालन करना
- (vii) प्रायश्चित करना

1. समदोष: समानिन्द्रिय समस्थानुमतिक्रियः।
प्रसन्नतादेविद्यमना: स्वस्य इत्यभिधीयते॥ (सु.सू. 15/48)

2. विविधप्रौष्ठधिमति-दैवव्याप्रश्रयं, युक्तव्याप्रश्रयं, सत्त्वावलज्जयश्च॥ (च.सू. 11/54)
देवात्मकृतं विद्यात् कर्म यत् यौवैदेविहक्यम्। (च.वि. 3/30)

3. तत् दैवव्याप्रश्रय-मन्त्रोषधिमणिमङ्गलबलयुपहरः-
हेमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्रस्यनप्रणिधिपतामनादि॥ (च.सू. 11/54)

(viii) उपवास

(ix) स्वस्त्रस्यन (वैदेव कर्म का समुचित पालन)

(x) प्रणिपात (देवता, युरु, द्विज, गौ आदि पूज्यों के सामने शाष्ट्रां प्रणाम तथा निन्म्रता का अवहार करना)

(xi) तीर्थ गमन अर्थात् विभिन्न धार्मिक स्थलों का भ्रमण करना एवं पूज्य अर्जित करना

2. युक्त व्याप्रश्रय चिकित्सा

युक्त व्याप्रश्रय चिकित्सा वातादि दोषों के प्रतिकार के लिए प्रयुक्त की जाती है। इसके अंतर्गत दो प्रकार की योजना के अनुसार चिकित्सा करते हैं जो निम्नलिखित हैं—

- (i) आहार का निर्धारण।
- (ii) औषधि की योजना तैयार कर प्रयुक्त करना।

युक्त व्याप्रश्रय चिकित्सा मानस एवं शारीरिक व्याधियों को दूर करने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। युक्त व्याप्रश्रय चिकित्सा के अंतर्गत तीन तरह के कर्मों का प्रयोग किया जाता है—

- (i) अंतः परिमार्जन
- (ii) बहिः परिमार्जन
- (iii) शस्त्र प्रणिधन

(i) अंतः परिमार्जन चिकित्सा

अंतः परिमार्जन चिकित्सा के अंतर्गत दो प्रकार से चिकित्सा की जाती है जो निम्नलिखित हैं—

- (अ) संशोधन चिकित्सा
- (ब) संरक्षण चिकित्सा

(अ) संशोधन चिकित्सा

संशोधन चिकित्सा के अंतर्गत मुख्यतः पचकर्म का प्रयोग किया जाता है। आवश्यकता के अनुसार वर्मन, विरेचन, अनुवासन बर्स्त, आस्थापन बर्स्त, शिरोविरेचन (नस्य) का युक्त पूर्वक प्रयोग किया जाता है। वात दोष का प्रकोप होने पर सर्व प्रथम स्नेहन का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार स्रोतावरोध की स्थिति में स्नेहन के साथ मृदु संशोधन भी प्रयुक्त किया जाना चाहिए। कफक एवं पित्तज दोषों की प्रबलता की स्थिति में वमन एवं विरेचन

1. युक्तव्याप्रश्रय-युनराहारोष्य इत्याणां योजना। (च.सू. 11/54)

2. शरीरोषधकोषे खटु शरीरमेवात्प्रत्य प्रायोज्ज्वलव्याप्तिर्विषयमध्यमिच्छन्ति-अंतःपरिमार्जनं, बहिः परिमार्जनं, शस्त्रप्रणिधनंचेति। (च.सू. 11/55)

का प्रयोग करना चाहिए। तदुपरात्र तिरुह, अनुवासन अथवा नस्य कर्म का यथोचित प्रयोग करना चाहिये। यदि आवश्यकता हो तो शिरोधारा, शिरोबर्सि इत्यादि केरलीय पंचकर्म विधियों का प्रयोग भी मानस सोग चिकित्सा में सफलता पूर्वक किया जा सकता है।

(ब) संशमन चिकित्सा

मानस रोगों में संशमन चिकित्सा के रूप में निम्न औषध योगों का प्रयोग युक्त पूर्वक करना चाहिए—

1. रस/धूस/पिण्डी

मात्रा	250 मि.ग्रा.	अनुपान	(i) हिंवादि घृत (ii) कल्याणक घृत (iii) महाकल्याणक घृत (iv) महापौष्णिष्ठिक घृत (v) ब्राह्मी घृत (vi) अल्प चैतस घृत	उष्णोदक : गोधृत, गोधृम, हिंग, शुण्ठि उष्णोदक : गोधृत, इन्द्रवारुणी, त्रिफला उष्णोदक : त्रिफला, इन्द्रवारुणी, गोदुध उष्णोदक : जटगंसी, हरीतकी, कौच उष्णोदक : ब्राह्मी, गोधृत
मात्रा	10-20 ग्राम	अनुपान	(i) चूबन्ग्राश अवलेह (ii) ब्रह्म रसायन (iii) आमलक्यादि अवलेह	उष्णोदक : कोजा जल या द्रुग्ध उष्णोदक : दशमूल, आमलकी, बृत उष्णोदक : हरीतकी, आमलकी, दशमूल उष्णोदक : आमलकी
मात्रा	10-20 ग्राम	अनुपान	(i) कपिकच्छु पाक (ii) एकल औषधियाँ (iii) कुष्णांड (iv) ज्योतिष्मती	उष्णोदक : कोजा जल या द्रुग्ध उष्णोदक : शंखपुष्णी उष्णोदक : आमलकी उष्णोदक : ब्राह्मी उष्णोदक : वचा उष्णोदक : एण्ड उष्णोदक : जटामांसी उष्णोदक : वला इत्यादि
मात्रा	3-6 ग्राम	अनुपान	(v) अश्वगंधा (i) वचा चूर्ण (ii) अश्वगंधा चूर्ण (iii) जटामांसी चूर्ण (iv) शंखपुष्णी चूर्ण (v) ज्योतिष्मती चूर्ण	उपरोक्त औषधियों की युक्तियुक्त योजना से मानस रोगों में अन्तर्वर्त लाभ मिलता है। मानस रोग चिकित्सा में निरामिष, मद्य रहित आहार द्रव्य एवं मनोनुकूल, ख्वच्छ, मनोरम, रमणीय स्थलों पर विहार करना चाहिये।
मात्रा	250-500 मिग्रा.	अनुपान	(ii) बहिः परिमार्जन चिकित्सा अनुपान	बहिः परिमार्जन चिकित्सा के अंतर्गत अनेक प्रकार के औषधियुक्त तैल एवं अन्य औषध योगों का वाह्य प्रयोग किया जाता है। वाह्य परिमार्जन के अंतर्गत अभ्यंग, प्रलेप, उद्वर्तन, उद्धर्षण, अवगाहन, स्वेदन, आदि क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है। अनेक प्रकार के अगाद का प्रयोग भी नस्य, अज्जन, स्तान एवं अभ्यंग के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसी प्रकार अनेक प्रकार के धूमवर्ती इत्यादि का प्रयोग भी किया जाता है।
मात्रा	10-20 मिली.	अनुपान	(i) आरोग्यवर्धनी बटी (ii) ब्राह्मी बटी	मानस रोगों में बहिः परिमार्जन चिकित्सा के अंतर्गत व्यायाम का प्रयोग भी कराया जा सकता है। मुख्यतः अवसद पांडित रोगियों में व्यायाम, प्राणायाम, ध्यान से आशातीत
मात्रा	10-20 मिली.	अनुपान	4. घृत/तैल योग	

सफलता प्राप्त होती है।

(iii) शस्त्र प्रणिधान

अनेक मानस रोगों में छेदन, भेदन, व्यथन, दारण, पाटन, प्रच्छन, सीबन एवं एषण इत्यादि कर्मों के प्रयोग का शास्त्रीय निर्देश प्राप्त होता है। जैसे उमाद रोग में सीमन्त की शिरा का बेधन, अपस्मार में हुनुसंधि के मध्य की शिरा का बेधन इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है।

3. सत्त्वावजय चिकित्सा

सत्त्वावजय मुख्यतः मानस रोगों में प्रयुक्त होने वाली एक विशेष चिकित्सा विधि है जिसमें रोगी के मन की अहितकर विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इच्छा, द्वेष, क्रोध एवं मोह इत्यादि) से हटाकर हितकर कार्यों के प्रति आकृष्ट किया जाता है। वस्तुतः मानस रोगों की चिकित्सा में धी, धैर्य, स्मृति एवं समाधि इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। सत्त्वावजय चिकित्सा में प्रयुक्त कुछ प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं—

1. धी, धैर्य, स्मृति, ज्ञान, विज्ञान आदि द्वारा सत्त्वावजय चिकित्सा।
 2. मनोनियं एवं अशोष्यं योग जैसे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का समुचित एवं व्यवहारिक प्रयोग।
 3. समुचित असार विधि विशेषयतन एवं द्वादशासन के निर्धारित विधियों के अनुसार आहार ग्रहण करना।
 4. समाज में एक समान दृष्टि रखते हुए आर्तजनों की सेवा करना, उनके प्रति करुणा की भावना रखना एवं उमेष्क्षत लोगों में प्रसन्नता एवं दया की भावना का प्रसार करना।
 5. किसी का अपमान नहीं करते हुऐ सम्प्रक दृष्टि से सभी के प्रति सद्व्यवहार करना।
 6. किसी व्यक्ति को किसी प्रियजन अथवा प्रिय वस्तु की हानि से शोध होकर व्याधि उत्पन्न हो जाने पर उसे अभिलाषित वस्तु अथवा आश्वासन देकर उनकी सत्त्वावजय चिकित्सा करनी चाहिए।
 7. मांत आचरण, उत्साह, श्वास, दया, मितभाषित, अतिथि पूजन, धर्मत्या एवं बहुजनहिताय, बहुजन सुखाय की भावना के द्वारा सत्त्वावजय चिकित्सा करनी चाहिए।
- इस प्रकार उपरोक्त चिकित्सा विधियों की सहायता से समस्त मानस रोगों की युक्तियुक्त चिकित्सा की जा सकती है।

अध्याय-10

उमाद, अपस्मार एवं अतत्वाभिनिवेश

(1) उमाद रोग

(Psychosis)

सोतस परिचय

संहिता ग्रंथों में उमाद रोग का सबसे अधिक, सुव्यवसित तथा विस्तृत वर्णन मिलता है। आचार्य चरक ने वर्णन किया है कि हृदय में ही इन्द्रियां, जनके विषय, आत्मा, मन एवं मन के विषय अवस्थित रहते हैं। मन की समस्त क्रियाओं का नियंत्रण वात के द्वारा ही सम्भव होता है। वात की क्रिया एवं कार्य क्षेत्र समस्त शरीर है। वात दोष की प्रेरणा से ही मन का इन्द्रियों से संबंध होता है एवं इन्द्रियों अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने में समर्थ होती है। आचार्य सुश्रुत के अनुसार मद, मूर्च्छा और सन्ध्यास आदि रोगों में संजावाही नाड़ियों के दोषों से आवृत हो जाने पर मनुष्य का विवेक नष्ट हो जाता है और वह पृथ्वी पर गिर जाता है²।

आचार्य चरक ने इस विषय में साझ किया है कि रस, रक्त तथा चेतनावाही स्रोतों में अवरोध के कारण चित्त के दुर्बल स्थान को वात दोष आकृत करके मन को शुद्ध कर संज्ञा का सम्मोहन कर देता है। इस प्रकार यह साझ है कि अनुरुद्देश्य सहिताओं में संज्ञावह स्रोतों का संकेत रूप में उल्लेख मिलता है। मनोवाही स्रोतों का अलगा से विस्तृत वर्णन संहिता ग्रंथों में प्राप्त नहीं होता है, केवल यत्र तत्र विकीर्ण रूप में इस विषय का उल्लेख मिलता है। मनोवह अथवा संज्ञावह स्रोतों के संदर्भ में आचार्य चक्रपाणि का उद्धरण अत्यंत महत्वपूर्ण है³। आचार्य चक्रपाणि के अनुसार यद्यपि मनोवह स्रोतों अलगा से

1. षड्ङ्रपदं विज्ञानमित्रायण्यर्थपञ्चकम्।
आत्मा च सुग्रन्थतिश्चित्तं च हृदि संक्रितम्॥ (च.सू. 30/4)
2. संज्ञावहात्मा नाडेषु गिहितास्त्वतिलादिभिः।
तमोऽभ्युत्ति सहस्रा सुखद्वात्प्रव्यपोहृतः॥

सुखद्वातः ख व्यापोहृत नरः पतीति काष्ठवत्।
महो पूर्वेति तोः॥ (सु.उ. 46/6-7)

1. सत्त्वावजयः उत्तरहितेभ्योऽभ्युत्तिः॥ (च.सू. 11/54)

2. संज्ञावहात्मा नाडेषु गिहितास्त्वतिलादिभिः।
तमोऽभ्युत्ति सहस्रा सुखद्वात्प्रव्यपोहृतः॥
इत्याधिनात सर्वशरीर स्रोतांसि गृह्यन्ते विशेषेण तु हृदयाश्रितलाभ्यनसलदाश्रया दर्शा धमन्तो
मनोवहा अभिधीयते॥ (च.सू. 57/41 पर चक्रपाणि)

बर्णित नहीं किए गये हैं फिर भी मन का शरीर ही लोत या मारा है। इस कथन से शरीर के सभी लोतसों का ग्रहण हो जाता है, विशेषकर मन के हृदय में आश्रित होने से हृदय से निकलने वाली दश धमनियों को मनोबंह लोतस के रूप में समझा जा सकता है। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि शरीर के विनाशकाल की सूचना धमनियों के माध्यम से ही प्राप्त होती है। हृदय को ही चेताना का स्थान, औज एवं प्राण का स्थान तथा चैतन्यता का आश्रम स्थल कहा गया है। इस प्रकार शरीर के समस्त लोतों में हृदयस्थ धमनियों को ही मनोबंह लोतस मानना उचित प्रतीत होता है। उन्माद वस्तुतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानस व्याधि है जो ग्राप: अधिकतर आधुनिक मानस भावों एवं व्याधियों को ही व्यक्त करती है। अतः समस्त मानस रोगों के संदर्भ में हृदयस्थ मनोबंह लोतस की दुष्टि मानना युक्त संगत प्रतीत होता है।

च्याधि परिचय

सभी प्रकार के मानस रोगों में उन्माद सबसे प्रधान व्याधि है। उन्माद की तुलना आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित मानस रोग Psychosis से की जाती है। उन्माद के अंतर्गत ही आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित अधिकार्थ मानस रोगों का समावेश किया जाता है। आचार्य चरक ने निदान स्थान सातवें अध्याय में निम्नलिखित आठ प्रमुख मानस भावों के विभ्रम को 'उन्माद' संज्ञा से सम्बोधित किया है¹—

1. मन (Mind)
2. बुद्धि (Wisdom / Intelligence)
3. संज्ञाज्ञान (Orientation)
4. स्मृति (Memory)
5. भक्ति (Devotion)
6. शील (Habits and Temperament)
7. चेष्टा (Psychomotor activities)
8. आचार (Conduct)

उपरोक्त आठ मानसिक भावों की विकृति के फलस्वरूप ही उन्माद एवं अन्य मानस विकारों की उत्पत्ति होती है।

प्रमुख संदर्भ ग्रन्थ

1. चरक संहिता निदान स्थान - अध्याय 7
2. चरक संहिता चिकित्सा स्थान - अध्याय 9
3. सुश्रुत संहिता उत्तर स्थान - अध्याय 60
4. सुश्रुत संहिता उत्तर स्थान - अध्याय 62
5. अष्टांग हृदय उत्तर स्थान - अध्याय 06

1. उन्माद पुनर्मोद्दिसंज्ञानस्मृतिभिक्षीलचेषाचारविभ्रमं विद्यात्। (च.नि. 7/5)

2. मदचन्त्युद्दता देषा यस्माद्न्मार्गमाप्तिः। (भा.प्र. पद्यम छण्ड 22/1)

3. विश्वदुष्टशूचिभोजनानि प्रथर्णं देवगुरुद्विजानम्। उन्मादहेतुर्भयर्षपूर्वो मनोउभियो विषमाच चेष्टा:॥ (च.चि. 9/4)

4. चौरंसिन्द्रपुर्वेतरस्तिभृतथाऽन्यविकासितस्य धनवाचारविक्षयाद्वा। गांड क्षते मनसि च प्रियया रिंसोजयित चेतकतरो मनसो विकारः॥ (सु.उ. 62/12)

उन्माद पुनर्मोद्दिसंज्ञानस्मृतिभिक्षीलचेषाचारविभ्रमं विद्यात्। (च.नि. 7/5)

6. माधव निदान - अध्याय 20
7. भाव प्रकाश मध्यम खण्ड - अध्याय 22
- निरुक्ति/व्युत्पत्ति उद् (उर्ध्व) उपसाम युक्त 'मद' धातु से 'च्छ' प्रत्यय-करने पर उन्माद शब्द निर्मित होता है।

वस्तुतः उन्माद में दोष उन्मार्गामी हो जाते हैं। उन्माद में मन पर मध्य के प्रभाव के समान प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप मनोविकारों की उत्पत्ति होती है। परिभाषा उन्माद को परिभाषित करते हुए आचार्य चरक ने स्पष्ट किया है कि मन, बुद्धि, संज्ञा, ज्ञान, भक्ति, शील, चेष्टा एवं आचार के विभ्रम को उन्माद कहते हैं। अर्थात् मनः विभ्रम की अवस्था ही उन्माद है। इससे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि दूषित एवं वृद्ध वात, पित एवं कफ दोष अपने-अपने यारों को छोड़कर अन्य यारों में आप्रित होकर चित को विकृति कर देते हैं, इसलिए इसे उन्माद रोग कहते हैं। प्रमुख निदान उन्माद रोग के प्रमुख निदानों को निम्न वर्गों में विभक्त किया जा सकता है²⁻⁴—

1. आहार जन्य निदान
 - (i) विरुद्ध आहार का सेवन।
 - (ii) दृष्टित आहार अर्थात् धूतूर बीज आदि भिन्नता आहार सेवन।
 - (iii) अपवित्र आहार सेवन।
2. विहार जन्य निदान
 - (i) विषम चेष्टा करना।
 - (ii) विषम ठंग से उठना, बैठना, चलना, घूमना आदि।
3. व्यवहार जन्य निदान
 - (i) देवता, गुरुजन एवं श्रेष्ठ व्यक्तियों का अपमान करना।
 - (ii) अत्यधिक भय, हर्ष, काम, क्रोध, लोभ, योग इत्यादि।
 - (iii) मनोविकृति।

1. उन्माद पुनर्मोद्दिसंज्ञानस्मृतिभिक्षीलचेषाचारविभ्रमं विद्यात्॥ (च.नि. 7/5)

2. मदचन्त्युद्दता देषा यस्माद्न्मार्गमाप्तिः। (भा.प्र. पद्यम छण्ड 22/1)

3. विश्वदुष्टशूचिभोजनानि प्रथर्णं देवगुरुद्विजानम्। उन्मादहेतुर्भयर्षपूर्वो मनोउभियो विषमाच चेष्टा:॥ (च.चि. 9/4)

4. चौरंसिन्द्रपुर्वेतरस्तिभृतथाऽन्यविकासितस्य धनवाचारविक्षयाद्वा। गांड क्षते मनसि च प्रियया रिंसोजयित चेतकतरो मनसो विकारः॥ (सु.उ. 62/12)

उन्माद, अपस्मार एवं अतत्वाभिनिवेश

- (iv) प्रबल कमवासन।
 (v) धन, परिवार का नष्ट हो जाना।
- सम्प्राप्ति'**
- अत्वर सत्त्व अथवा अत्य सत्त्व व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार के निदान सेवन करने से प्रकृष्टित अथवा प्रवृद्ध वातादि शारीरिक दोष एवं रज तथा तम मानस दोष बुद्धि के निवास स्थान हृदय अथवा मास्तिष्क को दूषित करके एवं मनोवाही अथवा संशालाही शोतसों में व्यास होकर चित्त को मोह युक्त अथवा विभ्रम युक्त बना देते हैं, जिसके फलस्वरूप उन्माद रोग की उत्पत्ति होती है।

सम्प्राप्ति चक्र

अत्वर सत्त्व व्यक्ति द्वारा विविध प्रकार का निदान सेवन



वातादि शारीरिक दोष एवं रज, तम, मानस दोष प्रकोप



प्रकृष्टित दोषों द्वारा हृदय (मास्तिष्क) की उष्णि



मनोविभ्रम एवं प्रमोह की उत्पत्ति



उन्माद रोग

(Psychosis)

सम्प्राप्ति घटक
 दोष
 : वात प्रधान शारीरिक दोष (त्रिदोष) एवं रज, तम,

मानस दोष

दूष्य
 अधिष्ठान
 स्रोतस

: मनस एवं अष्ट मनोभाव

: हृदय (मास्तिष्क)

: मनोवह (संज्ञावह)

: विषमानि अथवा त्विकृत आग्नि

व्याधि स्वभाव

: दारुण

साध्यासाध्यता

: कृच्छ्रसाध्य / असाध्य

भेद

आचार्य चरक ने उन्माद के पाँच भेद तथा आचार्य सुश्रुत ने उन्माद के छः भेद

वर्णित किए हैं।

1. तैत्तिर्यस्त्रय मला: प्रदुषा बुद्धिर्विद्वां हृदय प्रदृश।
 स्त्रोतांस्त्राभिष्ठय मनोवहनि प्रमोहयन्त्राय नरस्य चेतः ॥ (च.च. 9/5)

आचार्य चरक मतानुसार उन्माद के भेद

1. वाताज उन्माद
2. पितज उन्माद
3. कफज उन्माद
4. सनिपातज उन्माद
5. आगानुज अथवा भूतोन्माद

आचार्य सुश्रुत मतानुसार उन्माद के भेद²

1. वाताज उन्माद
 2. पितज उन्माद
 3. कफज उन्माद
 4. सनिपातज उन्माद
 5. मानस उन्माद
 6. विषज उन्माद
- उपरोक्त उन्माद के भेदों को पुनः निम्न दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. निज उन्माद**(i) वाताज उन्माद****(ii) कफज उन्माद****(iii) आगानुज उन्माद****(iv) मानस उन्माद****(v) विषज उन्माद****(vi) सनिपातज उन्माद****2. द्वितीयक अथवा परतंत्र उन्माद (Secondary Psychosis)****(ii) विषज उन्माद****(iii) सनिपातज उन्माद****(iv) मानस उन्माद****(v) पितज उन्माद****(vi) आगानुज उन्माद**

पुनः उन्माद को उत्पत्ति के आधार पर निम्न दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—
 1. प्राथमिक अथवा स्वतंत्र उन्माद (Primary Psychosis)
 2. द्वितीयक अथवा परतंत्र उन्माद (Secondary Psychosis)

संहिता ग्रंथों में अनेक स्थलों पर यह उल्लेख मिलता है कि शारीरिक व्याधियां मानस व्याधियों में तथा मानस व्याधियां शारीरिक व्याधियों के रूप में परिवर्तित होती रहती हैं। इसी आधार पर स्वतंत्र तथा परतंत्र उन्माद की अवधारणा की गयी है। मानस व्याधियों से उन्माद को स्वतंत्र अथवा प्राथमिक उन्माद तथा शारीरिक दोषों एवं विष इत्यादि से उत्पन्न उन्माद को परतंत्र अथवा द्वितीयक उन्माद माना जा सकता है।

पूर्वरूप

उन्माद रोग के निम्न पूर्वरूप शास्त्रों में वर्णित किए गये हैं—

1. समुद्रम बुद्धिमः स्त्री नामुन्दमानुजीतोथमाहः।
 तस्मोद्वं पञ्चविष्यं पृथक् तु वश्यामि लिङ्गानि विकिस्तिं च ॥ (च.च. 9/8)
 2. एकेकार्या: समस्तेष्व दोषैरत्यर्थमूल्किते ।
 मानसेन च दुखेन स पञ्चविष्य उच्चते ॥
 विषद्वक्ति षष्ठ्यरेत् तथास्त्रं तत्र भेदज्ञम् ।
 3. स चाप्रवृद्धतरूपो मदसंज्ञा विभृति च ॥ (मु.ड. 62/4-5)
 समुद्रम बुद्धिः मः स्त्री नामुन्दमानुजीतोथमाहः ॥ (च.च. 9/8)
 4. तस्येमानि पूर्वरूपाणि, तद्यथा-शिरसः शून्यता,
 चक्षुषोरुकुलता, स्वनः कण्योः,
- सामावर्ते चक्षुषोरुकुलता विभृति ॥ (च.नि. 7/6)

1. सिर में शून्यता (Disturbed level of consciousness/concentration)
 2. नेत्रों में च्वाकुलता (Involuntary movements of eyes)
 3. कानों में शब्द सुनाई देना (Tinnitus)
 4. उच्छ्वास की अधिकता (Erructations / Belching)
 5. लालासाव (Excessive salivation)
 - भोजन ग्रहण की अनिच्छा (Anorexia)
 - अरोचक (Dyspepsia)
 - अविपाक (Indigestion)
 - हृदय (Decreased cardiac output)
 - अकारण ध्यान, मोह, आयास (अम) एवं घबराहट (Nervousness due to unknown reasons)
 - सतत रोम हर्ष (Continuous Horripilation)
 - बार-बार ज्वर (Recurrent fever)
 - चित भ्रांति (Confusion)
 - उदर्द (Urticaria)
 - आर्दित के समान मुखाकृति (Changes in facial expressions like facial paralysis)
 - स्वप्न में भ्रांत, चंचल, अस्थिर और निनिदि स्वरूप को बार-बार देखना
 - (Disturbing Dreams)
 - तेल निकालने वाले कोलहू पर चढ़े हुए के समान तथा वात कुण्डलिका (चक्रवात)में मंथन होने के समान अनुभूति करना (Unpleasant feelings)
 - दूषित जल में फूँकने के समान प्रतीति होना (Feeling of drowning in dirty water)
 - नेत्रों का टेढ़ा हो जाना (Deviation of angles of eyes)
 - चक्रर (Vertigo)
- उपरोक्त सभी उन्माद के पूर्वस्म दोषज (अर्थात् वातज, पित्तज, कफज एवं सत्रियातज) उन्माद के पूर्वस्म होते हैं ।
- ### सामान्य लक्षण
- उन्माद रोग के निम्न सामान्य लक्षण शास्त्रों में वर्णित हैं—
1. धी विभ्रम अर्थात् बुद्धि का विभ्रम (Confusion)

2. मन की चंचलता (Unstable mind)
 3. दृष्टि की अधीरता (Involuntary movement of eyes)
 4. असंबद्ध बाणी (Irrelevant talk)
 5. हृदय में शून्यता (Feeling of lack of emotions in the heart)
- ### उन्माद के भेदानुसार निदान एवं लक्षण
1. वातज उन्माद (Acute and Catatonic Schizophrenia)

प्रमुख निदान

वातज उन्माद के प्रमुख निदान निम्न प्रकार हैं—

1. रुक्ष आहार का निरंतर सेवन ।
2. अल्प मात्रा में आहार ग्रहण करना ।
3. अतिशीतल आहार ।
4. वर्मन एवं विरेचन का अतियोग होना ।
5. अत्यधिक धृति क्षय ।
6. निरंतर उपचास ।

सम्पादित

उपरोक्त निदानों के निरंतर सेवन करने से प्रकुपित वात दोष विंता इत्यादि कारणों से पहले से ही दूषित हृदय को और अधिक दूषित करके बुद्धि एवं स्मृति को नष्ट कर वातज उन्माद को उत्पन्न करता है ।

प्रमुख लक्षण²

1. वातज उन्माद ग्रस्त व्यक्ति अकारण ही हंसता है, मुस्कुराता है, तृत्य एवं गायन आदि करता है ।
 2. निष्ठयोजन, अनावश्यक एवं असम्बद्ध वातलाप करना ।
 3. अपने अंगों से विविध प्रकार की चेष्टाएं करना ।
 4. अकारण रोना ।
 5. शरीर का पर्षष (कठोर), कृश एवं अरुण वर्ण का होना ।
 6. आहार के जोर्ण होने के पश्चात वातज उन्माद के वेग में अत्यंत तीव्रता ।
- उपरोक्त लक्षण रोगी में मानसिक परिवर्तन को प्रदर्शित करते हैं । वातज उन्माद में हिंसा को प्रवृत्ति नहीं होती है ।

-
1. स्काल्पशीतलत्रिवित्रुक्षयोपवासेरनिलोऽतिवृद्धमः ।
 2. चित्तादिजुं दृद्यं प्रदृश्य बुद्धि स्मृति चाष्टपहन्ति शीघ्रम् ॥ (च.चि. 9/9)
 3. अथानहास्मितनृत्यागाङ्गविक्षेपणोदानानि ।
 - पारुषकाशयालृणवर्णतां जीर्णं बलं चानिलान्स्य रूपम् ॥ (च.चि. 9/10)

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार वातज उम्माद की तुलना Acute and Catastic Schizophrenia से कर सकते हैं।

2. पितज उम्माद (Mania)

प्रमुख निदान

पितज उम्माद के निदान निम्नलिखित होते हैं¹—

1. अजीर्णी।
2. कटु एवं अम्ल रस का अधिक सेवन।
3. विदाही एवं उष्ण भोजन का अत्यधिक सेवन।

सम्प्राप्ति¹

उपरोक्त निदान सेवन करने से संचित पित दोष प्रकृष्टि एवं वेगवान होकर अनात्मवान मनुष्य के हृदय (मन, मस्तिष्क) में आश्रित होकर हृदय को दूषित करते हुए पितज उम्माद को उत्पन्न करता है।

प्रमुख लक्षण²

पितज उम्माद के रोगी में निम्न लक्षण दृष्टि गोचर होते हैं—

1. अमर्ष (असहनशीलता) (Intolerance)
2. संरभ्य (नेत्रों में लालिमा) (Redness in eyes)
3. नन हो जाना (Exhibitionist)
4. संतर्जन एवं अभिद्रवण (लोगों को धमकाते हुए मारने के लिए दौड़ता है) (Runs after people as if to beat / kill them)
5. शरीर में अधिक उष्णता (Warm body)
6. रोष (Anger)
7. शीतल ऊँचाया, अब एवं जल की आकांक्षा (Desire for cold environment, foods and water)
8. शरीर का वर्ण पीत हो जाना (Yellow colouration of body)
9. आचार्य सुश्रुत ने पितज उम्माद में तुष्ण, स्वेद, अति आहार ग्रहण की प्रवृत्ति, अनिद्रा एवं दिन में लारा दर्शन इत्यादि लक्षण भी वर्णित किए हैं³।

उम्माद, अपस्मार एवं अत्वाधिनिवेश

ऐतिक उम्माद में हिंसक प्रवृत्ति मिलती है। इसकी तुलना आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Mania रोग से कर सकते हैं।

3. कफज उम्माद (Psychotic Depression)

प्रमुख निदान

कफज उम्माद के निदान निम्न प्रकार वर्णित हैं¹—

1. निस्तर कफकारक आहार-विहार का सेवन।
2. परिश्रम नहीं करना।
3. अधिक मात्रा में आहार ग्रहण करना।

सम्प्राप्ति¹

उपरोक्त कारणों से व्यक्ति की उष्णा (पित) प्रकृष्टि कफ के साथ हृदय में अवैधत होकर बुद्धि एवं सूक्ष्मति को नष्ट करते हुए मनोविभ्रम पूर्वक कफज उम्माद को उत्पन्न करते हैं।

प्रमुख लक्षण²

कफज उम्माद के लक्षण निम्नलिखित रूप में प्रकट होते हैं—

1. कफज उम्मादी व्यक्ति कम बोलता है (Speaks very little)
2. अत्यन्त चेष्टावान (Retarded activities)
3. अर्थात् (Anorexia)
4. अतिनिद्रा (Excessive sleep)
5. वमन (Vomiting)
6. लालालाक (Excessive salivation)
7. स्त्रियों एवं एकांत की अभिलाषा (Desire for females and loneliness)
8. नख, नेत्र, मूत्र एवं शरीर का क्षेत्र वर्ण होना (Whitish colouration of nails, eyes, urine and body texture)
9. भोजन के पश्चात उम्माद के बोग में बुद्धि।
10. आचार्य सुश्रुत ने कफज उम्माद में कास, बुद्धि अल्पता, भ्रमण, उष्ण पदार्थ एवं उष्ण वातावरण की इच्छा एवं रात्रि में उम्माद प्रकोप आदि लक्षण होना भी वर्णित किया है¹।

-
1. अजोगीकरणस्थानविद्यालयीनभौमीकृष्टिं पितमुणिवेगम्।
उम्मादमत्युपगमात्मकस्य हृदि श्रित् पूर्ववदशु कुर्यात्॥ (च.चि. 9/11)
 2. अमर्षसंरभ्यविनाभवाः संतर्जनातिवर्तणोल्परथाः।
प्रच्छायशीतत्रजलाभिपात्राः पौता च भा: पितकृतस्य लिङ्गम्॥ (च.चि. 9/12)
 3. तृट्वेददाहबहुलो बहुपुनिनिद्रश्चायाहिमितिलजलानविहारसेवी।
तीक्ष्णो हिमाच्छुनिचयेऽपि स बहिशङ्को गिताद्वा नभसि पश्यति तारकाश्च॥ (सु.उ. 62/9)

-
1. सम्पूर्णमन्दविवेत्तिस्य सोष्ठा कफो ममणि संप्रवृद्धः।
बुद्धि सृति चायुप्रहृत्य वित्तं प्रमोहेन संजनयेहिकरम्॥ (च.चि. 9/13)
 2. वाक्षोष्टिते मन्त्रमोरोचक्ष नारोविविक्षियताऽतिनिद्रा।
जटिश लाला च बलं च भुक्ते नवादिशोक्षं च कफतमकस्य॥ (च.चि. 9/14)
 3. हर्षिनिसदासदाराशक्तिकासयुक्तो, योषिद्विविकरातिरत्यमतिप्रचारः।
निद्रपरोऽत्यकथमोत्प्रभुल्लासेवी, रात्रौ भूसं भवति चापि कफप्रकोपात्॥ (सु.उ. 62/10)

कफज उन्माद रोग की तुलना आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित मानस विषादता (Psychotic Depression) से कर सकते हैं।

4. सत्रिपातज उन्माद (Schizophrenia)

सत्रिपातज उन्माद की उत्पत्ति वाल, पित एवं कफ तीनों दोषों के प्रकोपक कारणों के सेवन से होती है। सत्रिपातज उन्माद अत्यंत भयंकर होता है एवं इसमें तीनों दोषों के सम्मिलित तक्षण मिलते हैं। सत्रिपातज उन्माद विरुद्ध चिकित्सा होने के कारण असाध्य होता है।¹

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार सत्रिपातज उन्माद की तुलना विभिन्न प्रकार के Schizophrenia नामक रोग से कर सकते हैं।

5. मानस उन्माद

निदान एवं सम्पादिः²

- चोर, राजपुरुष (पुलिस), शत्रु अथवा हिंसक जन्तुओं से भय।
 - धन एवं परिवार का नष्ट हो जाना।
 - अत्युत्कृष्ट कामवासना की अपूर्ति।
- उपरोक्त कारणों से मानसिक दुर्बलता होने के कारण मानस उन्माद की उत्पत्ति होती है।

प्रमुख लक्षणः³

- रोगी द्वारा अनेक प्रकार की विचित्र बातें करना।
- गोपनीय बात को भी व्यक्त कर देना।
- कभी हंसना, कभी रोना।
- रोगी का कभी-कभी मृदू अर्थात् संज्ञा रहित हो जाना।

मानस उन्माद में प्रायः शारीरिक चिकित्सा नहीं मिलती है। यह पूर्णतः मानस विकार है।

प्रमुख लक्षणः³

- वातज उन्माद
- पितज उन्माद
- कफज उन्माद
- सत्रिपातज उन्माद - असाध्य
- मानस उन्माद - कृत्कृशाध्य
- जिस रोगी का बल एवं मांस क्षीण हो गया हो वह असाध्य है।²
- जिस रोगी का मुख सदा नीचे अथवा ऊपर रहता हो वह असाध्य है।²
- जिस रोगी को निद्रा बिल्कुल नहीं आती हो वह असाध्य होता है।¹

1. यः सत्रिपातप्रभवोऽति योः: सर्वैः समस्तैः स च हेतुभिः स्यात्। सर्वाणि रूपाणि विभावति तादृग्वरद्भेष्याविधिविवर्ज्यः॥ (च.चि. 9/15)

2. चौरैन्द्रियपूर्वार्थास्तथाऽन्यै-

विक्रासितस्य धान्वाभवत्सङ्क्षयाद्वा।
क्षते मनसि च प्रियया रिसो-
गांडं चोक्तवतो मनसो विकारः॥ (सु.उ. 62/12)

3. चिंत्रं स जल्पाति मनोऽनुग्रातं विसंज्ञे,
गायत्रयो हस्ति गोदिति मृदंसङ्गः॥ (सु.उ. 62/13)

कफज उन्माद रोग की तुलना आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित मानस विषादता (Psychotic Depression) से कर सकते हैं।

6. विषज उन्माद

प्रमुख निदान

विषज उन्माद के प्रमुख कारणों में धूतुरा, भोग अथवा मध्यापान का सेवन करना इत्यादि है।¹

प्रमुख लक्षणः

- नेत्रों में रक्त वर्णना (Redness in eyes)
- बल हास (Debility)
- चक्षुप्रदीपियों की कमी (Decreased sensory power)
- मुखमण्डल दीनता युक्त (मुखाया हुआ) दिखायी देता है (Gloomy face)
- मुख का श्यावरक्षण होना (Dark complexioned face)
- कभी-कभी पूच्छित हो जाना।
- रोगी को चिकित्सा शीघ्र नहीं करने से उसकी मृत्यु भी हो जाती है।

विषज उन्माद विशेषतः आगन्तुज उन्माद है जिसमें मुख्यतः शारीरिक चिकित्यों की उत्पत्ति होती है। यदि समुचित चिकित्सा शीघ्र नहीं की जाये तो व्यक्ति को शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

साध्यात्माध्यता

- प्रातज उन्माद
- पितज उन्माद
- कफज उन्माद
- सत्रिपातज उन्माद - असाध्य
- मानस उन्माद - कृत्कृशाध्य
- जिस रोगी का बल एवं मांस क्षीण हो गया हो वह असाध्य है।²
- जिस रोगी का मुख सदा नीचे अथवा ऊपर रहता हो वह असाध्य है।²
- जिस रोगी को निद्रा बिल्कुल नहीं आती हो वह असाध्य होता है।¹

1. रक्तेष्णो हत्यातेन्द्रियधाः: सुदीन-,
श्यावरनो विषकृतेऽथ भवेत् परासुः॥ (सु.उ. 62/14).

2. अवाज्ञा वायुदुर्ज्ञी वा क्षीणामसवतो नरः।
जागरको द्वासदेहमुमादेन विषयति॥ (मा.नि. 20/16)

साध्य दोषज उन्माद की चिकित्सा में निम्नलिखित सिद्धांतों का प्रयोग करना

चाहिए—

1. स्नेहन
2. स्वेदन
3. वमन
4. विरेचन
5. आस्थापन बौद्धि
6. अनुवासन बौद्धि
7. नस्य कर्म
8. उपशमन
9. धूमग्रन
10. धूपन कर्म
11. अञ्जन
12. अवपोड नस्य (कल्क को नासा में निचोड़ना)
13. प्रधमन नस्य (चूर्ण को नासा में फूँकना)
14. अङ्गयंग
15. प्रदेह (लेप लगाना)
16. परिषेक (धारा के रूप में जल से स्नान)
17. अनुलेपन (पतला लेप करना)
18. वध (मारकर मृतक समान करना)
19. बंधन (रस्सी से बांधना)
20. अवरोधन (अंधेरे कमरे में रखना)
21. विचासन (डराना)
22. विस्मापन (आश्वर्य उत्पन्न करना)
23. विस्मरण
24. अपतर्पण (उपवास)
25. शिरा वेधन
26. दोषानुसार भोजन कराना
27. निदन के विरुद्ध औषधि प्रयोग करना

चिकित्सा

(1) निदान परिवर्जन

उन्माद के रोगी के निकट सम्बन्धियों से कारणों का ज्ञान करके तड़परांत उन कारणों एवं परिस्थितियों को दूर करने के उपाय तथा व्यवस्था का निर्देश करना चाहिए।

1. साध्यानां तु त्रयाणां साधननिन्—स्नेह—स्वेदव्यवनन्विरेचन

अस्थापनानुवासनोपशमननस्तः कर्म.....

..... किञ्चिन्निदानविपरीतमौषधं कार्यं तदपि स्यादिति। (च.नि. 7/8)

उन्माद, अपस्मार एवं अतत्वाभिनिवेश

(2) शोधन चिकित्सा

- (i) वातज उन्माद में सर्वप्रथम स्नेहपान करावें परंतु कफ अथवा पित से वायु मार्ग का अवरोध होने पर मुड़ शोधन करावें।
- (ii) पितज उन्माद में स्नेहन, स्वेदन कराकर वमन कर्म करावें।
- (iii) कफज उन्माद में स्नेहन, स्वेदन कराकर वमन कर्म करावें।
- (iv) पञ्चकर्म के पश्चात साध्यक रूप से संसर्जन क्रम कराकर दोषानुसार निरुद्धबौद्धि, अनुवासन बौद्धि एवं शिरोविरेचन कर्म कराना चाहिए।

(3) सत्त्वावज्य चिकित्सा

शोधन कर्म के पश्चात अथवा अंजन आदि से जब उन्माद रोगी चेतन अवस्था में आ जाता है तब उसके मन को अहितकर विषयों की तरफ से हटाने का प्रयास करना चाहिए एवं उसे आशासन देना चाहिए।

(4) शोधक चिकित्सा

यदि उन्माद यैडित व्यक्ति उद्दृष्टा आदि कार्यों में संलग्न है तो उसमें शोधक चिकित्सा करनी चाहिए। इसके अंतर्गत उसे अंधकार युक्त धर में बैंद करना चाहिए लेकिन धर में कष्ठ, लोहा, रस्सी इत्यादि नहीं होना चाहिए अन्यथा रोगी स्वयं का ही अहित कर सकता है। रोगी को डराना, धमकाना चाहिए, मन में हर्ष उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिए अथवा विस्मापन द्वारा उसे सामान्य अवस्था में लाने का प्रयास करना चाहिए।

(5) बहिः परिमाजन चिकित्सा

आवश्यकता के अनुसार उन्माद रोगी में उद्वत्तन, अङ्ग, स्वेदन, शिरोधारा, शिरोबौद्धि, शिरोविरेचन का प्रयोग करके रोगी को सामान्य अवस्था में ले आना चाहिए। तत्पश्चात औषधि प्रयोग करावे।

(6) शमन चिकित्सा

उन्माद रोगी में निम्नलिखित योगों को सहायता से शमन चिकित्सा करनी लाभकारी रहती है—

1. उन्मादे वातजे पूर्व स्नेहपान विशेषज्ञता।
कुर्यादपृथग्मां तु स्नेहे युद्ध शोधनम्॥ (च.चि. 9/25)
2. कफपितोद्वेऽप्यादै वमनं सिरोविरेचनम्।
स्त्रियाद्विवल्यम् कर्तव्यं सुद्धे संसर्जनक्रमः॥ (च.चि. 9/26)
3. निरुद्ध—स्नेहबौद्धि च शिरस्व विरेचनम्।
ततः कुर्याद्विदोष तेजा भूयस्त्वमाचरेत्॥ (च.चि. 9/27)
4. यः सक्तोऽविनये पट्टैः संयम्य सुद्धैः सुखः।
अपेलोहकषये संरोधेश तमोगृहे॥
तर्जनं त्रासनं दानं हर्षणं सात्त्वनं भयम्।
विस्मयो विस्मृतहोनयन्ति प्रकृतिं मनः॥ (च.चि. 9/30-31)

1.	रस/भस्म/पिण्डी	मात्रा : 125-250 मि.ग्रा. अनुपान : शहद	(iii) दशमूलारिष्ट : पुक्कर मूल, चित्रक (iii) अश्वगंधा, मजिष्ठा : मूसली, अश्वगंधा, मजिष्ठा (iv) बलारिष्ट : बला, अश्वगंधा, धातको (v) चट्टनासव : शेत चंदन, रक्त चंदन, वरुण, हरिदा
(i)	उन्माद गज के शरीर स	: पारद, गंधक, धूतूर बीज, मनःशिला	
(ii)	उन्माद भंजन रस	: त्रिफला, त्रिकटु अश्वक भस्म, प्रवाल, लौह भस्म	
(iii)	उन्माद गजांकुश रस	: पारद, गंधक, ताप्र, अश्वक, धूतूर, वत्सनाथ भस्म	(ii) हिंगवादि घृत : गोधृत, गोमूत्र, हिंगु, शुण्ठी
(iv)	भूताङ्गुश रस	: पारद, गंधक, लौह, ताप्र, मुका, हीरक भस्म	(i) कल्याणक घृत : गोधृत, गोडुध, त्रिफला, इन्द्रवारुणी
(v)	चतुर्भुज रस	: रस सिद्धूरु, स्वर्ण भस्म, मनःशिला, कस्तुरी, हरताल	(iii) महाकल्याणक घृत : गोधृत, जटामांसी, हरीतकी, कोंच
(vi)	भूतभैरव रस	: पारद, गंधक, हरताल, मनःशिला, ताप्र लौह	(iv) महापैशाचिक घृत : गोधृत, गोमूत्र, लसुन, हरीतकी
(vii)	प्रवाल पञ्चामूर्त	: प्रवाल	(v) लशुनाद्य घृत : गोधृत, गोडुध, संग्राल मांस, दशमूल सर्पंप, वचा, हिंगु, प्रियंगु
(viii)	मुका पिण्डी	: मुका	(vi) स्वल्प चैतस घृत : त्रिकटु, तेजपत्र, गोधृत, गोमूत्र
2.	वटी		(vii) महाभूतराव घृत : तार, मधुयष्ठी, गोधृत, अष्टमूत्र
		मात्रा : 250-500 मि.ग्रा.	(viii) शिवा घृत : गोधृत, शृगाल मांस, दशमूल, तिल तैल
		अनुपान	(ix) सिद्धार्थक घृत : गोधृत
(i)	अमर सुंदरी वटी	: पारद, गंधक, वत्सनाथ, लौह भस्म	(i) चत्त्रवलेह : शतावरी, शंखपुष्टी, कुम्भाण्ड
(ii)	सर्पांधा घन वटी	: सर्पांधा, अजवायन, जटामांसी	(ii) च्यवनप्राश : दशमूल, आमलकी
(iii)	ब्राह्मी वटी	: ब्राह्मी	(iii) ब्रह्म रसायन : आमलकी, हरीतकी, दशमूल
3.	चूर्ण	मात्रा : 3-6 ग्राम अनुपान	6. अबलेह
		: शहद, कोणा जल, शहद	मात्रा : 10-20 ग्राम अनुपान
(i)	सारस्वत चूर्ण	: सर्पांधा, अजवायन, जटामांसी	(i) गोधृत : गोधृत
(ii)	सर्पांधा चूर्ण	: कुष्ठ, अश्वगंधा	(i) चत्त्रवलेह : शतावरी, शंखपुष्टी, कुम्भाण्ड
(iii)	अश्वगंधा चूर्ण	: रस सिद्धूरु, सर्पांधा	(ii) च्यवनप्राश : दशमूल, आमलकी
(iv)	वचा चूर्ण	: वचा	(iii) ब्रह्म रसायन : आमलकी, हरीतकी, दशमूल
(v)	जटामांसी चूर्ण	: जटामांसी	
(vi)	शिरीषादि चूर्ण	: शिरीष	
4.	आसव/अरिष्ट		7. आगद
		मात्रा : 10-20 मि.ली.	मात्रा : 125-250 मि.ग्रा.
		: समभाग जल	प्रयोगविधि : पान, नस्य, अंजन, आलेप, स्नान, उबतन के रूप में
(i)	सारस्वत चूर्ण	: ब्राह्मी, शतावरी	(i) सिद्धार्थक आगद : सर्पंप, वचा, हिंगु
(ii)	सर्पांधा चूर्ण	: अश्वगंधा	(ii) सिद्धार्थकादि आगद : सर्पंप, त्रिकटु, वचा, अश्वगंधा
(iii)	अश्वगंधा चूर्ण	: अश्वगंधा	(iii) करञ्जादि आगद : करञ्ज, शिरीष, पाटला
(iv)	वचा चूर्ण	: वचा	
(v)	जटामांसी चूर्ण	: जटामांसी	
(vi)	शिरीषादि चूर्ण	: शिरीष	
5.	घृत/तैल	मात्रा : 10-20 मि.ली.	8. अञ्जन
		: ब्राह्मी, शतावरी	मात्रा : 125-250 मि.ग्रा.
			प्रयोगविधि : पान, नस्य, अंजन, आलेप, स्नान, उबतन के रूप में
			(i) कृष्णाद्याङ्गन : पिप्पली, कृष्ण मरिच, सैन्धव
			(ii) दाव्यादि गुडिकाङ्गन : दारहल्दी, मधु

- (iii) मरिचाजनं
9. वर्ति
(i) ब्रह्मादि वर्ति
(ii) चूषणादि वर्ति
(iii) शिरोधादि वर्ति
(iv) नक्खमालादि वर्ति
(v) सैँथनादि वर्ति
- १० धूप**
(i) माहेश्वर धूप
- (ii) निष्कृष्टादि धूप
(iii) अजादि रोम धूप
- ११. एकल द्रव्य**
- (i) ब्रह्मी
(ii) शंखुभूषी
(iii) जटामासी
(iv) वचा
(v) ज्योतिष्ठाती
(vi) कुष्ठ
(vii) पारसीक यवानी
(viii) सर्पांगथा
(ix) अनंतपूत्र
- (x) दारहरिदा
(xi) क्रिफला
(xii) सर्प
(xiii) हिंग
(xiv) देववारु
(xv) आमलकी
(xvi) चांगोरी
(xvii) मण्डूकपर्णी
(xviii) अक्षगांधा इत्यादि
- (४) देव व्यापाश्रय चिकित्सा
- उपरोक्त युक्त व्यापाश्रय चिकित्सा के अतिरिक्त आवश्यकता के अनुसार मणि, मन्त्र, तप, ध्यान, होम, मंगल, जप, इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए। देव व्यापाश्रय चिकित्सा प्रयः उन मानस गोपार्थों में की जानी चाहिए जिनमें उन्माद का स्पष्ट कारण दृष्टिगोचर नहीं होता हो। अतः उसे कर्मज व्याधि मानकर चिकित्सा करनी चाहिए।
- (५) योगासन/प्राकृतिक चिकित्सा
- आवश्यकतानुसार योगासन एवं प्राणायाम तथा प्राकृतिक चिकित्सा से भी उन्माद रोग शमन में विशेष सहायता मिल सकती है।
1. यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का रोगी द्वारा नियमित अभ्यास करना लाभकारी रहता है।

2. शतासन, हलासन, शीषार्सन, सर्वाङ्गासन इत्यादि

3. पट्टकर्म पालन

आदर्श चिकित्सा पत्र

1. निदन परिवर्जन

2. शोधन कर्म

3. दैवत्यप्रय एवं सत्त्वावज्य चिकित्सा

4. बहिः परिमार्जन चिकित्सा

5. शतासन, हलासन, शीषार्सन, सर्वाङ्गासन इत्यादि

6. पट्टकर्म पालन

आदर्श चिकित्सा पत्र

7. निदन परिवर्जन

8. शोधन कर्म

9. दैवत्यप्रय एवं सत्त्वावज्य चिकित्सा

10. अन्तर्मादि

11. अन्तर्मादि

12. अन्तर्मादि

13. अन्तर्मादि

14. अन्तर्मादि

15. अन्तर्मादि

16. अन्तर्मादि

17. अन्तर्मादि

18. अन्तर्मादि

19. अन्तर्मादि

20. अन्तर्मादि

21. अन्तर्मादि

22. अन्तर्मादि

23. अन्तर्मादि

24. अन्तर्मादि

25. अन्तर्मादि

26. अन्तर्मादि

27. अन्तर्मादि

28. अन्तर्मादि

29. अन्तर्मादि

30. अन्तर्मादि

31. अन्तर्मादि

32. अन्तर्मादि

33. अन्तर्मादि

34. अन्तर्मादि

35. अन्तर्मादि

36. अन्तर्मादि

37. अन्तर्मादि

38. अन्तर्मादि

39. अन्तर्मादि

40. अन्तर्मादि

41. अन्तर्मादि

42. अन्तर्मादि

43. अन्तर्मादि

44. अन्तर्मादि

Latest Developments Psychosis

Definition

The term Psychosis is defined as—

1. Gross impairment in reality testing (contact with reality)
2. Marked disturbance in personality with impairment in social, interpersonal and occupational functioning.
3. Marked impairment in judgement and absent understanding of the current symptoms and behaviour (Loss of insight)
4. Presence of the characteristic symptoms like delusions and hallucination.

Types

1. Organic Psychosis
2. Functional Psychosis

Psychosis is further subdivided into following types—

- (i) Schizophrenia
- (ii) Schizophreniform Psychosis
- (iii) Brief reactive psychosis
- (iv) Schizo - affective psychosis
- (v) Paranoid states

Aetiology

Causative factors of psychosis are usually multifactorial which include—

1. Genetic factors
2. Family background e.g. unhappy childhood background
3. Physical illness
4. Stressful life events
5. Uneasy social network

Signs and symptoms

1. Impairment of orientation in time, place and persons
2. Impairment of memory
3. Impairment of intellectual functions
4. Impairment of consciousness
5. Anxiety
6. Depression
7. Psychotic symptoms
8. Jocularity (Humorousness)
9. Confabulation (Irrelevant talk)
10. Excessive orderliness (Highly methodically arranged)

विहार

पुराण चाबल, पुराण गेहूँ, जौ, रक्खाली, तर्जन, ताड़न, आश्वासन, बंधन, भय, साठी चाबल, मुँग, धारोजा गोदुध, हर्ष, दमन, विस्मारण, आश्वर्यचकित नवीन एवं पुराण गोष्ठृत, वर्षाजल, प्रवल, करना, उत्तरवर्षण, स्नान, निदा, अभ्यग लौकी, पेठा, चौलाई, ब्रथुआ, चांगोरी, भिण्डी, कठहल, अंगू, किशमिश, मुनक्का, अनार, संतरा, मुसम्मी, अंबीर, नारियल, जांगल पशु पक्षियों का मांसरस, शतधोत घृत, विशेषकर कोयचल एवं कच्छप मांस, गधे एवं घोड़े का मूत्र कुछाण एवं कैथ फल इत्यादि।

आहार

मद्यपान, विरुद्ध आहार, अति मांस सेवन, क्षुधा, पिण्यसा एवं निदा के बेग को भेंस का दुध, उष्ण पेय एवं खाद्य पदार्थ, रोकना, धूप सेवन, अति भार वहन सर्प तेल, उष्ण, तीक्ष्ण, विदाही आहार एवं मैथुन इत्यादि। द्रव्य, कुरुदुर, तिक द्रव्य, करेला, गर्म प्रसाला एवं अचार इत्यादि

अपश्य

विहार

मद्यपान, विरुद्ध आहार, अति मांस सेवन, क्षुधा, पिण्यसा एवं निदा के बेग को भेंस का दुध, उष्ण पेय एवं खाद्य पदार्थ, रोकना, धूप सेवन, अति भार वहन सर्प तेल, उष्ण, तीक्ष्ण, विदाही आहार एवं मैथुन इत्यादि।

उन्माद मुक्ति के लक्षण

उन्माद रोग से मुक्त हो जाने पर रोगी के शरीर में निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न होते हैं—

1. इन्द्रिय, इन्द्रियों के विषय, बुद्धि, आत्मा एवं मन में प्रसन्नता उत्पन्न होना।
2. दोष एवं धातुओं का अपने प्राकृत स्वरूप में आ जाना।

३.

¹ प्रसाद-श्रेष्ठदियाशर्थां बुद्धियात्मकतां तथा।
धातुनां प्रकृतिस्थर्वं विगतोन्मादलक्षणम्॥
(च.च. 9/97)

कार्याचिकित्सा

प्रमुख संदर्भ प्रगत्य

1. चरक संहिता निदान स्थान - अध्याय 7
2. चरक संहिता चिकित्सा स्थान - अध्याय 9
3. सुश्रृत संहिता उत्तर स्थान - अध्याय 60
4. सुश्रृत संहिता उत्तर स्थान - अध्याय 62
5. अष्टगा हृदय उत्तर स्थान - अध्याय 07
6. माधव निदान - अध्याय 20

Intelligence Test.

Management : Principles

1. Anti psychotic drugs are used to control agitation and psychotic features. Pimozide is the drug of choice.
 2. Anti depressants and or ECT (Electroconvulsive Therapy) may be needed for secondary depression.
 3. Supportive psychotherapy
 4. Symptomatic management.
- लैंड्रोड•••

1. भूतोन्माद

(Special Symbolic Psychotic Syndrome)

परिचय

आचार्य चरक ने भूतोन्माद को आगतुज उन्माद के रूप में वर्णित किया है, जबकि आचार्य सुश्रृत ने भूतोन्माद का वर्णन उत्तर तंत्र में अमानुषोपसर्ग अध्याय के अंतर्गत किया है। वस्तुतः भूतोन्माद इत्यादि कुछ ऐसी व्याधियों का विस्तृत वर्णन आयुर्वेदीय संहिता में मिलता है जिनकी उत्पत्ति का मुख्य कारण विविध प्रकार के भूत, देव तथा ग्रह इत्यादि होते हैं। इन व्याधियों में व्याकु में विचित्र प्रकार के व्यवहार उत्पन्न होते हैं जिन्हें आर्थिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार पानोविकारज लक्षण समूह (Psychotic syndrome) कहा जा सकता है। इन व्याधियों के निदान, सम्प्राप्ति इत्यादि को दोष, धातु एवं मातों के सिद्धांत पर नहीं समझा जा सकता है। सम्भवतः इसी कारण से आचार्यों द्वारा इन्हें विशेष महत्व प्रदान करने के दृष्टिकोण से इनका नामकरण ग्रहों के नाम पर किया गया है। प्राची: इन गोपनीयों में कोई दृश्य अथवा स्थूल निदान दृष्टिकोण नहीं होते हैं तथा केवल युक्त व्यापार्य चिकित्सा करने से कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं मिलता है। ग्रहों के प्रकृति के आधार पर ही सम्भवतः आचार्यों ने आठ प्रकार के भूतोन्माद का वर्णन किया है जो कि उन्माद के ही विशेष अवतार भेद हैं।

देव, ग्रह इत्यादि के द्वारा व्यक्तियों में उत्पन्न विशिष्ट मनोविकार समूह जिनका दोष, दृष्टि के आधार पर निर्धारण संभव नहीं हो उन्हें भूतोन्माद कहते हैं। भूतोन्माद में अनेक प्रकार के विचित्र लक्षण उत्पन्न होते हैं।

प्रमुख निदान

- भूतोन्माद के प्रमुख निदान निम्न प्रकार वर्णित हैं:-
1. देव, ऋषि, गन्धर्व, पिशाच, यक्ष, राक्षस, पितृ ग्रहों का अपमान।
 2. नियम, व्रत, पूजा इत्यादि का अनुचित एवं नियमविरुद्ध ढंग से प्रयोग।
 3. पूर्वजन्म कृत एवं वर्तमान जन्म के पाप कर्म।

ग्रह प्रवेश का प्रकार

देव आदि ग्रह अपने गुण के प्रभाव से मनुष्य शरीर को बिना दौषित किये अदृश्य रूप में वेग पूर्वक मनुष्य शरीर में प्रवेश करते हैं, जैसे दर्पण में छाया अथवा सूर्य कान्त मणि में सर्व प्रकाश प्रवेश करता है।

देवादि ग्रहों के आवेश का कारण

भूतोन्माद कारक ग्रह मुख्यतः निम्न तीन प्रयोजनों से मनुष्य शरीर में प्रविष्ट होते हैं:-

1. हिंसा (मारने के लिए)
2. गति (मैथुन अथवा प्रेम के लिए)
3. अपवर्चना (अपनी पूजा कराने के लिए)

-
1. देवसिंगभृतिप्रसाचन्यभृतः प्रित्यगम्य चर्षणाति।
आगानुहेतुर्मिथमवतादि मिथ्याकृतं कर्म च पूर्वदेहे ॥ (च.त्र. 7/16)
 2. अदृष्टयन्तः पुरुषस्य देव देवादयः स्वेत्सु गुणप्रभावः।
विशन्त्यदृष्ट्यात्तरसा यथैव च्छयातो दर्पणसूख्यकान्ती ॥ (च.त्र. 9/18)
 3. विशेषं तु खद्युन्मादकरणां भूतानामून्मादने प्रयोजनं
भवति, तदथा हिंसा, गति: अप्यवर्चनं चीति। (च.त्र. 7/15)

देवादि ग्रहों के आवेश का स्थान एवं समय'

1. पापकर्मारथ अथवा पूर्व में पाप करते समय।
2. अकेले शून्य ग्रह में तिबास करते समय।
3. चौराहे पर अथवा सायंकाल के समय।
4. पर्वतस्थि जैसे अपावस्या, पूर्णिमा के दिन।
5. रजस्वला स्त्री के साथ ऐशुन करते समय।
6. अनुचित रूप में स्वरहीन अध्ययन करते समय।
7. नियम विरुद्ध, बलि, होम, मंगल करते समय।
8. यम, नियम, देव, ब्रह्मचर्य के नियम भांग होने पर।
9. महायुद्ध के समय।
10. देश, कुल एवं ग्राम के विनाश के समय।
11. चन्द्रग्रहण एवं सूर्य ग्रहण के समय।
12. प्रसव होते समय।
13. अनुचित ढंग से वस्त्रन, विरेचन, रक्तमोक्षण करतवाते समय।
14. अपवित्र, असावधानी से चैत्य, देव मादिर में प्रवेश करने से।
15. मांस, मधु, तिल, गुड़, मदिरा सेवन के उपरांत मुख शुद्धि नहीं करने से।
16. नन्न अवस्था में रहने से।
17. रात्रि में नगर, चौराहा, वाटिका, शमशान, वधस्थल, आदि में अकेले जाने पर।
18. द्विज, गुरु, देवता, साधु का अपमान या तिरस्कार करने पर।
19. धार्मिक कार्य गलत तरीके से करने पर।
20. किसी भी कार्य को अनियमित ढंग से करने पर।

भूतादि ग्रहवेश के प्रकार

- भूतादि अष्ट ग्रह जिन स्वरूप में मनुष्य शरीर में प्रवेश करते हैं—
 1. देवग्रह : देखते हुए प्रविष्ट होते हैं।
 2. गुरुवाद्य ग्रह : शाप देते हुए प्रविष्ट होते हैं।
 3. पिंड ग्रह : धमकाते हुए प्रविष्ट होते हैं।
 4. गन्धर्व ग्रह : स्मर्त करते हुए प्रविष्ट होते हैं।
1. उन्मादयित्वात्मपि खतु देवविष्टपृथ्वीराक्षस इत्यभित्तिकाला व्याख्याता भवति॥ (च.नि. 7/14)
2. तत्त्वायमुन्मादकरणां भूतानमुन्मादयित्वात्मारम्भ विशेषो भवति; तद्यथा— अवलोकयन्तो देवा जनयन्मुन्मादं, विशाचा: पुराणहृषीहयन्ताः॥ (च.नि. 7/12)

- यक्ष ग्रह : शरीर में प्रविष्ट होते समय उन्माद उत्तम करते हैं।
- राक्षस ग्रह : आम गन्ध को सूँधते हुए प्रविष्ट होते हैं।
- ब्रह्मराक्षस ग्रह
- पिशाच ग्रह : सवारी करके चलते हुए प्रविष्ट होते हैं।

भूतोन्माद के पूर्वरूप

भूतोन्माद के पूर्व रूप निम्नलिखित हैं—

1. देव, गो, ब्रह्मण आदि को मारने में रुचि।
 2. क्रोध की उत्पत्ति होना।
 3. दूसरे व्यक्ति के अपकार में रत रहना।
 4. अरति (बेचैनी) रहना।
 5. ओज, बल, वर्ण, छाया एवं शरीर का हास होना।
 6. स्वर्व में देवादि ग्रहों द्वारा धमकाया जाना तथा प्रेरित होना।
- सामान्य लक्षण

भूतोन्माद के सामान्य लक्षण निम्न प्रकार प्रकट होते हैं^{2,1}—

1. रोगी की वाणी, विक्रम, शक्ति एवं चेष्टाएँ सामान्य मनुष्य से अधिक शक्तिशाली तथा विचित्र होती हैं।
2. रोगी मनुष्य का जान, विज्ञान एवं बल सामान्य मनुष्य के समान नहीं होते हैं।
3. उन्माद के को आने का कोई भी समय निश्चित नहीं होता है अथवा उन्माद काल अनिश्चित होता है।

धेद्

- देव, राक्षस इत्यादि के ग्रह समूह असंब्ला होते हैं। परंतु भिन्न-भिन्न लक्षणों वाले होने से प्रधान रूप से आठ प्रकार के भूतोन्माद होते हैं। आचार्य चरक एवं सुश्रुत के मतानुसार ग्रहों की गणना में केवल दो ग्रहों के नामकरण में अंतर है। आचार्य चरक ने गुरुद्युम्नत तथा ब्रह्मराक्षस उन्माद नामक प्रह माना है। जबकि आचार्य सुश्रुत ने नामन्तर एवं असुरोन्मात नामक भूतोन्माद माने हैं जो निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है-

1. तत्र देवादि प्रकोपनिमित्तेनात्मकोन्मादेन पुरस्कृतस्येमनि पूर्वरूपाणि भवन्ति, तद्यथा— देवगोल्लाङ्गणतपस्विनां..... ततोऽन्तरमुन्मादभिन्वृत्तिः॥ (च.नि. 7/11)
2. अमर्त्यवाचिकमवीर्यचेष्टो जानादिविज्ञानबलादिभिर्यः।
3. उन्मादकालोऽनियतश्च यस्य भूतोन्मुमदमुदाहरेत्प्रम्॥ (च.चि. 9/17)
4. गुह्यानात विज्ञानमनवस्थासत्त्वादिविज्ञानमनवस्था

1. उन्मादयित्वात्मपि खतु देवविष्टपृथ्वीराक्षस इत्यभित्तिकाला व्याख्याता भवति॥ (च.नि. 7/14)
2. तत्त्वायमुन्मादकरणां भूतानमुन्मादयित्वात्मारम्भ विशेषो भवति; तद्यथा— अवलोकयन्तो देवा जनयन्मुन्मादं, विशाचा: पुराणहृषीहयन्ताः॥ (च.नि. 7/12)
3. व्यञ्जने विविधाकारा धृदान्ते ते तथाऽऽधा॥ (सु.उ. 60/6)
4. असंख्या ग्रहगण ग्रहाधिपतयस्तु ते।

क्र.सं.	आचार्य चरक मतानुसार	आचार्य सुश्रूत मतानुसार
1.	देवजुष्ट	देवजुष्ट
2.	ब्रह्मराक्षस जुष्ट	देव शुद्ध जुष्ट (अमुोन्मत)
3.	गन्धर्व जुष्ट	गन्धर्व जुष्ट
4.	यक्ष जुष्ट	यक्ष जुष्ट
5.	पितर जुष्ट	पितर जुष्ट
6.	गुर्वर्द्ध जुष्ट	भृजङ्ग (सर्प) जुष्ट
7.	राक्षस जुष्ट	राक्षस जुष्ट
8.	पिशाच जुष्ट	पिशाच जुष्ट
भूतोन्माद के भेदानुसार लक्षण		
1.	देवोन्माद के प्रमुख लक्षण	देवोन्माद से ग्रस्त रोगी में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं-
(i)	रोगी सदैव संतुष्ट रहता है।	(i) रोगी उन्माद से ग्रस्त रोगी में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं-
(ii)	पवित्र रहता है।	(ii) रोगी सदैव संतुष्ट रहता है।
(iii)	रोगी उत्तम गच्छ एवं माला की अभिलाषा रखता है।	(iii) निरा अथवा तन्त्रा नहीं आती है।
(iv)	सदैव सत्य बोलता है।	(iv) सदैव सत्य बोलता है।
(v)	निरंतर संस्कृत में धारा प्रवाह बोलता है।	(v) निरंतर संस्कृत में धारा प्रवाह बोलता है।
(vi)	रोगी तेजस्वी एवं स्थिर नेत्र वाला होता है।	(vi) रोगी तेजस्वी एवं स्थिर नेत्र वाला होता है।
(vii)	रोगी तेजस्वी एवं स्थिर नेत्र वाला होता है।	(vii) आस-पास के व्यक्तियों को वरदान देता है।
(viii)	रोगी तेजस्वी एवं स्थिर नेत्र वाला होता है।	(viii) आस-पास के व्यक्तियों को वरदान देता है।
(ix)	ब्राह्मणों की पूजा करता है।	(ix) ब्राह्मणों की पूजा करता है।
देवशत्रु जुष्ट उम्माद के लक्षण		
(i)	अत्यधिक स्वेदन होता है।	देवशत्रु जुष्ट उम्मादी व्यक्ति में निम्न लक्षण व्यक्त होते हैं-
(ii)	रोगी ब्राह्मण, गुरु एवं देवताओं के दोषों का वर्णन करता है।	(i) रोगी उम्माद के लक्षण
(iii)	रोगी के नेत्र टेढ़े रहते हैं।	(ii) रोगी दान कार्य में तत्पर रहता है।
(iv)	रोगी कुमार पर चलने वाला एवं नास्तिक होता है।	(iii) रोगी शांत स्वभाव वाला होता है।
(v)	रोगी कुमार पर चलने वाला एवं नास्तिक होता है।	(iv) रोगी देखने में गंभीर स्वभाव वाला एवं तीव्र बुद्धि वाला होता है।
देवशत्रु जुष्ट उम्माद के लक्षण		
(i)	देवशत्रु जुष्ट उम्मादी व्यक्ति में निम्न लक्षण व्यक्त होते हैं-	(v) रोगी कम बोलता है एवं सहनशील होता है।
(ii)	देवशत्रु जुष्ट उम्मादी व्यक्ति में निम्न लक्षण व्यक्त होते हैं-	(vi) रोगी दान कार्य में तत्पर रहता है।
(iii)	देवशत्रु जुष्ट उम्मादी व्यक्ति में निम्न लक्षण व्यक्त होते हैं-	(vii) रोगी देखने में गंभीर स्वभाव वाला एवं तीव्र बुद्धि वाला होता है।
(iv)	देवशत्रु जुष्ट उम्मादी व्यक्ति में निम्न लक्षण व्यक्त होते हैं-	(viii) रोगी कम बोलता है एवं सहनशील होता है।
(v)	देवशत्रु जुष्ट उम्मादी व्यक्ति में निम्न लक्षण व्यक्त होते हैं-	(ix) रोगी तेजस्वी होता है।
नाग ग्रहाविष्ट उम्माद के लक्षण		
(i)	नाग ग्रह से पीड़ित उम्माद रोगी के लक्षण निम्नलिखित हैं-	(x) अति भोजन से भी संतुष्ट नहीं होता है।
नाग ग्रहाविष्ट उम्माद के लक्षण		
(i)	रोगी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।	(xi) रोगी की ग्रहाविष्टि उम्मादी व्यक्ति में निम्न लक्षण व्यक्त होते हैं-
(ii)	रोगी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।	(i) रोगी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।
(iii)	रोगी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।	(ii) रोगी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।
(iv)	रोगी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।	(iii) रोगी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।
नाग ग्रहाविष्ट उम्माद के लक्षण		
(i)	रोगी कम्भी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।	(iv) रोगी कम्भी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।
नाग ग्रहाविष्ट उम्माद के लक्षण		
(i)	हृष्टता पुलिनवनान्गोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगोतान्यमात्यः।	(v) रोगी कम्भी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।
(ii)	नुत्यन के प्रहसन वाल चालन्याक्षरं गच्छत्वार्थात् गम्यतो इत्यतिरस्तुप्रभावो।	(vi) रोगी कम्भी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।
(iii)	तेजस्वी वरदि च किं दामि कम्भे, सो यक्षग्रहार्तिरोडितो मनुष्यः। (सु.उ. 60/11)	(vii) रोगी कम्भी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।
(iv)	प्रेत्यो विसृजति संस्तोषं पिण्डान्, सानाम्ना जलमपि चापसव्यवस्थः।	(viii) रोगी कम्भी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।
नाग ग्रहाविष्ट उम्माद के लक्षण		
(i)	भवति च देवशत्रु जुष्टः॥ (सु.उ. 60/13)	(ix) रोगी कम्भी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।
नाग ग्रहाविष्ट उम्माद के लक्षण		
(i)	सन्तुष्टः शुचिरपि चैषगच्छमयो निस्तद्वी ह्यवितथसंस्कृतप्रभावो।	(x) रोगी कम्भी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।
(ii)	तेजस्वी विश्वरूपो वरप्रदता ब्रह्मण्यो भवति नः स देवजुष्टः॥ (सु.उ. 60/8)	(xi) रोगी कम्भी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।
(iii)	संखेदी हिङ्गुल्देवदोषवला निश्चाक्षो विगतभयो विमानदृष्टिः।	(xii) रोगी कम्भी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।
(iv)	संतुष्टो भवति न चाननानजान्तैर्दृष्टयाभ्यास भवति च देवशत्रु जुष्टः॥ (सु.उ. 60/9)	(xiii) रोगी कम्भी कम्भी सर्प के समान पृथ्वी पर सरक कर चलता है।

1. सन्तुष्टः शुचिरपि चैषगच्छमयो निस्तद्वी ह्यवितथसंस्कृतप्रभावो।

2. तेजस्वी विश्वरूपो वरप्रदता ब्रह्मण्यो भवति नः स देवजुष्टः॥ (सु.उ. 60/8)

3. संखेदी हिङ्गुल्देवदोषवला निश्चाक्षो विगतभयो विमानदृष्टिः।

4. भूमो यः प्रसरत सार्वत्र कदाचित् सृष्टिक्षण्यो विलिखित जिह्वा तथेव।

निदारुद्धिमधुद्धार्थायसेमुखिक्षेये भवति भुजङ्गमेन जुष्टः॥ (सु.उ. 60/13)

(ii) जिह्वा से ओष्ठ को हमेशा स्पर्श करता रहता है।

(iii) रोगी को अतिनिद्रा आती है।

(iv) गुड़, शहद, दुध एवं खीर सेवन की इच्छा रहती है।

7. राक्षस ग्रहाविष्ट उन्माद के लक्षण

राक्षस ग्रह से पीड़ित व्यक्ति के लक्षण निम्न प्रकार हैं:-

(i) रोगी मांस, रक्त, सुरा सेवन की इच्छा करता है।

(ii) लज्जा रहित हो जाता है।

(iii) अत्यंत कठोर स्वभाव बाला हो जाता है।

(iv) अत्यधिक शक्तिशाली एवं रात्रिचर होता है।

(v) क्रोधी प्रकृति का एवं शूरवीर होता है।

(vi) स्नान, संध्या, पूजा इत्यादि कर्मों से होश करता है।

8. पिशाच ग्रहाविष्ट उन्माद के लक्षण

पिशाच ग्रह से उन्मादित व्यक्ति के लक्षण निम्न प्रकार हैं:-

(i) रोगी हाथ को ऊपर उठाए रखता है।

(ii) शरीर दुर्बल एवं रुक्ष होता है।

(iii) अधिक देर तक प्रलाप करता है।

(iv) शरीर डुग्गिचित एवं अपवित्र होता है।

(v) रोगी अत्यधिक लोभी होता है।

(vi) अत्यधिक आहार ग्रहण करता है।

(vii) निर्जन स्थान पर शयन करता है।

(viii) शीतल जलाकांझी एवं रात्रिचर होता है।

(ix) रोगी उड्डिन होकर घूमता है।

(x) अति रुदन करता है।

ग्रहावेश की तिथि

आचार्य चरक एवं सुश्रुत ने मनुष्य में ग्रहावेश के अलग-अलग काल का वर्णन किया है। इस संदर्भ में अग्रम तालिका में आचार्य चरक, सुश्रुत एवं वाराहट का मत उल्लिखित है।

आचार्य चरक ¹	आचार्य सुश्रुत ²	आचार्य वाराहट ³
भूत	आवेशकाल	भूत
1. देवग्रह	शुक्ल प्रतिपदा, त्रयोदशी	1. देव शुक्ल, प्रतिपदा
2. क्रृष्णग्रह	घटी, नवमी	2. भूजग्नि तृतीया समय
3. मित्रग्रह	दशमी, अमावस्या	3. पितृ दशमी, अमावस्या
4. गन्धर्व	द्वादशी, चतुर्दशी	4. गन्धर्व द्वादशी, चतुर्दशी
5. यक्षग्रह	शुक्ल, सप्तमी, एकादशी	5. यक्ष शुक्ल, सप्तमी, एकादशी
6. ऋग्रह	शुक्ल, पचमी	6. देवशत्रु प्रातः यात्र्य
7. राक्षस	पूर्णिमा	7. राक्षस राक्षस
8. पिशाच	अष्टमी	8. पिशाच चतुर्दशी

सापेक्ष निदान

भूतोन्माद के अपने विशिष्ट एवं विचित्र लक्षण होने से आसानी से इसका निदान दिया जा सकता है। फिर भी कभी-कभी भूतोन्माद की उन्माद रोग से सापेक्ष निदान की आवश्यकता होती है जिसे निम्न तालिका में प्रदर्शित किया जा रहा है:-

भूतोन्माद

- रोगी का अमर्त्य या मानवेतर व्यवहार रहता है।
- भूतोन्माद का प्रमुख कारण ग्रह द्वारा हिंसा, रंति अथवा पूजा कराना होता है।
- कोई भी शारीरिक विकृति नहीं होती है।
- केवल ग्रहों के आवेश के लिये उन्माद उत्पन्न होता है।
- तब चौकाचार तथा स्वाध्यायाकोविदं न ग्रायः शुक्ल
- देवग्रहः पौर्णिमासप्तमीः.....प्रेषाश्वत्रुदशीयोः.....
- गृह्णन्ति शुक्लप्रतिपदश्चयोः.....प्रातः कालं सम्यास लक्षणेत् ॥ (अ.ह.उ. 4/9 - 12)

1. मांसासुग्विधसुराविकारालिप्सुनिर्लज्जो भूषणमतिष्ठरोऽतिशः।
क्रोधात्सुविपुलबलो निशाचिह्नारो, शोचद्विद् भवति च रक्षसा गृहीतः॥ (सु.उ. 60/14)

2. उद्दत्सः कृशप्रसुचिच्च प्रलासी दुर्गन्यो भूषणमसुचिस्थाऽतिलोलतः।
बहुशरी विजनहिमाकुरात्रिसेवो व्याविनो भ्रमति रुदन् पिशाचज्ञः॥ (सु.उ. 60/15)

1. तत्र चौकाचार तथः स्वाध्यायाकोविदं न ग्रायः शुक्ल
.....प्रेषाश्वत्रुदशीयोः.....प्रातः कालं सम्यास लक्षणेत् ॥ (चि.चि. 9/21)

2. देवग्रहः पौर्णिमासप्तमीः.....प्रेषाश्वत्रुदशीयोः.....

3. गृह्णन्ति शुक्लप्रतिपदश्चयोः.....प्रातः कालं सम्यास लक्षणेत् ॥ (अ.ह.उ. 4/9 - 12)

5. देवव्यप्रश्न चिकित्सा विशेष
लाभप्रद होती है।

5. युक्तव्यप्रश्न एवं स्त्वावजय चिकित्सा
अधिक लाभप्रद होती है।

साध्यासाध्यता^{1,2}

1. रति एवं अधर्वना (पूजा) के लिए आवेशित भूतोन्माद रोगी साध्य होता है।
2. हिंसा के अभियाय से आवेशित होने पर उच्चाद रोगी असाध्य होता है।
3. जिस रोगी के नेत्र स्थूल तथा बाहर निकल गये हों वह रोगी असाध्य होता है।
4. जो रोगी से चलता हो, मुख से फेन निकलता हो वह रोगी असाध्य है।
5. जिसे अतिनिद्रा आती हो अथवा अल्पाधिक कम्पन होता हो वह रोगी असाध्य होता है।
6. जो हाथी, पर्वत, वृक्ष से गिरकर ग्रहाविद्युआ हो वह रोगी असाध्य होता है।
7. जो रोगी जानशून्य होकर, हाथों को ऊपर उठाकर दूसरों को मासे के लिए दोडता है वह असाध्य होता है।
8. जिस रोगी के नेत्र अशुषुप्त हों वह असाध्य होता है।
9. जिस रोगी में मूत्र मार्ण से रुक की प्रवृत्ति होती हो वह असाध्य होता है।
10. जिसको जिछा कट गयी हो वह रोगी असाध्य होता है।
11. मर्म स्थानों में छेदनवत वेदना होती हो तो रोगी असाध्य होता है।
12. बोलते हुए वाणी रुक जाती हो अथवा अव्यक्त आवाज आती हो तो रोगी असाध्य होता है।
13. जिस रोगी का शरीर वर्ण विकृत हो गया हो वह असाध्य होता है।
14. जिस रोगी में अति रुषा उत्पन्न हो वह भूतोन्माद का रोगी असाध्य होता है।

चिकित्सा सिद्धांत

1. देवव्यप्रश्न चिकित्सा³

भूतोन्माद रोग में युक्त व्यप्रश्न चिकित्सा से विशेष लाभ नहीं होता है। अतः

- देवव्यप्रश्न चिकित्सा करने चाहिए। इसके अंतर्गत मंत्र, औषधि, मणि, मांगलवचन, बलि प्रदान करना, हवन, नियमों का अनुशोलन, क्रत, प्रार्थना, उपवास, स्वस्त्रयन, भूतों के प्रति नमस्कार तथा तीर्थादि प्रसरस्त स्थानों में रोगी को गमन करना चाहिए।

1. स्थूलाक्षस्त्रवित्तिगति: स्थूलेनतेहि निदानः: पतिति च कमते च योऽति।

- यसचादिरुद्धमादिविच्युतः: सम् संस्थों न भवति बाढ़केन जुषः॥ (सु.उ. 60/16)

2. सर्वेषामि तु खल्वत्पु यो हस्तावृद्युप्यरोगसंस्थ
तयोः साधनानि-मन्त्रौषधिमणिमालबल्पुष्पहारोमनियम
क्रतप्रायशितोपवासस्त्रयनप्रणिपतगमनदीनि॥ (च.चि. 9/22)

उच्चाद, अपस्मार एवं अतत्वाभिनिवेश

2. कूर कर्मों का निषेध

भूतोन्माद में रोगी की चिकित्सा हेतु कूर कर्म करना पूर्णतः बर्जित है। जैसे-तीखण अंजन, नस्य, ताड़न, संतर्जन, बंधन, वथ इत्यादि।

3. घृत इत्यादि मुद्द औषधियों का प्रयोग।
4. अधर्वना पूजा

(i) सावधानोपूर्वक भूतों के राजा, देव, ईश्वर एवं जगत के स्वामी रुद्र का प्रतिदिन पूजन करना लाभकर्त्त्वे-रहत है।

- (ii) देव, गो, ब्राह्मण, गुरु का पूजन नियमित रूप से करना चाहिए।
- (iii) सदाचार, तपस्या, आध्यात्मज्ञान, दान, नियम, क्रत आदि का पालन करना आवश्यक है।

5. बलि प्रदान करना चाहिए।

6. प्रमुख औषधियाँ

- (i) भूत भैरव रस, मात्रा : 125-250 मि.ग्रा., अनुपान : शहदबाह्य स्वरस
- (ii) प्रजुराण यूत, मात्रा : 20 मि.ली.×2 मात्रा, अनुपान : कोणारुद्धार्थ
- (iii) सिद्धार्थक यूत, मात्रा : 20 मि.ली.×2 मात्रा, अनुपान : कोणारुद्धार्थ
- (iv) ब्राह्मी यूत, मात्रा : 20 मि.ली.×2 मात्रा, अनुपान : कोणारुद्धार्थ
- (v) कल्याणक यूत, मात्रा : 20 मि.ली.×2 मात्रा, अनुपान : उज्जोटक
- (vi) मेध्य रसायन (शंखपुष्पी, गुड्डी, मण्डूकपणी, मधुयष्णी), मात्रा : आवश्यकतानुसार

(vii) सिद्धार्थक योग, मात्रा : आवश्यकतानुसार

आदर्श चिकित्सा पद्धति

1. निदान परिवर्जन
2. देवव्यप्रश्न चिकित्सा
3. स्त्वावजय चिकित्सा
4. मुद्द संशोधन : वर्मन, विरेचन

प्रातः सायं

5. भूतभैरव रस : 125 मि.ग्रा.

- सूति सागर रस : $\frac{125}{1 \times 2}$ मात्रा

- ब्राह्मी स्वरस से : $\frac{1 \times 2}{20}$ मि.ली.

- प्रमुख यूत : $\frac{1 \times 2}{20}$ मात्रा

- ममभग जल से : $\frac{1 \times 2}{20}$ मात्रा

पथ्य एवं अपथ्य
पथ्य

आहार

लघु सुपाच्य, मधुर, मन को प्रिय
लगाने वाले आहर दव्य, मधु, मैन्यल,
शारी चावत, शालि चावल, शिंग;
दुध एवं बूत इत्यादि।

अपथ्य

आहार

उष्ण, तीक्ष्ण, विदही आहार, करेला,
कुन्द्रु, तिक पदार्थ, पर्युषित (बासी)
आहर दव्य एवं अस्त्रिकर आहार
दव्य इत्यादि।

•••• नृ० नृ० ••••

2. अपस्मार

(Epilepsy)

परिचय

संहिता ग्रंथों में वर्णित मानस रोगों के अंतर्गत उन्माद रोग के बाद अपस्मार रोग का वर्णन प्राप्त होता है। अधिकांश संहिता ग्रंथों में अपस्मार का स्वतंत्र व्याधिके रूप में वर्णन प्राप्त होता है। अपस्मार में मुख्यतः स्मृति का नाश प्रधान रूप में होने के कारण अपस्मार को मानस रोग माना जाता है। यदि लाक्षणिक आधार पर देखें तो अपस्मार की तुलना आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Epilepsy रोग से कर सकते हैं। इस आधार पर अपस्मार रोग मानस रोग ही मानना चाहिए। वास्तव में चिंता, शोक, भय इत्यादि मानसिक कारणों से प्रकृपित दोषों से वेतन स्थान हृदय (मस्तिष्क) प्रभावित होता है जिसके फलस्वरूप स्मृति का नाश होकर अपस्मार रोग की उत्पत्ति होती है। यहां पर यदि विचार किया जाये तो उन्माद रोग में भी जान नष्ट होता है अतः अपस्मार रोग उन्माद रोग से भिन्न कैसे है? परंतु उन्माद एवं अपस्मार में कुछ अस्तंत पहचापूर्ण अंतर है।

जैसे उन्माद रोग में बूढ़ि का पूर्ण विनाश नहीं होकर केवल बूढ़ि का विश्रम होता है। जबकि अपस्मार रोग में वेग के समय बूढ़ि का पूर्ण विनाश हो जाता है अर्थात रोगी के समय पूर्णतः संक्षारीन (Unconscious) हो जाता है। अपस्मार में वेग एक अंतराल के पश्चात नियमित रूप से आता होता है। इसका कारण यह है कि लोष संचय के उपरांत जब प्रकृपित होते हैं तब अपस्मार रोग के वेग आते हैं। अपस्मार रोग की चिकित्सा में संशोधन, संशमन औषधियों के साथ-साथ सत्त्वावजय एवं बहिः परिमार्जन औषधियों का भी प्रयोग घृत अथवा रसायन द्रव्यों के रूप में किया जाता है।

प्रमुख संदर्भ ग्रन्थ

1. चरक संहिता निदान स्थान - अस्थाय 08
2. चरक संहिता चिकित्सा स्थान - अस्थाय 10
3. सुश्रुत संहिता उत्तर स्थान - अस्थाय 61
4. अष्टंग हृदय उत्तर स्थान - अस्थाय 07
5. माधव निदान - अस्थाय 21

ब्लूट्सनि

अपस्मार पद 'अप' उपस्मारा पूर्वक 'स्मृत्स्मरणे' धातु से 'चबू' प्रत्यय करने पर अपस्मार शब्द की व्युत्पत्ति होती है।

निरुक्ति

'अप' शब्द गमनार्थ का वाचक है। 'स्मार' से तात्पर्य है स्मरण अर्थात् जिस व्याधि में स्मरण शक्ति का लोप हो जाता है उसे अपस्मार कहते हैं।

परिचाला

व्यतीत विषय के विज्ञान अथवा स्मरण को स्मृति कहते हैं तथा 'अप' शब्द का 'गमनार्थ' अथवा 'परिवर्जन' अर्थ होता है। इन दोनों शब्दों के संयोग से अपस्मार शब्द बना है। अर्थात् जिस व्याधि में रोगी स्मृति ज्ञान के नष्ट हो जाने से किसी भी स्थान में (पृथ्वी पर) गिर जाता है तथा प्राण नाश की स्थिति उत्पन्न हो जाती है उसे अपस्मार रोग कहते हैं।

आचार्य चारक के अनुसार स्मृति, बुद्धि एवं मन के विश्रम के कारण विभृत्स चेष्टा करते हुए चिकित्सालावस्थायी अंथकार में दूबते हुए की प्रतीती होने को अपस्मार कहते हैं।

-
1. अपशब्दो गमनार्थ, स्मार: स्मरणम्।
अपातः स्मारे यस्मिन् रोगे सोऽपस्मारः ॥ (डल्हण)
 2. स्मृतिर्भूतश्चित्तसप्तश्च प्रतिवर्जने।
अपस्मार इति प्रोक्तस्तोऽयं व्याधितकृत ॥ (सु.उ. 67/3)
 3. स्मृतेषाम प्राहुपस्मारं भिषग्विदः ।
तपः प्रवेशं विभृत्स्वनेष्ट थौ सत्त्वसप्तवत्वात् ॥ (च.चि. 10/3)

उच्चाद, अपस्मार एवं आत्माधिनिवेश

सम्प्राप्ति'

उपरोक्त विविध प्रकार के निदान सेवन करने से प्रजुषित दोष मनोबाल्डी ज्ञेयसंगे में फैलते हुए हृदय (मर्तिष्ठक) को पीड़ित करते हुए रज एवं तम दोनों से अभिभूत होकर सृति का नाश करते हैं जिसके फलस्वरूप रोगी, जो रूप नहीं है उनका भी दर्शन करता है तथा अंधकार में दूबने जैसा अनुभव करता हुआ हृत पाद प्रसोपण एवं नेत्रों को चलाते हुये बीभत्त चेष्टा करता हुआ भूमि पर गिर जाता है, इसे ही अपस्मार रोग कहते हैं।

- सम्प्राप्ति चक्र**
1. **आहार जन्य निदान**
 - (i) अहितकर, अपवित्र, संयोग विरुद्ध आहार का निरंतर सेवन।
 - (ii) दुर्गम्भित, दूषित, अमेघ्य, पर्जित (बासी), आहार का नियमित सेवन।
 - (iii) विधि अथवा नियम विरुद्ध आहार सेवन।
 2. **विहर जन्य निदान**
 - (i) मलमूत्रादि वेगों का धारण करना।
 - (ii) रजस्वला रुदी के साथ सम्भोग करना।
 - (iii) विषप्रतं प्रयोग अथवा सद्वृत पातन नहीं करना।
 3. **मानसिक निदान**
 - (i) काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, शोक, चिन्ता, ग्लानि, उद्वेग इत्यादि।
 - (ii) मन की दुष्टि, अधीरता इत्यादि।
 4. **इन्द्रियार्थ एवं दोषज निदान**
 - (i) इन्द्रियार्थ (शब्द, स्मर्त, रूप, रस, गंध) का अयोग, अतियोग एवं मिथ्यायोग होना।
 - (ii) कायिक, वाचिक एवं मानसिक कर्मों का अयोग, अतियोग या मिथ्यायोग होना।
 - (iii) मन का रज एवं तमों दोष से व्याप्त होना।
 - (iv) वातादि दोषों का स्वमार्ग से विचलित अथवा विषम होना।
 - (v) सत्त्व गुण का दुर्बल होना।

अपस्मार रोग
तम: प्रवेश एवं वीभत्त चेष्टा युक्त आवेग
↓
विविध प्रकार के निदानों का सेवन

शारीर दोष एवं मानस दोष प्रकोप

मनोवह शोतस द्वारा हृदय प्रदेश में दोष-दूष्य समृद्धिर्णा
↓
मन: शोभ

सृति विनाश
↓
मनोवह शोतस द्वारा हृदय प्रदेश में दोष-दूष्य समृद्धिर्णा
↓
मन: शोभ

तम: प्रवेश एवं वीभत्त चेष्टा युक्त आवेग
↓
अपस्मार रोग

सम्प्राप्ति घटक

दोष	: वातादि शारीर दोष एवं रज, तम, मानस दोष
दूष्य	: सृति (ज्ञान सामान्य)
अधिष्ठन	: हृदय (मर्तिष्ठक) एवं संज्ञावह नाड़ियाँ
सोतस	: मनोवह शोतस
सौतो दुष्टि प्रकार	: विमार्गमन
व्याधिस्वभाव	: दारण
साम्यासाध्यता	: कृच्छ्रसाध्य/असाध्य

1. विप्रांतवहुदोषापाहितशुचिशोजनाम् ॥

रजस्तमोभ्यां विहते सत्त्वे दोषवृते हृदि ॥

विचित्राकामभयक्रोधशोकोद्गोदार्दिभस्तथा ॥

मनस्यार्थते नृगमपस्मारः इनन्ते ॥ (ऋ.त्रि. 10/4-5)

2. विष्याऽतियोगोद्वियाधकर्मणापाप्तसेवनाद् ॥

वेगानिग्रहशोलागामहिताग्नुचिशोजनाम् ॥

रजस्तमोभ्यां विहते गच्छतो अजरजस्वलाम् ॥

तथाकामभयोद्गोप्त्रोषशोकादिप्रभृष्टगम ॥

ज्ञेतस्याग्निते युग्मापस्मारोऽपिजायते ॥ (सु.उ. 6/14-6)



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

[creator of
hinduism
server]



भैद
शास्त्रों में अपस्मार रोग के चार भेद वर्णित किये गये हैं—

1. वातज अपस्मार
2. पितज अपस्मार
3. कफब अपस्मार
4. सन्निपातज अपस्मार

पूर्वलक्षण

अपस्मार रोग में निम्नलिखित पूर्वलक्षण होते हैं—

1. हल्कम्प (Palpitation of heart)
2. हृदय में शून्यता की प्रतीती (Feeling of no emotions in the heart)
3. स्वेद (Perspiration)
4. ध्वन मन रहना (Constant involvement in self thoughts)
5. युक्त्या (Fainting)
6. घ्रमूँडता (संक्षानास Coma)
7. निदानाश (Insomnia)

प्रमुख लक्षण

अपस्मार रोग के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार प्रकट होते हैं—

1. हस्तपाद विक्षेप (Convulsive movements of extremities)
2. भू. एवं नेत्र में विकृति (Deformities in eyes and eye brows)
3. दंत खादति (दांतों को चबाना Teeth Biting)
4. फेन बमन (Fraothing from the mouth as in emesis)
5. विवृताक्षता (Fixation of Pupils)
6. भूमिपतन (भूमि पर गिरना Fainting)
7. अत्य अंतराल पर पुनः सज्जावान होना (To regain consciousness after some time)

अपस्मार के भेदानुसार लक्षण

1. वातज अपस्मार के लक्षण

शास्त्रों में वातज अपस्मार के लक्षण निम्न प्रकार लिखित हैं—

1. वातपितकफैनुणाङ्गवृद्धुः: सन्निपातितः। (मु.उ. 6/10)

हल्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमुद्दता।

निदानाशक तर्सिमस्तु भविष्यति भवत्स्तथ॥ (मु.उ. 6/17)

विक्षिप्तहस्तपादं च विविहा॒भूवितोच्चनः।

दत्तान् खादन् वसन् फेने विवृताक्षः गिरेत् क्षितो॥

अत्यक्तालात्तरशापि पुनः संज्ञा लभते सः॥ (सु.उ. 6/19-10)

कापते प्रदेशदत्तान् फेनोद्दूर्मा॒ श्वस्त्रिष्टि।

परायालक्षणानि परयेद् रूपाणि नाविद्यत्॥ (च.वि. 10/19)

(i) रोगी के शरीर में कम्पन होता है ('Tremors all over the body')

(ii) रोगी दांतों को किरकिरता है।

(iii) मुख से फेनोद्दाम होता है।

(iv) शास गति तीव्र हो जाती है।

(v) रोगी प्रत्येक वस्तु को रुक्ष, अस्त्रा एवं कृष्ण वर्ण का देखता है।

2. पितज अपस्मार के लक्षण

पितज अपस्मार में निम्न लक्षण व्यक्त होते हैं—

(i) रोगी वेग से पूर्व सभी वस्तुओं को पीत अथवा रक्त वर्ण का देखता है।

(ii) रोगी के मुख से पीत वर्ण का फेनोद्दाम होता है।

(iii) रोगी का सम्पूर्ण शरीर, मुख एवं नेत्र पीत वर्ण का हो जाता है।

(iv) अत्यधिक तुषा की अनुभूति।

(v) शरीर में अत्यधिक उत्थाता की अनुभूति।

(vi) वेग तीव्र होता है।

3. कफब अपस्मार के लक्षण

कफब अपस्मार के लक्षण निम्नलिखित हैं—

(i) रोगी को सभी वस्तुएँ श्वेत वर्ण की दिखाई देती है।

(ii) मुख से श्वेत वर्ण का फेन निकलता है।

(iii) रोगी का शरीर, मुख एवं नेत्र श्वेत वर्ण के हो जाते हैं।

(iv) शरीर शीतल एवं भारी होता है।

(v) रोमहर्ष।

(vi) अपस्मार का वेग देर तक शरीर में रहता है।

4. सन्निपातज अपस्मार के लक्षण

सन्निपातज अपस्मार में तीनों दोषों के प्रकार के सम्मिलित लक्षण रोगी में प्रकट होते हैं। सन्निपातज अपस्मार की तुलना आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Status Epilepticus नामक रोग से कर सकते हैं।

सारेष्ठ निदान

अपस्मार रोग के कुछ लक्षण दूसरों व्याधियों के लक्षणों से भी सम्यता रखते हैं।

1. पौत्रेन्द्रियवकाशः: पीतामृगुप्तदर्शनः;

सरुष्योग्यानत्वात् लोकदर्शी च पंचितकः॥ (च.वि. 10/10)

2. शुक्रकर्त्ताङ्गवकाशः: शीतो ह्याहुं जो गृहः।

परञ्जुक्तलानि रूपाणि रत्तेभिर्गको मुच्यते चिरात्॥ (च.वि. 10/11)

3. सर्वैतेः समस्तैस्तु तिन्दुर्मैर्यिक्तिरोषजः॥ (च.वि. 10/12)